

के बचकर काट पुस्तकामया म जा-जा कर पुस्तको म स मेरे लिए मॉडम संवह किमे मेरी स्महिनी मां ने मुझ मार तथा उत्तरवाचिक से मुझ रम्य मुझ अध्ययन के लिए समय दिया भाई और बहिनो ने मामची पुठाने मे मरह को और मेरे पति श्री माछ प्रसाद जी ने बिबाह के परवान् मुझ एक वर्ष तक अध्ययन करने तथा इस ग्रन्थ की समाप्ति के लिए जनमति थी। मैं इन सबकी ही प्रति अनुमोदीत हूँ तथा सदा खुँसी।

इस ग्रन्थ के विषय में कुछ कहने का मेरा साहस नहीं। श्री सेठ जीबिल्ल राम जी न जो कहा उसको भी मय्य मामने में मुझे अनि संकोष होता है। उनके मूल्यांकन से मैं कभी-कभी चम्मा उठती हूँ कि कहीं यह अनिरेक ही नहीं। उनको म मय्यवाद देने का माहल नहीं करती—मुसय इनकी माय्यता नहीं। केवल प्रकाम मर करना चाहती हूँ यही मे स्वीकार कर में।

राष्ट्रपति डा राजग्न प्रसाद मर के लिए पूज्य रहे। आचार्य नुरु मार्यदयार ममाहृकार पिता उनके समस्त कर्षों म समार पर्वचित हैं। उनको महानता से प्रभावित होकर ही उनको अरता ग्रन्थ समपन करने की आकांक्षा हुई। उनके निरट बसन भी इनी बहाने हुए। यह शाय मेरे जीवन का अ बरवरचीय अय बन गया।

आधुनिक काम म प्रतिदिन भारतीय संस्कृति और सामाजिक इतिहास का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। परन्तु इस विषय पर जो पुष्पकें प्रकाशित हो रही हैं वे प्राय सामान्य मे हय पर निर्गी जा रही हैं। प्राय अर्थिक विस्वासीय भी नहीं हैं। भारतीय संस्कृति का मरणा स्वल्प हमारे सम्मुख तक तक स्पष्ट नहीं हाया जब तक मरुत-माहिय क प्रायक मुग और प्रायक मरान् लेगक की रचनाआ वा विमृत् एव डारवार सामाजिक तथा माग्युतिर अध्ययन न हो जाय। प्रमृग प्रपल भी इनी दिशा म तथा हुआ उद्योग है।

बहि कानिहाम पर अब तक भी मिगदी अरविन्द शापा एम एम भाये रामम्बानी मास्त्री कन्डबनी पाडे आदि अरब विद्वाना वा माहिय प्रकाशित हो चुका है। परन्तु सबकी अपनी-अपनी माय्यताएँ हैं और अपना-अपना वृष्टिकोण। अब का प्रमाणन हुआ है।

# विषय-सूची

बध्माय	विषय	पृष्ठ
१. संस्कृति		१-६
	माछीय बाइमय के अनुसार संस्कृति की परिभाषा पाश्चात्य षिडालों का संस्कृति के लिए 'कल्चर' शब्द का प्रयोग 'कल्चर' की परिभाषा संस्कृति और बर्न संस्कृति और शिक्षा संस्कृति और कला संस्कृति और सम्यता संस्कृति का क्षेत्र ।	
२. वर्ण-व्यवस्था		७-२६
	बन और जाति में अन्तर; वर्ण-व्यवस्था की प्राचीनता और बाबाद; काश्मिरास और बल-व्यवस्था वर्ण-विभाजन-बाह्य बाह्यों के दो बल समाज में बाह्यो का स्थान बाह्यो की वेद्यभूषा पैदा सत्रिम-सत्रियों के विभिन्न कुल बल-समाज में बैर्यों का स्थान दूध-समाज में दूधों का स्थान बाबाक तथा अन्य जातियाँ अनाज जातियाँ समाज में वर्ण-व्यवस्था का महत्व ।	
३. आधम		२७-४९
	जीवन में आधम की महत्ता और उपयोगिता जीवन का आधमों में विभाजन प्रथम आधम और छात्र-जीवन-इष्टाचारी वेद्य, छात्र जीवन प्रथम आधम का महत्व विद्यार्थियों का समाज में स्थान गृहस्थाधम-उपयोगिता सपुष्ठा गृहस्थाधम के कलस्य-अतिवि सत्कार, वार्षिक क्रियाई-संध्या तर्पण होम यज्ञ पंच महाम्यम तृतीय आधम-वानप्रस्थ महत्व वानप्रस्थ आधम में बैरभूषा वानप्रस्थों के रहने का स्थान तपस्वियों के आधम तपस्वी जीवन अतुल आधम-सम्पास चरैय ।	
४. संस्कार		५०-७७
	बर्न आसय तथा चरैय महत्ता संस्कारों का विभाजन संस्कारों की संस्था मुख्य संस्कार-वर्माचार पुंसवन जनवकोमन	



# विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१ संस्कृति		१-६

राष्ट्रीय वाङ्मय के अनुसार संस्कृति को परिभाषा पाश्चात्य विद्वानों का संस्कृति के लिए 'कल्चर' शब्द का प्रयोग 'कल्चर' की परिभाषा संस्कृति और बर्तन संस्कृति और शिक्षा संस्कृति और कला संस्कृति और सम्यक्ता संस्कृति का क्षेत्र ।

२. वर्ण-व्यवस्था	७-२६
------------------	------

वर्ण और जाति में अन्तर वर्ण-व्यवस्था की प्राचीनता और वायदा; काश्चित्त और वर्ण-व्यवस्था वर्ण-विभाजन-ब्राह्मण ब्राह्मणों के दो वर्ण समाज में ब्राह्मणों का स्थान ब्राह्मणों की वैद्यमुपा पेक्षा क्षत्रिय-क्षत्रियों के विभिन्न कुछ वैश्य-समाज में वैश्यों का स्थान शूद्र-समाज में शूद्रों का स्थान, जातिगत तथा वर्ण जातिमाँ अनाथ जातिमाँ समाज में वर्ण-व्यवस्था का महत्त्व ।

३. आश्रम	२७-४६
----------	-------

जीवन में आश्रम की महत्ता और उपयोगिता जीवन का आश्रमों में विभाजन प्रथम आश्रम और छात्र-जीवन-ब्रह्मचारी वेद्य छात्र जीवन प्रथम आश्रम का महत्त्व, विद्यार्थियों का समाज में स्थान गृहस्थाश्रम-उपयोगिता सफलता गृहस्थाश्रम के कर्तव्य-अतिथि सत्कार धार्मिक क्रियाएँ-संन्यास तर्पण होम यज्ञ पंच महायज्ञ तृतीय आश्रम-वानप्रस्थ महत्त्व, वानप्रस्थ आश्रम में वैद्यमुपा वानप्रस्थों के रहने का स्थान तपस्वियों के आश्रम तपस्वी जीवन अनुष्ठान आश्रम-सम्पाद उद्देश्य ।

४ संस्कार	४०-७७
-----------	-------

वर्ण आश्रम तथा उद्देश्य महत्ता संस्कारों का विभाजन; संस्कारों की संख्या मुख्य संस्कार-गर्भाधान पुंसवन अनावस्यमान



अध्याय

विषय

पृष्ठ

अथवा यमराज्य सीमामेगलन अत्यन्त नामकरण निष्क्रमण अथ  
 प्रायण तथा न वडम बुडाकम अथवा चौक विद्यारम्भ  
 कपनयन केसाय अथवा बायान स्नान अथवा समस्ततन विवाह,  
 अर्थोष्ठि-संस्कार अग्नि-संस्कार धातु-संस्कार अपवाह विस्वाध स्त्री  
 पुर्यों के संस्कारों में अंतर कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण प्रयोगों पर विचार ।  
 विवाह

७८-१२१

वेदादि ग्रन्थों में विवाह का उद्देश्य कामिवाध के द्वारा अपनाया  
 गया विवाह का उद्देश्य नर-नरु का पुत्र-वर के आवश्यक पुत्र नरु  
 पुत्रान विवाह योग्य अथवा अन्तर्जातीय विवाह; बहुविवाह, विवाह  
 के प्रकार काष्ठिदास के द्वारा कथित विवाह के प्रकार, विवाह में प्रेम का  
 स्थान प्रेम और सौम्य प्रेम और आध्यात्मिकता प्रेम के अर्थ-धार्मिक  
 व्यक्तीकरण मदनमेख एवं प्रेमपत्र विवाह-संस्कार-विवाह के पुत्र की  
 प्राथमिक क्रियाएँ, मूल विवाह संस्कार, विवाह के पश्चात् की शायिक  
 क्रियाएँ, विवाह की शायिक सामग्री ।

स्वयंवर—वैवाहिक वर्षा स्वागत स्वयंवर-श्रीमा स्वयंवर;  
 वैवाहिक शायिक क्रियाएँ, नर की सज्जत मनुष्य विवाह-संस्कार-  
 कन्यादान अग्निस्वापन और होम पाणिग्रहण अग्नि परिष्करण लम्बा  
 होम सप्तपदी । विवाह-संस्कार के बाद की क्रियाएँ—आर्वाधतरोपण ।

प्राजापत्य विवाह—वैवाहिक-वर्षा नरहुत-रोपण बाम्बान-  
 वैवाहिक सैयारिमी नरु-शृंगार और वैवाहिक वेद्यमुपा-स्नातन  
 परिष्करण प्रसिधारण अथवा कौतुक-हस्तपुत्र वैवाहिक वस्त्र नर  
 शृंगार और वेद्यमुपा ।

वायव्य की श्रीमा स्वागत मनुष्य ।

विवाह-संस्कार, उत्तरवात् की क्रियाएँ और लोकाचार-मुषधन,  
 आर्वाधतरोपण कौतुकपट्ट, काम-श्रीमा ।

## ६ गृहस्थ जीवन

१२८-१४९

गृहस्थ जीवन आर्य समाजहारिष्य रूप पत्नी का कर्तव्य और उत्तरदायित्व—गृह और बाह्य विच्छेद की अवस्था में पत्नी गर्भिणी पत्नी विधवाओं की अवस्था सती प्रथा परदे की प्रथा समाज में गरीबी की स्थिति भारी जीवन पर सांगोपांग बुद्धि—कन्या का शिक्षा कर्तव्य शिक्षा का आदेश देना कन्या जीवन के आरंभ मुनशी-पत्नीत्व—कृतव्य और आरंभ मनोरंजन साधन मातृत्व—गौरव और आदेश ।

## ७ ज्ञान-दान

१५०-१६४

भोजन के प्रकार—( १ ) अनाज—सब आर्य समाज—शास्त्र नीति, कर्मा कर्मा विषय काज बाज । ( २ ) दूध तथा इसकी परिचित बाहुति । ( ३ ) मधु और मिष्ठान । ( ४ ) मांस और मछली मांस के प्रकार, प्राप्ति-साधन । ( ५ ) फल । ( ६ ) मसाले । पेय-पदार्थ—मदिरा—प्रकार, अन्तर ।

## ८ वेश-भूषा

१६५-२४१

काक्यास की सौन्दर्य-प्रतिष्ठा स्त्री-सौन्दर्य पुस्तक-सौन्दर्य सौन्दर्य की परिभाषा तथा उत्पत्ति प्रयोग ।

( १ ) वस्त्र—वस्त्रों के प्रकार—कौटिल्य सौम पञ्चोप कीचोप पञ्चोप पुकूल हंसविह्वल पुकूल अष्टक वनूनि भारी वस्त्र मृगछाया वस्त्र वस्त्रों के मुख्य रंग ।

साधारण वेश-भूषा पुकूल के पहनने का ढंग कर्पासक और स्त्रोपाधुत ओझनी—ओझने का ढंग ध्वनीस कृता ।

वेश-भूषा के प्रकार—लिकारो डाकू मछुआ, यवनो वेश हारपाठ अभिचारिका उपस्वी राजा किरात चित्र नर्तक्यादि की वेश-भूषा । वैवाहिक वेश भूषा विरहिणी और विरही की वेश-भूषा प्रती की वेशभूषा यश के समय का वेश छत्र वेश स्नानीय वेश रात्र्याभिव्यक्त की वेश-भूषा शत्रु अनुसार वेश—धीव्यकाल का वेश वर्षाकालीन वेश रात्र्यकालीन वेश, हेमन्त वेश शिशिरकालीन वेश सर्पत समय का वेश ।

अध्याय

विषय

पृष्ठ

( १ ) आभूषण—प्रकार, विभिन्न मणिवाँ स्त्री और पुरुष के आभूषणों में अंतर मुख्याभूषण पुष्पाभरण ।

( २ ) शृङ्गार—केस-रचना मुख-शीतल्य शीतल्य के उपकरण शृङ्गार के अन्य उपकरण—गुण्य वस्त्र अंगरक्षक वस्त्रों के प्रकार, हस्तिल मन्त्रित लेख मुखमन्त्रित इत्य मुखमन्त्रित पूर्ण वर्णन आदि प्रकाशन-कला ।

६ सामाजिक जीवन, रीतिरिवाज तथा आचार-व्यवहार २४२-३१६

सामाजिक जीवन ( १ ) पारिवारिक जीवन—मुख्य सम्बन्धी मित्र मित्र का महत्त्व मित्रता करने में सावधानी भूषण वर्ण ।

✓ यह यह-सम्बन्धी पत्नीविर तथा वतन—यह—पत्नीविर पत्नीविर उद्यम हीन वीर्य प्रसार आदि प्रकार । यहाँ का विचारण कलावि के प्रकार ।

पत्नीविर—गला प्रकार के आसन विहासन शीतल्य वर्ण वस्त्र पर्वक आदि ।

वतन—वतनों के प्रकार—मिट्टी मुख तथा कीमती वस्तु निर्मित पात्र मुख्य वर्तनों के नाम ।

वाहन—चोड़े हाथी हाथ अंत वस्त्र आदि कर्षीव और पत्नी ।

( २ ) राजकीय जीवन राजा के मुख राजकीय विनयवाँ राजकीय कर्तव्य आसन प्रकाशन कर, परराष्ट्रनीति अन्तराष्ट्रीय सम्बन्ध राजा के महायुक्त—आमात्य मन्त्रियों के प्रकार, राजा की शिक्षा विनय आसन राज विज्ञ ।

( ३ ) स्वास्थ्य : रोग तथा चिकित्सा चिकित्सा की चिकित्सा

मानवीय जीवन के विभिन्न उत्सव—पुनर्जन्मोत्सव विवाहोत्सव  
पञ्चामिवेक का उत्सव रात्रि के बाहर से जाने के बाहर का उत्सव  
मृहप्रवेश उत्सव पालभूमि-रचना ।

वार्मिक उत्सव—पुष्कृत तिथि विशेष पर संयम पर स्नान  
तीर्थयात्रा आदि ।

विनोद—बलक्रीड़ा मरिचपान मृगया घृतक्रीड़ा कोकनृत्य  
एवं संगीत विनयकला कवा-आख्यायिका क्रीडापक्षी क्रीडापक्ष और  
उद्यान विहार कथ्याओं की क्रीडाएँ—कन्दुक क्रीडा पुस्तकिका मन्त्रियों  
को बालू में छिपाने का खेल चिक्का पत्र के छि । मुबली स्त्रियों की  
क्रीडाएँ—वास्तवमन्त्रिका छहकार मन्त्रिका आदि । बूझों का विवाह ।

( ५ ) आर्थिक जीवन—स्वावसायिक कम व्यापार मार्ग  
आत्मत-निर्मात की वस्तुएँ, मुद्राएँ लौह और पैमाने वन का एकत्री-  
करण ।

सामाजिक रीति रिवाज आचार तथा व्यवहार—प्रणाम करने  
की विधि आशीर्वाद देने की प्रणाली जतिवि-पूजा अतिवि-स्वागत  
की विधि अन्य रीतिरिवाज ।

नैतिकता—नैतिकता का आदर्श व्यावहारिक स्वल्प—जीवन  
में उत्कृष्टता और लोचनमय आदि ।

## १० छन्दकला

३१४-३७८

छन्दकला की परिभाषा छन्दकला का विभाजन ।

( १ ) काव्यकला नाट्यकला—महत्त्व नाटक की उत्कृष्टता  
और समाज के साथ सम्बन्ध नाट्य कला का विकास—सैद्धान्तिक पक्ष  
नाट्यकला के उत्कृष्ट अंग तथा पारिभाषिक शब्द—रंग प्रेक्षागृह,  
नेपथ्य तिरस्करिणी रंगमन्चीय परिभाषा रंगमन्च की सैपाटी भूमिका  
अभिनय संघीत हास्य रिहसस ।

( २ ) संगीत कला—संघीत की उत्पत्ति व्याकरण के साथ  
सम्बन्ध नाट्यशास्त्र के साथ सम्बन्ध संघीत का विभाजन ।

( ३ ) गीत—गीत के प्रकार, परिभाषा और महत्ता संघीत  
और गीत में अन्तर, संघीत के पारिभाषिक शब्द—गाय स्वरा, घाम  
मूकता ठाक कय घाम उपगाम अन्तरिचय मयूरी और मावना

( २ ) आभूषण—प्रकार विभिन्न मणिवाँ लबी और पुष्प के आभूषणों में अंठर, मुक्ताभूषण पुष्पाभरण ।

( ३ ) मृत्तम—केश-रचना मुख-शीर्ष्य शीर्ष्य के उपकरण मृत्तम के अन्य उपकरण—पुष्प बन्धन और राख बन्धन के प्रकार, हस्तियन्त्र मैथिल लेख सुवन्धित इन्ध सुवन्धित कूर्च दर्पण आदि प्रसादन-कला ।

## ६ सामाजिक जीवन, रीतिरिवाज तथा आपार-स्वबहार २४२-३१९

सामाजिक जीवन ( १ ) पारिवारिक जीवन—मुख्य सम्बन्धी मित्र मित्र का महत्व मित्रता करम में सावधानी भूषण वय ।

१/ ~~एह~~ एह-सम्बन्धी फलीफर तथा वर्तन—एह—नवकुटी पर्ययाला बटन शीघ्र वीरम प्राप्त आदि प्रकार । एहों का विचारन कलावि के प्रकार ।

फलीफर—गला प्रकार के आसन विज्ञान बौद्धिक संव उपर परबद्ध आदि ।

वतन—वतनों के प्रकार—मिट्टी सुवर्ण तथा कीमती वस्तु निर्मित पान मुख्य वर्तनों के नाम ।

वाहन—चोड़े हाथी छोटे ऊँट बन्दर आदि कर्षीरव और वाहकी ।

( २ ) राजकीय जीवन राजा के गुण, राजकीय विनयणी राजकीय कर्तव्य शासन प्रबन्ध कर परराष्ट्रनीति अन्तराष्ट्रीय सम्बन्ध राजा के उपायक—आमात्य कनिषों के प्रकार, राजा की शिक्षा विनोद सावन राज विज्ञान ।

( ३ ) स्वास्थ्य : रोग तथा १

स्वस्थ शरीर

मानवीय जीवन के विभिन्न उत्सव—पुनर्जन्मोत्सव विवाहोत्सव  
उत्पादिवेक का उत्सव राजा के बाहर से आने के बाद का उत्सव  
गृहप्रवेश उत्सव पानभूमि-रचना ।

धार्मिक उत्सव—पुस्तक तिथि विशेष पर संयम पर स्नान  
तीजमाता आदि ।

विनोद—बल्लरीका यदिराज मृगया घुत्तरीका छोकनृत्य  
एवं संवीत चित्रकला कथा-आख्यायिका क्रीडापत्नी क्रीडावैत और  
छाया विहार कथाओं की खीड़ाएँ—कम्बुक क्रीडा पुस्तिका मणियों  
को बालू में छिपाने का खेल विक्रान्त पर्वत के छि । मुबली स्त्रियों की  
खीड़ाएँ—शाकभक्षिका सहकार भिक्षा का आदि । कुशों का विवाह ।

( ५ ) आर्थिक जीवन—व्यावसायिक काम, व्यापार मार्ग,  
आयात-निर्वात की वस्तुएँ, मुद्राएँ लौह और पैमाने बन का एकत्री-  
करण ।

सामाजिक रीति रिवाज आचार तथा व्यवहार—प्रमाण करने  
की विधि आधीर्वाद देने की प्रमाणी अतिथि-पूजा अतिथि-स्वागत  
की विधि अन्य रीतिरिवाज ।

नैतिकता—नैतिकता का आदेश व्यावहारिक स्वल्प—खेद  
में सम्बन्धिता और कोसलापन आदि ।

## १० कछितकला

१५-३५

कछितकला की परिभाषा कछितकला का विभाग ।

( १ ) कर्मकला नाट्यकला—मूल्य यह है कि  
और समाज के साथ सम्बन्ध नाट्य कला का विभाग—  
नाट्यकला के उत्पत्ति, बंध तथा पारिस्थितिक कारण—  
नेपथ्य विवरणपरिणी रंगमंचीय परिभाषा, रंगमंच के रंग, कला  
अभिनय संवीत हास्य विमल ।

( २ ) संवीत कला—  
सम्बन्ध नाट्यशास्त्र के साथ—

( ३ ) गीत—  
और गीत में कम्पन—  
मूल्य का एक—

पदम्यास विपरिका धात्राय सत्य रागकैयिक सारंग कलित भारि।

( ब ) वाद्य संगीत—वाद्य बज्ज के प्रकार—तम्बोरु वाद्य—  
वीणा के प्रकार—परिचादिनी वास्तवी एबोसियन हार्पे। वीणा  
बजाने की विधि—मुपिर बजाय रग्ययुक्त वाद्य—वेधु, संख, तुर्र  
एबोसियन पकट, बबनद वाद्य—मुरब पुन्कर, मूर्बन कुन्नुवि पट्ट,  
मर्बक भारि। पुन्कर के सम्बन्ध में विभिन्न कथ। बबनद—बध्ता।

( छ ) नृत्यकला नृत्य के तीन भेद—नृत नृत्य और नाट्य।  
नृत्य और नृत में भेद। नृत्य के प्रकार—नामर नृत्य कम्पिदि  
नृत्य और बनिगम। संगीत का उद्देश्य महत्ता और प्रचार।

( १ ) चित्रकला—महत्ता कला में इसका स्थान चित्रकला के  
उपकरण—तुमिका बर्तिका बालुपय बज भारि। चित्र के प्रकार—  
सामूहिक चित्र व्यक्तिगत चित्र वास्तु चित्र। अनुकृति तथा स्वरूप  
कल्पित से चित्र कीचना तफकटा चित्रकला का उद्देश्य।

( ४ ) मूर्तिकला—उत्कीर्ण मूर्तियों मूर्त्तय मूर्तिनी—देवमूर्तियों  
की विशेषताएँ—प्रमाणकाल राजे पद्म कपालमरया कम्बी कीक-  
रविन्द कम्बी प्रतापिका कामदेव यक्ष भारि की मूर्तियों चित्र  
और बुद्ध की समानता बौद्धादि के चित्र केन्द्र-विन्यास की विभिन्न  
प्रणालियाँ।

( ५ ) वास्तुकला अथवा स्थापत्यकला—नामर, राजपद राज-  
प्रासाद प्रासाद के प्रकार—निमान प्रतिष्ठापन, नविहम्म देव प्रतिष्ठा  
देवकलाक समुद्रगृह लीज और हर्म्य गृह की उपरेखा तोरण  
अस्तिन अट्ट और तम्ब वातायन बायन वास्तुगिमीन स्तम्भावार  
अस्तिन सोपान वास्तुपटि और स्तम्भ।

जन्म हमार्ये—विवाहकथन चतुष्क तरोपुह चतुष्क  
यत्राया प्रतिमानुह। उपवन

विद्यार्थी-विद्यार्थी प्राप्ति की अवस्था विद्याभ्यास की अवधि का बोध, गुण स्वभाव धिष्य के विविध क्रम तथा कठिन सुविश्रित के लक्षण अध्ययन के विषय-बैद ब्राह्मण ग्रन्थ स्मृति उपनिषद् भगवद्गीता शास्त्र-अथर्वशास्त्र कामशास्त्र नाट्यशास्त्र ज्योतिषशास्त्र राजनीति दर्शनशास्त्र लोकोक्त सम्यक्शास्त्र इतिहास व्याकरण चिकित्सा काव्य धनुर्वेद आयुर्वेद । अनुविद्या तथा अन्य शास्त्रों की शिक्षा अस्तित्वकाल उपयोगी शिक्षा अथवा औद्योगिक विद्या मंत्रादि की शिक्षा लेखनकला । व्यवधान के साधन लेखन-संक्षीप शिक्षण पद्धति; पाठ्यक्रम शुल्क परीक्षा । जनसाधारण की शिक्षा स्त्री-शिक्षा ।

## १२. धर्म तथा धर्म

४१८-४६२

धर्म की परिभाषा धर्म कीर क्षेत्र ।

ईश्वर के विषय में धारणा-साक्ष्य मठ वैश्वानर मठ योग, जम्बू के विषय में धारणा मृत्यु का विद्वान्तर परलोक जीवन-मीमांसा ब्रह्म मोक्ष-बीज ब्रह्म; क्रमवार पुनर्जन्म आत्मसुख आध्यात्मिक भाव अवस्था धर्म का महत्त्व ।

वैदिक पौराणिक देवता देवियाँ मूचर देव-देवियाँ देवी-देवताओं के बाहुन वीर्य-बागवत समस्त देवी-देवताओं का विघटन विवेचन जनता-छिन्न-दीन सम्प्रदाय की विभिन्न शाखाएँ-कालपोरी दीन मठ पादुपत धर्म ।

पूजा करने की विधि-मूर्ति-पूजा यज्ञ

पूजनक्रम-अनुष्ठान व्रत

लोकप्रचलित विश्वास अंधविश्वास

[ परिशिष्ट ]

( १ ) कालिदास का समय

४६३-४८१

( २ ) कालिदास के समय में 'काम-शास्त्र'

४८२-४९६

जागार ग्रन्थों की तात्पर्य

१-६



## संकेत-सूची

अक्षर०	=	अक्षर
ठी० वा०	=	तैत्तिरीय ब्राह्मण
रघु०	=	रघुवंश
अभि	=	अभिज्ञानशाकुन्तल
कुमार	=	कुमारसम्भव
ठी० उ०	=	तैत्तिरीय संहिता
वा० अ० सू०	=	वात्स्यस्तम्भ धर्मसूत्र
वात्स०	=	वात्स्यकात्मन गृह्यसूत्र
मातृ०	=	मातृसिकाभिमिन
विक्रम०	=	विक्रमोपखीय
पूर्वमेव	=	मेघदूत, प्रथम भाग
उत्तरमेव	=	मेघदूत द्वितीय भाग
अक्षर०	=	अक्षरसंख्या
पृ०	=	पृष्ठ
fig.	=	Figure
p.	=	Page
vol	=	volume
ed.	=	edition
pt.	=	Part

नोट—समस्त ग्रन्थों में पृष्ठ की संख्या अथवा अंक का सम्बन्ध है; उत्तरभाग को अंक  
संख्या ।

प्रथम अध्याय

## संस्कृति

सम् रूपस्य पूर्वक 'क' बाहु से भूषण जब में 'सुद्' का आगम करके 'सिन्' प्रत्यय करने से संस्कृति सम्भूत बनता है। इसका अर्थ होता है, भूषणभूत सम्भूत कृति। अतः अरथात् भूषणभूत सम्भूत कृति या चेष्टा ही संस्कृति कही जा सकती है। संस्कृति का अर्थ भी अतः भूषणभूत सम्भूत कृतियों का सम्पूर्ण क्षेत्र ही है।

पशु, पक्षी कीट पतंगानि भोग योनियों में जीव की चेष्टाएँ स्वाभाविक होने के कारण उनमें सम्भूत-असम्भूत का भेद नहीं किया जा सकता। परन्तु मनुष्य योनि में जीव कर्म करने में स्वतन्त्र माना गया है। अतः मनुष्य सम्भूत-असम्भूत दोनों प्रकार की चेष्टाएँ करने में समर्थ है। अतः मनुष्य की भूषणभूत सम्भूत कृति या चेष्टा ही संस्कृति है।

भूषणभूत सम्भूत चेष्टाएँ वे ही हैं जिनके द्वारा मनुष्य अपने जीवन के समस्त क्षेत्रों में उत्थिति करता हुआ सुख धान्ति का प्राप्त कर। दूसरे क्षेत्रों में आर्थिक भौतिक आर्थिक एवं आध्यात्मिक उत्थिति की सहायक व अनुकूल चेष्टाएँ भूषणभूत सम्भूत चेष्टाएँ हैं। अतः मनुष्य की वैयक्तिक सामाजिक आर्थिक राजनैतिक, धार्मिक—समस्त क्षेत्रों में लौकिक एवं पारलौकिक सम्पुर्ण की चेष्टा ही संस्कृति है।

प्राकृतिक विज्ञान के अनुसार संस्कार की हुई पद्धति 'संस्कृति' है। संस्कृति मानव की जीवन शक्ति प्रगतिशीलता साधनाओं की विमल विभूति राष्ट्रीय जाति की पौरवर्ण्य मर्यादा व स्वतन्त्रता की वास्तविक प्रतिष्ठा है। श्री राजगोपाकाचार्य का कथन है कि किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के लिए पुरुषों में विचार बाधों एवं क्रिया का जो रूप व्यक्त रहता है, उसी का नाम संस्कृति है।

यही सम्पूर्णान्त के मणानुसार संस्कृति समष्टित्व समान अनुभवों से उत्पन्न भूत पदार्थ है। एक ही अक्षय्य में पके एक ही राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक सुख-सुख की मोने हुए लोगों के चित्तों का सुकाय प्राप्त एक ही-ता होगा। एक-ही अनुभूतियों से आचार-विचार भी एक होंगे। अतः संस्कृति वह ऐतिहासिक है जिससे कोई समुदाय-विशेष जीवन की समस्याओं पर दृष्टि मिलेप करता है। जो भाव की अनुभूति है वह एक संस्कार के रूप में व्यक्त रह

जायेगी। लकड़ी पत्थर की तरह संस्कृति एक निश्चल पदार्थ नहीं है। यह एक बहती हुई बाध है जिसमें सदा कुछ-न-कुछ नवीन अंश जुड़ता रहता है और कुछ बिगुल भी होता रहता है। साथ ही कुछ किसी और रूप में भी परिवर्तित होता रहता है।

निरन्तर प्रगतिशील मानव-जीवन प्रकृति और मानव-समाज के जिन-जिन असंख्य प्रवाहों व संस्कारों से संस्कृत व प्रभावित होता रहता है उन सबके धातु-हिक पदार्थ को ही संस्कृति कहा जाता है। मानव का प्रत्येक विचार, प्रत्येक कृति संस्कृति नहीं है पर जिन कार्यों से किसी देश विषय के समस्त समाज पर कोई अमिट छाप पड़े नहीं स्थायी प्रभाव ही संस्कृति है। संस्कृति वह आधारशिला है जिसके आधार से जाति समाज व देश का विद्यमान सम्यक प्रगति निमित्त होता है।

संस्कृति के लिए पाश्चात्य साहित्य में 'कल्चर' शब्द का प्रयोग होता है। भारतीय वाङ्मय और पाश्चात्य साहित्य में 'संस्कृति' व 'कल्चर' शब्द की परिभाषा में कोई विशेष अन्तर नहीं है। मूक माव नहीं है, अन्तर है केवल कहने के ढंग में। श्री टी० एस० इन्विट का कहना है कि 'कल्चर शिवा एवं व्यापारों की समष्टि मात्र नहीं अपितु जीवन व्यतीत करने का विशेष प्रकार है'। यह स्वभावतः स्वतः उत्पन्न कोई पदार्थ नहीं अपितु उपार्जित वस्तु है। अतः प्रत्येक देश प्रत्येक काल व प्रत्येक व्यक्ति तक की संस्कृति में भेद हो जाता है। अनेक व्यक्तियों ने सम्मिश्रित आचार-विचार का विभिन्न संस्कृति की रक्षा परिवर्तित करता रहता है।

'कल्चर' शब्द की विधिवत् व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि—'कल्चर' शब्द से मेरा आशय एक स्थान में रहनेवाले विषय व्यक्तियों के समुदाय के रहने के ढंग से है। उनके सामाजिक आचार-विचार, स्वभाव आदर रीति-रिवाज कला सबमें संस्कृति के दृश्य होते हैं। यद्यपि हम सुनिचा के लिए इन सब युक्तों व व्यापारों के समूह को 'कल्चर' कह देते हैं पर वास्तविक रूप में यह 'कल्चर' नहीं बल्कि कल्चर के अंग हैं। जिस प्रकार दारिद्र्यिक अंगों का समूह मानव नहीं अपितु मानव इन सबके अतिरिक्त भी कुछ और है, उसी प्रकार 'कल्चर' भी रीति रिवाज रहन-सहन कला धार्मिक विश्वास आदि सेशों में सीमित नहीं हो सकती<sup>१</sup>।

बी ई० बी० टाह्तर भी इसी मत के पक्षपाती हैं। उनके शब्दानुसार 'कल्चर' उस समष्टि को कहते हैं जिसमें ज्ञान विश्वास कला नैतिकता ग्याम रीति-रिवाज तथा प्रत्येक स्थापित युग है जो मनुष्य समाज ने एक सरस्य होने के लिये प्राप्त करता है<sup>१</sup>।

एमसन किसी दूसरे को व्यक्ति न करने वाले बाके भाषार व्यवहार को संस्कृति कहते हैं। श्री मैथ्यू मानस का मत है कि संस्कृति वृक्षता की ओर अग्रसर होने का मार्ग है। इसका माध्यम उन सब बातों का ज्ञान है जिनका हमारा साथ अधिक सम्बन्ध है। 'कल्चर' का उद्देश्य प्रकृत व कोमलता ममता की उत्पत्ति है। केवल इंजीनियर विस्फारों का निर्माण करने मात्र से काम ममाप्त नहीं हो जाता। उनके मतानुसार 'कल्चर' मनुष्य को निरास एवं कोबी होने का अधिकार ही नहीं है<sup>२</sup>।

वास्तव में 'कल्चर' मयबा संस्कृति का बड़ा व्यापक अर्थ है। अतः किसी परिमाप द्वारा इसको बीया नहीं जा सकता। यह सब कुछ है और इसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ है।

संस्कृति व धर्म—बहुत से विद्वानों में यह भ्रान्त मत फैला हुआ है कि धर्म और संस्कृति एक ही वस्तु के दो नाम हैं। संस्कृति में धर्म का अवसर जाता है, पर संस्कृति ही धर्म नहीं है। निस्संदेह धर्म का संस्कृति में

in their religion, but these things added together do not constitute the culture though we often speak for convenience as if they did. These things are simply the parts into which a culture can be anatomised as a human body can. But just as a man is something more than an assemblage of the various constituent parts of his body so a culture is more than assemblage of its arts, customs and religious beliefs

- Page 120 T.S. Eliot-Notes towards the Definition of Culture.

- १ "Culture is that complex whole which includes knowledge, belief, art morals law customs and any other capabilities, and habits acquired by man as a member of Society"

—Taken from the book-Culture & Society—by Merrill & Eldredge.

२. Culture and Society by G S Ghurye Ph. D., Prof and head of the deptt. of Sociology University of Bombay Page 62.

बहुत बड़ा हाथ है। धर्म ही मनुष्य को सदाचारी बनाता, सहनशील बनाती बनाता है और ये गुण ही मनुष्य को संस्कृत करते हैं। परन्तु फिर भी धर्म व संस्कृति पुष्क-पुष्क वस्तुएँ हैं। चीन में बौद्ध सिद्धी तथा मुसलमान ने तीन प्रधान धर्म हैं परन्तु जाति सबकी एक है 'चीनी'। वहाँ का बौद्ध भी 'बाइ पूइ नून' और सिद्धी भी 'बाइ काम् बाइ' तथा मुसलमान भी 'बाइ चू सीह'। अर्थात् संस्कृति सबकी एक है। भारत में रहने वाले मनुष्य किसी भी धर्म के मानने वाले हों पर संस्कृति में भिन्नता नहीं मिलती। धर्म केवल शासन-सम्मत बातों का अनुमोदन करता है, पर संस्कृति में शासन से अविच्छेद लौकिकता व अनौकिकता दोनों ही हैं। संसार में इसमें दोनों का ही अन्तर्भाव हो जाता है।

**संस्कृति व सिद्धांत**—इसी प्रकार एक आवश्यक मस्य यह भी है कि संस्कृति अनात्मक सिद्धांत है। परन्तु जो उच्च सिद्धांत है, यह आवश्यक नहीं कि यह सुसंस्कृत भी हो। बड़े-बड़े विद्वान् व ज्ञानवान् ज्ञाने-धीने हर्षनेत्रोन्नेति आदि भाषण के साधारण सिद्धांतों में विस्तृत गौरव देखे जाते हैं। योद्धा सिद्धांत भी अति सुसंस्कृत हो सकता है।

**संस्कृति व कला**—बहुत-से विद्वान् कला को ही संस्कृति कहते हैं। अतः जिसको कला में मिलती अधिक निपुणता प्राप्त होती है वह उतना ही अधिक संस्कृत माना जाता है। उपरोक्त मतों की तरह यह भी अर्थ-वस्तु ही है। बड़े से बड़ा कलाकार भी समस्त कलाओं में पारंगत नहीं होता। यही नहीं अधिकतर में कलाकार सबसे अधिक आचार-व्यवहार के सामान्य सिद्धांतों से अनभिज्ञ देखे जाते हैं। एक बहुत अच्छा कवि व्यावहारिक क्षेत्र में बड़ा अनैतिक हो सकता है। अतः कला संस्कृति नहीं अपितु उसका एक अंग है।

**संस्कृति व सम्मता**—संस्कृति और सम्मता में बहुत से समान्य अंतर नहीं देखते। सब तो यह है कि संस्कृति और सम्मता दोनों राज्य इतने सम्यक हैं कि इन दोनों का प्रायः एक ही अर्थ में व्यवहार होने लगा है। फिर भी इनमें अंतर है, यद्यपि है अति सूक्ष्म। सम्मता शरीर के मनोविकारों की चोटक है, जब संस्कृति आत्मा के अनुष्ठान की प्रवृत्ति है। संस्कृति आन्तरिक व सम्मता बाह्य उत्पन्न है। प्रत्येक राज्य व्यक्ति आवश्यक नहीं कि सुसंस्कृत जी हो।

अतः 'सम्य' राज्य से बना है। सम्य का एक अर्थ सत्य या सभा

२। अतः सम्मता

हम जिसे आधुनिक समय 'बीतिस्मैम' कहते हैं उसमें आन्तरिक घुग हो भी सकते हैं होते भी हैं पर यह अमिषाम नहीं है। संभव है यह कुछ मित्रा-युद्ध हो या उसकी चिन्ता केवल ज्ञान-बुद्धि की ही सहायक हो। समय व्यक्ति प्रायः नीतिज्ञ उत्पत्ति को लक्ष्य मानता है। वह अपने स्वाध-साधन की ओर अधिक ध्यान देता है, दूसरे के कष्ट-निवारण की ओर नहीं। अतः समय व्यक्तियों में रिश्ततजोरी छिन-सपट सामन्तवादी कम कष्ट भूतता बहुत अधिक हो सकती है। हाँ, ये लोग अपने कर्तव्यों को इस प्रकार करते हैं कि साधारण मनुष्य की आँख में वह दोष सरलता से नहीं आता। पर इससे वस्तुस्थिति में अन्तर नहीं आता। बहूधा देखा जाता है कि रेश की माया में समय कहा जाने वाला व्यक्ति अपना विस्तर क्रिया कर इतना स्थान घर केता है कि दूसरे को बैठने का स्थान नहीं मिलता। पर जब वह स्वयं पाड़ी में बैठता है तब किसी का सेटा रहना उसे सहन नहीं होता। इसी प्रकार जब यूरोपियन लोग अपने आपको भारत वासियों अपना अफ्रीका के मनुष्यों से अधिक समय समझते हैं तो उनके सामने त्याग दया परोपकार आदि क्रोमक भावनाओं की तुलना का प्रश्न नहीं होता। सांसारिक साधन, जिसके पास अधिक है नीतिज्ञ अथवा सार्वरिक धर्म में जो बलीपत्न है, वही समय है। अतः स्पष्ट है कि समयता का जय बाहरी वैभव, आचार विचार, रहन-सहन प्रभुता है।

बी सम्पूर्णतः के, कल्पानुसार संस्कृति मानसिक है, आन्तरिक है, समयता बाह्य व नीतिज्ञ। संस्कृति को अपमाने में देर कमती है पर समयता की सहायक की जा सकती है। अफ्रीका का आग्नि निवासी कोट-मत्तून पहन सकता है, यूरोपियन डंग के बैगमें में रह सकता है, फिर भी उसका सांस्कृतिक स्तर अजब वैसा नहीं हो सकता।

संज्ञे में संस्कृति में समयता का अन्तर्भाव हो जाता है, पर समयता में संस्कृति का नहीं। संस्कार रूप में अविशिष्ट समयता संस्कृति बन जाती है। संस्कृति की अमिष्यक्ति समयता है।

संस्कृति का क्षेत्र—संस्कृति एक व्यापक शब्द है, जिसको दो-चार चीजों में भली भाँति समझा नहीं जा सकता। प्रत्येक मनुष्य अपनी धूस व बुद्धि के अनुसार इसकी पृथक्-पृथक् परिभाषा करता है परंतु प्रत्येक परिभाषा इसके सम्पूर्ण क्षेत्र की अमिष्यक्त नहीं करती।

मही नहीं, कालानुसार भी इसका कार्य चलता रहा है। आज बही संस्कृत समझा जाता है बी सामान्य रूप से आचार-विचार के सामाजिक नियमों से पुनर्जा अमिष्य हो तथा बी राजनीति के ऊपर भी अपने विचार व्यक्त कर सकता हो। वर्म को आजकल कोई आस्था नहीं। —

परन्तु प्राचीन काल में ब्रह्म संस्कृति का प्रधान अंग था। अतः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ब्रह्म की महत्ता थी। आचरण की तरह आचार-विचार को प्रधानता दी अवश्य जाती थी पर इस आचार-विचार का बर्णानुक्रम होना भी आवश्यक था। भारतीय संस्कृति के आचार पालनात्मक देशों की तरह बनपति नहीं बरम्भवादी स्वरूप है, जो त्याग को सर्ववर्ष का मूल मानती है। यहाँ एक करोड़पति असम्पन्न एवं असंस्तुत समझा जायेगा यदि उसने सामान्य आचार का परित्याग कर दिया है, और एक कंगोटीबारी ब्रह्म विष्ट व सुसंस्तुत माना जाएगा यदि वह बार्मिक मर्यादा का पालन करता है। इसके ठोस उदाहरण महात्मा गांधी हैं जो अर्थव्यवस्था के तत्त्व से दूर रहकर पृथक् गए थे। अतः सामाजिक संघटन में ब्रह्म-व्यवस्था आचरण में जीवन का विभाजन जीवन का सामाजिक संस्कारों के द्वारा परिधीकरण बिनाह व संतानोत्पत्ति में काम की अपेक्षा ब्रह्म की प्रधानता गृहस्थ जीवन में पति-पत्नी का आचरण करतव्य उत्तरदायित्व अतिवि-सत्कार नैतिकता का प्रथम सब में यही मूल मानना अंकित थी।

यहाँ एक और ब्रह्म जीवन को सामाजिक के रंगों से चित्रित करता रहा यही दूसरी ओर धिमा इस सचाचार के माग को प्रकाश देती रही। मनुष्य के स्वच्छिन्न में उसकी वैश्व-भूषा आचरण स्वभाव अनोखे-जन के साधन सामाजिक रीति-रिवाज में इस विशेष प्रकार की शिक्षा का बहुत बड़ा हाथ था। बर्णानुक्रम केसा रैना गुरु का उद्देश्य था। धिमा का ब्रह्म सम्पन्न धार्मिक उन्नति के साक्षात्कार आध्यात्मिक उन्नति था। अतः साहित्य दर्शन इतिहास प्रत्येक विषय मानव शिक्षा का अंग था।

संस्कृति के मूल में यहाँ विवेक सचित अध्यात्म या यही लोक की सौन्दर्य-प्रतिभा भी थी। यह सौन्दर्य-आवना कला का पर्यायवाची शब्द है। कला कला के द्वारा सत्त्वान् भूर्त सौन्दर्य-आवना से ही संस्कृति की काया पुष्ट होती है। कला-रसिकाओं का संस्कृति के साथ यही पुष्ट सम्बन्ध है व था।

अतः प्राचीन भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत सामाजिक संघटन में ब्रह्म-व्यवस्था शास्त्रों में जीवन का विभाजन संस्कार बिनाह, गृहस्थ जीवन आनन्दान् देशभूषा सामाजिक रीति-रिवाज नैतिकता अंकित करारें, धिमा ब्रह्म आचरण की

के अध्यायों में अन्तर्गत इसी पुष्टिकोण से काव्यशास्त्र के आचार

दूसरा अध्याय

## नर-व्यवस्था

प्राचीन काल की जन-व्यवस्था तथा आधुनिक काल के जाति-भेद में आकाश-पाताल का अन्तर है। आधुनिक काल में भी जिस जाति में उत्पन्न होता है वह उसी जाति का कहलाता है बिनाह व लालपान के लिए वह जाति विशेष और बिनाह के लिए (इसमें भी सीमाएँ हैं) विभरण कर सकता है। हरेक जाति का निश्चित कोई पेसा नहीं है, फिर भी अविकतर पैतृक जीविकाचार को ही बरतना व्यक्ति अच्छा समझते हैं। दिन-प्रतिदिन यह जाति-भेद पिबिष्ठ होता जा रहा है। यहाँ तक कि लालपान बिनाह जाति में भी इसको बहुत से व्यक्ति छोड़ते जा रहे हैं। सिता और जीविकाचार का प्रत्येक माग सबके लिए खुला है, केवल परोहिताई ब्राह्मणों के अतिरिक्त दूसरी जाति नहीं कर सकती।

'वय' और 'जाति' दोनों राज पुरुष-पुरुष हैं। चारों वर्गों के अनुक्रम व प्रतिष्ठित बिनाह के सम्बन्ध तथा अनाथ व अपात्रों के मिथन से बने वाली सन्तान का कोई निश्चित वग न रह सका। इस मिथन में मिथन होता ही बना गया यही जाति तथा उपजाति का उत्पादक हुआ। माना प्रकार की लोभनीय से आधुनिक बहुत सी जातियों की व्युत्पत्ति माकूम हुई है। इस पर जाये यथा-स्थान प्रकाश डाला जायगा।

वर्ण-व्यवस्था की प्राचीनता व आधार—श्रुत्येव में वय का वय रस आया है। अर्थात् अपात्रों का वय व अपात्रों का वय। 'यो दानं कर्मिणं पुत्राक' (श्रु० १ का १२१४)। इसी प्रकार 'वैश्यो वै वर्णा ब्राह्मण' अमुय' गुरु' (मै० ब्रा १ २१६)। हमसे यह स्पष्ट ही है कि वैदिक काल में वय ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य आदि का परिचायक नहीं था अपितु जाय व दाम का भेद दिखाने में ही था। ब्राह्मण क्षत्रिय आदि का वग (काम) विभाजन था पर जाति नहीं। श्रुत्येव में वैश्यापि की बहानी मिथनी है। वैश्यापि का छोटा भाई राजा ही बना। वह स्वयं वर्ण बराने के लिए यज्ञ का परोहित बन गया। इसी प्रकार के और भी प्रमाण श्रुत्येव में हैं।



संक्षेप में प्रारम्भ में बच केवल दो थे बार्म व दास । बीनों में रंग व संस्कृति का भेद था । जब बार्मों में वस्त्रुओं को पराजित किया तो येही भूख कहलये । बीरे-बीरे विद्वत्ता के कारण ब्राह्मणों ने शक्तियों और वैश्यों पर आधिपत्य थमा लिया । संस्कृति के विकास से नष्ट कला कौशल न पेये आए । इन्हीं के अनुसार व परस्पर सामाजिक मान्यता में नीचे व्यक्तियों के साथ बिबाह के कारण तरह-तरह की आदिवा उत्पन्न हुई ।

**कास्मिदास और वर्ण-व्यवस्था**—कास्मिदास एक आठे-आठे प्राचीन वच परम्परा बहुत कुछ पिकित हो गई थी । ब्राह्मण शक्तिय वैश्य भूख के साथ-साथ वे बीवर, बन्धक आछोपबीबी कुम्हक छोटी शार्मबाहू आदि का भी उत्पन्न करते हैं । अर्थात् प्राचीन वर्णव्यवस्था किम्ब-जिन्म हो गई थी और बहुत-सी उपजातिका सम्मुख आ गई थी । परन्तु छन्द रूप में वर्ण-वस्तुत्व को परम्परा व्यवस्था प्रचलित थी । कवि ने वस्तुत्व<sup>१</sup> वच वस्तुत्व<sup>२</sup> वच<sup>३</sup> वर्णभिमार्मा<sup>४</sup> आदि शब्दों का प्रयोग किया है । यही नहीं परम्परानुसार वर्ण और जात्यम को रखा का भार राजा पर था इसको भी वे नहीं भूलें<sup>५</sup> । बार्मिक जाचरण सब उचित रीति से पवित्रता से पावन करे इसका उत्तरदायित्व राजा पर था<sup>६</sup> । कवि के सम्मुख आदर्श जमी भी प्राचीन था । वे रजुबंशी राजाओं को ही आदर्श समझते थे जो स्वयं भी वर्णव्यवस्था के पालन करने वाले हों और दूसरों से भी येही नियम पालन करवाएँ<sup>७</sup> ।

१ वस्तुवचनमो लोकस्वतः सब वस्तुर्विवाद् ।—रघु० १०।२९

२ पूर्वस्थमोदात्मसमे विरोधमात्मोद्भवे वर्णवस्तुत्वस्य ।—रघु १८।१३

३ इत्यान्तवचनप्राप्तो विनेकवर्णविविधियाम् ।—रघु १५।४८

यशुतिप्रति वर्णम्यो नृपाणां अयि तत्प्रक्रमम्

तप-पद्मागमस्यं ब्रह्मपारम्परा हि न ।—अभि २।१३

न करिष्ये र्णागमपचमपङ्कटीप्रति भवते ।—अभि० २।१०

४ वर्णभिमार्मा गुरवे स वर्णां विचक्षण प्रस्तुतमाचक्षते ।—रघु० ५।१६

५ देखिये बिहारे पृष्ठ की पाठटिप्पणी ३ में रघु०, १५।४८, देखिये पारटिप्पणी

२ रघु०, १८।१९

वर्ग-विभाजन—ब्राह्मण—वैदिक साहित्य में ब्राह्मण एक समुदाय अथवा वर्ग विशेष का परन्तु अति नहीं। वे विद्वान् तथा पंडित होते थे। अतः यही वर्ग उस समय के समाज में अत्यधिक माना जाता था। 'एते वै वेदा प्रत्यक्षे यद् ब्राह्मणा ( तै० मं० १ का ७।३।१ ) आदि वाक्य इसके प्रमाण हैं। परन्तु इससे यह निष्कर्ष न निकालना चाहिए कि ब्राह्मणों ने ब्रह्मात् दूसरों को अपने को देवता व ईश्वर के समान आदरणीय मानने के लिए विवश किया। ब्रह्मात् इतना बड़ा काम नहीं हो सकता कि सारी जनता ब्राह्मणों को सर्वोच्च मान ले। वास्तविक महत्ता उनकी विद्वत्ता निस्स्वार्थता त्याग निष्ठा एवं सेवामय था। अतस्त ब्रह्म विद्या एवं उच्च संस्कृति के वे कर्ता नियामक एवं व्यवस्थापक थे। उनके ही कर्णों पर समस्त वैदिक विद्या का भार था कि वे एक संतान के बाद दूसरी पीढ़ी को विद्यादान देते चले जायें। उनका सम्मुख आदेश 'दानं का वा। सांसारिक ऐश्वर्य-सुख को त्याग कर नियमता में संतुष्ट रहना विद्वान्मनों को यदि वे कुछ बलिदान न भी दे पायें तब भी सिखा देना' उनका कर्तव्य एवं आदेश था। अतएव ही राजा इसमें सहायक था परन्तु जन व सांसारिक विघ्ननों को न घृणा उनका प्रति आकर्षित न होना सोम को पास न आने देना कोई सरल काम न था। इन्हीं मुर्खों के कारण ब्राह्मण अति पूजनीय माने जाते थे। वे ही गुरु थे 'राजपुत्रेक्षितं वे'। अन्य वर्गों को शिक्षा देना कर्तव्य मानकर ब्रह्मण उनका काम था। अग्नयन<sup>१</sup> अग्न्यापन<sup>२</sup> यजन<sup>३</sup> उनका आदेश था।

- १ सनातनविद्येन मया महर्षिर्ब्रह्मापिठोऽभूत्पुण्ड्रसिन्धोऽयं  
उमे विद्यामस्तन्मिष्टोपचारं तां मन्त्रिमेवागमयत्पुरुस्तात् ॥—रघु ५।२०
- २ अथाम्यस्य विद्यतारं प्रमथा पुत्रकाम्यया ।  
तौ बन्धुवौ वशिष्ठस्य पुत्रोऽबन्धुवोरुत्तमम् ॥—रघु १।१५  
अथ तं तवनाय दीक्षितं प्रविधानात् पुत्रराम्यमस्मिन् ।  
अभिपंमज्ज विवर्जितानिति धित्येव किमप्यवोचयन् ॥—रघु० ८।७५  
तत्रकर्मपरं हृदि शोककमे प्रदिशात्प्रिवान्तिकमस्त्य पुनो ॥—रघु०, ८।६१
- ३ रघु० ३।१८ रघु० ७।२० २८ रघु० १७।१३ रघु० १६।१५, कुमार० ७।४७
- ४ 'पुत्रकाम्यं धृतपारवृत्ता - —रघु० ५।१५  
कुपामतीं श्रीविमलास कृत्वा यावानुकूलैर्भूति साधरोष ॥—रघु० ११।२५
- ५ अग्न्यापन—वैश्विण १, भरत व आयुध की शिक्षा महर्षियों ने ही दी ।
- ६ अग्न्यर्चनादयस्तस्य सन्तः सत्तान्तकसिन्धः ।  
आरेभिरे विद्यामानः पुनीयानिष्टिमुन्विजः ॥—रघु० १०।४  
तत्र दीक्षितमृषि रक्षतुविष्णतो दधरवागमजो हरे ।  
शोकमन्त्रतममासज्जमोदितौ रविमभिः शशिदिवाकरादिभिः ॥—रघु०, ११।२५

रामा तक ब्राह्मणों के सम्मुख लुप्तते से ब्राह्मणों के से साक्षर नहीं थे ।

ब्राह्मणों के दो वर्ग—परन्तु कालिदास के समय तक 'आटे-आटे ब्राह्मणों' के से गुण बहुत कुछ लप्त हो चुके थे । इस समय ब्राह्मणों के दोनों प्रकार सग्नता से देखे जाते थे । एक वर्ग अबका प्रथम प्रकार में तपस्वी तथा कुल्लुब आटे हैं जो अब तक प्राचीन आद्यों का उत्तरता के साथ पालन किया करते थे । अन्य ऋषि का तपोवन कुछकुछ समिष्ट विस्मयित का आग्रह विह्वलार्थी में मायूस ने वहाँ शिक्षा प्राप्त की थी वह तपोवन इन्हीं आद्यों के प्रतीक हैं । इनमें ऋषि मुनि तथा रहनेवाले मुखा छात्र तपस्वी समीप रखायी थे । पुरोहित भी प्रथम वर्ग में लिए जा सकते हैं । पुरोहित राज्य का कवि ने सकुम्तला में कई स्थानों में प्रयोग किया है । राजा दुष्यन्त पुरोहित से ही सम्पत्ति होता है के से सकुम्तला को ग्रहण कर कि नहीं ।

'पुरोहित'—( राजानं निर्विषय ) भो धोस्तपस्विन अद्यावन्नमन्नान्मन्मन्माणां एतिता प्रायेव मुक्तात्मनो व प्रतिपाक्यति । —अमि पृ० ८४

'पुरोहित'—(पुरो गत्वा)एते विविधवचितास्तपस्विन । —अमि पृ ८५

'पुरोहित'—विचार्य भवि तावदेवं क्रियताम् । —अमि पृ ६४

राजा के पास आए अतिथियों का स्वागत-भार इन्हीं पर था । यही अतिथियों को राजा के पास भेंट करवाने से जाता था ।

'राजा—तेन हि मण्डपनाडिजाप्यतामुपाध्याय सोमराज । अमुनाधमवासिन रौतेन विविना उत्कृत्य स्वयमेव प्रवेष्टयितुमर्हतीति । —अमि पृ ८१

दूसरे वर्ग में ब्राह्मणों के पतन के चिह्न पर्याप्त थे । निस्वार्थ मत्स से शिक्षा प्राप्त करने के स्थान पर ब्राह्मणों ने बतन लेकर पदाला प्रारम्भ कर दिया था । अपने आश्रम व एकान्त को छोड़कर वे नगर में राजमहल में ही रखा करते और आवा करते थे<sup>१</sup> । वे छोटी-छोटी बातों पर लड़ते थे सबड़ते थे बाद-विबाध करते थे<sup>२</sup> । वे पटू होते थे<sup>३</sup> । यद्यपि सिद्धान्त में उनका आग्रह अभी भी 'यस्मात्तम वैश्वक्रीदिकार्यं तं ज्ञानपर्य्य वभिर्जं ववन्ति<sup>४</sup> वा । परन्तु व्यावहारिक

कि मुखा वेतनवानेर्नीतेषाम् । —माक प्रथम अंक पृ २७४

१ माक० प्रथम अंक

२ परा १ अंक

३

रूप में इसे जीविका का आभार मानकर चलने लगे थे । पहले पहल उन्का आभार बो<sup>१</sup> सब बेलन<sup>२</sup> ।

विदूषक की परम्परा—विदूषक की परम्परा से बाह्यनों की मूर्खता निर्भीयता व पटूपन ('बृहं विपणिकम्बुरिय मे छदराम्मन्तरं वद्धान्ते ।—मात्त० अंक २ पृ० २८१) ही प्रमाणित होता है । पुष्प्यन्त कित् प्रकार मात्तम्प को शकुन्तला का भाँसा देता है उसे राज्यों से डरा कर (प्रथमं सपरीबाहुमासीत् । इदानीं राजस-वृत्तान्तेन विम्बुरपि पावयपित ।—अमि० अंक २ पृ० ३८) अंत-पर मित्रता देता है<sup>३</sup> । सेनापति का कहना 'प्रछप्सु एव वैवेय' <sup>४</sup> सबा खाने की सुन्दर वस्तुओं सम्बन्ध आदि का मन में होना आदि इसके प्रमाण है । विक्रमो-बधी में दासी किस प्रकार विदूषक से राजा के मन में उबखी बसी है इसी कारण रानी की उपेक्षा कर रहे हैं रहस्य उपरुबा सैती है<sup>५</sup> । उनकी मूर्खता से ही उबखी का प्रेमपत्र रानी के हाथ पड़ जाता है<sup>६</sup> । उसका पेटूपन 'तत्र पंच विवस्वाम्मबहारम्पोमत्तसमारस्त योबनां प्रेसमाचाम्मा शक्यमुत्कंठा विनोदयि तुम्' <sup>७</sup> से सिद्ध होता है । इसी प्रकार अमुदितस्य बाह्याणस्य जीवितमवस्तन्वतां

- १ समाप्तविद्येन मया महर्षिर्बिज्ञापितोऽम्बुपुत्रस्वसिषायै ।  
स मे विरामास्तस्मिन्तोपचारां ता भक्तिमेवावधयत्पुरस्तात् ॥  
निबन्धसंज्ञातरपायकार्ष्णमचिन्तयित्वा गुरुणाहमुक्त ।  
चित्तस्य विद्यापरिगंस्त्वया मे कोटीदधतलो म्भ बाहुरैति ॥—रघु० ३।२ २१
- २ किं मुखा बेलनवानेनैतेषाम् ।—मात्त० प्रथम अंक पृ० २७४
- ३ अपठोऽयं बटुः क्वाचिदस्मत्प्राचनानामन्त पुरैम्य क्त्रवेत् ।  
भवतु एतमेवं वदमे ।—अमि० २ अंक पृ० ४०  
—एव वयं क्व परोक्षमग्मकी मुमक्षाने समनेषितो जन ।  
परिहासविब्रम्पितं सखे परमार्थेन न मुह्यतां वच ॥—अमि० २।१८
- ४ अमि० अंक २ पृ० ३०
- ५ किं मौदवर्जिकामाम् सीत ह्ययं मुगूहीत वच ।—अमि० अंक २ पृ० २१
- ६ विक्रम० अंक १
- ७ 'अटिनी उपेय कीभीनमिदं प्रतिभाति ।  
भट्टारकमुद्दिश्योदय्या वाक्यबन्ध इति तत्रयामि ।  
आर्यमाणवक प्रमादेन वाक्योहस्तमागत इति ।—विक्रम०, अंक २ पृ० १८७
- ८ विक्रमो० अंक २ पृ० १७१

काकिरास के पन्थ सत्काकीन संस्कृति

मवान् समय' जल स्नानमोचनं सेवितुम्<sup>१</sup>। प्राकृतिक सौख्य में भी उसे कोई बाध सामग्री ही दिखाई देती है। उष्य होता चम्रया उसके लिए लाड़ का लड्डू है<sup>२</sup>। बरि विद्रूपक में कुछ बतुराई है भी तो प्रेम-व्यापार य। मारुबिका को अग्निमित्र में मिलाने में सबसे बड़ा हाथ विद्रूपक का ही था<sup>३</sup>। किम प्रकार फल से 'साँप ने काट जाया मूछ बहला बनाकर केतकी के काँट से साँप के दाँतों का बिह्व बनाकर राजी से अंघूठी मँयवा केता है कि बहर उठारने के लिए ऐसी वस्तु चाहिए जिसमें नायमुडा बड़ी हुई हो ध्यान देने योग्य है। उत्पन्नता बन्धीपुह की कर्ता-वर्ता मायबिका के पास जाकर कहा कि ज्योतिषियों ने महाराज से कहा है कि आपके यह विषये हुए है इत्यस्मिं सब बगिचों को छुड़वा दीजिए। देवी ने यह सोचकर कि किसी बीर को मेजने से इराबती की बुरा मान जाल्मो मुसको ही आपके पास मेजा है जिससे इराबती की यह समझ कि मैं नहीं राजा छुड़वा रहे है। अंघूठी देखकर विद्रूपक की बात पर विश्वास कर मारुबिका को यह मुकन कर देती है। विद्रूपक राजा को बीर-रास्ते से के जाकर मारुबिका से संकेत-पूह में भेंट करवा देता है। इनीस्मिं बोरी पकड़े जाने पर इराबती विद्रूपक से कहती है—'सत्यमयमत्र बह्वन्वुना कत' प्रयोग'। इयमस्य काम उंचसचिबस्व नीति<sup>४</sup>। विद्रूपक की बात से इनी जबस्य जाती है पर यह हास्य उतकी मूर्खतापूज बातों से उत्पन्न होता है।

समाज में जाहल्यों का स्थान—परन्तु इतना होवे पर भी समाज में जाहल्यो का विशेष भावर था। कुलमुव पुरोहित उपस्वी ज्ञापियों के प्रति सबकी विशेष आस्था थी<sup>५</sup>। द्वार पर उनका आना गृहस्थ अपना सीनाम्य सम

१ विक्रमो अंक २ पृ १६०

२ ही ही जो एप जल चंदनोदक सचीक उचितो राजा दिखातीनाम्।  
—विक्रम अंक ३ पृ० १६०

३ माक० अंक ४ पृ० १।

सते थे और उनकी इच्छापूर्ति व आतिथ्य-सत्कार में भी-जान कहाँ से<sup>१</sup> । राजा ब्राह्मणों को बाँव आदि दान देते थे<sup>२</sup> । उनकी बात को वे ब्रह्मात्म्य मानते थे । काश्याप यशदास व हरदास को देखकर अभिमित्र जलर करत हुए उन्हें स्थान देते हैं । बुध्मन्त शाङ्करन धात्रि को देखकर जाहर-अभ्यर्चना करते हुए कज्ज का कृच्छ्र पूछते हैं । बुध्मन्त के हृदय में तपस्वियों के प्रति कितना सम्मान है वह इससे व्यक्त होता है—

यदुत्तिष्ठति वर्ण्यो नृपाणां क्षमि तत्कम् ॥

तपः पद्मभागमकृष्यं दत्तमारण्यका हि न<sup>३</sup> ॥

राजा विस्मय रघु, राम आदि की वसिष्ठ, वात्सीकि और ऋषि कौत्स के प्रति कितनी अधिक भद्रा थी यह रघुवंश में अक्षी भीति व्यक्त की गई है<sup>४</sup> । यहाँ तक कि विदुषक बीसा मूल डरपोक और पेदू भी राजा के द्वारा कभी अपमानित नहीं किया जाता । राजा उसे अन्तरंग मित्र समझकर अपने हृदय का द्वार सम्मुख खोलकर सम्मति देते हैं<sup>५</sup> ।

ब्राह्मणों की ब्रह्म-भूषा—ब्राह्मण लोग यज्ञोपवीत पहनते थे<sup>६</sup> । वारें कान पर खोस की माका धारण करते थे<sup>७</sup> । वस्त्रों में अभ्य पुष्पों की तरह मोटी व

१ इममोत्तरं न्याम्यमिति बुद्ध्या विमल्य स ।

आपदे ब्रह्मसामन्ते ममकार्ककृती मुताम् ॥

एहि विस्वारमने वस्ते मिच्छासि परिकल्पता ।

अपिनो भुमय प्राप्तं गृहमेधिफलं मया ॥—कुमार० ६।८७ ८८

२ धामेष्वात्मविदुष्टेषु ब्रूषधिह्वेषु यज्वनाम् ।

अमौषा प्रतिगृह्णन्तावर्ध्यानुपवसाधिय ॥—रघु० १।४४

३ अमि० २।१३

४ रघु० १।१७ (पूरा प्रथम सम) ५।१-११ २१-२५, ११।१-६

५ अमि० अंक २ विह्वम अंक २ मास० अंक १

६ पिथ्यमंगमुपवीतकथयम् ।—रघु० ११।१४

मुक्ता ममोपवीतामि विभ्रतो ह्रीमवस्कता ।

रत्नाग्रसूत्रा प्रवर्ज्या कस्यवता इवाभित ॥—कुमार०, ६।६

नोरोचननिकर्षपिण्डकटाक्षपाप संस्मरते धाधिकतामलवीतम् ॥

—विक्रम० ५।११

७ अक्षवीजवलयेन निवर्णी इद्विणयवलयमोस्थितेन य ।

राधियान्तकरौकटिवाहीर्ध्यात्रिपूव मयनामिबोद्रहम् ॥—रघु० ११।१६

वाक्त्र का प्रयोग करते होंगे । उनके सिर पर चोटी अवश्य होती थी<sup>१</sup> । साधारण बाह्यकों से पृथक् तपस्वियों की बेलभूषा होती थी । वे बल्कल वस्त्र पहनते थे । सिर पर कनकमाल में मेलता उनके सिद्ध आवश्यक थी । हाथ में पलाय-चंड भी रहता था । तपस्वियों की बेलभूषा विस्तारपूर्वक बेलभूषा अध्याय में वर्णित की जायगी ।

पेक्षा—बाह्यण अधिवाश में अध्यापन<sup>२</sup> का कार्य ही किया करते थे । वे छात्रों को ब्रह्मविद्या तथा अस्त्र-सस्त्र चमना भी सिखाते थे<sup>३</sup> । नाट्यकला की शिक्षा देना भी उनका वेद्य था<sup>४</sup> । विद्वत्पक्षा के विषय में पढ़ने से मात्तूम होता है कि राज-दरबार में भी वे पुनोहित मित्र बन्धु आदि के रूप में रहते थे<sup>५</sup> । जैसे भी यज्ञ करवाना<sup>६</sup> विवाहादि करवाना<sup>७</sup> अर्थात् धार्मिक कार्यों में इनका सबसे बड़ा हाथ था ।

यही नई समय पढ़ने पर वे राज्य का काम भी संभालते थे । घृण बंस बाह्यणों का ही था<sup>८</sup> । स्वयं परशुराम बाह्यण-सत्ताग होते हुए भी युद्ध करते थे ।

क्षत्रिय—समाज में बाह्यणों के बाद क्षत्रियों का स्थान राज्य था । 'ब्रह्म वै बाह्यणं सर्वं राजन्य'<sup>९</sup> इसका प्रमाण है । परन्तु प्रारम्भ में जैसे बाह्यण आतिथिसेव न होकर बलविधाय था उसी प्रकार क्षत्रिय केवल बल विशेष ही था ।

१ भी बजस्व गृहीतस्व तथा परकीयैहस्ते शिक्षाके तात्पर्यमानस्या-

प्यरता बीतरामस्येव नास्तीदानी मे मोक्ष ।—अभि अंक ५ पृ० ८

२ भरत आमुष राम लम्पन की शिक्षा क्षत्रियों द्वारा हुई थी । पूर्व उत्केत—  
रघु ५।२०

३ वेदविद्य, पादस्त्रिणी नं ४

४ मातृ० अंक १

५ कवि के तीनों नाटकों में विद्वत्पक्ष ।

६ और ७ रघु ३।१८ रघु० ७।२० २८ रघु १७।११ रघु० ११।१४

कुमार० ७।४७

काव्यशास्त्र में स्वयं क्षत्रियों की वास्तविक विराजता 'अथात् किम नामत'<sup>१</sup> (अर्थात् दूसरों को जो भट होने से बचाए) बताया है। अतः यह वर्गविरोध युद्ध करने के लिए, राज्यों से युद्धों की रक्षा के लिए ही था। अतः राजा जिसका नाम रक्षा करना और प्रजा का पालन करना का दायित्व ही होता था। राजा की परिभाषा कवि के अनुसार 'राजा प्रवृत्तिरंजनात्'<sup>२</sup> है। प्रजा को किसी प्रकार का दुःख न होने पाए, वह सब ऐसा प्रयत्न किया करता था। क्योंकि राजा क्षत्रियों का प्रतिनिधित्व करता था अतः उनके राज्य पीड़ितों की रक्षा के लिए वे निरपराध का मारने के लिए नहीं<sup>३</sup>। यही नहीं पृथ्वी का पालन करने की दायित्व क्षत्रियों में स्वाभाविक एवं जन्म से हो होती है<sup>४</sup>। क्षत्रियों का धर्म बोरत्व वा सम्बन्धों की रक्षा और दुश्मनों का संहर। अतः क्षत्रियों की वाकृति ही वीर की अर्थात् वे कच्चे-बोरे और पुष्ट मरीरवाले होते थे। कवि ने राजा शीपक के शौर्य का वर्णन करते हुए कहा है कि पनकी चौड़ी छत्ती छोड़ के-मे ऊँचे व भारी कच्चे शाल के बृक्ष जैसी छम्बी मुजार्ण और अपार तेज को देख कर ऐसा आभासित होता था मानों क्षत्रियों का धर्म वीरत्व उनके शरीर में यह समझकर था क्या हो कि सज्जनों की रक्षा व दुश्मनों का नाश करने का जो मेरा काम है वह इनी शरीर से पूरा हो पावेगा<sup>५</sup>।

अतः राजा का काम एक ओर पृथ्वी का पालन करना और सज्जनों की रक्षा करना वा दूसरी ओर दुश्मनों का नष्टार। अतः अतएव राजा में 'दास्यपुंजिता बुद्धिर्मूर्तिः क्षुद्रपि चाश्रिता'<sup>६</sup> होना आवश्यक था। इससे यह प्रमाणित होता है कि क्षत्रिय ब्राह्मणों के समान दास्य इत्यादि भी पढ़ते थे व विद्वान् भी होते थे और

१ रघु० २।११। २ रघु० ४।१२।

३ तत्प्राक्पुत्रसंघर्षं प्रतिमंहर साधकम्।

आतमानस्य च धर्मं न प्रहनुमनामि ॥—अभि० १।११

रम्भास्तपैकमाना प्रतिवृत्तिविद्या क्रिया समवसावय।

शाम्पनि क्रियामुक्तो मे रक्षति यौर्वीकिणां च इति ॥—अभि० १।१३

४ धाममनि मज्जान्त्यान्मवद्विप कलत्रोऽस्मि मत्

भवति सुतरां येषोदयं भुजंगसिधोर्विपम् ॥

भुवमविपतिर्वाणाकस्वीज्यसं परिस्तिम्

न तत्तु धमगा वास्यैवायं स्वकायमहोमर ॥—विष्णु० ५।१८

५ मूढारम्भी वृषम्भं गालशार्महामुजः।

आगमकमार्गं वेहं क्षात्रो धम द्वापित ॥—रघु० १।१३

६ रघु १।१८



मुद्र-विद्या में कुशल भी । एक ओर उनका उधार तथा दयालु होना आवश्यक था दूसरी ओर, अपघपायी, और व्याम में कठोर<sup>१</sup> ।

अनुविद्या क्षत्रियों की शिक्षा का मुख्य अंग थी<sup>२</sup> । क्षत्रिय धर्म को तथा अपने पाठ-रखते थे चाहे वे साधक ही क्यों न हों<sup>३</sup> । जिस प्रकार ब्राह्मण उपवीत से पहचाने जाते थे उसी प्रकार क्षत्रिय अनुप से<sup>४</sup> । प्रथम करते समय भी वे अनुप को अपने से पूरक नहीं करते थे अपितु दोनों हाथों के बीच में अनुप रख केवा करते थे<sup>५</sup> ।

क्षत्रिय भी ब्राह्मणों के समुद्र ही उष्ण थे । अतः द्विज<sup>६</sup> शब्द का प्रयोग क्षत्रियों के लिए भी होता था । ब्राह्मणों की तरह जातकर्माणि संस्कार इनके भी होते थे<sup>७</sup> ।

क्षत्रियों के विभिन्न कुल—क्षत्रियों के अनेक वंशों का कवि ने परिचय दिया है । इन कुलों में सूर्य वंश<sup>८</sup> सोम वंश<sup>९</sup> पुरु वंश<sup>१०</sup> इत्यर्कद्विज<sup>११</sup> भीम

१ भीमकर्तृणु पपुर्षं स बभूवोपवीविनाम् ।

अबुध्मत्वाभिवन्मस्थ यात्रोरत्नैरिवार्णव ॥—रघु० १।१६

स हि सबस्य लोकस्य मुक्तवन्धतया मन ।

आदरे नातिपीतोऽप्यो नमस्तार्निव बल्लिव ॥—रघु० ५।१८

रघु १।१६ ३।३१ ६ ७।५५-६९ ८।१० १२।५७-६८ अमि० १ अंक

विक्रम० १ अंक रघु २।२६, ३१ ८ पृथ्वीविजो अनुबोधमिनीत

( विक्रम ५ अंक ) ।

धन्विनी समुपिमन्त्रगच्छता पौरवृष्टिकतमागतोरत्नी ।—रघु० ११।५

पिप्रमंघमुपवीतकण्ठं मातुर्लं च अनुस्वितं बभूव ।—रघु० ११।५४

वापयममर्जि बह्वा प्रथमति । ( विक्रम ५ अंक पृष्ठ २४५ )

इत्थं द्विजेन द्विजराजकाम्तिरावेदितो मेवविधा बरेव ।—रघु० ५।२९

तस्यै द्विजेतरतपसिबभूतं स्वासद्विजराजत्पामशरपदे कथमावभूव ॥—रघु० ८।७९

रघु ३।१८ ६३ ( गोदान ) रघु १५।६१ ( आश्र ) विक्रम २ अंक

( जातकम ) अमि० ७ अंक ( जातकम )

१ यत्क्षत्रिबभूवमारस्य जातकर्माविनिर्णयं तदस्य प्रथमता व्यवनेनाद्येपमनुष्ठितम्)

( विक्रम ५ अंक ) इनका उदाहरण संस्कार में सविस्तर मिलेगा ।

बंग<sup>१</sup> पांड्य बंग<sup>२</sup> प्रसिद्ध है। रघु दिलीप जाति सब मूल्यवन्ती राजा थे।  
 दुष्यन्त पुम्बशी दक्षिण था। पुरुषा मोमवन्ती था। पाण्ड्य राज्य पाण्ड्य जन  
 पर स दक्षिण क्षेत्र में बना है।

श्रेष्ठ—कवि न बलिब ३ नैगम ४ खेछी ५ गाधवाह ६ रात्री का प्रयोग  
 अपने छन्दों में किया है। अक्षर ही में रात्रि वैद्य वण के खोले हैं। वैद्य  
 बलिबतर व्यापार ही करते थे क्योंकि एक स्थान में हमारे स्थान पर सामान ले  
 जाते न और बेचते थे।

समाज में वैश्या का स्थान—ब्राह्मण और क्षत्रिय के बाद वश्य का समाज में स्थान आता है। ब्राह्मण और क्षत्रिय की तरह इनके भी मत्कार होते थे\*। ब्राह्मणों के ऊपर क्षत्रिया का प्रमुख मही था। वे उनकी वन-मय्यति नहीं ले सकते थे परन्तु वैश्या के लिए इस प्रकार का कोई नियम नहीं था। समुद्र-स्वयवहारी मानवाह वनमित्र की मृत्यु के पश्चात् शूद्रों उनके कोई मुठाल न थी उनके बल राजकोष में आ जाता चाहिए, एसा मन्त्री न राजा को लिखा था\*।\*

शून्य—आपों ने अपन शत्रुओं को पराजित करके उनको शत्रु बना लिया था या उनकी सेवा किया करते थे। अज्ञान में काम करनेवाले दस्यु का बहुत अधिक बल है। यही वह वे या जागे दूर कहलाए। दूरी के विषय में मनुस्मृति का कहना है— दूरं तु वारयन् वार्यं प्रतिमन्त्रिणमथ वा। दाम्पत्येन हि मूलमी वाह्यमस्य स्वयमुवा १०।

१ नीपन्विद्य पात्रिभ्य एष यज्ज्ञा गुण्यमाभिरय परस्परण ।—अपु ६।४६

२ पाद्मोन्मममापित्तव्याहार - १-१५० १११०

३ मास ११८ बगिचा

४ लयनी—विक्रम ४१२३

५. 'देव इदानीमेव भारेलग्न्य भेष्टिनो बुद्धिना निवृत्तपुमवता ज्ञायाभ्य धृपते  
—यमि० अ० ५

१ 'मधुसूक्तहारी साधवाह धनमित्रा नाम भौष्यमने विपन्न  
—भमि० अंक १ पृ० १०१

७ देखिए, हमी पुष्ट की पान्तिपनी न ४

c राजा मन्त्र्यैः ब्रह्मण्यवतन—(पौनस ११ १) तथा यत् पश्चिमं पश्चिमतो  
राजाज्यायकावभ्यस्तवावभ्यस्तवाविज्ञायकावपरिवारवावचारिहायवेति ।

—मीनम ८।१२ १३

१ राजगामी तस्यावर्षाय इत्यनश्रयायेन निबिन्नु ॥—मयि० अंक १ पृ० १०१

१० मनुस्मृति भाष्यात् ४१३

समाज में स्थान—समाज में उनका क्या स्थान था यह हमसे स्पष्ट हो जाता है—सूर्य मनुष्याणामस्य पशूनाम् तस्यासी मृतसंश्रमिणावद्वेष्य तस्माच्छूरो यज्ञेऽनवस्मृतः<sup>१</sup> अर्थात् सूर्यों को किसी प्रकार का कोई अधिकार प्राप्त न था। सूर्यों का वास्तविक बंध द्विजों की सेवा करना था। इनका ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों के समान कोई संस्कार नहीं होता था। वे वेद जानि नहीं पढ़ सकते थे। पवित्र भंत्रों को चुन भी नहीं सकते थे। इनके लिए विवाह आदि भी बिना वैदिक मन्त्रों के होते थे। मनु के अनुसार इनके समस्त धार्मिक काम बिना मन्त्र के होने चाहिए।<sup>२</sup> इनके लिए कुछ भी पाप नहीं है, धर्म में इनका कुछ भी अधिकार नहीं है, न किसी भी काप करने का प्रतिषेध है। वे किसी संस्कार के भी योग्य नहीं हैं।<sup>३</sup>

काश्मिर के ग्रन्थ ही इस परम्परा के मानने वाले होते। उन्होंने बहुतों का कई स्थानों में प्रयोग किया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि सूर्य भी उनके शास में रहे होंगे। जिस प्रकार ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य प्राचीन राज्यों के अनुसार जीवन व्यतीत करते थे उसी प्रकार वे भी करते होने। मनु बौद्ध बग-व्यकत्वा तथा वे बन्धन सिद्धि पढ़ गये थे इस कारण सूर्यों के बन्धन भी उतने कठोर न होंगे। मातृमित्रानिमित्र म वर्णविर<sup>४</sup> शब्द आता है, जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है, कि सूर्यों के शास भी विवाह होते होंगे। हाँ उनको वह सम्मान चाहे न मिलता होगा जो समान बंध विवाह करने में। बीच बन्ध की स्त्री से विवाह करने पर उत्पन्न संतान उतने अधिकार भी न प्राप्त करती होगी जितने समान बंध से उत्पन्न संतान। बर्णविरा आता इसी प्रकार का दूसरे वर्ण की स्त्री से उत्पन्न भाई था।

काश्मिर के ग्रन्थ आतियौ—उच्च वर्ण के अतिरिक्त भी अन्य मनुष्य को विशेष रूप से किसी भी वर्ण के नहीं कहा सकते थे क्योंकि यदि ऐसा-जैसा एक ही वर्ण के होते थे तो संतान का भी वही पूरक वर्ण रहता। अथवा इस प्रकार का वर्णसंकर बीरे-बीरे उपजाति व उपवर्ण को जन्म ले जाता था। एक पेसे एवं एक व्यवसाय के मानने वाले अपना-अपना पृथक्-

पुनः समुदाय बनाने लग गए थे। यह भी आगे चलकर मिन-मिन जातियों का जन्म-वृत्ता बना। सदाहरण के लिए सुहार सुहार कुलाङ्ग मिपाह रबकार इपकार बीबर, मुख्यक इसी प्रकार की जातियाँ सम्पुञ्ज आईं। अधिकतर इस प्रकार की जातियाँ अपने पैतृक व्यवसाय को ही अपनाती थीं। प्रकृतिसा में यद्यपि बीबर का सबसे उपहास किया जा कि बड़ा अन्धला पेछा है, परन्तु उसने यही उत्तर दिया कि जिस जाति को भगवान् जो काम देता है उसे छोड़ा नहीं जाता। पशुओं की मारना निश्चया है पर वेदज्ञ ब्राह्मण यज्ञ के लिए पशुओं को मारते हैं<sup>१</sup>।

समाज में जादाल का स्थान अति निकृष्ट था। वतुबण के अतिरिक्त पाँचों वर्ग में मुख्यक जाओपबीबी बीबर आदि जाते हैं जिनसे समाज घृणा करता था। खान पान स्पष्ट सबके ही हाते में स्वाम्य था। ये नगर के बाहर रहते थे। भारतीय इतिहासकारों ने बीबी याबी फाह्यान का ऐसा ही क्लेश उद्धृत किया गया है। मनुस्मृति में अन्यत्र उक्त ऐसे ही बहिष्कृत (जादाल) व्यक्तियों के लिए प्रवृत्त हुआ है<sup>२</sup>।

आमीर—जिनको कालिदास ने घोष<sup>३</sup> कहा है, वे आमीर ही थे। आजकल इन्हीं लोगों को बहीर कहा जाता है। परन्तु आमीर एक जनपद भी था। यह सिन्ध में था। वही के निवासी आमीर कहे जाते थे। मनुस्मृति में ब्राह्मण और अम्बष्ठ कन्या की सत्ता आमीर कही गई है<sup>४</sup>। इनका काम एक व्यवसाय दूध, घी और मक्खन आदि का होता था। रघुवंश में दिक्षीप के बलिष्ठ-सपोवन जाते समय घोषद्वन्द्व राजा मक्खन लेकर जाते हैं और भेंट करते हैं<sup>५</sup>।

किरात—अश्वमेध ने किरातों का वर्ग का ही अर्थ (सब-निबीजन) कहा है<sup>६</sup>। मनुस्मृति के अनुसार किरात अग्नि ही हैं। उपनयन आदि क्रियाओं के लोप से और ब्राह्मणों को शान-वशिषा आदि न देने के कारण ये दूरता को

१ सहजं किञ्च मद्रिनिमित्तं न त्वत्तु तत्कम विवर्जनीयम् ।

पशुमारणकमवाहभोजुकन्या मूदुरेव योगिय ॥—अधि० अंक १ १

२ मनुस्मृति अध्याय ४ ११

३ ईषमधीनमाश्रम घोषद्वन्द्वानुपरिगमान् ।—रघु०, ११४५

४ मनुस्मृति अध्याय १ १५

५ वेनिए, इमी पृष्ठ की पाश्चिण्या नं १

६ अमरास्य का इतिहास द्वितीय विस्व भाग १ पृष्ठ ७७

प्राप्त हुए<sup>१</sup>। रघुवंश में रघु ने किरातों को हराया था<sup>२</sup>। किरात बड़ी बीरता के धाम मझे थे। अतः ये शत्रिय ही होंगे ऐसी सम्भावना है। कुमारसम्भव में भी किरातों का वर्णन है<sup>३</sup>। श्री युगों की लीज में इसर उषन हिमालय पर्वत के बनों में बूमते रहते थे। कबाचित् सिकार करना और युद्ध करना इनका व्यवसाय था।

बीबर<sup>४</sup>—बीबर इसे प्रविछोम विवाह की सन्तान मानते हैं। वैश्य पुरुष और शत्रिय स्त्री की संतान बीबर है, ऐसा ही उनका मत है<sup>५</sup>। ये नीच वर्ण के होते थे। इनका पेशा मछली पकड़ना था। सकुलला में भी बीबर मछली वाला ही कहा गया है<sup>६</sup>।

बन्दी,<sup>७</sup> चारण, माट, मागाध—ये सब लगभग एक ही हैं। इनका मुख्य काम राजा का यश-गान करना है। परन्तु कामों में थोड़ा-बोड़ा भेद है। काश्मिर के बंधों में बन्दी सूतपुत्र वैतासिक का उल्लेख है। सूतपुत्र का काम राजा को बचाना था (रघु १।१६)। वैतासिक राजा को बच बचका किया करते थे (अमि० १।७८, विक्रम ५।२१ २२) पर वे समय की सूचना के लिए प्रधानतः नियुक्त थे (मास २ अंक १२)। बन्दी और बन्दीपुत्र राजा की वंशावली और विवर बखान किया करते थे (रघु ४।१ रघु० १।७५ रच १।८)। मागाध और बन्दी (बन्धिन बन्धिन) प्रति-सोम विवाह की सन्तान हैं। वैश्य पुरुष और शत्रिय स्त्री की सन्तान बन्दी या मागाध कहलाई। श्री काने ने इस जाति का ऐसा ही इतिहास अपनी पुस्तक 'ब्रह्मसंस्कृति का इतिहास' में प्रकाशित किया है<sup>८</sup>।

सुव्यक्त<sup>९</sup>—ये भी निम्न वर्ण के लोग हैं। इनका काम चित्रिमा धारि

१ मनुस्मृति अध्याय १ ४१ ४४

२ बकवर्ध किरातेभ्यः शर्वागुर्येवधारणः ।—रघु० ४।७६

३ यशसुरभिष्ठमूर्धे किरातैरासेभ्यस्ते मिलासिर्वादिबहः ।—कुमार १।१५

४ अमि अंक १

५ नैतिम-ब्रह्मसूत्र ४।७ ब्रह्मसंस्कृति का इतिहास पृ ८४

६ अमि० अंक १

पकड़ना था। व्याघ्र एवं सुखक एक ही वग जयवा एक ही जाति है। 'व्याघ्र  
जनगीतगृहीतचित्तमय हरिष्येतन्म विज्ञातं मया।—मात० अंक १'।

श्री छिक<sup>१</sup>—सुखक की तरह ये भी निम्नवर्ण के मनुष्य थे। इनका  
व्यवसाय मंदिरा बेचना था।

सौनिक<sup>२</sup>—कालिदास ने सौनिक शब्द के ही आशय में 'सूना परितरन्धर  
शब्द का प्रयोग किया है। इनका व्यवसाय मांस बेचना था।

सूत<sup>३</sup>—श्री कवि ने गौतम बौधायन कीटिल्य मनु सबके ही व्यापार  
पर इसे प्रतिष्ठित सम्मान प्रमाणित किया है। क्षत्रिय पुरुष और ब्राह्मण स्त्री  
की संतान सूत कहलाई<sup>४</sup>। कवि ने सूत का काम रख हीकना ही कहा है।  
मनु भी इनका यही व्यवसाय मानते हैं<sup>५</sup>।

आछोपजीबी—आछोपजीबी से कालिदास का आशय बीबर का ही है।  
समुद्रका में बीबर अपने को आछोपजीबी कहता है। जल डाल कर मछली  
पकड़ना इनका पेशा था।

सिन्धकार<sup>६</sup>—मूर्ति तथा प्रासाद आदि का निर्माण करने वाले सिन्धकार

१. काश्मिरसौनिकमस्माकं प्रथमसौहृदमिष्यते।

उच्छोण्डिकापञ्चमय मच्छाम॥—अभि० अंक ६ पृ १०१

२. 'महानपि सूनापरितरन्धर इव युष्मन् आमिषलोलपो भीष्कश्च।

—मात० अंक २ पृ २८६

३. अभि० अंक १

४. अर्थात् का इतिहास पृ० ६८

५. मनुस्मृति १०।४७

६. एबुलफ के ११वें खंड में कवि ने उज्ज्वी जयोध्या का वर्णन किया है जहाँ  
चित्रित (मूर्ति में) हाथी हथिनियाँ मूर्तियाँ शालग्रियाँ आदि के पड़ने से  
अनुमान किया जाता है कि सिन्धकार कोई व्यवसाय था। सिन्धसंध से  
सिन्धियों के अनेक वर्गों का अभिप्राय है। जाने बलकर मय १६ १८वें  
खंड में निरिचित रूप से 'सिन्धिसंधा' इसकी पुष्टि कर देता है। सिन्धकार  
के लिए कवि ने 'सिन्धिसंधा' शब्द (एबु० ११।३२) प्रयुक्त किया है।  
इसके अन्तर्गत पाणिनि ने कुलाक बर्फी अनुष्कार, रजक अथवा बुनन  
वाले घुमार, मणि तराशने वाले लहार आदि लिए हैं—(Indo as  
known to Panini by V. S. Agarwala Ch. IV)। इस सबसे ही कवि  
का आशय हो सकता है यद्यपि जहाँ यह प्रयुक्त है वहाँ वास्तुशिल्प के



**आगुरिक**—(रघु० २।१३) इनका काम शिकारी कुत्तों के द्वारा भिकार दूना था। कवि न रामा दत्तरथ के मुखया-ग्रहायताम इनको बल में उभरे साथ मेवा है।

**नट**<sup>१</sup>—निम्न वर्ग जन्तुवर्ग में इनका स्थान आता है। इनका काम अपर्ण व्यवसाय रंगमंच पर नाटक करना था। इसमें स्त्री व पुरुष दोनों होते थे। त्रिपा नटी कहलाती थीं।

**वणिज**<sup>२</sup>—यह वैश्यों का ही एक वर्ग था। इनका काम वस्तुओं का क्रय-विक्रय करना था।

**नोट**—य सब जातियाँ पेटे के अनुसार ही बनीं। अब अपने पैतृक व्यवसाय को ही चारण करती थीं। छन्दोगा में 'किमी भा पेटे की निम्ना नहीं करनी चाहिए, य महुव कम मनी मके हैं'—एसा कहा है<sup>३</sup>।

**अनार्य जातियाँ**—इन जातियों में वृष घक यवन आदि आते हैं। (मनु १०—४३—४५) और महामाण्ड (अनुषामन पृ ३३ २१—२३ ३५ १७—१८) का ऐसा कहना है कि घक यवन सखर, किराठ आदि विदेशीय जातियाँ बाल्य में अग्नि ही थीं परन्तु ब्रूँक ब्राह्मणों के बनाए धम और नियम उन्होंने स्वीकार नहीं किए, ब्रूँक ब्राह्मणों के साथ उनका सम्पर्क नहीं हुआ इसलिय वे दूरे समझे गए<sup>४</sup>।

कवि कालिदास ने विदेशीय अथवा अनाथ जातियों में 'पारसीक'<sup>५</sup> ब्रिन्की त्रिमी को उन्होंने यवनी<sup>६</sup> कहा है, वृष<sup>७</sup> और विद्यपत यवन का उल्लेख किया है। रामा की परिचारिका भी अनुष-नाम आदि साकर देती थी कवि के मतानुसार यवनी<sup>८</sup> ही कहलाती थी। य विदेशीय राजाओं को परास्त करण के बाद उनके यहाँ की ही स्त्रियाँ होंगी।

१ अग्नि० कवि ने 'नटी' शब्द लिया है।

२ मात० अक १ १७

३ अग्नि १।१ पूर्वोक्तेय।

४ धर्मशास्त्र का इतिहास पृ० १००

५ 'पारसीकास्तती जेनु प्रतस्ये स्पकवरमना'—रघु० ४।६०

६ 'यवनीमुत्तरघामां सेहे मयुमई न स'—रघु० ४।६१

७ 'तद् वृषावरोधमां मनु पु व्यक्तविक्रम्'—रघु० ४।६८

८ एव बापामनहस्ताभियवनीमिबनपुण्यमासापाग्निषीमि ....।



गन्धर्व,<sup>१</sup> किन्नर,<sup>२</sup> विद्याधर,<sup>३</sup> अप्सरा<sup>४</sup>—जहाँ तक ये सब देव-  
तियाँ ही समझी जाती थीं परन्तु जहाँ हाथ ही में थी रावण राक्षस को  
क पुस्तक 'प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास' प्रकाशित हुई है, जिसमें  
हमें इन सब पर अनेक प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि इन्द्रिणी  
दे बाहर की ही आई जाति है, जो यहाँ भारत के मूल निवासियों से उसी  
कारण मिल गई जैसे बाद में आर्य। इन्हीं मूल निवासियों से वे महा-  
वर्ष किन्नर का नाम लेते हैं<sup>५</sup> (भूमिका पृष्ठ ४)। इन्द्रिणी युग में भारत के

यवनी—मर्त्य एतद्विस्तारोपसहितं धरासनम्—अभि० अंक ९ पृ १३४

'राजा—अनुर्धनुस्ताम्रः । यवनी—एपाज्जोप्याभि' ।

—विक्रम अंक ५, पृ २४१

रघु ५।४१-४२

रघु ४।७८ कुमार० १।८ १४ कुमार० ३।१३ ३८ कुमार

५।५९ अभि० अंक ७

कुमार० १।७ 'विद्याधर कामनसीनो दुःखविनिवर्तकस्त्योत्तीर'

—विक्रम अंक ४

रघु० ७।५१ राजा—'परस्ताम्रायत एव सवसा अप्सरःसमवैषा'

—अभि० अंक १

उत्सवस्समवामिनां विनीक्य प्रीतिता सर्वा अप्सराः—विक्रम० अंक १

'अस्त्युवदीत्यप्सरा'—विक्रम अंक २

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्जी के अनुसार किरात भी मूलतः भारत से बाहर  
से आए थे। प्राचिन-भाषी 'बाह-दस्सु तथा वसिन्-वेदीय निपात' जनों  
के उत्तिरिक्त कामों को संभवतः कुछ भीन भोट भाषी उपजाति गण भी  
( जिन्हें वैदिक काल से आर्य लोग 'किरात' कहते थे ) हिमाक्ष के बाहर के  
प्रदेश तथा पूर्वी-भारत के कुछ स्थानों में मिले। ये 'किरात' भारतीय  
मौलिककार जन ( Indo-Mongoloids ) भारत में बहुत संभव है कि १०००  
वर्ष ई. पू० से भी बहुत पहले आ गये थे। उत्तर तथा पूर्वी-भारत के  
हिन्दू इतिहास और संस्कृति के विकास में इनका काफी बड़ा हिस्सा है।

—डा सुनीतिकुमार चाटुर्जी भारतीय धर्मशास्त्र और हिन्दी १३५४ पृष्ठ ५१

किरात इस समय नेपाल की पूर्वी भाग में बसे हुए हैं। इनके चित्रों  
के देखने से ये मोंगोलोइड प्रतीत नहीं होते। मायबत पुराण के समय

उत्तर-प्रदेश में अनेक जातियाँ थीं ये यश राखस मंथन किन्नर आदि ही थी (भूमिका पृष्ठ ६)। यश और रस का धातु-मूल एक है। राखस और कुबेर भाई-भाई कहे जाते हैं। इनके समाज में स्त्री विनाश की वस्तु नहीं थी। पहले नर-नारी सम्बन्ध स्वतन्त्र रहे थे जो व्यक्तिगत सम्पत्ति बनने पर भी स्त्री को बच्चा पैदा करने वाली मशीन नहीं बना सकी। यही परम्परा भी (भूमिका पृष्ठ ६)। देव से तात्पर्य देवता का नहीं है। इस भूमि पर देव-जाति के अस्तित्व का भी स्वामी छंकरागद ने उल्लेख किया है। बचबचद में भी देव इसी पृथ्वी के वासी थे ऐसा कहा गया है। यह देव-जाति सोम पीती थी और साम गंधर्वों से करीब जाता था (पृष्ठ १७) वायु में शत्रु के रूप में गंधर्वों का बचन किया जाता था। इसी देव-योनि में विद्याधर अप्सरा गंधर्व किन्नर आदि हैं—

विद्याधराप्सरोयस रघोगन्धर्व-किन्नरा ।

विद्याधो युष्मकं सिद्धो भूतोऽग्नी देवयोनयः ॥—पृष्ठ ७१

श्री रामेय राखस किरात को भी जानिबिरोध ही मानते हैं। किरात-परिवार हिमालय के आस-पास फैला था। यह देव का सहायक था (पृष्ठ ११५)। माय विदेशी थे। बाय एक जाति नहीं अनेक कबोले या छोटी-छोटी जातियाँ थीं जो परस्पर भी लड़ती थीं। वे लोग प्रारम्भ में ईरान में आकर बसे और यहीं इबिक जाति-समूह तथा किरात-परिवार—यश गन्धर्व किन्नर आदि से सम्बन्ध हुआ (पृष्ठ १२१)। गन्धर्व सेना का बणन कवि ने भी किया है—उत्कलुना गन्धर्वसेना समारिष्टा (चित्रमं० अंक १)।

समाज में वर्ण-व्यवस्था का महत्त्व—सामाजिक बराबरी का न फैलने पाए, इसके लिए प्राचीनवर्ष में सदा से ही वर्ण-व्यवस्था का महत्त्व है। पश्चिम में सदा नए-नए सिद्धान्त बने उल्लङ्घन बढ़ती गई जिससे बाहर पड़ और अन्दर हड़ताल बढ़ती गई, लेकिन भारत में यह उम्माद कभी न छाया। व्यक्तिगत आत्मिक सुखता आत्मपूषता मानव के कल्याण की भावना नैतिकता की रक्षा साथ ही पारिवारिक सुख-शान्ति समाज के लिए बहुत कुछ मूल्य रखती है। सामाजिक जीवन इन्हीं कर्तव्यों और आचारों पर आधारित था। बच मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन सुभी रहता है तथा आराम होता है तभी सामाजिक जीवन भी आराम रहता है। यदि व्यक्तिगत जीवन में आकांक्षाएँ बढ़ती जायें तो आदिक चक्रवर्ती भी बढ़गा। अतः कामिदास ने बच-व्यवस्था से समाज में एकता संभल और समुन्नत स्थापित किया। समाज मनुष्य समाज में एक बड़े परिवार के किम्विन्न सन्तर्पों की भाँति रहते थे।

काश्मिर के ग्रन्थ सांस्कृतिक संस्कृति

ग्रन्थ, <sup>१</sup> किन्नर, <sup>२</sup> विशाखर, <sup>३</sup> अप्सरा—अभी तक वे सब देव  
काठियाँ ही समझी जाती थीं परन्तु अभी हाल ही में श्री रंगेय राव को  
एक पुस्तक 'प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास प्रकाशित हुई है जिसमें  
उन्होंने इन सब पर बख़्त प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि प्रविष्ट जाति  
नी बाहर की ही आई जाति है जो यहाँ भारत के मूल निवासियों से उठी  
प्रकार बुल-मिल गई जैसे बाय में बाय। इन्हीं मूल निवासियों में है बरा  
मर्बर्ब किन्नर का नाम मिले है (मूमिका पृष्ठ ५)। प्रविष्ट पुत्र में भारत के

यवनी—मर्त एतद्वस्तुनापसहितं वारसम्—अग्नि० अंक १ पृ० १३४  
राजा—अनुबन्धुस्तावत्। यवनी—एवाग्नेय्यामि।  
—विक्रम अंक ५ पृ० २४१

- १ रघु० ४।३१-५२
- २ रघु० ४।७८ कुमार० १।८ १४ कुमार० १।२३ १८ कुमार० ४।५१ अग्नि० अंक ७
- ३ कुमार० १।७ विशाखर कालकौमी दुःखनिगिणस्योत्पीड  
—विक्रम० अंक ४
- ४ रघु ७।५१ राजा—परस्तान्नाप्य एव सबबा अप्सरा संभवैषा  
—अग्नि० अंक १  
—विक्रम० अंक १

उक्तमस्तंमनामिनी विनीक्य वीक्षिता सर्वा अप्सरा—विक्रम० अंक १  
मस्त्युर्ध्वीत्यप्सरा—विक्रम० अंक २  
५ डा० सुनीतिकुमार बाटुर्ग्या के अनुसार किरात नी मुख्य भारत में बाहर  
से आए थे। इतिहास-भाषी दास-दासु तथा बखिज-बैद्यीय 'निपात' बनों  
के अतिरिक्त कायों को संभवतः कुछ चीन मोट भाषी उपजाति बर भी  
( जिन्हें वैदिक काल से बाय जोम किरात कहते थे ) हिमाचल के बाय के  
प्रदेश तथा पूर्वी-भारत के कुछ स्थानों में मिले। ये 'किरात' भारतीय  
मौगलाकार जन (Indo-Mongoloids) भारत में बहुत संभव है कि १०००  
वर्ष ई० पू० से भी बहुत पहले आ गये थे। उत्तर तथा पूर्वी-भारत के  
हिन्दु इतिहास और संस्कृति के विकास में इनका काफी बड़ा हिस्सा है।  
गट्ज्या भारतीय जायभाषा और हिन्दी १९३४ पृष्ठ ५१  
में बसे हुए हैं। इनके बिना

सत्तर-अवस्था में अनेक जातियाँ थीं ये यज्ञ राक्षस गंधर्व किन्नर आदि ही थीं (भूमिका पृ० ६)। यज्ञ और रस का बाहु-भूक एक ही। राक्षस और कुबेर भाई-भाई कहे जाते हैं। इनके समाज में स्त्री विकास की वस्तु न थी। पहले नर-नारी सम्बन्ध स्वतन्त्र रहे थे जो व्यक्तिगत सम्पत्ति बनने पर भी स्त्री को बच्चा पैदा करन बाँधी मघोन नहीं बना सकी। यही परम्परा भी (भूमिका पृष्ठ ६)। देव से सात्वत श्रेष्ठता का नहीं है। इस भूमि पर देव जाति के अस्तित्व का श्री स्वामी संकरानन्द ने उल्टेका किया है। जबबदेव य भी देव इसी पत्नी के बाँधी थे ऐसा कहा गया है। यह देव जाति साम पीछी थी और साम गंधर्वों से ऊँचा जाता था (पृष्ठ १७) बाद में गृध्र के रूप में गंधर्वों का वधन किया जाता था। इसी देव-योनि में बिद्यावर जप्परा गंधर्व किन्नर आदि हैं—

विद्यावरजप्पराय रक्षागन्धर्व-किन्नरा ।

पिशाचो गृह्यक मित्रो भूतोऽग्नी दध्यागम ।।—पृ० ७१

श्री रागेय राजव किराठ को भी जातिविरोध ही मालते हैं। किराठ-परिवार हिमाचल के आत्म-यास केला था। यह देव का सहायक था (पृ० ११५)। बाय बिबेयी ने। बाय एक जाति नहीं अनेक कबीके या छोटी-छोटी जातियाँ थीं जो परस्पर भी सन्तुष्ट थीं। य छोटा प्रारम्भ में ईरान में जाकर बसे और वहीं इबिड़ जाति-नयूत तथा किराठ-परिवार—यस गन्धर्व किन्नर आदि से सम्बन्ध हुआ (पृ० १२१)। गन्धर्व सेना का बणन कवि ने भी किया है—‘घटकुनुना गन्धर्वसेना समादिष्टा (विक्रम० अंक १)।

समाज में वर्ण-व्यवस्था का महत्त्व—सामाजिक नराजकता न फैलने पर इसके लिए भारतवर्ष में सदा से ही गण-व्यवस्था का महत्त्व है। पश्चिम में सदा नए-नए सिद्धांत बने सत्तारों बढ़ती गईं जिससे बाहर घुड़ और अन्दर हड़ताल बढ़ती गईं लेकिन भारत में यह उम्माद कभी न छाया। व्यक्तिगत धार्मिक सुद्धता आत्मपूणता मानव के कल्याण की भावना नैतिकता की रक्षा साथ ही पारिवारिक सुख-खान्ति समाज के लिए बहुत कुछ मूल्य रखती है। सामाजिक जीवन इन्हीं कल्याणों और आस्था पर आधारित था। जब मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन सुखी रहता है तथा आस्था होता है तभी सामाजिक जीवन नी आरंभ रहता है। यदि व्यक्तिगत जीवन में आजाँझाई पड़ती जाये तो अन्तिम सङ्घर्ष भी बढ़ेगा। अतः कालिदास ने वध-व्यवस्था से जनार्दन न रक्षक मंत्रालय और सम्मुखन स्थापित किया। सभी मनुष्य समाज में एक ही हैं— वे किमिन्न सदस्यों की भाँति रहने थे।

वचन-व्यवस्था का यही महत्त्व था। यह राष्ट्रीय सेवा और कार्यों का एक संगठन था, जिसमें सब एक-दूसरे पर निर्भर रहते थे। बातियों का अभिप्रास एक-दूसरे से दबाना नहीं अपने अधिकारों की वृद्धि नहीं अपितु सहयोग एवं एकता थी। नु का आदेश कवि के भी सम्मुख था और उत्कालीन मनुष्यों के सम्मुख भी।  
रघु १।१७ रघु० १।११७)

अभिप्रास ने बताया है कि ब्राह्मण लोग कैसे संयम और त्याग के साथ जीवन स्वीकृत करते थे शिक्षा प्रदान करना उनका परम सङ्कल्प था अग्नि सबकी खा करते थे आत्मसमर्पण भी वे अपने सुन्दर सुवास आसन से सबको प्रसन्न करते थे।

लतास्तिक्य जाकत इत्युदयः क्षत्रभ्यः सञ्चो मुनेषु बभूव ।

उभ्येन किं तद्विपरीतवृत्ते प्रार्थयन्पद्मेसमकीमसैर्वा ॥

—रघु २।११

इसी प्रकार दुष्मन्त का कहना—

आत्मनमयजस्तेषु वीक्षिताः क्षत्रपौरवाः ।—अग्नि अंक २ १९

कवि ने वीरों के विषय में भी श्रद्धापूर्वकता से लिखा है कि वे अन्य वेशों के नाम व्यापार कर देते हैं धन-व्याप्य की वृद्धि करते थे। धृष्ट भी अपने व्यवहार में कृच्छ्रता व और अपनी वैतुक वृत्ति के प्रति अहिंसा भी थे। मनुष्यता कहे हैं—  
'सर्वज्ञं किञ्च बहिर्निर्गुणं न क्षम्य उत्कम विषयनीयं' । ( अंक ६ श्लोक १ ) ।  
योग्यकार, बहीर वीर, कुम्भक आदि निम्नवर्ग के मनुष्य भी वे वे भी सभी नम्राव में रह कर उसके प्रति कृतज्ञता का पावन करते थे।

## आश्रम

जीवन में आश्रम की महत्ता एवं उपयोगिता—ब्रह्म-ब्रम से बड़ा आश्रम-श्रम ना। कवि-समाज की सुख्यवस्था एकता संवत्स और मनुज के लिए, ब्रम की तरह आश्रम की महत्ता स्वीकार करता है। ब्रम जब काम और मोक्ष की प्राप्ति मानव जीवन का उद्देश्य है। अतः कवि मानव जीवन को इन्हीं बार उद्देश्यों के अनुसार बाँट देता है। यह समझना मूल है, कि प्राचीन काळ के सब साधारण मनुष्य सामाजिक भाग के विच्छेद थे। यदि ऐसा होता तो कवि गृहस्थ आश्रम को 'सर्वोपकारक्षमम्' (रघु० ५।१६) न कहता। ब्रम अब और काम दोनों ही मनुष्य-जीवन के सस्य थे। तीनों को ही वे समान महत्त्व देते थे परन्तु इतना अवश्य है, कि उनकी दृष्टि में ब्रम-रहित ब्रह्म-नामादि निरुद्ध थे। इसलिये वे कुमारसम्मथ में शिव जी से कहकराते हैं कि 'हे देवी आपके इस आश्रम से ही मैं समझता हूँ कि ब्रम अब और काम ने ब्रम ही उद्यम उत्तम है, क्योंकि आप अब और काम का छाड़ कर इन्हीं का आश्रम लिए हुए हैं।'<sup>१</sup>

यही धर्म प्रज्ञान ना। मात्र की प्राप्ति ब्रम अस्व थी। परन्तु सम्प्राप्त कवि का उद्देश्य नहीं था। मनोविज्ञान के पुनः परिचित कान्तिराम इस बात का अच्छी तरह जानते थे कि तैमयिक प्रवृत्तियों को दबाना उचित नहीं। प्रवृत्तियाँ दब जाती हैं पर नष्ट नहीं हो सकती। इनको जितना दबाया जायगा प्रति क्रिया उतनी ही गहरी होगी। अतः युवावस्था में विवाह भोग और काम को भी बह उतना ही आवश्यक समझते हैं जितना बृद्धावस्था में संन्यास को। यौवा के इस सिद्धान्त पर कवि भी आस्था रखी गहरी भगती है कि आहार न मिलने से इन्द्रियाँ विषयों से विरत अवश्य हो जाती हैं परन्तु रम को मानना बनी ही रहती है। अतः बस्तु का भोग करने के पश्चात् यदि उसको छोड़ा जाय, तो

१ अनेन धर्म सविशेषमद्य मे विवर्गमात्रं प्रतिशान्तिं यावन्ति ।

त्वया मनानिर्विषयार्थकामया यदेक एव प्रतिपूह्य सेष्यते ॥

विरहित और त्याग ही छाया त्याग होगा<sup>१</sup>। कवि इसलिये गृहस्थाश्रम के लक्ष्मणप्रस्थ और सत्याश्रम करता है। ब्राह्मणश्रम में मनुष्य ज्ञान और विद्या पार्जन से अपने विवेक को संयोजित करता है। इसी व्यवस्था में उसकी इष्टनी परिपूर्ण रहती है कि गई वस्तु धरमता से और सेवा के लिये हो जाती है।

इसी मनोवैज्ञानिक आधार पर आश्रमों की नींव पड़ी। प्राग्भूम में ब्रह्म श्रम जिसमें विद्यार्थी गुरु के पास जाकर विद्या पढ़ता है, युवावस्था में गृहस्थाश्रम जिसमें व्यक्ति विवाह पर गृहस्थ जीवन चारण करता है उत्तरवस्था प्रस्थ जिसमें मनुष्य धीरे-धीरे सांसारिक मोह से अपना मन हटाकर भगवान् और उन्मुख होता है और सबसे अन्त में सत्याश्रम जिसमें सांसारिक भोग और विकल्प छोड़ मनुष्य भगवान् में ही अनुरक्त हो जाता है।

कवि भी इसी सिद्धान्त पर आस्था रखता है। आयु के चार विभाग कर के चार आश्रमों की उसने स्थापना की। शुरुआत में विद्याभ्यास युवावस्था में गृहस्थाश्रम (प्राज्ञवस्था) में मुनिवृत्ति और अन्त में परमात्मा का ध्यान के लिये योग से अनुत्साह<sup>२</sup>—इतना आश्रम था। कवि ने प्रथम आश्रम<sup>३</sup> त्व आश्रम<sup>४</sup> अन्त्याश्रम<sup>५</sup> आदि चारों का व्यवहार किया है, जो क्रमशः चर्याश्रम गृहस्थाश्रम व सत्याश्रम के बोलचाल हैं। यह चार विभाग के चार भागों से सबसे भेद जाता है।

सामान्य जनों के लिये यही भाग था परन्तु सब क्रमशः ब्राह्मण से गृहस्थ त्व से क्षत्रिय वानप्रस्थ से संन्यास से ऐसा कोई कठोर नियम नहीं था। कवि ने अपनी पुस्तक धर्म-शास्त्र के इतिहास में<sup>६</sup> आश्रम के प्रारंभ में अनुत्साह श्रम और बाबा सीत सम्मतिदा बतलाई हैं। अनुत्साह की सबसे बड़ा मालने

विपदा विनिवर्तते निराहारास्य वेदितः ।

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं बुद्ध्या निवर्तते ॥—गीता २।५६

‘दौष्टवेऽप्यस्तविद्यानां जीवने विपद्विपदां ।

बाह्ये मुनिवृत्तीनां योगेनाप्ये तनुत्पन्नाम् ॥—रघु १।८

विशेष कविचरितकस्तोत्रं शरीरवत् प्रथमाश्रमो यथा’ ।—कुमार

‘तत् सम्पत्तिभीमानुमतो गृहस्थः ।

बाते मनु है । इस पक्ष बातों का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति को चारों आधमों का पालन करना चाहिए । विकल्प में मनुष्य की इच्छा है, वह ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थाधम में प्रवेश करे अथवा परित्राजक बन जाए । आश्रमोपनिषद् ब्रह्मचर्यमसूत्र और आपस्तम्ब ब्रह्मसूत्र इसके समर्थक हैं । मोक्षम और मोक्षधम कबल एक ही आधम गृहस्थाधम मानते हैं ब्रह्मचर्याधम गृहस्थाधम की ठीका है और रोप दो गृहस्थाधम की समता में बलि निरूपित है । यही तीसरी सम्मति बाता है । श्री कामे ने इन सब मतों का निम्नवत् विवेचन किया है<sup>१</sup> :

ये सभी ग्रन्थ ब्रह्मि प्राचीन और निम्नोक्त कालिदास के पूर्वकासीन ही हैं । अतः कवि भी कितना विशेष नियम के ऊपर नहीं चढ़ता । कल्ब आश्रम ब्रह्मचारी थे<sup>२</sup> । अतः ध्वनि निकलती है कि उनके समय में व्यक्ति यदि चाहत तो ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थाधम में प्रवेश नहीं करते थे । स्वयं शकुन्तला के लिए दुष्यन्त ने पूछा था कि शकुन्तला का यह उपस्थिति क्या बिबाह होने तक ही रहेगा अथवा यह सारा जीवन इसी प्रकार इन हरिषागनाओं के साथ ही व्यतीत कर देगी<sup>३</sup> । इससे यह निष्पन्न निकलता था सचता है कि बिबाह मनुष्य की इच्छा पर निर्भर था कर अथवा नहीं । यह भी सचता है सचता है कि ब्रह्मचर्य के समान आधम-व्यवस्था था छिन्न-बिन्न हो गई हो । बौद्ध भिक्षु और भिक्षुवियों की सत्ता ने आधम-व्यवस्था को बर्हाचित् अनवस्थित कर दिया हो । इस प्रसंग में एक बात और भी ध्यान देने योग्य है । 'वीरवे'ग्रन्थ-विद्यानाम् शोधने विपरीतिनाम् में खेयब खर बहुत कुछ इस अनवस्थता की ओर संकेत करता है । 'वीरब' खर स १६ १७ वष तक की ध्वनि निकलती है, अतः २५ वष बाता ब्रह्मचर्य जीवन अब नहीं रह गया था ।

प्रथम आश्रम और छात्र-जीवन—प्रथम आधम ब्रह्मचर्याधम था । इसमें बालक गुरु के पास आकर विद्या प्राप्त करता था । कालिदास के प्रसंगों में तपोवन ही क्षत्रियों के आधम थे । ये ही विद्या के कण्ठ भी थे । कल्ब का आधम ब्रह्मचर्याधम और बलिष्टाधम इसी प्रकार के शिष्य-केन्द्र थे । भरत

१ भगवद्गीता का इतिहास पृ० ४७४

२ 'भगवद्गीता' शास्त्रों के ब्रह्मणि स्थित इति प्रकाश—अभि अक १ पृ० १२

३ ईशानम् किमनया अतमाप्रदानानुष्ठापारोधि मदनम् निषिद्धम् ।

आपस्तम्बेव मन्त्रिणचर्यवन्मात्रिणाहो निवस्यति मम हरिषागनानि ॥



कर वन से लौटते थे<sup>१</sup> । राजि में पणशासा में कुछ की बटाई पर सब सोते थे<sup>२</sup> । बचा पृथ्वी पर मृगचर्म बिछा रहता था । इन पर सो जाते होते<sup>३</sup> । प्रकाश के गए हिगो<sup>४</sup> के ठेक का बिया बसता रहता था<sup>५</sup> । खाने के लिए उनको मृगमूत्र<sup>६</sup> मिमता था । इन सबसे यह निष्कर्ष निकसता है, कि उनका वायर्स या जीवन—उच्च विचार था । खाना-पीना रहन-सहन सभी इतिमता से दूर रख मावों से परिपूर्ण था । आप्यम के सान्त् बातावरण में नुब की सेवा करता था तथा अत्यन्त सात्विक विधि से जीवन व्यतीत करता हुआ वास्तव विद्याध्ययन करता था ।

प्रथम आश्रम का महत्त्व—यह सान्त् बातावरण उसके चरित्र का विचारक था । स्वभाव की उषा और क्रोध नष्ट होकर सब विनयशील मन और आकाशी हो जाता था<sup>७</sup> । घर की चिन्ताओं से दूर रहकर छाववन पड़ाई में ही सीर से मन लगाते थे । गुरु के पास उच्च विद्या प्राप्त कर दूर प्रकार से प्रगुण हो वे नुब की अनुमति प्राप्त कर पुन गुरु में लीन जाते थे<sup>८</sup> । कौत्स त्रिपि इसका उदाहरण है ।

विद्यार्थियों का समाज में स्थान—विद्यार्थियों का समाज में बहुत भार था । यहाँ तक कि राजा भी ब्रह्मचारी का बहुत भार करता था । उसकी ल्येक इच्छा को पूरी करना न केवल गृहस्थ का कर्तव्य था अपितु राजा का भी । बरतान्तु के सिष्य गौत्स के पचारने पर रघु सिंहासन से उठकर खड़े हो गए । कुछछ-छम पूछने क पन्थात् उन्होंने कहा कि आपके जाने से मेरा मन ही भरा मुझे कुछ सेवा करने की भी आशा थीजिए । यद्यपि रघु बिस्वविद्

१. वनान्तरागुपानृत्तैः समित्कुसुमफलाहरेः ।

पूममाणमव्यप्यग्लि प्रत्युद्यतैस्तपस्विभिः ॥—रघु ११४१

२. निरिष्टा कुम्पतिता य पणशासामभ्यास्य प्रयतपरिग्रहक्षीयः ।

तच्छिष्याध्ययननिबद्धितावसानां संविष्टः कुसुमयने निद्रा निनाय ॥

—रघु ११११

३. ता ईन्दुवस्नेहद्वयप्रवीपानास्तीक्ष्णमेध्याजिततन्पमन्तः ।

तस्मै सपर्ययपर विनाशो निवामहोतोऽर्जुनं विद्वेजः ॥—रघु १४८१

यज्ञ में सब कुछ दान कर चुके थे पर कौत्स के मुख से यह सुनकर कि उनको गुरुवक्षिणा के लिए १४ करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं की आवश्यकता है, वे निराम गद्दी हुए न शिष्य को ही उन्होंने वापस छोटा दिया बरन् मुद्राएँ बेकर ही बिना क्रिया ।

गृहस्थाश्रम—मनोविज्ञान में पूर्ण दृष्ट काश्चित्स इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि यौन भावों की उत्पत्ति के बिना व्यक्ति की इन्द्रियाँ बाह्य न मिलने के कारण विषयों से विरक्त जाते हो जायें पर यह निरक्षित वास्तविक न होगी उनमें रस की भावना बनी ही रहेगी । अतः आत्मा को संसार से विरक्त कर भयवान् में डगलाना यदि बाड़ी-सी भी रस-भावना बचछिड़ है, तो डोंग हो है । इसलिए उनकी दृष्टि न ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थाश्रम बचचय आना चाहिए—अपि वत्त उचित त्वया पूर्वस्मिन्नाश्रमे । द्वितीयमध्यास्तितु तब समय — (बिहस्य त्वं ५ पृष्ठ २४६) । उन्होंने अपने सम्पूर्ण धर्मों में गृहस्थाश्रम की महत्ता बखानी है । महायोगी सिबजी को जो गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट करता है और उनके मुख से कहलवाना है— क्रियाणां जगु बर्ण्यानां सत्यस्यो मुक्कारचम्<sup>१</sup> ।

कवि की द्वितीयं सर्वोपकारक्षममाश्रमं ते<sup>२</sup> इस उक्ति में अपनी ध्वनि अधिक है । सब आश्रमों में उन्होंने इसी आश्रम को सबसे ऊँचा स्थान दिया । मनु भी गृहस्थाश्रम को सब सुखों का सार कहते हैं । जिस प्रकार वायु से समस्त प्राणी जीवित रहते हैं उसी प्रकार गृहस्थाश्रम पर ही अन्य आश्रम आश्रित हैं । चूँकि अन्य आश्रमों के मनुष्य गृहस्थ के जल और रान पर ही निर्भर हैं अतः यह आश्रम सबसे उत्तम है । जैसे नदियाँ समुद्र में जाकर घात हो जाती हैं उसी प्रकार अन्य आश्रमों के व्यक्ति के लिए गृहस्थाश्रम आश्रित है । इसी कारण वेद स्मृति सब इस आश्रम को उत्तम कहते हैं<sup>३</sup> । काश्चित्स के मत में सुखी नहीं है,

१ कुमारसम्भव १।१३

२ रघु ६।१०

३ यथा वायु समाधिरथ वसन्ते सबजन्तवः ।

तथा गृहस्थमाश्रित्य वसन्ते सबआश्रमाः ॥—मनु ३।७७

यस्मात्प्रयोष्याश्रमिणो ज्ञानेनान्तेन चान्द्रहम् ।

गृहस्थेनैव वायन्ते तस्माज्ज्येष्ठश्रमो यही ॥—मनु० ३।७८

सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविज्ञानतः ।

पृथक् उच्यते येषु स जीमैरान्धिमर्ति हि ॥—मनु० ६।८६

यथा नदीनदा सर्वे मागरे याप्ति सन्धिपतिम् ।

तथैवाश्रमिण सर्वे गृहस्थ याप्ति संस्मृतिम् ॥—मनु०, ६।१०

झिन्के पास समझी प्रेयसी हो<sup>१</sup> । अपने प्रेमी के पास हो शरीर का सारा सुख है<sup>२</sup> । स्त्री के बिना सब सुखों का समाव हो जाता है सम्पूर्ण आनन्द-उत्सव उसके बिना प्योके पत्र खाते हैं<sup>३</sup> । समस्त ऋतुसंहार और मेघदूत इस बात के अकल्प्य प्रमाण हैं कि सबसे बड़ा सुख प्रिया का साहचर्य एवं प्रियाभिजनजन्य आनन्द है ।

गृहस्थाश्रम की सफलता—कवि गृहस्थाश्रम की सफलता कामोपमोव और पुत्र में मानता है । महादेवजी ने पुत्र के लिए विवाह किया<sup>४</sup> परन्तु कामोपमोव भी उनका उद्देश्य था<sup>५</sup> । सम्पूर्ण अष्टम सम सिवजी की रतिस्त्रीका से मग्न पडा है । मेघदूत और ऋतुसंहार भी कामोपमोव गृहस्थाश्रम की सफलता है, इसके साथी है ।

विवाह और गृहस्थाश्रम की सफलता पुत्रीत्पत्ति में भी । यद्यपि पुत्र होने का आशीर्वाद ही सौभाग्यवती स्त्रियों और विवाहित पुरुषों की दिया जाता था<sup>६</sup> । राजा दिगीप की मन्त्रिणी-सेवा राजा बलरत्न का पुत्रहि ब्रह्म इसकी पुष्टि करते हैं । न केवल ब्रह्म बलरत्न के लिए पुत्र की आवश्यकता थी<sup>७</sup> अपितु बाल्यप्रिये को यह दृष्टि थी । सम्प्रानोत्पत्ति से सम्पत्ति का प्रेम कम गहरी होता अपितु बढ़ता ही है । सम्पत्ति की प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं कि व्यस्त्रिया और बाल का सुख तो इनी लोक में है, परन्तु शत्रु सम्पत्ति इस लोक और परलोक दोनों में ही सुख

- १ मेवाकोने भवति सुखिनाऽप्यम्यवावृत्तिरेव  
कच्छास्त्रेयप्रवर्णिनि जने कि पुनद्वुरसंस्त्रे ।—गुणमेव १
- २ त्वदभीनं हन्तु वेहिना सुखम् ।—कुमार ४११
- ३ वृत्तिरस्तमिता रतिरभ्युता निरतं नेपथुर्निस्त्वय ।  
नतमाभरणप्रयोजनं गरिभूयं क्षयनीयमथ मे ॥—रघु ८११६
- ४ सोऽहं पुष्पातुरैर्बुद्धिं विधुत्वाणिष आतर्क ।  
अरिषिप्रकृष्टैर्बै प्रसूतिं प्रतिपाषित ॥—कुमार ११२७  
अत आहृतुमिच्छामि पार्वतीयात्मबन्धने —कुमार ११२८
- ५ पद्मपतिरपि ताप्याहामि कृष्णप्रथमवद्विमुत्तासमानभोक् ।

बेनेबासी है<sup>१</sup> । सन्ताप स्त्री और पुरुष के प्रेम की माध्य शृंखला है<sup>२</sup> । पुत्र भाङ्गाव का विशेष कारण है । यन्त्रों की तुलसी बोसी जैसी पकड़कर बचना सिर झुकाकर बड़ों को प्रणाम करना आदि बैद्य-वैद्यकर माता-पिता को असीम भाङ्गाव प्राप्त होता है कवि की दृष्टि में वह अत्यन्त दुःख है<sup>३</sup> । निःसम्मान दुःखन्त भरत को देखकर सोचता है, यह नटकट बाङ्क कितना प्यारा है । वह व्यक्ति भी अन्य है जिसकी मोह म बैठकर स्वभाव से हंसमुख कमी के समान सस-कटे दाँतों वाला यह तुलका कर बोलते हुए अपने अंग को थूक से उसकी गोद मीली कर देता होगा<sup>४</sup> । बाङ्क को देखकर माता-पिता की आँखें आत्मन्य से भर जाती हैं और उसे हृदय से छगाने की अभिलाषा होती है<sup>५</sup> ।

पुत्र की प्राप्ति आत्मन के सिद्ध नहीं की जाती थी वरन् वन में भी इसका बहुत बड़ा स्थान था । बिना पुत्र के पितरों के कृष्ण से छूटकारा नहीं मिल सकता था । यह शोक के खंभेरे को दूर करने वाली ज्योति थी<sup>६</sup> । पुत्र के जन्म में ऐसा विश्वास किया जाता था कि पितर स्वयं न पाकर नरक के भागी होते हैं । इसी कारण दुःखन्त यह सोचता है कि मेरे पितर दुःखी होकर कि

१ काकान्तरसुपं पुष्यं तपोवनिमुद्गमम् ।

संतति-सुदुर्बन्धा हि परमेह न धर्मने ॥—रघु० १।१६

२ रत्नाङ्गनाम्भोरिव भावबन्धनं बभूव यत्प्रेम परस्परप्रियम् ।

विभक्तमप्येकमुतेन तत्तयो परस्परस्वोपरि पयसीयत ॥—रघु० ३।२४

३ उवाच आम्मा प्रथमावितं बन्धो मयी तस्मीयामनन्तस्य आनुक्तिम् ।

अमून्म नम्रं प्रक्षिपत्प्रणिशया पितुमुयं तेन ततान सोऽमकं ॥

तमंक्रमारोम्य सरीसृगोर्बि भुर्नैर्निपिचन्तमिवायुतं त्वचि ।

उपान्तसमीक्षितकोचनो नृपक्षिचरत्पुण्ड्रस्यमरमज्जतां मयी ॥—रघु० ३।२६, २९

४ आत्मन्यदन्तमुकुटानिभिस्तहामैरध्यस्तवगरमभीयबन्ध प्रवृत्तीम् ।

अंकाभयप्रणयिनस्तनयान्बहून्तो जम्यास्तवङ्गुरवमा मस्तिनीमवन्ति ॥

—अमि० ७।१७

५ आप्यामते निपतिता मम दृष्टिरस्मिन् आत्मन्यर्बधि हृदये ममत् प्रसादः ।

मन्दतवेपथुमिन्द्रितयैवदृष्टि इच्छाभि नैनमर्चयं परिरक्षमुमङ्गी ॥

—विहग २।६

६ न चोममेवे पूर्वेषामृषिर्मोक्षसाधनम् ।

मुनामिबालं स ज्योति सद्यः लोकतमोपहृम् ॥—रघु० १०।२

पिता पितृनामनृपस्तमन्ते वयस्यनृपानि सुशानि लिप्सुः ॥—रघु०, १०।२६

कालियास के प्राण तरकासीन संस्कृति

मेरे पीछे कौन तर्पण करेगा मेरे लिए जल के कुछ भाग से अपने बाँधू बने  
होने और जो बच जाता होगा उसे भी पाते होंगे<sup>१</sup>।

गृहस्माभ्रम के कर्त्तव्य

अतिथि-सत्कार—गृहस्थों का सबसे बड़ा कर्त्तव्य अतिथि-सत्कार का।  
हर घर आए अतिथि की अर्घ्यादि से पूजा करना<sup>२</sup> उनकी मृदुलता पूजनी  
तत्परता बलि से किसी विनाश आशय से आए हैं तो उस आशय को पूर्ण  
करना उनका कर्त्तव्य का<sup>३</sup>। गृहस्थ अतिथि की सेवा और उसकी इच्छा-  
पूर्ति से ही समुष्ट होते हैं। द्वार पर अतिथि का आना और कुछ माँगना ही  
गृहस्थ होने का सच्चा फल का।<sup>४</sup> रघु का कोसल क्षत्रि का सत्कार उनके  
इच्छानुसार बौबह करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ देना जनवासिनो सीता की वात्सीकि-  
आत्मम में अतिथि सेवा सकुण्ठला और उसकी सक्तियों का दुष्यन्त के प्रति किया  
मवा सत्कार आदि अनेक उदाहरण हैं। अतिथि-सत्कार जैसे ही सबका कर्त्तव्य  
कहा गया है परन्तु गृहस्थों का विशेषकर रघु की कौत्सपूजा<sup>५</sup> और हिमाचल  
मेनका की मृदुपियों की अर्घ्यार्चना कर कहना कि आज हमको गृहस्थ होने  
का सच्चा फल मिला है कि आप-जैसे अतिथि हमारे द्वार पर पचारे,<sup>६</sup> इसके  
बहुत अमूम्य और पुष्टिकारक प्रमाण है।

धार्मिक क्रियार्य—गृहस्थ की मित्रता भी क्रियार्य है वे सब बिना पत्नी  
के पून नहीं होती<sup>७</sup>। मारतव्य सदा से कम को बहुत महत्त्व देता रहा है।  
अतः पत्नी की महत्ता जबका गृहस्माभ्रम का महत्त्व भी इसके द्वारा स्वतः  
स्वीकृत हो जाता है। पुराण के लिए ही विवाह करना आवश्यक न था स्त्री

१ अस्मात्परं यत् यथापुष्टि संभूतानि को न कुले निवपनानि करित्वयीति ।  
गूढ प्रसूतिमिक्षेपेन मया प्रसिद्धं भीतापुत्रोपमुहर्षं पितरं पिबन्ति ॥

२ तमचरित्वा विविधविशिष्टस्तपोधनं मानवनामवायी ।

भी धार्मिक कृत्य बिना पति के सहयोग के नहीं कर सकती<sup>१</sup>। रामचन्द्रजी को पत्र में माता की अनुपस्थिति में उनकी सुख-मूर्ति इसलिए खली पड़ी थी<sup>२</sup> कि बिना पत्नी के धार्मिक कृत्य ही नहीं सकता था।

### सन्ध्या, सपण, होम और यज्ञ

**सन्ध्या**—प्रातःकाल तथा सन्ध्या समय सन्ध्योपामना अथवा सन्ध्यार्चना गृहस्थ का कर्तव्य था। इसके अन्तर्गत वायत्री तथा अन्य मंत्रों का जाप मुख्य समझा जाता था। स्वयं शिव जी भी सन्ध्या के समय उपस्थितियों को बध्य और जाप आदि से युक्त बनाकर पावती का अनिच्छा होने पर भी उन्हें छोड़ कर सन्ध्या करने बंधे जाते हैं और गृहस्थ का कर्तव्य पालन करते हैं<sup>३</sup>। यह सन्ध्या जैसा कि 'पाणिमुक्तावधुषा' (कुमार० ८।४७) से व्यक्त है, गरी में छोड़े हाक की जाती थी। परन्तु कदाचित् गृहस्थों को घर के भीतर करने की भी अनुमति है जो आती होगी क्योंकि ऐसी बुद्धिमानों को प्राप्त महा हो सकती।

एक प्रकार से यह मृग-युवा है, क्योंकि अर्घ्य मृग को ही दिया जाता है। सन्ध्या के अन्तर्गत बध्य जाप उपस्थान अक्षयपण माजनादि का उल्लेख भी असाध्यान् रूप में कवि काव्यशास्त्र में किया है<sup>४</sup>।

**होम**—सन्ध्या के पश्चात् होम गृहस्थ का कर्तव्य है। दोनों समय सन्ध्या के समय पश्चात् होम किया जाता चाहिए। तपस्वी जहाँ सभी सन्ध्या के समय होम करते थे होम-भूमि से घर जाता था<sup>५</sup>। यह उक्त समय का प्रचलित विश्वास था कि मनुष्य का तीन ऋण भुक्तान पड़ता है। देव-ऋण के लिए वह यज्ञ करता है तथा पीतल मर उसे अग्निहोत्र का करता आवश्यक है।

१. आप बभ्रवरेऽपि परवशोऽन्य जन ।—अभि० पृ २१

२. इत्थाप्यन्त्यागीऽपि वीक्षेऽप्या पथ्य प्राम्बंशवामिनः ।

अन्यजाने मैवासीत्यस्याऽश्यायाहिरण्यमी ॥—रघु० ११।६१

३. अत्रिरात्रतमये उपस्थितः पादानाम्बुविजिताऽभिक्षिया ।

अग्न्यहमिममममावृताः अज्ञय विविचिदा युगल्यमी ॥

तन्मुह्यतमन्मन्मुमह्मि प्रस्तुताय नियमाय मायपि ।

त्वा विनाशनिपुणः सखीजनौ बन्धुवारिनि विनाशयिष्यति ॥—कुमार० ८।४७ ६८

४. विष मायतनस्यान्ते न शय्य तपानिधिम—रघु १।५६

मन्त्रिनाय—विषयपक्षोपायानुष्ठानस्यान्ते-वसान....इमी की टीका

५. बभ्रुविक्रान्तिगुर्नरनिधीमाधनोग्गुणाम् ।

पुतानं पक्षीर्जुर्नृपैःपुन्यनिधिमि ॥—रघु० १।४३

मृपि-मृप के लिए वैदिक का स्वाध्याय तथा पितृ-मृप के लिए विवाह, गृहस्थ का कर्तव्य है<sup>१</sup> ।

वैदिक-मृप के सम्बन्ध में अग्निहोत्र का प्रयोग आता है । गृहस्थ के घर तीन पृथगीय अग्निवाँ तथा संविष्ट रहती थी जिसका नाम गृहस्थ्य वाक्यान्त और वाह्वनीय है । ये संवेप में वेतान्ति कहलाती थी<sup>२</sup> । जो एक बार इन अग्निवाँ को जाता देता था उसका धर्म कर्तव्य था कि प्रतिदिन प्रसन्न-काक और कृष्ण समय इसमें अहुति दे । विवाह के समय जो अग्नि प्रज्ज्वलित की जाती थी वही घर, गृह के गृह से बड़े समय अपने घर से जाता था । इसकी पूजा वह उसकी पत्नी और उसके पुत्र प्रतिदिन किया करते थे ।

मृपि-मृप में वैदिक स्वाध्याय आता है । यद्यपि कवि ने सामासिकता नहीं किया परन्तु उसने तीन मृपों के नाम अवश्य लिए हैं । अतः वह वैदिक स्वाध्याय पर भी विचार करता था<sup>३</sup> । गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करने पर भी वैदिक शिक्षा समाप्त नहीं हो जाती थी । प्रतिदिन कितना उसने पढ़ा उसकी कठिनाय पुनरावृत्ति आवश्यक थी । कितना भी अधिक-से-अधिक उसे पढ़ हो वह प्रति प्रसन्न-काक दुहयया करता था । यदि उसे कुछ न आता हो तो केवल यादगी मात्र का ध्यान करने से भी काम चल जाता था ।

तपस्य—मृपान्त के समय स्नान के साथ तपस्य किया जाता था । वैदिक मृपि और पितृ तीनों को ही तपस्य ध्यान करना गृहस्थ के लिए वाक्यान्त था । वह वैदिक प्रतिदिन ही प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य था परन्तु मृप के पश्चात् उसका तपस्य करना अवश्यमात्री था ।

पञ्च मृपान्त—देवयज्ञ पितृयज्ञ भूतयज्ञ यजुष्ययज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ प्रत्येक गृहस्थ के लिए आवश्यक था । देवयज्ञ वैदिकों के प्रति भक्ति और यज्ञ का परिचायक था । प्रतिदिन की अग्निपूजा देवयज्ञ का प्रतीक था । अपने पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता-संकाश और उनकी ममता स्मृति में तर्पणार्थि करना पितृयज्ञ कहलाता था । समस्त भूत ( प्राणी ) कुत्ते कीर्ण आदि के लिए

कुछ योजना देना मृत्यञ्ज वा मनुष्यञ्ज में जाए हुए अतिथि का आदर-सत्कार जाता या ब्रह्मचर्य में प्राचीन ऋषियों के द्वारा निर्मित धर्मग्रन्थ वेदादि का पाठ करना वा । इस प्रकार देवता पूजन समस्त प्राणि-जग—मनुष्य पशु पक्षी और प्राचीन ऋषियों के प्रति श्रद्धा कृतज्ञता सहानुभूति सहनशीलता रखना पंच महायज्ञों का महत्त्व वा ।

परन्तु बीसे-बीसे समय बीतता गया पंच महायज्ञों का महत्त्व परिवर्तित हो गया । मनु<sup>१</sup> इत्यादि ने कहा कि बृहदा ब्रह्म की साइड मूलक उदङ्मुख आदि के द्वारा मनुष्य बनवाने में न मात्र मृत्यु कितने जीवों की हिंसा का कारण बनते हैं । जो पंच महायज्ञ करेगा उनको इन पाँच स्थलों में बनवाने में किए हुए जीवहिंसा का पाप नहीं भोगना होगा ।

संक्षेप में गृहस्वाम्य का महत्त्व त्रिवर्ग की प्राप्ति वा । अतिथि-पूजा चाप होम तपस्य सम्पन्ना-बन्धना से धर्म जीविकोपायन से अन्न स्त्री और पुत्र की प्राप्ति से काम<sup>२</sup> यही जन्म अन्न काम—त्रिवर्ग की उपलब्धि गृहस्वाम्य का महत्त्व कहा जा सकता है ।

### तृतीय आश्रम

महत्त्व—गृहस्वाम्य के समस्त सुख भोग देने के पश्चात् व्यक्ति वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता वा । गृहस्वाम्य में वार्षिक क्रियाओं के रहते हुए भी अन्न और काम प्रमाण रहते थे । पूणरूपेण इन्द्रियजन्य तृप्ति पा जाने पर स्वतः मनुष्य का मन बीरे-बीरे भोग-विवास से विरक्त हो ब्रह्मता वा बृहती और पुनः ठीका धर्मियों के समस्त उत्तरदायित्व संभाल सकने की साम्यता वा जाने पर पारिवारिक कर्तव्य की भी इतिभी हो जाती थी । अतः वानप्रस्थ आश्रम में सांसारिक माह और बन्धनों का त्याग करना जरूर अहंत्व माना गया । अपने पारिवारिक बन्धनों का परित्याग कर वन में स्त्री के साथ जाकर तपस्या करना ईश्वर में मन लगाना और मुनिवृत्ति की ग्रहण करना ही वानप्रस्थ आश्रम की साधकता थी ।

सामाजिक आदर यही वा । रघुवंशी राजाओं ने तो अपना ध्येय ही सत्य यही बनाया कि ब्रह्मचर्य वा जाने पर मुनिवृत्ति ले<sup>३</sup> । अपने पुत्र के राज्य

१ पंच मृता महत्स्यस्य ब्रह्मन् पेयस्युपस्करः ।

कण्ठी चोदुःभरश्च बभूवै बालु बाहुयन् ॥—मनुस्मृति ३।६८

२ धर्मकोशमयाश्रीमृतुस्मातामिमां ह्यरन् ।

प्रशिक्षिष्यार्हापां तस्यां त्वं नाथ नाथः ॥—रघु० १।७६

३ दीनोऽन्यस्तत्रिद्यानां योजने विपरीतिनाम् ।

वास्यैके मुनिवृत्तीनां योजनेनाप्ये तनुष्यत्राम् ॥—रघु० १।७



कार्य सम्भासने की योग्यता का जाने पर सही वास्तविक व्यवधारी होकर वर्गक में चले जाते थे<sup>१</sup>। काष्मिरास इसी आधार के ऊपर पुरुषार्थ ने आस्था रखते थे। यदि ऐसा न होता तो रघुवीर्य आधार रात्रियों में ही इस परम्परा को सीमित कर सकते थे। परन्तु विक्रमादित्यकाल में भी इसी का संकेत है<sup>२</sup>। यही नहीं धनुन्तका के द्वारा यह पूछे जाने पर कि अब मुझे आधार के उद्गार कर होने कब यही उत्तर देते हैं कि पुनः का राज्याधिकार कर बुद्धावस्था में ही तुम यहाँ आ पाओगी<sup>३</sup>।

यथार्थ में व्यवस्था में विकास मरी सामग्री से कुछ भवनों में रहना और बुद्धावस्था में स्त्री को साथ लेकर पर्वों के नीचे रहना ही प्रत्येक व्यक्ति का आदर्श था<sup>४</sup>।

वानप्रस्थ में वेद भूषा—मुनिवृत्ति धारण करने पर सांसारिक वैभव को छोड़ देना होता था। अतः गृहस्थ-जीवन का वेद-विष्णुस इस जीवन में सेवा के लिए परित्यक्त हो जाता था। कर्ममूल आदि का सारा भोजन करना सारा वेद वानप्रस्थ जीवन का मूल था। इस जीवन में वस्त्र<sup>५</sup> आदि को

मुनिव्रतवस्त्रमो वेष्म्य तया सङ्गि सिधिये ।

गच्छित्वयमामिस्त्राकूलामिदं हि कुल्यतम् ॥—रघु ३।७

१ पुनर्वत्सुतरोपिद्विषिक परिधामे हि दिक्षीपर्वशवा ।

पदवी तस्मात्तवास्त्रा प्रयता संयमिना प्रपेदिरे ॥—रघु ८।११

मिदा पितृनामगुणस्तमयो वयस्वमन्त्रानि सुखाणि विष्णुः ।

राधानमावानुविष्मिषात्तुम् कस्या कृती वस्त्रकमन्त्रान्मूढ ॥—रघु १८।२६

प्रथमपरिधायस्तं रघुः संनिवृत्तं विजयितमभिनन्द्य स्थाप्य वामासमेतम् ।

तनुपक्षितकुटुम्बं धान्तिमार्गोत्सुकोऽमुन्नि हि सति कुल्युर्वे सूर्यवस्मा गृहत्वं ॥

—रघु ७।७१

२ अहमपि तत्र सुलाभस्य विष्णुस्व राज्ञं निषरितमृगयूषाभ्यामभिव्यजे वनात्ति ।

—विष्णु २।१७

३ मूला विराज्य चतुर्मुखमहीसपत्नी दीप्यन्तिमप्रतिरर्षं तमर्षं निवेष्ट ॥

भर्ता तवर्षितकुटुम्बमरेव सान्ध्यान्ते करिष्यसि पर्व पुनराश्रमेऽस्मिन् ॥

—अनि ४।२०

४ भवनपु रसाधिक्येयु पूर्वं तितिरज्जार्जमुच्यन्ति ये निवासम् ।

व्यक्ति धारण कर नहीं ले। तपस्वियों के समान ही जीवन को व्यतीत करना उनका चरम लक्ष्य था।

वानप्रस्थों के रहने का स्थान—वानप्रस्थों के लिए यह आवश्यक नहीं था कि वे जंगलों या तपीवन में ही जायें। यह उनकी अपनी व्यक्तिगत इच्छा पर निर्भर था कि वे नगर के बाहर कुटिया बनाकर रहें<sup>१</sup> या भ्रम्य म तपस्वियों के आश्रम में चले जायें<sup>२</sup>। वानप्रस्थ-आश्रम में स्त्रियाँ भी रहती थीं। अर्थात् अपनी स्त्री को साथ लेकर पुरुष तपस्वी-जीवन में प्रविष्ट हो सकते थे<sup>३</sup>। परन्तु स्त्री के अतिरिक्त अन्य कोई परिवारिक बन्धु उनके साथ नहीं जा सकता था क्योंकि इससे वानप्रस्थ का चरमलक्ष्य मोक्ष-स्वायं सिद्ध न हो पाता। रहने भर के लिए उनको स्थान की आवश्यकता थी। ऐश-आराम से परिपूर्ण कोई भवन नहीं अपितु आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही न या तो कुटिया बना लें<sup>४</sup> या पेड़ों के नीचे ऐसे ही रहें<sup>५</sup>। सोने के लिए कुदा की चलाई<sup>६</sup> या मूलचर्म<sup>७</sup> और प्रबाद्य के लिए इंगुदी के तेल का दीपक वे प्रयुक्त कर सकते थे<sup>८</sup>।

१ स किंवायममन्त्रमाश्रितो निवसन्नावसथे पुराद्बहिः ।—रघु ८।१४

२ मुनिवन्तरञ्छायां देव्या तथा स्रष्टुं शिष्ये ।—रघु १७०

—अहममि तव मूलवद्यं विन्यस्य राक्षसं विपरितमुग्रव्याध्यायदिव्ये बनानि ।  
—विक्रम० ५।७

देहिण, पिच्छैः पृष्ठ की पादटिप्पणी नं० ३

३ देहिण, पिच्छैः पृष्ठ की पादटिप्पणी नं० ३ ४ इसी पृष्ठ की पादटिप्पणी नं० २ म रघु० ३।७०

प्रथम परिपठावत्तं रघु संनिवृत्तं विजयितमभिरन्ध स्नाध्यभायासमेतम् ।

तनुपक्षितकुटुम्बं शान्तिमार्गोन्मुक्तोन्मुक्तं हि सति कुलधुर्वैसुवदया गृहाय ॥

—रघु० ७।७१

४ निर्दिष्टं कुलपतिना स पञ्चदशामध्यास्य प्रयत्नपरिग्रहद्वितीयः ।

तच्छिष्याध्ययननिवृत्तावसाना संविष्टं कुदाद्यनं निधां निनाय ॥

—रघु० १।१२

५ इंगुद्वलहकृतप्रवीणा अस्तीणमेध्याजिनतस्मयन्तः ।

तस्यै सपर्यागुपदं विनान्ते निवामहेतोस्तदं विनोः ॥—रघु० १।८८

६ निधनैकपतिप्रदानं पञ्चदशमूक्तानि गृही भवन्ति तेषाम् ।—अमि० ७।२

७ देहिण, पादटिप्पणी नं० ४—रघु० १।१५,

८ देहिण, पादटिप्पणी नं० ४—रघु० १।८८

८ देहिण, पादटिप्पणी नं० ४—रघु० १।८८



में मही पशु-पक्षी वृक्ष-कृता नीबार<sup>१</sup> आदि का सौम्य तपस्वियों के आश्रम में ही सरम्भा से देखा जा सकता था। इस समस्त वातावरण को बुध्दन्त शकुन्तला का चित्र बनाते समय चित्रित करने का प्रयास करता है। पृष्ठभूमि में माझिनी मही जिसकी रेती में हंस के जोड़े बैठे हों दोनों ओर हिमालय की लच्छटी जहाँ हरिण बैठे हों एक पेड़ पर लटकते बल्कल और उस पेड़ के नीचे एक हरिणी अपने बाम नेत्र काले हरिण के शीर्ष में रगड़कर कुजा रही हो बनाया उस वातावरण की साधकता थी<sup>२</sup>।

स्नान-स्नान पर पशुपुत्रों<sup>३</sup> बीच-बीच में कृतागृह कुंभ<sup>४</sup> आदि जिनमें पत्थर की सिंकाई<sup>५</sup> भी विद्यमान थीं रहती थीं न केवल सौम्य को बढ़ाती थी बल्कि ठपटी थोपट्टी में शान्ति भी देती थी।

शान्ति और सम्योप आश्रम के वातावरण की विशेषता थी। उनकी अहिंसा वृत्ति और निस्वद्वन्द्व उनके इस सहज स्वाभाविक नैसर्गिक सौन्दर्य का रहस्य कहा जा सकता है।

उपस्त्री-जीवन—तपस्वियों के जीवन का सामाजिक मनुष्या से कोई संबंध नहीं था। सुन्दर बहुमुख्य वस्त्रों के स्नान पर बालक पहना<sup>६</sup> या यदि सूती

१. माझीचमुपिपत्नीगामुटबडाररोविमि ।

अपस्त्रीणि नीबारमायवेयाचित्तुमी ॥—रघु० १।१५०

नीबार दुकगमकोटरमुखभ्रष्टास्तवणामज ... —अभि० १।१४

२. कावर्त्तिकृत्स्नीनहंसमिबुना लोतोमहा माझिनी

पादास्ताममिषो निपन्नहरिणा धीरीगुरो पावना ।

साक्षात्कम्बितबल्कलस्य च तरोर्निमित्तुमिच्छाम्यथ

शृंगे इव्यमुबस्य वामनयनं कद्रुयमालां मृगीम् ॥—अभि १।१७

३. बैमिए, पाइटिपणी नं० १ रघु० १।१५० तथा पीछे भी जहाँ कुन्धिया और पगसात्म का प्रसंग आया है। 'गच्छोत्तममृत्तमिधमधमृत्तुह' ।

—अभि० अंक १ पृ० १७

४. अस्मिन्नेतसपरितिप्ते कृतार्मद्वये संगिहितया शकुन्तलभ्या भवितव्यम् ।

—अभि अंक १ पृ० ४३

५. एषा मै मनोरथप्रियतमा शिलापट्टमधिदधाना मन्वीष्यामन्वास्थने ।

—अभि अंक ३ पृ० ४३

६. बैमिए, भावे अध्याय 'विदाभूषा ।

तपस्वियों के आश्रम—वहाँ पर तपस्वी सोप रहा करते थे वह स्थान तपोवन कहलाता था। संसार के कोलाहल और अशान्ति से दूर, नगर के बाहर स्थित तपोवन आश्रम वातावरण में ही पूज्य रहते थे। इन आश्रमों का वातावरण इतना शान्त और पवित्र रहता था कि उसके व्यक्ति जब नगर में प्रवेश करते थे तब उन्हें अगणित उत्पन्न होती थी<sup>१</sup>।

तपोवन में प्रवेश करते ही वहाँ की शान्ति से मनुष्य का हृदय बिना प्रभावित हुए नहीं रहता था। दूर से ही बिरुद्धों के बोंसलों से घिरा लीबार इंगुवी के बीजों को छोड़ने वाले पत्थर विश्वासपूर्ण नियमता के साथ बूमते हुए मृग तथा बालक के टपके हुए बल-किणुओं की रेखा को देखकर निश्चय हो जाता था कि तपोवन पास ही है।<sup>२</sup>

इस प्रकार तपोवन के वातावरण में कहीं दृष्टिमत्ता नहीं थी। प्राकृतिक सौन्दर्य का वह कुछा लभ था। मृग आदि निमग्नता से इधर उधर बूमते थे<sup>३</sup>। कटा-बछाड़ से तपोवन भरा-भुरा रहता था। तपस्वी कम्पाएँ इन वृक्षों को प्रतिबिम्ब सींचा करती थी<sup>४</sup>। वृक्षा की जड़ों के चारों ओर बसिने रहते थे विनये पानी भरा रहता था। आश्रम के परिसर इनमें से एक पीकर अपनी व्यास बुझाया करते थे<sup>५</sup>।

उज्जुतवा की समस्त वास्तव्यस्था ही मृग आदि पशुओं और वनज्योत्स्ना मस्तिष्का आदि सन्तानों तथा आम आदि वृक्षों के बीच में व्यतीत हुई थी। वास्तव

१ तथापीरं शस्वत्परिचितविकितेन मनसा जनाकीन भव्ये वृत्तवहपरीतं गृहमिव ।  
अम्भकमिव स्नात सुचिरधूमिमिव प्रमुखावच

—अमि २।१०

मुष्टम् बडमिव स्तैरपतिजनमिह मुलसगिनमवैमि ।—अमि ५।११  
लीबारत सुकगमुकोटरमुखप्रहास्तटत्तामव  
प्रतिगवा स्वचिबिगुरीफलमिव

में नदी पनु-पक्षी बृह-स्रता मीबार<sup>१</sup> आदि का सौन्दर्य उपस्थितियों के आधम म ही सरसता से देखा जा सकता था। इस समस्त वातावरण को पुष्पान्त दाहन्तका का चित्र बनते समय चित्रित करने का प्रयास करता है। पृष्ठभूमि में मास्तिनी नदी त्रिमकी रेती में हंस के जोड़े बैठ हों दोनों ओर हिमाक्षय की लम्पहटी जहाँ हरिण बैठे हों एक पेड़ पर सटकते वस्त्रक और उम पेन के नीचे एक हरिणी अपने बाय नेत्र काले हरिण के मींग से रगड़कर जुबा रहो हो बनाना उस वातावरण की सापकता थी<sup>२</sup>।

स्नान-स्नान पर पधपुटा<sup>३</sup> बीच-बीच में सतागूह कुंज<sup>४</sup> आदि जिनमें पम्पर की दिखाएँ<sup>५</sup> भी विधामार्ग पड़ी रहती थी न केवल सौन्दर्य को बढ़ाती थी अपितु उपरी रोपहृदों में सान्ति भी देती थी।

दान्ति और सन्तोष आधम के वातावरण को विशेषता थी। उनकी अहिंसा मृत्ति और बिस्वबन्धुत्व उनके इस सहज स्वाभाविक नैसर्गिक सौन्दर्य का रहस्य कहा जा सकता है।

सपस्वी-जीवन—उपस्थितियों के जीवन का सामारिक अनुप्या म कई सबम नहीं था। सुन्दर बहुमूल्य वस्त्रों के स्नान पर वस्त्रक पहनना<sup>६</sup> या यदि मृत्ती

१ आक्षीचमूपिपन्नीनामुन्वडाररोविमि ।

अपस्वीरिच मीबारभागवेपाविनैमू वै ॥—रघु० १।१८०

मीबारः मुकगर्मक्रेटरमुज्जन्नस्तस्यामच ।—अभि० १।१४

२ कार्यानिर्कृतनीमर्हममिबुना सोनोवहा मास्तिनी

पादास्ताममिती निपण्णहरिणा मीरीगुरो पावना ।

शाखाडम्बितवन्कसस्य च तरोनिमिगुमिच्छाम्यथ

श्रुगे वृष्णमूमस्य वामनमर्ण कडूयमला मृगीम् ॥—अभि० १।१७

३ ऐलिय, पादटिप्पणी न १ रघु० १।१८० तथा पीछे भी जहाँ श्रुमिया और पममाका का प्रमय आया है। गण्डोटवम्पममिचममपुपर ।

—अभि० अंक १ पृ० १७

४ अस्मिन्नेतमपरिधिप्ले कृतार्मये संनिहितया स्रक्तुन्तमया अचित्तध्वम् ।

—अभि० अंक १ पृ० ४३

५ ग्या मे मनोरजप्रियतमा पिमलपट्टमविगामा मणीम्यामन्वास्तये ।

—अभि० अंक ३ पृ० ४१

६ ऐगिय, जाने अध्याय 'वेसमपा' ।

स्त्रि पहनना हो तो कौशाय रंग से रंग कर पहनना<sup>१</sup> उनकी प्रथाएं बरामूपा थी।  
 स्त्रि में मूत्र की बनी मलका<sup>२</sup> (कभी-कभी यह कुछ की भी होती थी<sup>३</sup>) मल  
 काका का बल्य<sup>४</sup> कान पर दुहरी मलमाका<sup>५</sup> या हाथ में ही रखने देना<sup>६</sup> बैठने  
 १ सिद्ध मगधर्म<sup>७</sup> सोने के लिए मगधर्म<sup>८</sup> कुछ की बगई<sup>९</sup> बगवा ऐसे ही  
 अशिक्ष भूमि का प्रयोग<sup>१०</sup> इनकी प्रथाएं बरामूपा थी। इनके हाथ में पलाश  
 (ह रखता था<sup>११</sup>)। स्त्रि पर बटाए रखती थी<sup>१२</sup>। स्त्रि को बिकना करने क  
 कए न इंगुरी का तेज प्रयोग न करते थे<sup>१३</sup>। बल्यो पर भी वे इसी तरह का  
 प्रयोग करते थे<sup>१४</sup>।

उपाकास विद्याध्वजन का रखा था<sup>१५</sup>। प्रातः और सायं समिधा कुछ फल  
 देने के लिए मृदु तपोवन से बाहर आते थे। सम्प्रा के समय उपस्विगल समिधा  
 कुछ आदि केकर तपोवन में वापस आते थे<sup>१६</sup>। मृदुपिण्डमार भी इस काम में

- १ तपो भ्रातृ सतीरमलिसाङ्गुत्तवा पुनः कीकृतैर्बल्यकुचया  
 मया त्वदीयं वेशमवतीत्य इमे कापामे वृहीते ।—मात० अंक १ प १३
- २ प्रतिबल सा कठोरमलिकिया कथाय मीथी विवृषा बमार माम्—कुमार १।१
- ३ बलिनवदन्तकुचमेकसा यतमिरं मृदुमृदुपरिवहाम् ।—रघु० २।२१
- ४ एपोऽम्माकाबल्यं मृदाया कंठुयितारं कुचासूचिकावम् —रघु १।४३
- ५ मृदुवमोन्मत्तकटाकटापं कर्णावसन्तद्विगुणावमृदुम् ।—कुमार० १।४६
- ६ कुचाङ्गुत्तवापरिसाङ्गुत्तिका कटाङ्गसूत्रप्रवयी तया कर ।—कुमार १।११
- ७ देखिए, पारटिप्यवी नं० ४ बजाजितापाङ्गवर—कुमार १।३
- ८ वा इनुवस्तेहृत्तप्रवीपमास्तीन मेव्यामिन तत्पमन्त —रघु १।४८१
- ९ तन्निष्पाध्ययननिवेदितमवसानां समिधं कुचसमने निधां निनाय ।—रघु १।३५
- १० बकेत सा बाहुच्छोपचामिनी निवेदुपी स्वशिक्ष एव कथके ।—कुमार १।१२
- ११ बजाजितापाङ्गवर प्रगल्भवाग्धसमिनः बह्मसवेन तेजसा  
 विवेष्ट कतिचद् बलिभक्तपोवन—कुमार० १।३
- १२ देखिए पारटिप्यवी नं० १
- १३ मा कस्यापि उपस्विगल इंदुवीर्तलमिधमिधमपचीपस्य हस्ते पतिष्यति ।  
 —अमि अंक २ प १४
- १४ मस्यात्पया बजाजितापाङ्गमिनीनां तैलं ग्यविष्यत मुक्त कुचासूचिभिरे ।  
 —अमि अंक ४ प १४

सहयोग दिया करते थे<sup>१</sup>। मुग्धादि जो इन ऋषि-कन्याओं के हाथ से पीकार जाने के अभ्यस्त थे (अरध्ववीर्वाचस्त्रिभामलास्मितास्तथा च तस्यां हरिणा विद्यम्बसु-कुमार० ५।१२) सार्यकाल के समय उनकी कूटिया भरे रहते थे<sup>२</sup>। ऋषि कन्याएँ वेष्ट-पीर्वा को पानी देती थीं<sup>३</sup> पक्षियों के पानी पीने का प्रबन्ध<sup>४</sup> करना मुग्धादि की देखभाल करना उनका कर्तव्य था<sup>५</sup>। मुग्धादि भी निभयता से सार्यकाल के समय वेष्टों के चारों ओर बैठ जाते थे<sup>६</sup>। अतिथि-पूजा ऋषि-कन्याओं का प्रधान काम था<sup>७</sup>।

ऋषि-मुनि विवाह करते थे। जनमूया और त्र्यंबका आश्रम की ही कन्याएँ भी और कष के मतानुसार उनका भी विवाह होना था<sup>८</sup>। परन्तु उनका मुख्य कर्तव्य और ध्येय तपादि धार्मिक क्रियाएँ थी। तप के द्वारा वे आत्मा की शुद्धि करते थे। तपश्चर्या के विभिन्न प्रकार थे। पञ्चान्नि तपस्या<sup>९</sup> दीर्घकाल में सम्पूर्ण रात्रि भर पानी में रहना<sup>१०</sup> वर्षा में कुत्ती बट्टानों पर सोना<sup>११</sup> बिना माँसे प्राप्त हुआ जल और पत्त काटकर रहना<sup>१२</sup> मृग के समान केवल जास

१ अथ पुण्यसमित्युत्थनिमित्तं ऋषिकुमारैः सह गतेनानेनाश्रमविच्छेदाचरितम् ॥

विक्रम० अंक ५, पृ २४६

२ आसीदमपि परतीनामुन्वडाररोभिनि । अपत्यैरिव पीकारमनायेमोक्षितम् प ॥

—रघु० १।५०

३ सेवान्तेमुनिकन्याभिस्तत्तथास्त्रिभामबुलकम् ।

विस्त्रानाय विह्वानामात्मन्नास्माभ्युपायिनाम् ॥—रघु० १।५१

—राहुन्वडा मीठा व पावती का पोषे सीचना ।

४ देखिए, पारिप्लवी म० ३ ।

५ देखिए, पारिप्लवी म० २ राहुन्वडा का मृग-प्रेम मृग के जासों में लेस म्याला आदि ।

६ सार्य मुगाभ्यासितवृत्तिपार्श्वे स्वमाधर्मं दान्तमूर्धं निपातम् ।—रघु० १।५३

७ तथानिपेक्षप्रयत्ना अर्पती प्रयुक्तपूजा विधिनानिबिम्ब ।—रघु० १।५८

विरोधिसत्त्वोन्मिष्टतपुश्चरमा<sup>१</sup> उदीरणीष्टप्रवर्धितातिथि ।—कुमार० ५।१७

८ इमेऽपि प्रवेदे ।—अभि० अंक ४ पृष्ठ ७५

९ मुनी बगुनी उरकला हविपूजा शुचिस्त्रिभामध्ययता सुमध्यमा —कुमार० ५।२०

हविभुजामेववता बगुनी मध्ये सन्ना<sup>२</sup>तपसस्तपसि ।—रघु० १।५४

१० निनाथ सारयन्तहिमोत्तराभिला सहस्यरात्रीस्त्रबासतत्यग ।—कुमार० ५।२१

११ शिमानयो तामनिवेतथांमिनी निरंतरास्त्रन्तराजानबुष्टिपु ।—कुमार० ५।२२

१२ अपावितीपस्थितमम्बु केचमं रमाग्मवस्योदुपतेदच रस्मय ।

-----बभूव तस्या-- विक पारजाविधि ॥—कुमार० ५।२२



सना<sup>१</sup> मीन रूना<sup>२</sup> शरीर का भी जन्म में हुन कर बेना<sup>३</sup> यह की भाषा  
उर उठा उठ कर बोले जसी बाप का दुर्गा पीकर रूना<sup>४</sup> बादि चोर  
उप के प्रकार से । तपस्या में वे इतने जीन हो जाते थे कि चिड़िया उनके बालों  
में बँधका बनाने लगती थीं शरीर पर चाप रँगने लगते थे और वीमक की  
शमी उनके शरीर पर बम जाती थी<sup>५</sup> ।

यह उप-साधना किसी फल-प्राप्ति के लिए होती वा<sup>६</sup> । इसके द्वारा वे  
मृत भविष्य बतवान सब कुछ जान जाते थे । सिद्धीप के पुत्र क्यों नहीं हुआ<sup>७</sup>  
दुष्यन्त ने शकुन्तला का परित्याग क्यों किया राम ने सीता को क्यों छोड़ा<sup>८</sup>  
यह सब बसिष्ठ भारीय और वास्मीकि को योगबल से ही मालूम हुआ था ।

क्रोधित होने पर वे शाप भी देते थे । परन्तु क्रोध अकारण नहीं होता था ।  
दुर्वासा के घाप और अकबकुमार के माता-पिता के शाप का ऐश्वर्य अकारण  
क्रोध न था ।

धार्मिक क्रियाओं में लक्ष्मीन रहना उनकी विशेषता थी । सन्ध्या आप<sup>९</sup>  
होम<sup>१०</sup> आदि वे नियमित रूप से करते थे । होम के बुरे से शरा उपोसन सुबन्धित

- १ पुरा स बर्माकुरमावचिह्नरन्मुने साधमुपिमधेना ।—रघु० १३।३६
- २ बाधममत्वात्प्रपठित मरीष कम्पेन विवित्रप्रतिपुष्ट मूर्ध्नि ।—रघु० १३।४४
- ३ अब शरभ्यं शरभमनाम्नस्तपीवर्त पावनमद्रिताणि ।  
चिराय संतप्य समिद्रुरजि यो मंगपूता तनुमप्यहमीति ॥—रघु० १३।४६
- ४ अब दूनामिताम्राणं बुद्धशालावकम्वितम् ।  
धरार्थं कंचिद्वैश्वानस्तपस्यान्तमबोधुबुधम् ॥—रघु १५।४६
- ५ वास्मीकावनिमन्तमूर्त्तिहरशा संवत्सपत्न्या कंठ बीधसताप्रवालवक्ष्येनात्यर्थं  
संपीठित । अद्यपि शकुन्तलीकनिषितं विप्रज्जटाग्रमण्डलम् यत्र स्वाधुरि  
वाचतो मुनिरसाम्यकविर्भवं विवत ॥—अमि० ७।११
- ६ अयावतारम्भनिवासमात्मनः फलोदयान्ताम तपःसमाधये ।—कुमार ४।९
- ७ छोअप्यत्प्रनिवाभेन संतते स्तम्भकारणम् ।—रघु १।७४
- ८ तदेव ध्यानावधनतोस्मि बुधसिन्धुः श्यापारिष्यं त्वया प्रत्याविष्टा ।

—अमि० अंक ७ पृ० १४९

—७१ भर्ता ।—रघु १४।७९

रहता था<sup>१</sup>। वहिमा उनका मूलमन्त्र था। आधम के मूर्तों पर हाथ उठाने का किसी को अधिकार नहीं था<sup>२</sup>। आधम की भर्माश के प्रतिकूल कार्य करने पर व्यक्ति को तपोवन के बाहर कर दिया जाता था<sup>३</sup>। विद्वद्बन्धुत्व उनका स्वयं था। कला-कलादि में भी उनकी आत्मीयता थी। विषय-मग्न की विमुक्तता रण के ऊपर उठने की चेष्टा उनका ध्येय था<sup>४</sup>। वे यज्ञ भी करते थे<sup>५</sup>। भर्मगम के परिहार के लिए विशेष व्रत-अनुष्ठान भी किया करते थे<sup>६</sup>।

तपस्विनी कन्याएँ भी इसी प्रकार का साश जीवन व्यतीत करती थी। वय भूषा उनकी कृपियों के समान वस्त्ररस की ही थी। आभूषणादि व पुष्पा क पहनती थी<sup>७</sup>। अतिवि-मत्कार<sup>८</sup> बृद्ध-भूषादि के प्रति मोहाह<sup>९</sup> उनकी विशेषता थी।

संन्यास-आश्रम—महर्षे अन्तिम आधम संन्यास आधम बहुलता था। काशिराम इसको 'अन्त्य आधम' कहते हैं। यद्यपि अन्त्य के सम्बन्ध में टीका-कारों में मत की विविक्तता है कि यह संन्यास है या वानप्रस्थ पर मस्तिष्नाह इसका जब संन्यास ही लेते हैं<sup>१०</sup>।

उद्देश्य—संन्यास और वानप्रस्थ आधमा में बहुत अन्तर नहीं है। मोक्ष साधना और वैराग्य का वानप्रस्थ प्रारंभ है और संन्यास परिपक्वता है। मोक्ष पाने

१ देखिए, पिछले पृष्ठ की पादटिप्पणी नं० ११।

२ आधममगोर्जं न हन्तव्यो न हन्तव्यः ।—अभि० अंक १ पृ ७

३ ब्रूहीतामिव द्रिक् गृध्र पादपमिश्ररे निमीयमानोऽनेन व्यथ्यकृतो वासस्य ।  
तत उपपन्नवृत्तान्तेन भववता व्यवसनाह समादिष्ट

निर्मातृप्रेतमुबधीहम्ने म्याममिति ।—विह्वल अंक ५ पृ २४६

४ अम्यक्तमिव स्नात घुचिरशचिमिव प्रबुद्धवत् सुप्तम्  
बद्धमिव स्वीरवतिजनमिह मुसमंगिमवैमि ।—अभि० अंक ५ ११

५ बीट्यवदिमथ रक्तविभ्रुमिबन्धुबीडपुष्पमि प्ररूपिता ।  
संभ्रमो भवदपोडक्रमणामत्तिज्ञा व्युतविकर्तव्यभूषाम् ।।—रघु० ११।२५

६ इवमस्या प्रतिवृत्तं धामयिन् सोमतीर्ष मत् ।—अभि० अंक १ पृ० २

७ देखिए अध्याय 'वयभूषा'।

८ दाबुस्तमामतिधिमत्काराय निद्रुग्य द्विः-स्या प्रतिवृत्त...

—अभि० अंक १ पृ० २

९ अभि० अंक १ अंक ४।

१० न निष्ठाधममन्यमापितो निवसन्नाधममे पुगाद्वहि ...—रघु० ८।१४

देखिए इसकी टीका भी।

के लिए तत्त्वदर्शी योगियों के साथ साम्य-वर्षा <sup>१</sup> कुस के आसन पर बैठकर मन को एकाग्र करना <sup>२</sup> योगबल से शरीर के भीतर रहनेवाले पाँचों पवनों को बहा में करना <sup>३</sup> ज्ञान की अग्नि से कर्मों को राख कर जालना <sup>४</sup> जन के प्रति वैराग्य <sup>५</sup> प्रकृति के सत्त्व रज तम को भीषण <sup>६</sup> आदि इस आश्रम के लक्ष्य थे। इस प्रकार की योगश्रिया से वे परमात्मा के वृद्धन करने में समर्थ हो जाते थे<sup>७</sup>। इन्द्रियों को बध में कर<sup>८</sup> अन्त में योगमार्ग से शरीर छोड़ देते थे<sup>९</sup>।

योग और तपस्व्य ही लक्ष्य की प्राप्ति का माध्यम श्री। कामिवास ने विभिन्न प्रकार की योग-साधना और तपस्व्य का उल्लेख किया है। पचान्ति तप शीतकाक मं राजिभर वस्त्र में लड़े रहना वर्षा में खुली जट्टनों पर सोना मृग के समान केवल बास खाकर रहना मौन रहना शरीर का अग्नि में हवन करना पेड़ की शाखाओं पर उल्टा लटककर नीच खड़ी अग्नि का धुआ पीकर रहना आदि अनेक प्रकार थे जिनका उल्लेख किया था चुका है। तपस्वा म ह्यन्ती उत्सर्जनता वा जाती यी कि शरीर पर दीमकों की बंसी आ जाती यी छाती पर सपि की बेंचुलें पड़ी रहती यी शक में बेलें उत्सर्ज कर मूत्र जाती यी। कर्णों पर कैली कण्ठों में चिड़िया बोलका बनाने कपती यी<sup>१०</sup>।

इस योगबल से ही कण्ठ <sup>११</sup> मारीच <sup>१२</sup> वात्सीकि बमिह ने मूत्र मविध्य

१ अतपापिपबोपत्तम्यये रघुराणी समिवाव योमिनि ।—रघु ८।१७

२ पवित्रेणुमुपाकुभारवा कुसपूतं प्रब्राम्णु विहरम् ।—रघु ८।१८

३ अपरं प्रविजान्तयोग्यया मरुतं पंच शरीरयोधराम् ।—रघु० ८।१९

४ इतरो वहने स्वकर्मणा बधूते ज्ञानमयेन बह्निना ।—रघु ८।२

५ रघुरप्यवमद्गुणवर्मं प्रकृतिस्वं समलोच्छकीचन ।—रघु० ८।२१

६ न च मोहविबेनवैतरः स्मिरशीर परमात्मवृत्तानम् ।—रघु ८।२२

८ इति शत्रुपु चेन्द्रियेषु च प्रतिपिष्टप्रसरेषु बाधती

प्रसिताबुधमापवमयोग्ययी मिद्रिमुमाववापु ॥—रघु ८।२३

९ तमस परमात्मवर्मं पुरुषं योगसमाधिना रघु ॥—रघु ८।२४

योवेनान्ते तनुत्यक्तः—रघुबंधी आरस वा ।—रघु १।८

१० उल्लेख पीछे ही चुका है ।—अमि० ७।११

वर्तमान सब कुछ जान लिया था। इन तपस्वी-गणों के अतिरिक्त माधारम सौकिक मनुष्य भी प्रवास करने पर योग-विद्या से हो परमात्मा का दमन कर लेते थे<sup>१</sup>। रघु का नाम इस प्रसंग में उल्लेखनीय है।

जन-साधारण में चाहे इन आधमों का प्रचार अधिक न हो परन्तु मात्रा अवश्य रही था। मालविकाग्निमित्र में बलि ने परिचायिका<sup>२</sup> का प्रसंग दिया है जो इस आधम के आश्रय की पुष्टि करता है। यद्यपि इन सब से ऐसा अवश्य आभासित होता है कि गौतम बुद्ध के धर्म का प्रभाव जनता पर पड़ने लगा था और स्त्रियाँ भी परचायिका बनने लगी थीं।

बर्गों की तरह आधमों के रस्ते भी राजा थे<sup>३</sup>। मनुष्य आधमों के प्रति क्रूर काम न करें ऐसा उनका प्रधान कर्तव्य था।

— — —

— — —  
शाश्वतमीमुपमता सर्व्वे ध्याताव्यसतोस्मि दुर्धामा धार्पादिभ्यं तपस्विनी  
मह्वमचारिणी स्वया प्रत्यादिष्टा नान्यथति । ग चाप्यर्गुलोपवदनाबमान ।  
—अग्नि अफ ७ पृ १४९ । ( भक्त के विषय में )—रघोतानुष्ठुतमि  
मितमदिना तीक्ष्णसधि पुरा सत्तापीणा कयति बहुधामप्रतिरज । इहाप  
सत्तापी प्रममदमनात्मवदमन पुनर्यम्यस्यास्वा भरण इति सोऽस्य भरणम् ।

—अग्नि० ७।३३

१ गीते उल्लेख ही चुका है दैगिए—रघु० ८।२२

२ सभी वर्गों में नाम आया है।

३ मनुष्य वर्णविभक्तिकर्म धर्म एवं धर्मों धर्मना प्रधीन ।—रघु०

—निगूढ बोध रक्षयमेव । ५

बीजा अध्याय

## संस्कार

आशय तथा उद्देश्य—प्राचीन वैदिक साहित्य में संस्कार शब्द का कहीं उल्लेख नहीं है, यद्यपि 'सम्' पूर्वक 'कृ' वास्तु का उपयोग बहुधा देखा जाता है। इसमें 'कृ' प्रत्यय का प्रयोग कर संस्कृत शब्द का उल्लेख भी स्वान-स्वान पर मिलता है<sup>१</sup>। शतपथ ब्राह्मण में 'उ ह्यं देवैर्म्यो हवि' संस्कृत साधु संस्कृत संस्कृतिरित्येवैतवान् (१ १ ४ १०) तथा 'तस्मात्तु स्त्री पुमांसं संस्कृते विद्वत् मम्येति' (१ का २ १ २२) आदि वाक्यों का उपयोग हुआ है। छान्दोग्य उपनिषद् ४ १६ १ २ में 'तस्मादेव एव यज्ञस्तस्य मनस्य बलं च वदन्ती। तयोर्म्यतरं मनसा संस्करोति ब्रह्मा बलं होता' आया है। संस्कार शब्द का प्रयोग धर्मिणि के धूर्तों में बहुत अधिक मिलता है<sup>२</sup>। अधिकतर इस शब्द से उनका आशय यज्ञ में सम्पादित किसी क्रिया से है, जिससे मनुष्य की शुद्धि हो। १ ८ ३ में इसका उपयोग केवलत बतवावन मन्त्रकृतन क्रियाओं के लिए किया गया है जो यज्ञ करनेवाले व्यक्ति के लिए आवश्यक समझी जाती है। २ १ २५ में प्रोक्षण के लिए, १० २ ४६ में शीर कर्म (Shaving of head & face) के लिए इसका उपयोग किया है। उपनयन के वर्ष में भी धर्मिणि ने (१ १ ३५) इस शब्द का प्रयोग किया है—'संस्कारस्य तद्वर्षत्वादिचात्वा पुण्यपुति'। संक्षेप में ऐसा कहा जा सकता है कि विभिन्न मनीषियों की इस शब्द के अर्थ में एक-दूसरे का आशय है। शबर स्वामी का कहना है कि संस्कार वह वस्तु है जिसके होने से कोई वस्तु या व्यक्ति किसी के योग्य बनता है ('संस्कारो नाम स भवति प्रसिन्नातै पदार्थैर्भवति योग्य कस्वचिरवस्य')<sup>३</sup>।

१. भाष्य, ५ ७६ १; ८ ११ ६; ९ २८ ४

‘याग्यतां आश्रयानां क्रिया संस्कार इत्युच्यन्ते’<sup>१</sup> एमी तंत्र बानिकवार कुमारिण की बाराणा है। संस्कार का कथन है—‘संस्कारा हि नाम गुणाधानेन वा त्याग दायाप नयनेन वा। याग्यता क विषय में तंत्रबानिकवार का कहना है कि यह योग्यता वा प्रकार की है। दाया क अननयन तथा गुणात्मरोपजनन म मनुज याग्य बनता है। योग्यता क मन्त्र विप्रकारा शोषापनयनेन गुणात्मरोपजनन क भवति<sup>२</sup>। ‘ब्रह्मसाम्ब के इतिहास’ में भी काव ने कहा है कि संस्कार गए गुणा का उत्पारक है और उन मे दाप अथवा पाप अपराध आदि का निवारण होता है। बरादि घमघम्यों म अमिनमिन कायों को न करने से शोध माता जाता है। त्रिन बातों या कायों को करण का निषेध हा उन कायों को मनुष्य इव ब्रह्म मे अथवा मत ब्रह्म में कर ही जाता है। इन कायों का करने से उत्पन्न दाया का यदि परि हार न किया जाय तो ये व्यक्ति कितना ही निर्दोष यज्ञ कर उसका यज्ञ का फल प्राप्त न होने देंगे। इनका प्रभाव उन यज्ञ फल पर अक्षय्य ही पड़ेगा<sup>३</sup>। संस्कार की परिभाषा करते हुए बीरमिश्रान्य उनके दो विभाग कर देने है। बाधकम आदि संस्कारों मे शरीर की शुद्धि जाती है और उत्तनयन आदि म अशुद्ध अथवाये कर्मों की याग्यता प्राप्त होती है। ‘एते मर्माधानारप संस्कारा घटी’ मस्तुबन्ध मर्षेण अदुष्टार्थेषु कमसु योग्यताविधायं कृच्छ्रि। उन्मनिशयो याग्यताविधायक’<sup>४</sup>।

मंतप में लता कहा जा सकता है कि संस्कार म मन्त्र घटीर की शुद्धि पवित्रता एवं रमणीयता की ध्वनि निकलती है। स्वयं काष्ठिराम न संस्कार लब्ध का कई स्थानों पर प्रयोग किया है। कुमारसम्भव मग १ २८ में—

‘संस्काराश्चमिव गिरा मनीषी तदा म पुनश्च विमूर्धितरच

‘संस्काराश्चमिव की टीका करते हुए मस्तिनाथ कहते हैं—

‘संस्कारो व्याकरणत्रया शुद्धिस्तद्व्या गिरा वाचा... ..

इसी श्रव के मग ७ १० में—

१. तंत्रबानिक पृ० १०७८ लुक्ता कीजिए—‘संस्कारं नाम उत्पन्नं यत्त एकारहृद्व्यात्मकहितं’। महाभाष्य ४।१।२५। ‘उत्तरोग ज्ञा हि क्रिया संस्कार इति मन्त्रे’। बौध्द महाभाष्य ४।१।२५।

२. ब्रह्मसूत्र-संस्कार १ १ ४

३. तंत्रबानिक पृष्ठ १११५ पैमिनी १ ८ २.

४. ब्रह्मसूत्र का इतिहास अध्याय ६ पृष्ठ १११

५. ब्रह्मसूत्र का इतिहास अध्याय ६ पृष्ठ १११ (पारमिनी)

संस्कारपूर्वक वरं वरेष्वं वषू सुखपाह निष्पन्नेन ।  
 संस्कार शब्द से संस्कृत वर्ण निकलता है, पर संस्कृत से संस्कृत भाषा के साथ-साथ  
 ( well purified ) अच्छी तरह से बिसकी बुद्धि हो चुकी हो ऐसी भी प्रतीति  
 होती है । प्रसिद्ध संस्कारों के बीच में संस्कार चण्ड का प्रयोग कामिदास ने किया  
 है। यही पवित्रता रमणीयता और बुद्धता रघुबंध सर्ग १५ ७९ में भी  
 परिलक्षित होती है—

स्वरसंस्कारवत्पासी पुष्पाभ्यामव सीतया ।  
 कृष्णेनोदधिर्धं मूय रार्म मुनिष्पत्ति ॥  
 अभिज्ञानलाङ्कुलम् के अंक ९ श्लोक ९ की महार्ध में जाने से संस्कार का  
 प्रयोजन एवं महत्त्व मनी मति शब्द बता है—

चिन्ताबागरचप्रदान्तनयमस्तोत्रोमुवाचारम ।  
 संस्कारोत्तिष्ठितो महामचिरिव धीषोऽपि नात्मपते ॥  
 जिस प्रकार सराव में से निकली हुई मणि सीम होने पर असीमिक प्रमानुक्त हो  
 जाती है, उसी प्रकार संस्कार हा जाने से व्यक्ति वैजस्वी हो जाता है, ऐसी  
 ध्वनि निकलती है । यही भाषना रघु० सर्ग १ १८ में—  
 स जावकर्मव्यक्तिके उपस्थिता उपोभगादेव पुरोषसा कते ।  
 विसीपमनुमभिराकरोत्सुम प्रमुक्तसंस्कार इवाभिर्धं वमी ॥

उद्देश्य—इसमें कोई शक्य नहीं कि संस्कार बुद्धि और योग्यता के लिए किए  
 जाते हैं । मनु का कहना है डिवासियों के बीच तथा गम से उत्पन्न पाप धर्म-  
 वत्सा में किए गए होम के द्वारा वर्ग सेने के पश्चात् जावकर्म जोल जादि  
 के द्वारा प्राप्त हो जाते हैं । वाजवत्स्य की भी ऐसी ही वारणा है—एवमेव  
 धम मादि बीजधर्मसमुद्भवम् । इन दोनों विद्वानों की वारणा भी ही सेवा  
 सिद्धि कुल्लूक मादि ने अपनी-अपनी तरह से व्याख्या की है । मेधातिथि बीज  
 और गम को पाप का कारण नहीं मानता बरन् मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक २७  
 में आए 'एम का तात्पर्य अपवित्रता का होता है' । कुल्लूक  
 से उत्पन्न 'प्रतिपिद्धमैपुनसंश्रम्यादिना







वातकर्म नामकरण अन्नप्राशन चौस उपनयन ये आठ वेद के चार ऋतु समावतन विवाह प्रतिदिन के पाँच महायज्ञ—देव पितृ भनुष्य मृत दद्या सप्त पाक यज्ञ सात हविर्ग्राह सात सोमयज्ञ<sup>१</sup>। गौतम निस्मवेह सस्कारों का विस्तृत अर्थ देते हैं। अगिरम केवल २३ सस्कार ही कहते हैं। जबिकत्तर सस्कारों की संख्या १६ हो जाती है। इनमें गर्भाधान पुंसवन भीमन्तोन्मयन विष्णु वसि वातकर्म नामकरण निष्क्रमण अन्नप्राशन चौस उपनयन वेदव्रत-आतुष्ट्य समावतन और विवाह।

### मुख्य सस्कार

गर्भाधान सस्कार—वेदान्त ऋतु सवमन और गर्भाधान को पञ्च पूषक मानता है<sup>२</sup>। यही ऋतुसंवमन निषेक भी कहा जाता है।

ऋतु सवमनं निषेकमिषाहुः<sup>३</sup>।

परन्तु मनु याज्ञवल्क्य और विष्णुधर्म-सूत्रों में गर्भाधान के लिए ही निषेक शब्द का प्रयोग हुआ है<sup>४</sup>। याज्ञवल्क्य ने गर्भाधानमृती का प्रयोग किया है। अवश्य ही ऋतु संतान्य ऋतुसंवमन होगा<sup>५</sup>। पराधर और आपस्तम्ब मृत्सूत्रों में गर्भाधान का कहीं उल्लेख नहीं है। इसके स्थान पर वही ऋतुर्भी कम या अतुर्भी होम का नाम आया है।

इस सस्कार का प्रारम्भ अश्वर्षव<sup>६</sup> में मिलता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र<sup>७</sup> और बृहत् उपनिषद् में गर्भाधान, पुंसवन अश्वर्षोन्मन का वर्णन है। मांडव्यायन गृह्य में अतुर्षोन्म की विषय विवेचना है। विवाह की तीन रात्रियों के पश्चात् चौथी रात्रि को पति अग्नि में अग्नि बाधु सूर्य आदि को आहुति देकर मंत्रों आदि का पढ़ते हुए अन्त में—आ ते योनि मम एतु पुमान् बाण इमेपुधिम्। आ भीतौत्र आपता पुनस्ते वगमात्र (अश्वर्षव १।२१ २)—मन्त्रों करे<sup>८</sup>। पराधर गृह्य और आपस्तम्ब गृह्य में भी लगभग ऐसा ही है<sup>९</sup>। गृह्य शेषकों

१ गौतम धर्मसूत्र ८।१४-२४

२ वेदिए, काण का धर्मशास्त्र का इतिहास पृ० १६३

३ वेदान्त ६।२

४ मनु० २।११ २१ निषेकादिधर्मशास्त्रो ....।

पुष्पनिषेकादिधर्मशास्त्रो।—याज्ञ० २।१० निषेकाद्या धर्मशास्त्रास्तापो...

५ याज्ञ० २।११ ममाधानमृती पुंस ...मिनात्तर ने 'ऋतु की वस्तु' 'ऋतु' काये की है।

६ अश्वर्षव १।२१      ७ आश्वलायन गृह्य १।११ १

८ वेदिए, धर्मशास्त्र का इतिहास काये पृ० २०३

९ धर्मशास्त्र का इतिहास काये पृ २०३

नै चतुर्थी कर्म को वैवाहिक-संस्कार का ही एक अंग माना। कदाचित् बड़ी अवस्था में विवाह होने के कारण वह रजस्वला हो चुकी होगी ऐसा सोचकर विवाह के साथ ही यह संस्कार कर देते होंगे। बाद की जब छोटी अवस्था में विवाह होने लगा होगा तब विवाह के साथ यह ग कर बाद की करते होंगे। इसका अर्थ पुष्पक नाम गर्भाधान-संस्कार रखा।

स्वयं कास्मिन्नाद्य ने इस संस्कार का बहुत कुछ संकेत किया है। रघुवंश सुग २ के श्लोक ७१ तथा मत्स्यनाथ की टीका पर यदि ध्यान दिया जाय तो यह संकेत स्वतः स्पष्ट हो जाता है। 'गममाधत्तरात्री' इसी संस्कार की ओर संकेत करता है। 'समाधत्त' होकर नारी गम की स्थापना करती है ऐसा आचार्यों का नियम है। आमत से इसी की आर सकेत है<sup>१</sup>। साहित्यिक सौन्दर्य और गम के महत्त्व का संकेत-उदाहरण इससे बतकर अन्वय कहाँ मिलेगा? इसी सम्बन्ध में कास्मिन्नाद्य ने एक स्थान पर उपमा दी है—

ताम्रिगम प्रजामृत्युं दधे देवाद्यसंभव ।

मौरीमिरिष नाडीमिरमृताभ्यामिरम्भय<sup>२</sup> ॥

इस असाधारण संकेत के अतिरिक्त निपक शब्द का व्यवहार इस संस्कार की पुष्टि में सहायक है। कवि का अभिप्रेत ही ऐसा रहा होगा इसमें कोई संशय नहीं—'यौपित्सु तडीर्यनिपकमूनि सैन अमेत्यात्ममुद्योपरिष्ठम्'<sup>३</sup>। इसी

१ 'गममाधत्त रात्री' के सम्बन्ध में विद्वानों का कुछ मतभेद है। मत्स्यनाथ कहते हैं जब माधत्त इत्यनेन स्त्रीकृतु कमारणामाधमुच्यते। तथा मंत्र न बुद्ध्ते यथेवं पुत्रिषो मङ्गलताया गममाधत्त। एवं त्व गममाधेहि दधाने मासि भूतये। गम की स्थापना पुष्पक करता है कि नारी करती है इस पर भी मतभेद है। प्राचीनकाल में 'बत्ते' या 'आधत्ते' का अर्थ स्थापन करना या यद्यपि आजकल इसका अर्थ आरण करना किया जाता है। आचार्यों का यह नियम है कि स्थापना नारी करती है। उनका कहना है कि संमोहपृष्टि प्राप्त कर नारी गम की स्थापना करती है—'वृष्टा पत्नी रेता भत्त। भत्त के वैवाकरणो में भत्त में पितृव्य' नम्य मान किया है। उनके मत में 'बत्ते' का अर्थ है धापवति वर्जित स्त्री अथ आरण करवाती है—

प्रकार गर्भाधान के समय की शुद्धता भी बँ न मिले। इसका संकेत श्री अश्वेतो  
कुमारसम्भव में किया है<sup>१</sup>।

गर्भाधान-संस्कार गम ( गमस्मिन् बायक ) का है जबवा स्त्री का हम पर  
मत्तमेव है। गीतम (अध्याय ८ २४) मनु० (अध्याय १ १६) इसे गम का  
मानने है। याज्ञवल्क्य के टीकाकार विश्वरूप कहते हैं कि सीमन्तोन्नयन के  
अतिरिक्त सभी संस्कार गम के हैं अतः ये बार-बार अनिवार्य में होने चाहिए

प्रतिगम चापसीमन्तोन्नयना प्रथमन्ते ।

तस्य स्त्रीसम्भारत्वात् ॥—विश्वरूप याज्ञवल्क्य स्मृति १।११

पुंसवतः—अथर्ववेद ७ का ११ ' म सुवस पशुके यह पशु खाया है—  
'यसीमग्नाय आत्मान्य पुंसवतं वतम् । गर्भाधान-संस्कार का नाम पुंसवत-संस्कार  
जाता है। पुंसवत उत्पत्ति के लिए यह संस्कार किया जाता है। स्वयं मस्तिनाय न  
पुंसवत की स्मृत्युक्ति बताई है—'पुमान्पुण्येऽर्जनेति पुंसवतम्'<sup>२</sup>। हिन्दू-जन्म में पिता  
अथवा माँ तब तक करन बाला पुंस हो जाता है अतः उससे ही पुंस का बहुत  
अधिक महत्त्व है। स्वयं कानिदम् न इसका रपुष्य शकुन्तला विक्रमोपशोम  
माटकों में अनेक स्थानों में महत्त्व स्वीकार किया है<sup>३</sup>। अतः प्रत्यक्ष रूप से इस  
संस्कार का नाम दिया<sup>४</sup>।

गम स्थापित हो जान क पश्चात् पुंसवत-संस्कार किया जाता है। इसके  
समय के विषय में बिद्वान् का एक-दुसरे बारम्बार है। आप्तकाम्यन गृह्य  
( १ का १३ श्लोक ) में तीसरे महीने में करन की सम्मति दी है। मस्तिनाय  
कहते हैं—अथ मासि तृतीये तृतीयं वा पुंसवतम्<sup>५</sup>। पारम्परिक अनुसार 'यमा

१ मा भूवराधामविनेन हिमवता समाधिमाया तत्रवादि भव्या ।

सम्पदप्रमोदापरिप्लवता नीलाविवासाहमुषेन सम्यक् ॥—बुभार० १।२२

२ टीका रपु ३।१ तस्य पुमान् सुमतेऽन कमचलि व्युत्पन्ना यमस्य पुंस  
पताणां क वम विराय—(वीरक) । पुमान् प्रसूयते यम तपुंसवतमोरितम् ।  
( संस्कार-प्रकाश )

३ मूलं यत्त परं यथा विद्विज्जिह्वन्धिन ।

न प्रवामभुज आश्वस्वभामग्रहणत्वर ॥—रपु० १।१६

न चारमभ पूर्वेपामुजनिमोऽनमापनम्—रपु १०।२

मनामर्ष वज्रपिशाच किमप्यस्य होनम्—विक्रम० अक ५, पृ० २३८

४ पूरुङ्गल रपु ३।१० 'देव इदानीमव माकनस्य अष्टिना पुष्टिना  
निपुतपुंसवता जायाऽस्य भूयन् ।—अभि० अक ६ पृ० १२१

५ टीका रपु ३।१०

नयनेन चक्षुषा यस्तु स्मात्<sup>१</sup> । वैजयापनयो-‘यत्र पुंसवनामलोमने करोति मासि द्वितीये वा तृतीये वा ( संस्कार-मयज ) । श्री भगवत्पूज्य सपाश्याय न शौनक वा उदाहरण दिया है—

अकृते गर्भे द्वितीये तु मासे पुंसवर्ग भवेत् ।

गर्भेऽप्यकृते तृतीये चतुर्थे मासि वा भवेत्<sup>२</sup> ॥

आश्वलायन गृह्य ( अध्याय १ ११२ ७ ) में इसके मताने की विधि इस प्रकार दी है : गर्भाशया के तृतीय मास में पण्डित सारे दिन अन्न के उपवास की हुई पत्नी को माय ( जिसका बच्चा उसी रंग का हो जिस रंग की माय हो ) के बही में एक यज की बाल और दो माय के बाने मिलाकर तीन बार पौने को दो बार प्रत्येक बार उससे पूछे—‘तुम क्या पौ रही हो पत्नी प्रत्येक बार कहे—‘पुंसवने’ पुंसवने’ ।

अनबलोमन अथवा गर्भरक्षण—ये संस्कार पुंसवन के हो एक अंग थे । परन्तु आश्वलायन गृह्य में दोनों पूजक पूजक कहे गए हैं<sup>३</sup> । वैजयान्त गृह्य के अनुसार शौनक अथवा अनबलोमन और पुंसवन एक मात्र ही एक दिन द्वितीय अथवा तृतीय मास में मना लेने चाहिये<sup>४</sup> । वैजयान्त स्वतः सिद्ध एवं स्पष्ट कहा है, गर्भ मष्ट न हो अथवा गमपात न हो इसलिये इसकी उदादिता है । अब पूर्वक ‘सुप्त’ शब्द से अश्वलायन शब्द का निर्माण हुआ है<sup>५</sup> । शौनक कारिका के अनुसार भी यह संस्कार अनबलोमन कहलाता है जिससे गर्भ सुरक्षित रहे<sup>६</sup> ।

कवि कालिदास ने किसी क्षणक में यद्यपि इसका प्रयोग नहीं किया पर असाधारण संकेत अवश्य किया है ।

‘यथाकर्म पुंसवनादिका क्रिया नृपस्य धीरः सन्तुष्टीव्यवत्त स ।—रघु ३।१

१ टीका रघु० ३।१० ( मल्लिक० )

२ इतिहास इन कालिदास पृष्ठ ३२१ ।

३ ‘चतुर्थेऽनबलोमनम् इत्याश्वलायनम् । अत्र चौथे महीने यह होता चाहिये जब पुंसवन इसी स्थान पर द्वितीय या तृतीय मास में मनाया चाहिये—ऐसा लिखा है ।—टीका रघुवंश सर्ग ३ १

इसकी टीका करते हुए मत्स्यनाथ कहते हैं—‘सवनादिका क्रिया यथाक्रमं क्रममनष्टिक्रम्य व्यवस्य कृतवान् । आदि शब्देनानवसोमनसीमन्तोन्नयनं गृह्यते । इसके मनाने की विधि<sup>१</sup> के विषय में आश्वलायन का कहना है कि हरे इर्वादल के रम को पत्नी की नासिका के साहिने छिन्न में छोड़े । किसी-किसी का यह भी कहना है कि इसको करते समय प्रजापति और ऋषिपुत्र<sup>२</sup> मंत्र पढ़ें । प्रजापति की पूजा व आहुति देने के पश्चात् पत्नी के हृदय प्रवेश का छुए और मंत्र पढ़ें कि वे उसके गर्भ की रक्षा करें । ससप में नाक के छिद्र में हृर्वांस बाधना पत्नी के हृदय प्रवेश को छूना और वेवताओं से वध की मुरली के लिए प्रार्थना करना इस संस्कार का मुख्य अंग है ।

सोमन्तोन्नयन—जैसा अनवसोमन संस्कार के प्रसंग में कहा जा चुका है, कि कवि का आदि शब्द से अमिश्रित अनवसोमन के साथ-साथ सोमन्तोन्नयन से भी था<sup>३</sup> ।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र भारद्वाज गृह्यसूत्र और हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र के अनुसार सोमन्तोन्नयन पहले है, उत्पत्त्यात् पुंसवन<sup>४</sup> । आपस्तम्ब के अनुसार गर्भ के प्रत्यक्ष होते ही सोमन्तोन्नयन होना चाहिए । परन्तु जैसा मत्स्यनाथ ने अपनी टीका में कहा है—‘अनुर्वेजवसोमनम् इत्याश्वलायन पट्टेष्टमे वा सोमन्तोन्नयनम् इति याज्ञवल्क्य । इसके अनुसार पुंसवन के पश्चात् अनवसोमन उत्पत्त्यात् सोमन्तोन्नयन आता है । काटठक गृह्यसूत्र में तीस मास में मातृवयगृह्यसूत्र में चतुर्थ मास अथवा अष्टम मास में आश्वलायन के अनुसार अनुव मास में आदि आदि गाना विद्वानों की भिन्न-भिन्न सम्मतियाँ हैं<sup>५</sup> ।

सोमन्तोन्नयन का शाब्दिक अर्थ ऊपर की ओर मीन निकालना है । यह संस्कार भी कावे के अनुसार सामाजिकता और उत्सवप्रियता का प्रकाशन है ।

१ कावे का धर्मशास्त्र का इतिहास पृष्ठ २२१ अध्याय १ ।

२ वा से गर्भी योनियेऽनु पुमान् वाण इवेऽनुविम् ।

आ बीगे चापता पुत्रस्ते इत्यमाम्य ॥

अन्येऽनु प्रथमो वेवतायां गार्ह्यं प्रजां मुच्यते मृत्युपाप्मानम् ।

उदयं रात्रौ वसोऽनुमन्त्रतां यथेयं स्त्री पौत्रमर्चनं न रात्रौ ॥

—धर्मशास्त्र का इतिहास पृ० २२१ द्रुमोद ।

३ रघु ३।१, टीका

४ कावे धर्मशास्त्र का इतिहास पृष्ठ २१८-२१९

५ कावे धर्मशास्त्र का इतिहास पृष्ठ २१९

तर्जनी को प्रसन्न रखना ही इसका उद्देश्य समझ में आता है<sup>१</sup>। संस्कार प्रकाश<sup>२</sup> में ऐसा लिखा है, कि इस संस्कार का उद्देश्य गर्भ नष्ट करनेवासी बुईल ( Fern I gobb s ) को भगाना था। कच्चे फल और बर्ष से पत्नी का माँग स्वर को निकालना बरु मे गाँवा बाँधना उसको मुष्ण और जो से मुक्त उबला बाबल देना बीजागाणिओं ( Lute Pla,ers ) से माने का कहना सरसप्रियता का ही परिचायक है। कच्चे फलों से शांखायन पारस्कर आदि उद्गुम्बर प्रयोग करे ऐसा मानते हैं<sup>३</sup>।

सीमन्तोल्मयन को कुछ विद्वान् बर्ष का संस्कार मानते हैं। ऐसे व्यक्तियों का ख्याल है, कि प्रत्येक व्रत पर यह संस्कार होना चाहिए। किन्तु इसे स्त्री का संस्कार मानते हैं और कहते हैं कि यह केवल प्रथम व्रत पर ही होना चाहिए<sup>४</sup>। श्रापस्तम्ब भारद्वाज और बोधायन भी जो ऐसी ही धारणा है कि यह प्रथम व्रत में ही मनाना चाहिए।

जातकर्म—जातक के उत्पन्न होने के पश्चात् यह पहला संस्कार है। जो काल में जैसा वैदिकीय संहिता और बह्वृ उपनिषद् का उदाहरण दिया है, उससे यह सिद्ध होता है कि जातकर्म पुत्र के उत्पन्न होने पर ही मनाना जाता था<sup>५</sup>। इस संस्कार के विषय में मनु का कहना है—प्रातनामिषयनात् पुंसो जात कर्म विधीयते<sup>६</sup>। आश्वलायन का कथन है कि मी और वात के अतिरिक्त किसी अन्य के स्पष्ट करने के पक्ष यह संस्कार ही जाता चाहिए<sup>७</sup>। पारस्कर मनु की बात का ही समर्थन करते हैं<sup>८</sup>।

मनाने की विधि में मी उबका अपना-अपना बिस्वास है। बृहत् उपनिषद् में लिखा है—‘तस्मात् कुमारं जातं नृतं च वाय प्रतिक्षेहयन्ति स्तनं या ननु

१ काले का वमसास्त्र का इतिहास पृष्ठ २२३

२ संस्कार-प्रकाश पृष्ठ १७२ १७३

३ वमसास्त्र का इतिहास ( काव्य लिखित ) पृष्ठ २२४

४ तथा च विष्णु —

सीमन्तोल्मयनं कर्म तत् स्त्रीसंस्कार इत्यते ।

कथित वर्धस्व संस्कारी नम वर्ध प्रयजते ॥—स्मृतिचन्द्रिका, अध्याय १ पृ १७

पञ्चापत्ति' १। विस्तारपूर्वक जो भी वर्णित किया गया है, उससे यह निष्पन्न निश्चयता है इस संस्कार के कई अंग हैं यथा—( १ ) मंत्र पाठो हुए पुरोयकत रही की अग्नि में आहुति देना ( २ ) बच्चे के कान में तीन बार बाक पाठ करना ( विस्वात यह है कि तीनों बर सममानुसार बच्चे को स्पष्ट हो जायें ) ( ३ ) सोने की छाटी चम्मच में घृत घड़ी और पाह्ण बच्चे का चूटना ( ४ ) बच्चे का एक नाम रखना जो सुप्त नाम रहे, ( ५ ) माता के स्तनों के नाम से जाना ( स्तनप्रदान ) और ( ६ ) माता के लिए ( यभिषी ) मन्त्रों का उच्चारण करना ।

इस संस्कार के सम्बन्ध में दो बातें बहुत महत्वपूर्ण हैं । पहली बात तो यह कि कुछ विद्वान् जैसे आश्वलायन और छांदायन अथर्ववेद के समय ही नाम दे देते हैं पुरोय नामकरण-मन्त्रों का उल्लेख नहीं करते । साक्यायन अवश्य कहते हैं कि हमने बिल व्यावहारिक नाम दिया जा सकता है ( १ वा २४ ६ ) । दूसरी बात यह कि जातकर्म संस्कार में बहुत से विभाग हैं अथवा बहुत छोटे-छोटे संस्कारों—जैसे नामकरण निष्क्रमण अन्नप्राशन आदि की मिश्र कर जातकर्म संस्कार कहते हैं । स जातकर्मभिन्नि तपस्विना —रघु ३।१८।

कवियेष्ठ कालिदास ने इस संस्कार का अनेक स्थानों पर उल्लेख किया है २ । मम्मिताल ने टीका में 'जातकर्मविषय' ३ का प्रयोग कर इस बात को प्रमाणित किया है कि जातकर्म पैदा होने के समय का ही संस्कार विशेष नहीं अपितु नामकरण निष्क्रमण अन्नप्राशन आदि आदि छोटे-छोटे संस्कारों की समष्टि मान है । आदि शब्द विज्ञम० में भी प्रयुक्त है ४ ।

१ बृहत् उपनिषद् अध्याय १ ५ २ श्रीकावे का इतिहास पृ० २२६ पृष्ठान्त

२ स जातकर्मभिन्नि तपस्विना तपावताश्च पुराणमावृते —रघु० १।१८

कुमार ब्रह्मसंहाराम्ते भाषी मन्त्रपाठिन ...—रघु १०।३८

इना मविप्यत्यनकप्रमुरपरमसंस्कारमयो विधिस्ते... —रघु० १।१७५

—मन्त्रा मन्त्रमप्यापि अत्रमप्य च मन्त्रम् ।

स चकारामयप्राण्या मैविषेया यमाविषि ॥—रघु० १।१११

—जातकर्म समय भगवता मारीचन इति ।—अभि अंक ७ पृ० १३६

—विधिब्रह्मसमाधिनुष्ठितजातकर्म पुर एव पादुस्तसेव ।—अभि० पृ० १४७

यत् शत्रिबहुमासस्य जातकर्मोदि विधानं तस्य भगवता व्यवहन ...

—विज्ञम० अंक ५

३ जातकर्मविद्वत्—रघु० १।१७५ अन्य—रघु १।१७८

४ यत् शत्रिबहुमासस्य जातकर्मोदि विधानं तस्य भगवता व्यवहन ...



इस संस्कार का महत्त्व स्वयं ग्रन्थों में स्वीकार किया है। जिस प्रकार सामोस्मिद्धित मणि अपूर्व तेजवुधत ॥ जाती है, उसी प्रकार अस्तकर्मणि संस्कारों के पञ्चाङ्ग विधीय पुन पहले से कहीं अधिक धाना-सम्पन्न हो गए।

स अस्तकर्मणिधिते तर्पस्मिन्ना तपोवनावेत्य पुरोवना हुते ।

निमीपयुमुमभिराकरोद्गुच प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं वमी ॥—रघु० ३।१८

वैसा पहले कहा जा चुका है कि अस्तकर्म के वर्गों में स्तनप्रदान एक अंग था। अथवा होमादि करने के पञ्चाङ्ग वस्त्रों का स्तनों के निकट से जमा था। यही बात अनाम्नात् रूप से कवि ने रघुवंश में एक स्थान पर व्यक्त की है—

कुमारा कृतसंस्कारस्तं बाधोस्तम्यपायिन —रघु १२।७८

एक और बात भी धनि महत्त्वपूर्ण है। कवि ने बघिबन्धु<sup>३</sup> सख का प्रयोग कर यह पुष्ट कर दिया है कि वैसा प्राचीन ग्रंथों में संस्कार मनाया जाता जाता है वैसा ही उस समय भी होता था। साथ ही तत्कालीन समय में अमोत्यव भी बुर मनाया जाता था। समुद्र चरो में बरपाओं के मृत्यु होते थे (रघु० ३।१६) राजकुमारों के अस्तकर्म संस्कार के समय राज-बन्दी जेल से छोड़ दिए जाते थे (रघु ३।२)।

नामकरण—शंख का मठ उठी दिन नाम करने के पञ्चाङ्ग नाम रखने का है। स्वयं मस्तिष्काव ने शंख को सम्मति रघु० ३।२१ में उद्धृत की है—‘बघीचे तु व्यतिष्ठान्ते नामकर्म विधीयते। बृहदारण्यक आश्वलायन आश्वलायन आदि जिस दिन वास्तव सम्पन्न हो उसी दिन नाम रखने के लिए कहते हैं। आश्वलायन को नाम रखने के लिए कहते हैं एक व्यावहारिक नाम दूसरा मुष्ट नाम जिसे उपनयन-संस्कार तक केवल माता पिता ही जानें। आश्वलायन का कहना है कि इस दिन केवल मुष्ट नाम ही देना चाहिए। व्यावहारिक नाम अम्भ-दिहम के बसने दिन ही रखना चाहिए’। आपस्तम्ब गृहसूत्र (१५ अध्याय २३८) के अनुसार अम्भदिह पर लक्षण के अनुसार एक नाम रख देना चाहिए। यही मुष्ट नाम है। व्यावहारिक नाम बसने दिन ही रखना चाहिए। बीजावन मर्यादा और पारस्कर का भी ऐसा ही मत है<sup>३</sup>। मनु बसने अथवा बारहवें दिन नाम रखने को कहते हैं<sup>४</sup>। स्वयं बाब ने कारम्बरी<sup>५</sup> में अग्रपीठ का नाम बसने दिन रखा है<sup>६</sup>।

स्वयं कासिदास ने नामकरण-संस्कार का उल्लेख न करते हुए भी वाक्य के प्रत्यक्ष होने के बाद समागत सभी स्थानों पर पिता के द्वारा नाम रखाया है<sup>१</sup>। यही नहीं नाम रखने के सम्बन्ध में प्राचीनकाल में जो नियम प्रचलित हैं जैसे नाम दत्त सायक और योम्य हों उसी का उन्होंने भी पालन किया है। जैसे—

भूतस्म यायाभ्यन्तमन्नकस्तथा परेषां भुषि चेति पावकः ।

अबेरम आलोगमनाचमनविष्णुकार नाम्ना रघुमात्मसंभवम् ॥—रघु० १।२२

यह कहना कि कवि ने ऐतिहासिक नाम ही लिये हैं उसमें क्या नियम—क्या विनियम अनुचित है। ऐतिहासिक नामों में भी नाम क्यों रख दए किस प्रकार मुना को व्यक्त करन वाले सायक हुए बताकर प्राचीन नाम किस प्रकार रखन चाहिए, बताते हुए परम्परा का पालन किया है साथ ही अपनी अद्वितीय कुसलता का परिचय दिया है। इसी प्रकार—

राम इत्यमिरामेव वपुषा तस्य चारितः ।

नामधेयं मुरदचक्र अवतुप्रथममगमम् ॥—रघु० १०।१७

बीषायन गृह्यसूत्र में लिखा है कि भद्रपि देवता मन्त्रों के नाम पर नाम रखना चाहिए<sup>२</sup>। वही बात कवि के शब्दों में अब नाम कहा ने नाम पर रखा गया, देखिए—

अतः पिता ब्रह्मण एव नाम्ना तमात्मजमानमर्च्य चकार ।—रघु० ५।३६

राम और कृष्ण नाम मीठा भी की प्रसन्न-गीता इन वस्तुओं से दूर हुई थी अतः इसी कारण इन्हीं के नाम पर रख दए<sup>३</sup>। लकुन्तसा-पुत्र भरत का सबदमन और भरत नाम अपने स्वर्ण की पुष्टि एवं सार्थकता को सिद्ध करता है, तथा भविष्य में तेजस्वी होगा इसका परिचायक है यह स्वयं कवि ने मारीच के मुँह से

१ राम इत्यमिरामेव वपुषा तस्य चारितः ।

नामधेयं मुरदचक्र अवतुप्रथममगमम् ॥—रघु० १०।१७

ब्रह्म मुहूर्ते किस तस्य देवी कुमारकर्म्यं मुपुषे कुमारम् ।

अतः पिता ब्रह्मण एव नाम्ना तमात्मजमानमर्च्य चकार ॥—रघु०, ५।३६

२ कृष्णदूतं देवतानूतं वा । धर्मैर्देवां ऽवपुष्याणां नामानि स्युः—(बीषा० १ । २८ ११) । यदास्य नामधेयं देवताधर्मं तथाजाधर्मं देवतापारण प्रत्यक्षं प्रतिपिद्यम् । (मानव गृह्यसूत्र १ का १८)

३ स टी कुशात्मयोग्मुष्ट्यभक्षेत्री तदात्मया ।

अत्र कुशात्मयोगे चकार किल नामतः ॥—रघु० १५।३२

कहलवाया है।<sup>१</sup> तात्पर्य यह है कि कालिदास के युग में नामकरण कुम्भारम्भर के अनुकूल होता था और सावक नाम रखने का प्रयत्न किया जाता था।

निष्क्रमण, अन्नप्राशन तथा वषट्पूजन (अन्न पूर्ति)—जैसा पहले कहा था वृत्ता है कि कवि कालिदास ने और टीकाकार ने जातवर्मादि भन्व का व्यवहार किया है। इससे निष्कप निकाषा वा उकठा है कि मास्य सं तात्पर्य इन सब छोटे-छोटे संस्कारों से होगा।

निष्क्रमण वह राम दिन है जिस दिन बालक सबसे पहली बार घर से बाहर निकला जाता है और भ्रम दिखाया जाता है। इसके विषय में मनु का कहना है—‘चतुर्थे मासि कृतव्यं सिधोर्निष्क्रमणं गृहात् ।—(मनु २।१४)।

पारस्कर भी इसी बात पर विश्वास करते हैं—‘चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूममुषीक्षयति तत्त्वज्ञुरिति ।—(पारस्कर १।१७)।

संस्कार-श्रकाश में तीसरे मास में भ्रम का और चौथे में वन्द का वर्णन किया है।

अन्नप्राशन नाम के अनुसार बच्चे को सबसे प्रथम इस दिन ज्वाना (अन्न) देना है। व्याख्यात्मक का कहना है कि बच्चे की ज्वाना सीतर जववा बकोर का मास या मच्छी का मांस या उसके जावस वही जो और राह्य में मिलाकर पिता बच्चे को बतावे<sup>२</sup>। व्याख्यात्मक भी यही कहते हैं केवल मच्छी का मांस नहीं बताते<sup>३</sup>। आपस्तम्ब केवल वही जो और राह्य जावस में मिलाकर बटाना अम स्कर समझते थे<sup>४</sup>।

जो भी हो इस संस्कार का मुख्य रंग वन्द का अन्न देना था। कुछ सेतक ब्राह्मणों को साना बिछाना होम व मन्त्रपाठ आसीर्वादि भी करने को कहते हैं पर इसमें कोई संशेह नहीं कि ये सब ब्रह्म के आत्मन् और उत्क्राम को ध्यस्त करने के लिए ही हैं।

कब होगा चाहिए, इसके विषय में साधारणतः सबका मत पट्ट मास ही है—‘पट्ट अन्नप्राशन मासि यथष्ट भगसं कुले’ (मनु २।१४) ‘पट्ट अन्नप्राशनं मासि चूडा वार्मा यथाकुलम्’ (पात्रवस्त्र २।१२)। हाँ जैसे मानवपुद्गम में पंचम जववा पट्ट है। वषट्पूजन जववा अन्नपूर्ति के विषय में किमी वा कहना है कि

एक वप तक प्रतिमास मनाया जाय तत्पश्चात् प्रत्येक वप । "कुमारस्य मासि मासि सप्तसहस्रे सावत्सरिकेषु वा पर्वसु बन्धीयां दाम्नापुत्रिभ्यो विश्वामदेवाय च यजेत् ( गोमिकमुद्र मूल २ ८ १६ २० ) । छांस्यायन भी इसी बात का समर्थन करते हैं<sup>१</sup> ।

जो भी हो बात बिसकुल मनोवैज्ञानिक है । जब तक बच्चा एक वप का नहीं होता तब तक ही सब कहते हैं आज यह वो महीने का हो गया आज चार महीने का हो गया । बच्चे के प्रति स्वभावतः माता-पिता का स्नेह होता है, वह दिन पिगते ही हैं अब यह इतना बड़ा हो गया । स्वभावतः हृदय के उत्सास आनन्द और अरमान को मान्य और पूज्य करने के लिये बाड़ा-बहुत भोजन भाति खिलाता भी एक बहाना माग है । यथाय म निष्क्रमण अन्नप्राशन और वपवहन आदि कोई संस्कार विशेष नहीं आनन्द और उत्सव मनाने के बहाने माग ही है ।

**चूडाकर्म अथवा चौंस**—आजकल की भाषा में यही मुंडन संस्कार कहलाता है । श्री काल ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है चूडा के अर्थ धिखा है । इस मुंडन के पश्चात् केवल धिखा भर ही सिर पर यह जाती भी ( और आजकल भी जो मानते हैं वे ऐसा ही करते हैं ) । अतः चूडाकर्म वह संस्कार है जिसके पश्चात् धिखा या चौंटी रखी जाती है । 'चौड' अथ 'चूडा' से बना है, इसमें कोई संदिग्ध नहीं । 'ड' के स्थान पर स बहुधा आ जाता है, अतः चौंस अथ बन गया<sup>२</sup> ।

मनाने के विषय में आर्यशास्त्र आपस्तम्ब मनु याज्ञवल्कर सब ही तृतीय वप कहते हैं । मनु प्रथम अथवा तृतीय भी कह देते हैं<sup>३</sup> । याज्ञवल्क्य तो 'चूडा-कार्या यवाकुलम् भी कहते हैं ( अध्याय २ १२ ) ।

आर्याय तो इन संस्कार का सम्बन्ध वैदिक काल से जोड़ते हैं<sup>४</sup> । जो भी हो वात्सिदास ने इस संस्कार का एक स्थान पर बिसकुल सारात् तथा अन्य स्थानों पर असाध्यात् भक्ति किया है—

स बृहचूडसंभक्तकाक्यज्जर्जरमात्यपुत्र सर्वोमिदन्विता ॥ ( १५० ३।२८ )

१ ब्रह्मसूत्र का इतिहास काण्य पृष्ठ २४८

२ ब्रह्मसूत्र का इतिहास काण्य पृष्ठ २६० इस पृष्ठ का फुनोट भी देखिए ।

३ चूडाकर्म त्रिजातानां सर्वेषामेव वर्जितम् ।

प्रथमेऽप्ये तृतीय वा कृतस्य धुनिवाहनात् ॥—मनु २।४४

४ अथान्य साधनानि चोडं कुर्वन्ति यथापि यवोपमं वा ।

विज्ञापने च यत्र भाषा मत्प्राप्ति कुमाया विधिप्रा इव ॥

## कालिदास के ध्यान सरकारी संस्कृति

इस पर मसिमाज की टीका पर भी ध्यान देना आवश्यक है— बूढाकाय  
 डिवालीनां सर्वपापेभ्यः भयम् । प्रथमेऽग्रे तृतीये वा कस्यचिद् द्युतिर्भवनात् । इति  
 मनुस्मृत्याचूटीये सर्वे बृहस्पतिः निष्कर्मबुद्धाकर्माः सन् । इत्यमोरमेव । स रघु  
 प्राप्ये तु पंचमे सर्वे विद्यारत्नं च कारयेत् इति वचनात् पंचमे सर्वे बलकायनाम्  
 पंचतसिर्बलं 'बालानां तु चित्ता प्रोक्ता काकपत्ता' सिद्धं इति ह्यनुक्तम् ।  
 ये ही काकपत्ता और सिद्धं च उक्तम् उन्हेनि एक नहीं बनेक स्वानों पर  
 प्रयुक्त किए हैं । कदाचित् काकपत्ताचारी बाळक कवि को प्रिय ही बहुत थे ।  
 यह ठीक है कि कवि ने इसके मनाने की विधि का कही संकेत नहीं किया परन्तु  
 इस संस्कार का मुख्य अर्थ बाल कटवाना ही है । अथ बाटें जैसे होम बाहुओं  
 को भोजन करना दक्षिणा देना बाळों को ऐसे स्थान पर पढ़वाना या चँकवाना  
 सब पीछ ही है । जैसे भी समय समी संस्कारों में होम भोजन आदि करना  
 दक्षिणा देना सबका बच्चे को आसीर्वाण देना सामान्य ही है । समय समी  
 स्मृतिवर्गों में ऐसा ही उल्लेख है ।

### विद्यारम्भ संस्कार—

त्राय स्मृतिवर्गों में बाल के बार सीमे उपनयन  
 संस्कार का नाम दिया है । बाल-संस्कार अथ के तीसरे वय हो जाता वा और  
 उपनयन त्राय बाटों वय । इस बीच में क्या होता वा और क्या होना चाहिए,  
 इस पर स्मृतिवर्गों ने कुछ प्रकाश नहीं डाला । उपनयन के बार विविध प्रकार का  
 पढ़ाई प्रारम्भ हो जाती थी । पुत्र जैसे आदि पढ़ाई प्रारम्भ कर लेते थे । इससे  
 यह संभावना की जा सकती है, कि आठ वय से पूर्व बच्चा लिखना-पढ़ना सीख  
 जाता होया तभी पुत्र इत अवस्था में यथेष्ट ध्यान दे सकते होये ।  
 कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में यह लिखा है, कि बाल के बार राजपुत्र वय  
 माता और अकपचित पढ़ते थे तथा उपनयन के बार में वेद वार्ता आभीक्ष्णिकी  
 और इंद्रीति सब तक पढ़ते थे जब तक वे सोलह वय के न हो जाते थे । इसके  
 पश्चात् मोक्ष-संस्कार होता वा और उनका शिक्षा हो जाता वा ?

४

काकपत्ताचरमेत्य याचितस्तैर्बाला हि न वयः समीकृते ।—रघु. १००

—टी प्रनामचतककाकपत्ता

काकिराम ने भी दशमंश में अन्न के विषय में ऐसा ही लिखा है । प्रथम अन्न में बघमाका सीजी उत्पन्नात् ये संस्तुत-ग्राहित्य-सागर में प्रविष्ट हुए<sup>१</sup> ।

श्री कान्हे ने अपराध और स्मृतिचित्रिका के चरित्रों से पुष्ट किया है कि जन्म के पाँचवें वय विचाररम-संस्कार होना चाहिए । देवी-देवताओं की पूजा करने के बाद ब्राह्मणों का मत्कार करना चाहिए और शशिणा बेनी चाहिए । इसके पश्चात् गुह बालक को पहला पाठ है । श्री कान्हे ने संस्कार-महाद्य और संस्कार रत्नमाता से भी इसी बात की पुष्टि की है कि पाँचवें वय उपनयन से पत्र यह संस्कार होना चाहिए<sup>२</sup> ।

उपनयन—संस्कारों में उपनयन का महत्त्व बहुत अधिक है क्योंकि जैसा नीतम ( २ का १ ) का कहना कि इससे पत्र बालक किसी भी तरह का आचरण करे कोई दोष नहीं होता । वसिष्ठ-वमसूत्र भी इसी का अनुमोदन करते हैं 'म ह्यस्मिन् विद्यते कम किंचिदानीं विवर्तनम् । अस्या गृहमयी ह्यप्य आचरेत् न आपते ( २ का ६ ) । एक वमसूत्र का उल्लेख है 'प्राङ्मीनित्यन्वाद् द्विज गृहसमो भवति' । इसी से मिस्त्री-मुस्तो ब्रह्म मनु भी ( २ का १७२ १७१ ) कहते हैं । अतः यह संस्कार एक छोटे व्यक्ति को नियमबद्ध जीवन में प्रविष्ट कर धार्मिक और वाय्वात्मिक उत्पत्ति की ओर अग्रसर करता है, दूसरी ओर वह विद्या का मार्ग कोलकर मानसिक और शैक्षिक विकास में मह्योप देता है ।

यदि शास्त्रिक अथ पर ध्यान दिया जाय तो हमका धारण ( उप + नी धातु ) प्राप्त से जाना अथवा प्राप्त से जाना है । अतः वास्तविक अभिप्राय हम संस्कार का आचार के पाम बालक की शिक्षा के लिए है जाना वा । जिस संस्कार के द्वारा बालक छात्र-रूप में प्रविष्ट होता वा वहीं उत्पन्न-संस्कार कहना । आचार बालक को आयसी भव लेकर वह शिक्षा प्रारम्भ करता वा ।

उपनयन किन्तु अवस्था में होना चाहिए इन पर बहुत कुछ मतभेद है । आर्यभट्टाचार्य मुद्गसूत्र में लिखा है 'अष्टम वयं ब्राह्मणमुपनयेत् । एकादशे शनि यम् । द्वारो वैश्यम् । आपादृष्टाद् ब्राह्मणस्यानतीत काक' । आ द्विषात्त विदम्य । आ अनुविद्यतेऽप्यम्' । ( १ का १६, १-६ ) । पारस्कर ने भी आठवें वय ही लिखा है यद्यपि वे वंश के चलन के अनुसार भी करने की स्वतंत्रता

वार्त्तमिष्यशेभ्यो संवर्त्तन्ति बभूवुर्बभूवुः ।

बहुवच चागोष्ठ्याद्वर्त्तत् । अतो योदानं वारकम् च ।—अथयाम् १।१

१ स बृत्तकृतः बलकावपलकीरमारयपुत्रैः मययोगिरम्वित ।

श्लेषपाद्वृत्तलेने वाङ्मयं नदीमुनेनैव समुद्रावधिगात् ॥—शु ३।२८

२ यद्यप्यत्र वा इतिहास अध्याय १ पुष्ट २६६ २६७

दे देते हैं ( २ का २ ) । संस्काराण्य आठवें अथवा बारहवें में करने की अनुमति दे देते हैं ( २ का १ १ ) । आपस्तम्ब का कहना है—'वर्माहमेपु ब्राह्मणमुपनयीत मर्मकान्दोषेषु राजस्य वर्माह्मण्येषु वैश्यम्' ( २० का २ ) । मनु यद्यपि पहले कुछ देते हैं वर्माहमे अग्रे कुर्वीथ ब्राह्मणस्थोपनयनम् गंधर्विकारश्च राज्ञो वर्मासु द्वन्द्वे विद्य पर इसके आगामी श्लोक में कहते हैं ब्रह्मवर्षसकामस्य कामविशस्य पञ्चमे राज्ञो वत्सार्चिना दष्टे वैश्यस्येहार्चिनोऽष्टमे' ( २ का १७ ) । वैशाख १५ / अथवा २ कहते हैं ( २ का ३ ) । अत आठवे से तो कमसे कम की ही सम्मति है ।

इस संस्कार के पश्चात् बाळक ब्रह्मचारी हो जाता है । अत उसकी वैश्वभूषा और दैनिक जीवन बहुत संवर्धित हो जाते हैं । वैश्वभूषा से ब्रह्मचारी को वस्त्र धारण करना था । अग्नि पश्चात् यज्ञोपवीत धारण करने की वैश्वभूषा के प्रधान अंग थे । इनके साथ ही वह ब्रह्मचारी पहनावा जाता था । अत कि कालिदास ने ब्रह्मचारी की वैश्वभूषा कुमारसंस्कार में वर्णन की है—

अथाग्निनाप्राङ्मरः प्रगल्भबाग्म्यकमिन्न ब्रह्ममयेन वैश्वः ।

विश्व कस्मिन्मृत्तिसपोषकं सरीरवत् प्रचमायमानो यथा ॥—(वर्ग ५ १ )  
ब्रह्मचारी की वैश्वभूषा अग्नि पश्चात् यज्ञोपवीत मण्डल आदि की उपबोधिता और मूर्त्त्यु दैनिक संवर्धित जीवन ब्रह्मचारी कम वैदिक सम्प्रदान आदि के विषय में पुणक् अग्र्यात् ने ब्रह्मचर्यायाम और शिक्षा के अन्तर्गत निस्तुत अंग से प्रकाश प्राप्त होकर आसता ।

कालिदास ने रघु का उपनयन-संस्कार वर्णन किया है । यद्यपि मनाने की विधि पर किसी तरह का प्रकाश नहीं पड़ता परन्तु यज्ञोपवीत धारण उपनयन संस्कार के पश्चात् आचार्यों ने रघु को विकिर्णक विद्या पढ़ानी प्रारम्भ कर दी इसका उल्लेख है—

अधोपनीतं विधिवद्विपत्तिवती निनिम्बुदेन कुरवे पुस्तत्रिभम् ।

—( रघु० सर्ग ५ - )

इस संस्कार में यज्ञोपवीत का वास्तविक  
संस्कार को अर्थ

कि उस समय से पहले सभी पहनते थे पर तब केवल ब्राह्मण । परन्तु मातृ-  
श्रुत यह हिन्दुत्व का चिह्न है, इसे उच्च वर्ग के सभी पहनते हैं यद्यपि विशेषकर  
ब्राह्मण ही । उनके लिए आवश्यक है ।

भारद्वाज ब्रह्मसूत्र ( १ का १ ) का कहना है कि पहले वास्तव यज्ञोपवीत  
पहन केता था तब होम प्रारम्भ होता था । जीवावन ( २ का ५ ७ ) कहते हैं  
कि वास्तव को यज्ञोपवीत लेकर कहा जाता था कि यज्ञोपवीत बहुत पवित्र है, इस  
मंत्र का उच्चारण करो । इस समय फिर उसका मंडन होता था । आश्वलायन  
के अनुसार अन्त में कमर में मेखला बाँध ली जाती थी और हाथ में पलाशवृक्ष के  
दिया जाता था । आपस्तम्ब होम के बाद फौरन ही मेखला और पंज दे देते हैं ।  
आश्वलायन छत्र रूप में वीक्षित वास्तव का हाथ पकड़कर बेबो-बेबटाओं को उस  
समर्पित कर कस्तान करने की प्राथना करता हुआ बिद्या-वध्यापन प्रारम्भ कर  
देता था<sup>१</sup> ।

केशान्तन अथवा गोदान—वैदिक अध्ययन की समाप्ति पर यह संस्कार  
होता था । जैना ऋषि ने स्वयं कहा है कि गोदान के पश्चात् रघु का विवाह हो  
गया<sup>२</sup> । अतः ब्रह्मचर्य की समाप्ति और गृहस्थाश्रम के बीच की यह कड़ी है ।  
मल्लिनाथ ने इस संस्कार के विषय में कहा है 'वाचो सोमसि केन्मा दीयन्ते  
अभ्यधन्तेऽस्मिन्निति व्युत्पत्त्या गोदानं नाम ब्रह्मचारीणां गोवत्प्रापिषु वर्षेषु कृतव्यं  
केशान्तनव्यं कर्मोच्यते'<sup>३</sup> । चूँकि केशान्तन के पश्चात् मूत्र को पाय बलिणा-रूप में  
दी जाती थी अतः इसका नाम गोदान भी पड़ गया । इस संस्कार में प्रथम बार  
होम कम होता था । आश्वलायन केश का अर्थ समझ लेता है । वहाँ चौख में  
आश्वलायन ब्रह्मसूत्र में मंत्र है 'अविति केसान् वपन्तु वहाँ गोदान में  
अविति समधूनि वपन्तु मंत्र है । चौख में आश्वलायन मूत्र को केश के बाहिनी  
ओर रखते हैं, इसमें समधू पर<sup>४</sup> ।

प्रत्येक मूत्रकार का कहना है कि इसके मनाने की विधि वही है जो चौख में  
थी । अन्तर यही है कि चौख में वास्तव माँ की गोद में बैठता है, इसमें माँ उसके  
बाई ओर रहती है । इसी प्रकार के कुछ छोटे-मोटे परिवर्तन हैं । अधिकतर  
स्मृतिकार सोलहवें वर्ष में यह संस्कार कराने को कहते हैं— 'केशान्तनं पौड्ये वर्षे

१ कमशास्त्र का इतिहास पृष्ठ २८१

२ अपस्तम्ब गोदानविधेरान्तरं विवाहनीना निरवतयद्बुध ।—रघु० ३।१३

३ टीका रघु० ३।१३

४ कमशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ४०४, फट्जोट



कालिदास के ग्रन्थ उत्कालीन संस्कृति

७०

ब्राह्मणस्य विधीयते राम्यवर्णोद्भिन्न वेद्यस्य ह्यधिके ततः ( मनु २ का २४ ) । शास्त्रमन सोऽहर्षे अथवा बारहर्षे वप कहते हैं ।  
मोघान के कितने समय पश्चात् विवाह होता था कहा नहीं जा सकता ।  
कालिदास की कृति रघुवंश ( सर्ग ३ १३ ) से ऐसा लगता है कि एक ही दिन विवाह से पहले हो जाता था ।

स्नान व्यवस्था समावर्तन—वैदिक अध्ययन की समाप्ति पर पुत्र की अनुमति प्राप्त कर ब्राह्मचारी स्नान कर पिता के घर छोड़ा जाता था । तत्पश्चात् किसी अनुकूल वय्या से विवाह कर लेता था<sup>१</sup> । स्नान से आभय गृही स्नान वा जो अध्ययन की समाप्ति पर किया जाता था और समावर्तन पुस्तक से पिता के घर को छोड़ा जाता था । स्नान गृही करता था जो वैदिक अध्ययन समाप्त कर गृहस्थापन में प्रवेश करने का इच्छुक होता था । जो आजीवन पढ़ना चाहता था वह इस उत्सकार को नहीं करता था । इसी प्रकार जिसने पिता से ही सब विद्याएँ पढ़ी उसके लिए क्या समावर्तन<sup>२</sup> ? वह केवल स्नान करता था । अतः समावर्तन को मनु के टीकाकार मेधातिथि विवाह का मुख्य अंग नहीं मानते ।

वैदिक अध्ययन की समाप्ति पर स्नान के पश्चात् ब्राह्मचारी स्नातक कहलाता था—ऐसा भी काने का कहना है<sup>३</sup> । कालिदास ने यद्यपि इन मत्स्या का दही सस्त्रात् उक्तेय नहीं किया पर उन्होंने स्नातक शब्द का उपयोग अवश्य किया है<sup>४</sup> । जो केवल वेद पढ़ता था—अतः नहीं वह विद्या-स्नातक कहलाता था जो वेदसंघट्ट पढ़ता था वेद नहीं वह अतः-स्नातक और जो योग्य वह विद्यावत स्नातक<sup>५</sup> ।

विवाह संस्कार—उपनयन के पश्चात् यह हमारा अति महत्त्वपूर्ण संस्कार है जो व्यक्ति को गृहस्थ बनने का मार्ग खोल देता है । स्वयं कालिदास ने यह स्वात्म को 'सर्वोपकारक्षमम्'<sup>६</sup> कहकर विवाह का महत्त्व बड़ा दिया है । उन्होंने अनेक स्थानों पर पुत्र की उपयोपिता और महत्त्व समझाया है<sup>७</sup> । दूसरे शब्दों में वे पुत्र के लिए ही विवाह का उद्देश्य<sup>८</sup> बतलित करते हैं और पुत्र उनके

‘पूर्वेषामनुमतिर्मोक्षसाधनम्’<sup>१</sup> है । अतः रिखीप का बुझी होना बुझ्यन्त का परचासाप करना मत्त ही है । पुनः कः सिद्ध ही पुनोति यज्ञ<sup>२</sup> और पुनोत्पत्ति<sup>३</sup> व्रत का प्रत्यक्ष देकर वे गृहस्थाश्रम का महत्त्व बड़ा देते हैं । काष्ठिपत्त के ग्रन्थों में स्त्री पुनर्वती होने का आशीर्वाद बहुतों दिया जाता है<sup>४</sup> । वैवाहिक भावि पुनः बचनरों पर गौमाग्यवती तथा पुनर्वती द्वितीया शुभ मानी जाती है<sup>५</sup> वे ही मंगल

नूनं मत्तं परं वस्या पिबन्निच्छेदरश्मिन् ।

न प्रकाशमुच्यते स्वाध्यायप्रवृत्तत्परा ॥

मत्तरं दुष्टं मत्ता मनुमावर्जितं यया ।

पयं न स्वनिश्चयं कश्चोऽप्यनुपमुच्यते ॥

सांश्चमिन्ना विपुत्राणां प्रजाष्टोपनिमोक्षितः ।

प्रकाशस्याप्रकाशस्य लोकलोके द्वावपि ॥—रघु० १।६९ ६७ ६८

इसके पदार्थ भी ४ श्लोक इसी प्रयोग में हैं ।

न चोपसेमे पूर्वेषामनुमतिर्मोक्षसाधनम् ।

मुठामिवात्तं न ज्योतिः सद्यः शोक्तमापहम् ॥—रघु० १०।२

सोऽहं दुष्प्राप्तुरहं हि विदुत्त्वानि वातर्के

अरिबिप्रकृष्टर्के प्रभृति प्रतिपादितः ॥—कुमार० १।२७

अस्मान्परं व्रतं यथाश्रुतिं समुत्तानि

को न कुठे निबध्नानि करिष्यतीति ।

नूनं प्रभृतिविक्रमेन यया प्रमिष्य

वीनाधुपममुक्तं पितरः पिबन्ति ॥—अभि ६।२५

१ दूध तस्मै—रघु १०।२

२ अस्मिन्गुणायमस्तस्य मन्त्रं मन्त्रान्कालिप

आरेभिरे विद्याभ्यासं पुत्रीयमुष्टिमुन्निव्रजः ।—रघु० १०।१४

३ रघु० २ सर्गं पूरा विरोपकर—

‘तमाद्रितीत्युक्तमयमनेन प्रजा प्रजावद्व्रतकसिवांगम् ।—रघु० २।७३

४ बत्से बीरप्रमद्विनी भवः ।—अभि ५० ६३

यमातेरिव धर्मिष्ठा भक्तुःकृतता भवः ।

मुठं स्वमपि सप्राज्ञं सेव्यं पूजयामुहि ॥—अभि० ४।७

तस्यै मुनिर्होतृवत्तमयसी वात्स्यान्पुत्राजिपमित्पुत्राच ।—रघु० १७।७१

बह्वर्धियावा प्रतिनग्यते स्व कस्यापि बीरप्रमदा भवति ।—कुमार० ७।८७

५ तस्या पत्नीरे प्रतिफलं बह्वर्धुनियो या पतिपुत्रवत् ।—कुमार० ७।६

कालिदास के ग्रन्थ उत्कलाचीन संस्कृति

७२

श्रृंगार करती है। सम्राट् को भी 'ब्रह्मवर्तों पुत्र' हो ऐसा ही भागीदार होने की चाह<sup>१</sup> है। ये सब बातें पुत्र की महत्ता के साथ-साथ विवाह की आवश्यकता पर बनेष्ट प्रकाश डालती हैं।

कालिदास ने विवाह-संस्कार कितने प्रकार से मनाया था सकता है इसके कितने भेद हैं संस्कार की विधि क्या है, इसके लिए क्या-क्या उपकरण प्रयुक्त किये जाते हैं आदि बनेष्ट बातें स्पष्ट रीति और रूप से अभिव्यक्त की हैं। अब हम संस्कार को सविस्तार पुरुष अध्याय में लिया जायगा।

**अन्त्येष्टि-संस्कार**—कालिदास ने अन्त्येष्टि-संस्कार के लिए 'नैष्ठिक' धर्म का भी प्रयोग किया है<sup>२</sup>। व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् अन्तिम बार शय को पुष्प-आमूपक आदि से सजाया जाता था। कवि इस अन्तिम शय-मग्ना को अन्त्यमंडनम्<sup>३</sup> अथवा मृत्युमंडनम्<sup>४</sup> कहते हैं।

**आग्नि-संस्कार**—शय को कफन (इसे कवि प्रवचीकर कहा है) उठा कर<sup>५</sup> उसका आग्नि-संस्कार<sup>६</sup> कर दिया जाता था। एककुल के व्यक्तियों के लिए शयन की विठा बनाई जाती थी<sup>७</sup>। परन्तु योगी भूमि में पाड़े जाते थे। (रघु ८।२५)।

मृत्यु के पश्चात् जब तक आठ आदि नहीं हो जाता था अष्टौष-दिवस उठते थे। अष्टौष-दिवस की अवधि के नियम में मत्स्यनाभ मनु तथा पाराशर की सम्मति उद्धृत करते हैं। इन दिवसों का कवि बधाइ कहा है<sup>८</sup>। मनु का कहना है कि ब्राह्मण इस दिन के भाग शुद्ध हो जाते हैं और क्षत्रिय बारह दिन के बाद। स्वर्न मत्स्यनाभ मनु के नियम का उल्लंघन नहीं करते जपितु कहते हैं—

१ कम मर्यादुरोर्ध्वं हो युक्तकपनिर्धं तप । पुत्रमेवं पुत्रोपेतं ब्रह्मर्षिनामाप्नुहि ॥  
—अग्नि १।१२

२ विधवे विधिमस्व नैष्ठिकं धर्षिणि<sup>१</sup> साधमगमिमज्जिणि<sup>२</sup> ।—रघु ८।२५

३ अन्त्यमंडनामनछायामुद्वहन्मयैवते ।—रघु ८।७१

४ अथवा

‘पुनश्चतुर्गुणस्य तु वदाहेन शुद्धिम् । पाराशर कहते हैं— ‘अग्निस्तु द्वाहेन स्वचमनिरतः शुचिः’<sup>१</sup> ।

आहु-संस्कार<sup>२</sup>—आहु में मृत व्यक्ति को जो वस्तु प्यारी होती है, वह अवश्य ही जाती है । रति ने वसन्त से जाग्रह किया था कि वह आम की मजरी जो कामदेव को बहुत प्यारी थी अवश्य रहे<sup>३</sup> ।

आहु-संस्कार को मन्त्रिनाथ ‘पिब्यादकादि कर्म’<sup>४</sup> कहते हैं । जल की अंजलि<sup>५</sup> देने का कवि ने अनेक स्थानों पर प्रसंग दिया है । छिन्न-उदक का<sup>६</sup> मृत व्यक्ति को उपण दिया जाता है । पिबवान<sup>७</sup> भी किया जाता है ।

अपघात—दोनों का अग्नि-संस्कार नहीं किया जाता<sup>८</sup> । दोनों का कहना है— सर्वसंगनिवृत्तस्य ध्यानयोपरतस्य च । न तस्य दहनं कस्य नैव पिबोक्तं क्रिया ॥ निवर्त्याद्यवनेनैव जिते मितो कलेवरम् । प्रोज्ज्वलनं चैव सव तेनैव कारयेत्<sup>९</sup> ॥

१. हेमिए, पिछले पृष्ठ की पात्रटिप्पणी नं० ८ में उचित श्लोक की टीका ।

२. अकरोत्स तदीज्ज्वलिकं पितृमर्या पितृकायकम्पवित् ।

म हि तेन यथा तनुर्यजस्तमयाम्बितपिबकादिषु ॥—रघु ८।२६

—इत्यारोपितपुत्रास्ते जननीनां जनेष्वपि ।

मत्तु लोकाग्रगन्तानां निवापाग्निरघुः क्रमत् ॥—रघु १५।११

३. हेमिए, पिछले पृष्ठ की पात्रटिप्पणी नं० ६ में रघु० १२।५६

परलोकादिषु च मायव स्मरमुद्दिश्य विदोक्तपत्न्या ।

निवर्ते सहकारमंजरी त्रिष्वचूतप्रसवो हि ते सप्ता ॥—कुमार ४।३८

४. हेमिए, इसी पृष्ठ की पात्रटिप्पणी नं० २ में रघु ८।२६

अपघातमत्ता कुण्डलिनीमनुवृत्तीष्व निवाक्यतिमि ।

स्वजनाद्य किमतिमन्तर्तं बहुति प्रेतमिति प्रचक्षते ॥—रघु० ८।८६

५. अनुवात्यमि वाप्यनुपितं परमाकोपनत्तं जलाजितम् ।—रघु० ८।९८

इति चापि विद्याय दीपतां सप्तिसंख्याजितिरैक एव नौ ।—कुमार० ४।९७

६. हेमिए, रघु० ८।२६ टीका

अस्मात्परं वत यथायति ममृतामि को न कुसे निवपनानि करिष्यतीति ।

नूनं प्रसूतिविकसनं मया प्रगिर्यं दौताधुरोपमुरकं पितरं पिबन्ति ॥

—ममि० १।२३

७. हेमिए, पारटिप्पणी नं० १

८. विरधे विविमस्य मैत्रिणं मतिमि साधमनमिममिचित् ।—रघु० ८।२५

९. रघु० ८।२५ ((टीका))

विश्वास—जब कुटुम्बी बहुत रोते हैं तो प्रेतात्मा को बहुत कह होता है<sup>१</sup>। मातृवत्सल्य का कहना है 'स्नेह्याभु न्पुनरिमुक्तं प्रतो मुक्ते कतोऽग्रह । नतो न रोषितम् हि क्रिया कार्या स्वयमिच्छ'<sup>२</sup>।

स्त्री-पुरुषों के संस्कारों में अन्तर—यनु<sup>३</sup> मातृवत्सल्य<sup>४</sup> और आत्मसा-  
यन<sup>५</sup> तीनों का ही कहना है कि वातक्रम से लेकर बूडाक्रम तक सभी संस्कार  
लड़कों के स्याम लड़कियों के भी होने चाहिए। अन्तर यही है कि लड़कियों के  
संस्कारों में मंत्रों का सम्भारण नहीं होना चाहिए।

आतक्रम—पारलु काव जी ने<sup>६</sup> वातक्रम में तैत्तिरीय संहिता और बृहत्  
उपनिषद् का जो अंश उद्धृत किया है उसमें पुत्र छम्ब साठ किया है। अब  
ब्रूमवान और महत्त्व मिस्त्रिह पुत्र के ही वातक्रम को दिया जाता था।

नामकरण—नामकरण के विषय में मातृवत्सल्य (१ का १६, ११) का  
कहना है कि मात्रा से लौटने पर पिता पुत्र को मोह में डेकर 'अपव' 'अपव' कहे  
और उसके शीप का तीन बार बुम्बन करे। आपस्तम्ब भी अग्रमय ऐसी ही  
क्रिया कहते हैं केवल इतना और, कि उसके बाह्निने काल में १ पवित्र मंत्र कहे।  
बृहत् उपनिषद् (२ का ११) में लिखा है कि मात्रा से लौटकर पिता 'अपव'  
'अपव' कहते हुए सिर स्पष्ट करे और बरना मंत्र कहे। लड़कियों के सम्बन्ध  
में न सिर को सँधा जाता था न कान न किसी मंत्र का ही कहना था। इससे यह  
निष्पन्न निकाला जा सकता है कि लड़कियों को उपेक्षा तो नहीं की जाती जो पर  
वास्तव में अधिक महत्त्व पुत्र को दिया जाता था।

बूडाक्रम—आत्मसायन (१ का १७ १८) का कहना है कि लड़कियों का  
बूडाक्रम अवश्य होना चाहिए, पर वैदिक मंत्रों के पाठ के बिना। यनु  
(२ का ७७) मातृवत्सल्य (१ का ११) का भी ऐसा विश्वास है कि सरीर  
मंत्रों के होने चाहिए।

उपनयन—हारात वमभूष के अनुसार जैसा बाणेजी ने<sup>१</sup> उद्धरण दिया है, स्त्रियों के दो बग होते थे बह्मचारिणी तथा सद्यवधू। ब्रह्मचरिणी का उपनयन-संस्कार होता था वे वैदिक अध्ययन करती थीं। सद्यवधू का विवाह से पहले वैजल संस्कार भर होता था इसके बाद विवाह। गोमिह<sup>२</sup> के अनुसार छद्म विवाह के समय उपनयन-संस्कार के निम्न यज्ञोपवीत का धारण करती थी। पर टीकाकार का कहना है कि उनके ऊपर का वस्त्र यज्ञोपवीत ही तरह लटका रहता था।

समावर्तन—आश्वलायन स्त्रियों का वैदिक अध्ययन मानता था। अतः समावर्तन भी स्त्रियाँ हैं<sup>३</sup>। हार्येत ने संस्कार-श्रृंखला में 'प्राश्रयम समावर्तनम्' (पृ० ४०४) लिखा है। अतः बह्मचारिणी का उपनयन आठवें वय में होकर यद्यपि जाने स पूर सप्तमी विद्या समाप्त हो जाती थी। मनु ने उपनयन समावर्तन आदि पर ध्यान नहीं दिया। तब तक आठे-आठे सायब यह स्त्रियों का न भी मनाया जाता हो या मंजूरित हो। अतः काटिवाह ने जो स्त्री-संस्कारों में विवाह और आश्र के अतिरिक्त किसी संस्कार का वर्णन नहीं किया।

विवाह—स्त्रियों का विवाह-संस्कार वैदिक ग्रंथों के साथ ब्रूमधान के साथ मनाता न केवल मनु<sup>४</sup> और याज्ञवल्क्य<sup>५</sup> ने कहा अपितु कनि काकिकादाम न भी<sup>६</sup> जहाँ पावती के वधमाहा सिद्धन सून पर विद्यारम्भ-संस्कार नहीं लिखा आठवर्मादि का वर्णन घूम न नहीं किया पर उनका विवाह बड़ी धूम से किया। इनो प्रकार इन्दुमती के विवाह में भी मन्त्र-उच्चारणों सहित विवाह संस्कार का उल्लेख किया<sup>७</sup>।

आश्र—पुरुषों के समान स्त्रियों का आश्र नियमपूर्वक मनाया जाना स्पष्ट कहा है। अत्र द्वारा इन्दुमती<sup>८</sup> का और राम द्वारा अपनी माताओं का आश्र<sup>९</sup> विधिपूर्वक किया गया था। तपण पिण्डाल एक-मा ही था।

१ धर्मशास्त्र का इतिहास पृ० २६४

२ गोमिह २ वा ११६। धर्मशास्त्र का इतिहास पृ० २६४

३ धर्मशास्त्र का इतिहास पृ० २६४-२६६

४ मनु० २ वा १७। ५ याज्ञ० १ वा १२। ६ कुमार० मध ७। ७ रघु० लग ७।

८ अथ तस्य कर्त्तव्यवत् स्वजनस्तामपनीय मुन्दरीम्।

विममत्र तदभ्यर्चयन्नामनतायापुरुषव्यनैवमे ॥—रघु० ८। १०१

अथ तेन दद्याहृत परे मुञ्जयेयामुपदिश्य भामिनीम्।

विदुया विधयो मङ्गल्यं पुं एवोपवनं ममागिना ॥—रघु० ८। १०१

९ इत्यारोपितपुत्रास्ते जननीनां जने-वरा।

भग्नोऽप्यप्यन्तानां निवापाम्बिदधु क्रमात् ॥—रघु० १५। ६१

पौर्वार्थो अन्वाह

## विवाह

संस्कारों में सबसे अधिक महत्त्व विवाह को ही दिया गया। 'विवाह के अतिरिक्त उद्वाह, परिणय, परिचयन, पाणिग्रहण आदि अन्य भी इस संस्कार के पौर्वार्थवाची ही हैं। संस्कारों में ये सभी स्वर स्वान-स्वान पर प्रमुख किए गए<sup>१</sup>।

विवाह का उद्देश्य—मनुष्यों के अनुसार विवाह का उद्देश्य गृहस्वाम्य में प्रविष्ट हो वैवकायों को करने का अधिकार प्राप्त करना तथा बंधानुक्रम के लिए सम्पत्ति-प्राप्ति भी<sup>२</sup>। ऐतरेय ब्राह्मण<sup>३</sup> तथा कठपत्र ब्राह्मण<sup>४</sup> भी सम्पत्ति प्राप्ति को ही पूर्वता समझकर विवाह को महत्त्व प्रदान करते हैं। आपस्तम्ब बर्मसूत्र<sup>५</sup> विवाह के दो उद्देश्य कहता है। पत्नी के सहयोग से वार्षिक कार्यों को सम्पादित करना तथा सम्पत्ति प्राप्ति। मनु अपत्य वमकायों को करने की क्षमता उत्तम रति पितरो एवं अपने लिए स्वर्ग प्राप्ति में उद्देश्य विवाह के मानते हैं<sup>६</sup>।

कृष्णा युक्तिर्नगत् है कि काश्मिरास ने अपने पूर्वजों का ही अनुकरण किया। मनु के उद्देश्य मनों नहीं थे। पिछले उद्देश्यों की ही पुनः स्थापना भी और काश्मिरास के श्रुतों का यदि समीचीन रूप से अध्ययन किया जाय तो मनु के ही स्वर में उनका स्वर बिका हुआ मिलेगा।

(१) काश्मिरास ने स्वर्ग अपने श्रुतों में गृहस्वाम्य का महत्त्व स्वीकार

एवमुपयमनपाणिग्रहणध्वजपरिचयनशान्दोऽपि बहियानेनैव  
धातुपु प्रमुख्यते (अपराध पृ ६१)  
मनुष्य १०.८

किया है। वे गृहस्थाश्रम को सब आश्रमों में ब्रेह मानते हैं<sup>१</sup>। धार्मिक कार्यों को बिना विवाह करने का अधिकार नहीं था<sup>२</sup>। इसी से गृहस्थाश्रम एवं विवाह की महत्ता भस्मी-मूर्ति परिलक्षित हो जाती है।

प्रत्येक धार्मिक काम में पत्नी का सहयोग परमावश्यक समझा जाता था। 'क्रियायां बसु भर्त्यायां सत्पत्न्यो मूलकारणम्'<sup>३</sup> काव्यशास्त्र के विश्वासों का साक्ष्य प्रतीक है। पत्नी को इसी कारण धर्मपत्नी<sup>४</sup> कहा जाता था। पत्नी को कवि-कृत्र पुत्र प्रतिष्ठा कहते हैं 'संरोपितेऽप्यारमि धर्मपत्नी त्यक्ता मया नाम कुत्रप्रतिष्ठा' (जमि० ६।२४)। विवाह के समय पुरोहित कन्या से कहता था कि तुम पति के साथ सब प्रकार के धार्मिक कार्यों को करना<sup>५</sup>। धार्मिक कार्यों में पत्नी का कितना स्थान था इसकी पुष्टि राम के द्वारा यज्ञ के समय सीता की सोने की प्रतिमूर्ति रखना कर देता है<sup>६</sup>।

(२) विवाह का दूसरा उद्देश्य धर्म भी बंध-प्रतिष्ठा ही समझते हैं। विवाह को बहुत पवित्र समझा जाता था। संसार के समस्त सुखों के समुपस्थित रहते हुए भी धर्म व्यक्ति के पुत्र न हो तो सब फीका एवं निस्तार ही समझा जाता था। पुत्र की महत्ता में धर्म का अन्तर्भाव है। पुत्र का न होना सबसे बड़ा दुर्भाग्य समझा जाता था। स्वर्ग मनु भी जिस कन्या के कोई भाई न हो उसके विवाह करने के पक्ष में न थे।

राजा दिलीप के पास सभी सुख-योग की सामग्री थी फिर भी वे पुत्र के बिना कितने दुःखी थे इसको कवि ने रघुनाथ प्रथम सर्ग में भस्मीमूर्ति व्यक्त किया है<sup>७</sup>।

दुष्पन्त ममूह-व्यापारी जनमित्र की मृत्यु के पश्चात् यह सोचकर कितना दुःखी होता है कि निस्संतान होना कितना दुःखदायी है, मेरे पीछे पुत्रबंध की राज्यस्वामी की भी यही दशा होगी<sup>८</sup>।

१ सर्वोपकाराश्रममाश्रमं ते—रघु० २।१०

२ 'आमं धर्मचरणेऽपि परबन्दीर्ष्य जन'—जमि० अं० १ पृ २१

३ कुमार० ६।१६

४ 'उपिदानीमापन्नसत्त्वयं प्रतिगृह्यता गृहधर्मचरणायेति'—जमि० अं० १ पृ० ८६। 'विदुष्या धर्मपत्नी समागमेन'—जमि० प० १४३

५ 'उत्तिनेन भर्ता सह धर्मचर्या कार्या त्वया मुक्तविचारयेति'—कुमार० ७।८३

६ जनन्यजनं सौवासीसस्माग्वाया हिरण्यमी। रघु० १२।६२

७ रघु० सर्ग १ ६५ से ७१ दशक। पूर्वोक्तेषु वेगिण, अध्याय 'संस्कार'।

८ 'कष्टं तसु जनपत्यता। ममाप्यन्ते पुत्रवधमिव एष एव वक्ष्यामि।

—राहु० अं० १ पृ० १२२



पुनः कौ बंध की प्रतिष्ठा कहा गया है<sup>१</sup>। वैदिक विधि से तप्य करने का उसको ही अधिकार दिया गया है<sup>२</sup>। पुनः ही बंध और कीर्ति को बढाने वाला होता था<sup>३</sup>। पितरों के मृत्यु से छुटकारा दिलाने में पुनः ही सहायक होता था<sup>४</sup>। तपस्या करने बाह्यार्थों और दीनों को दान देने से जो पुण्य प्राप्त होता है, वह केवल परलोक में ही भुज्य होता है परन्तु सुमन्वान सेवा-मुद्रया द्वारा इस लोक में भी भुज्य होती है। साथ ही तप्य और पित्रदान से परलोक में सुख देने में समर्थ होती है<sup>५</sup>। पुनः परिवार का भी—कुलार्कुर समष्टा जाता था<sup>६</sup>। पुनः कीर्तिवाचों से माता-पिता मिलने प्रसन्न होते थे रघु को अर्थात् इसका प्रमाण है<sup>७</sup>। भरत को बेल कर कुप्यन्त के मुख से ये शब्द निकल ही जाते हैं कि वे मा-बाप भी अन्य हैं जिनको पोट में बालक डोका करते हैं<sup>८</sup>। पुनरुवा<sup>९</sup> और

१ अत्र कणु मे बंध प्रतिष्ठा—अभि० अक ७ पु० १४७  
२ अभि० ११२३, रघु० ११६४—७२ पूर्वोत्प्रेक्ष वैदिक, सत्कार का अर्थान्तर ।  
३ बंधस्य कर्तारमन्तकीर्ति मुदभिवाचां तप्यं यथावे ।—रघु २१६४  
स्वमूर्तिमेवेन मुपाम्मवर्तिना पति प्रजालामिव सगमात्मन ।—रघु २१२०

४ अत्रहारीडं भयवन्मृगमन्ममवेहि मे ।—रघु ११७२  
५ बापसेमें पूर्वपामुचनिर्माजवाचमम् ।  
सुताभिवातं स ज्योतिः सद्यः शोकस्तमोपहम् ।—रघु ११२

६ लोकान्तरमुखं पुण्यं तपोत्पन्नसमुद्भवं ।  
संततिं शुद्धयस्या हि परमेहं कर्मणे ॥—रघु ११६६

७ महत्प्रेक्ष्यतो दीर्घं बालोऽयं प्रतिभाति मे ।  
स्फुल्लिमावत्कवा अक्षिरैवापेक्ष इव स्थितः ॥—अभि० ७११५

८ अनेन कस्यापि कुलार्कुरेण स्पृष्टस्य पात्रमु मुखं मयैवम् ।—अभि ७११६  
९ उवाच बाष्पा प्रबभूवितं बवा ययी तयीयामवकम्प्य चाकुलिम् ।  
अमूक्य मम प्रणिपातपितया पिनुमुदं तेन तताम सोऽर्म्कम् ॥  
तमंकमारोप्य सरीरयोपयै

सपान्तसमीक्ष्यकोचनो

पुत्र्यन्तः पुत्र की-स पहचानने पर स्नायामिक रीति है पुत्र-श्रेय से प्रभावित हो पाते हैं। उर्बन्धी की बोली पुत्र-श्रेय से गीन गई थी<sup>१</sup>।

अपने ही सदुक्त पुत्र प्राप्य करने की सब की साध होती थी<sup>२</sup>, यद्यपि पुत्रवती होने का आधीर्बाह सिद्धियों को दिया जाता था<sup>३</sup>। यही आधीर्बाह पुत्रों के लिए भी सबसे उत्तम आधीर्बाह समझा जाता था<sup>४</sup>। राजा बलरथ ने भग्न कुमार के माठा-फिठा के छाप का भी बरपान माना था।

पुत्र की इसी महानता के कारण पुत्रोद्दि-यज्ञ<sup>५</sup> और पुत्रोत्पत्ति-यज्ञ<sup>६</sup> का बहुत मूल्य था। रघुवंश में राजा ज्ञेय-विकास के लिए नहीं अपितु पुत्र की प्राप्ति के लिए ही विवाह चिन्ता करते थे<sup>७</sup>। कुमारसंभव में भी यद्यपि धिबजी पत्नवी के जगन्म सौन्दर्य से आकर्षित हो यमों ने पर विवाह का कारण वे यही व्यक्त करते हैं कि देवता लोग मुझसे पुत्र उत्पन्न कराना चाहते हैं<sup>८</sup>। रघुवंशी 'छूट सम्भानकामे' (रघु० १८।११) सम्भान की इच्छा से ही विवाह करते थे। जगन्माता 'प्रभावै गृहमेधिनाय' (रघु० १।७) था।

संसार में धर्म, अर्थ और काम तीनों ही जगकी समस्त में विवाह के उद्देश्य हैं। धर्म और अर्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति ऊपर दी जा चुकी है। काम को भी सम्पूर्ण सम्पन्न करने में कोई कसर नहीं छोड़ रखी। इन्द्रमुनी स्वर्गद्वार में भोग सौन्दर्य-प्रधान हैं।

१ कि न वक्षु वाक्यैस्मिन्नोरस इव पुत्रे स्निह्यति ये मनः—अभि० ७।१७

२ एवं च ते जननी प्राप्ता त्वदासीकृततत्परा स्नेहप्रसन्ननिष्स्मिन्मुद्राहन्ती

स्तनोपकम्—विक्रम० ४।१२

३ रघु० १।६१ पूर्वोक्तेष्व

—जगन्माता की धरजगन्माता भवा भवा जगन्मेव धरणीपुत्ररत्न।

तथा नृपः सा च लुतेन मागवी मनन्तुस्तत्सङ्गुतेन तत्समी ॥—रघु० ३।२१

४ 'वत्से वीर प्रसन्विनी भव'—अभि०, अंक ४ पृ० ६१

—उत्पत्ते मुनिर्वैश्वस्यारक्षीं वारिणास्तुपुत्राधिपमित्युवाच ॥—रघु १।१७१

५ जगन् यस्य पुरोवर्ते बुद्धरूपमिदं सः।

पुत्रमेवमुपोषेत् ब्रह्मर्चिमाप्नुहि ॥—अभि० १।१२

६ रघु० १०।१४ पूर्वोक्तेष्वेति, अर्थात् 'संस्कार'

७ रघु० अथ २ द्वितीय द्वारा अभिनी की सेवा।

—रघु ११।१२ पूर्वोक्तेष्वेति, अर्थात् 'संस्कार'

८ रघु० १।७ २१, पूर्वोक्तेष्वेति, अर्थात् 'संस्कार'

९ कुमार० १।१७ पूर्वोक्तेष्वेति, अर्थात् 'संस्कार'

‘वृन्वाग्ने चैवराधावमूने निर्विषयतां भुव्यरि वीमनमी’<sup>१</sup>

त्रितकी टीका मलिकानाथ ने इस प्रकार की है—‘वृन्वाग्नेनामामक तथाने हे भुव्यरि ! वीमनमीवीमनमूलं निर्विषयतां भुव्यताम् ।

इसी प्रकार—‘गुरतममसंभूती मुये मिमते स्वायत्तयोद्भवमोर्षि ते’<sup>२</sup> में प्रकर काय है । निवाह पश्चात् भुव्यारत्नमय का सम्पूज माछवां उस इस बात का छाती है कि विवाह के उपेक्षों से काम का भी महत्त्वपूर्ण स्थान बा ।

### वर और वधू का चुनाव

वर के आवश्यक गुण—वर के सम्बन्ध में उसमें किन्-किन् गुणों का होना आवश्यक है, अनेक ग्रन्थों ने प्रकाश डाला है । भाष्यसम्मत बृहस्पृज की सम्मति है, ‘बुद्धिमते कर्मा प्रयच्छेत्’<sup>३</sup> । वायस्तम्य सञ्च कृत सञ्चरित स्वस्वता और निष्ठा सबको आवश्यक समझते हैं<sup>४</sup> । बीबायन सद्वृत्तों की ही सर्वस्व मानता है<sup>५</sup> । स्मृतिचन्द्रिका में मम वर के साथ पुत्रों का विवाह की कसौटी पर रखते हैं—छत्परिवार सञ्चरित कय कीर्ति निष्ठा या पाक्षित्य बल इष्टमित्र और वन्धुजों का सहयोग<sup>६</sup> । मनु,<sup>७</sup> वाङ्मन्य<sup>८</sup> और आम्बक्यकन<sup>९</sup> तीनों समस्त पुत्रों में कृत की सञ्चता पर बहुत जोर देते हैं ।

स्वयं काशिराज भी इस विषय की ज़ेला नहीं कर लें—

वपुर्विक्रमात्समस्तवज्रमस्ता विमम्बरात्तैव निवैरितं वधु ।

वरैषु वद्वत्कामुतामि मृष्यते तदमि किं व्यस्तमपि विलोचनै ॥—कुमार० १।७२

इस श्लोक के द्वारा कुछ रूप और वित्त तीन ही वर की होयता के प्रमाण है, अपने इस उत्तर निरावास को सहसा ने कह गए । चौक और सद्वृत्त वर

१ एतु० १।१०

२ एतु० ८।११

३ अस्वात्मन बृहस्पृज १ ५. २

४ ‘वैवृत्तीकञ्चसम्पन्न भुव्यारत्नरोग इति वरसम्पत्’  
—वायस्तम्य

५ बीबायनवर्मसूत्र ४ १ २

कुल सम्पत्ति है तो अवश्य ही घर में उपस्थित होने। सील से ही व्यक्ति सम्पत्ति लगाता है और सीलवान् अपने भरण-पोषण के योग्य वित्त को उपार्जित करने में समर्थ हो जाता है। अतः अमिताभधामकुलस्थ में अनसूया ने धकुम्भता के विषय में दुष्यन्त से एक स्थान पर कहा है—

‘मुच्यते कथंका प्रतिपादनीयेत्यर्थं तावत्प्रथमं संक्षेपः’

दूसरे शब्दों में कवि के विरवाह करवालासन भीमासन आपस्तम्भ मनु बापि की ही प्रतिष्ठाति कहे जा सकते हैं। घर के अन्य गुणों में समान छत्र और समान रंग भी था। अर्थात् समान रूप समान वन समान कुल और समान यौवन का विवाह प्रयत्न माना जाता था—

‘कुलैः कान्त्वा वयसा नयेन मुनीरथ तैस्तैविनयप्रधाने ।

त्वमात्मनस्तुस्वाम्यं वृणीष्व रत्नं समावच्छनु कांचनम् ॥—रघु० १।७२

परन्तु काले और मोरे का संयोग भी काश्चिदाद्य न अच्छा माना है—

इन्दीवरस्वामतनुं पीप्री त्वं रोचनागौरधरिपयसि ।

अयोध्यासीमा परिवृद्धये वा योयस्तद्विद्योमयधोरिवास्तु ॥—रघु० १।६५

कम्पा मुक्तक्य से घर के रूप पर, जिसमें पुरपत्न हो कट्टू होती है। काश्चिदाद्य की सीत्यर्थ-प्रतिष्ठा में वनिष्ठ पुरुष-सौन्दर्य ही उनके आकर्षण का रहस्य है। पति का अल्प पौरुष अधिक स्फुटनीय था (पतिमात्साद्य समस्यपीत्यम्—रघु० ८।२८)। मन्त्रिनाम ने ‘अस्यपीत्यम्’ पर भी टिप्पणी की है, ‘महापराक्रममुत्तमं योयसि’। विद्याल सरीर पुष्ट और स्वस्थ मांसल देह उनकी तुला है। हनुमत्ती भी सर्वविभवान्तराज अत्र (रघु० १।६६) पर ही मुक्त होती है। क’ पीरसे वसुमती धामति घासितरि वृत्तिनीतानाम्— (अभि० १।१३) दुष्यन्त के इस पुरुषत्व पर ही धकुम्भता ने उसे देखकर मन में कहा—‘किं नु कस्य ह्यं वनं प्रेक्ष्य तपोवपविरोचिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृता’।

बधू-धुनाय—बधू क सम्बन्ध में भी उसके रूप कील चरित्र स्वस्वता और परिवार को देखना चाहिए। इस विषय में काव्यायन का कहना है—

‘सम्पत्तिं पतिः कुली तथा यथाः स्वयोजनम् ।

वधुं योजयिहीनदत्तं तथाप्यस्मादुपितम् ।

वरवोपा स्मृता होते कन्यावोपायन कीर्तिता ॥

—स्मृतिचन्द्रिका, पृ० १ ५६

वधु की सम्पत्ति धूमलशाली वाली कन्या से विवाह करने में है। यह सप्तम उनके ही शब्दों में—

# काश्यास के ग्रन्थ उत्कालीन संस्कृति

मोक्षहेतुवितां कम्पा नाविकांभी न रोमिनीम् ।  
 नातोयिका नातिशयो न वाचाता न पिपताम् ॥<sup>१</sup>  
 बन्ध्यामीं शौम्यान्मीं हंसवारवयामिनीम् ।  
 तनुलोमकेष्वरक्षणां मूषबन्धीमुब्वहेत्स्वयम् ॥<sup>२</sup>

इस विषय में पराशर की सम्मति सराहनीय है। उन्होंने बार बार ही बिरोध समझी—बन शौम्य बुद्धिमत्ता और परिचार। यदि वे बार एक स्थान पर न मिलें तो सबसे प्रथम बन की उपेक्षा करनी चाहिए, उत्तरवात् शौम्य की<sup>३</sup>।

गीतम<sup>४</sup> वसिष्ठ<sup>५</sup> और याज्ञवल्क्य<sup>६</sup> नाति का कहना है कि कम्पा को बर से छोटी होना चाहिए। कामसूत्र के अनुसार वह अन्तर कम-से-कम तीन वय का होना चाहिए<sup>७</sup>। इसके अतिरिक्त ऐसी कम्पा से विवाह न करना चाहिए जिसके कोई आई न हो<sup>८</sup>। गीतम<sup>९</sup> वसिष्ठ<sup>१०</sup> मनु<sup>११</sup> और याज्ञवल्क्य<sup>१२</sup> का कहना है कि सही कम्पा से विवाह करना चाहिए जो कुमाटी हो और बची नाति की हो परन्तु सवालीय होने पर भी वह सपिड न हो<sup>१३</sup> न ही बर बहू एक योज के हों<sup>१४</sup>। सपिड के सम्बन्ध में ब्रह्मकार्य का कहना है कि तप्त पीडियां पिता की और पाँच पीडियां माँ की छोड़ देनी चाहिए<sup>१५</sup>। वेदव्यास

१ मनुस्मृति ३।८

२ मनुस्मृति ३।१

३ 'वत्वारि विवाहकारणानि विंशत् कर्म प्रज्ञा ब्राह्मणमिति ।  
 तानि वेत्सवर्णिनः स कनुयात्रितमुदस्येत्तती कर्म प्रज्ञायां न तु ब्राह्मणेन विवरणे ।  
 ब्राह्मणमुदस्येत्तियेक जाह्नुरपजेन हि क संवाच'

—पराशर मुहसूत्र १ का ११

४ वसिष्ठ ब्रह्मसूत्र ८. १

५ कामसूत्र ३ का १२

६ याज्ञवल्क्य १।५१

७ गीतम ब्रह्मसूत्र ४ का १

८ वसिष्ठ ब्रह्मसूत्र ८. १

९ कामसूत्र ३ का १२

१० याज्ञवल्क्य १।५१

११ मनुस्मृति १ का ५२

१२ वसिष्ठ ब्रह्मसूत्र ८. १

१३ कामसूत्र ३ का १२

१४ याज्ञवल्क्य १।५१

१५ मनुस्मृति १०. ४१५

१६ वसिष्ठ ब्रह्मसूत्र ८. १

१७ कामसूत्र ३ का १२

१८ याज्ञवल्क्य १।५१

१९ गीतम ब्रह्मसूत्र ४ का १

२० वसिष्ठ ब्रह्मसूत्र ८. १

२१ कामसूत्र ३ का १२

२२ याज्ञवल्क्य १।५१

स्मृति के अनुसार उस कन्या से विवाह करने में भी निषेध है, जिसकी माँ का पोष और बर का मोष एक हो<sup>१</sup>।

काशिरास कन्या के अमूर्ते सौन्दर्य पर और देते हैं। उसकी सभी नायिकाएँ बगल्य सुन्दरी हैं<sup>२</sup>। अतः बाह्य सौन्दर्य उनकी दृष्टि में सब कुछ है। परन्तु इस बाह्य सौन्दर्य के साथ वे पवित्रता को भी आवश्यक समझते हैं। 'अनाश्रित पुण्यं किमस्म्यमकूले बनाविशं रत्नं मयू मयमनास्थावितरयम्<sup>३</sup> भावि भगूठी धृष्टिर्वा' इस अमूर्ते सौन्दर्य की माप्यता में प्रमाण है।

अतः बनादि को परवाह न कर, राजपुत्र अनन्य सुन्दरी स्त्रियों के साथ विवाह कर केते थे। स्वयंवर-प्रथा से आभासित होता है कि कड़की यदि बर माता डाल दे तो कोई भी बिना किसी बन्धन के, विवाह कर सकता है।

काशिरास भगूठी पत्नी की परिभाषा 'बृह्मिष्ठविभ' सखी मित्र प्रिय सिध्दा कस्तिते कलाविधौ<sup>४</sup> करते हैं। अतः पत्नी गृहकाय में राज, सुन्दरी सम्पत्ति देने वाली मित्र कलाविद् होनी चाहिए। कन्या में ये ही गुण होने पर मत्स्यत्वक है। संतान में जो बल अब और काल तीनों की सहचरी हो ऐसी ही कन्या उनकी दृष्टि में उत्तम है।

कन्या के सौन्दर्य-ज्ञान के साधन—आवकस की तरह प्राचीनकाल में भी कोटी या विभ भेजे जाते थे। दूधिया भी कन्या को देखने जाती थी और वे आकर उसके विषय में बता देती थी<sup>५</sup>।

विवाह-योग्य अवस्था—अधिकतर वैदिक पिछा की समाप्ति पर पुत्र्य विवाह कर गृहस्थ हो जाते थे। स्वयं अश्विनास पिछा की समाप्ति पर गोदान-संस्कार तथा इसके पश्चात् विवाह कन्या देते हैं। परन्तु सिध्दा की कहीं कुछ निश्चित नहीं थी। कोई समस्त वेद पढ़ता या कोई एक हो और कोई एक वेद का भी एक ही भाग। प्रायः आठवें वय में या इसके आसपास ही उपनयन संस्कार होता था। अधिकतर बारह वय ब्रह्मचर्य का रहता या द्वादश वय या इसके आसपास ही पुत्र्य विवाह कर केते होंगे ऐसा अनुमान

१. सम्राट् का इतिहास पृष्ठ ४३७

२. इतिह. अध्याय वेदमूला—काशिरास की सौन्दर्य-प्रतिष्ठा।

३. अमि० २।१० ४. रघु० ८।१७

५. प्रतिद्विद्विचनान्मयी दृष्टिर्गोदृष्टिताप्य समधिकतराणां युधमन्वतकार्ये।

अविनिविदुरमात्यैराहूतास्तस्य ब्रून् प्रथमपरिगृहीते औ भुवी राजकन्या ॥

किया जाता है। मनु का इस विषय में कहना है कि तीस वय का पुत्र बाह्य वर्ण की कन्या से विवाह कर सकता है।

रघु के विषय में कवि का कहना है कि जैसे ब्रह्म का ब्रह्मा बना होकर सृष्टि हो जाता है; इसी का ब्रह्मा रामराज वैद्य ही रघु ने भी सब ब्रह्मब्रह्मा स्वीकृत कर ब्रह्मब्रह्मा में घेर रखा। उस सकल सरीर और भी बिजल पड़ा। राजा ने योगदान-संस्कार कर उसका विवाह कर दिया<sup>१</sup>। अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस समय उनकी अवस्था बीस और पन्नीस के बीच की होती। अश्वमेधयाग की समाप्ति पर पूर्व मुवा हो जाने पर दुष्ट की अनुमति पाकर ही पुत्र्य विवाह करते थे (रघु० ५।१०)। विष्णु० में भी तापसी कहती है कि वह (आयुध) कनक वारण करने योग्य हो गया है (अंक ५)। राजा भी कहता है मुम ब्रह्मर्षि से यह चुके अब तुम्हें गृहस्थाश्रम में रहना चाहिए (अंक ३)। अतः तबिध पूर्व मुवा होने पर विवाह करते थे। जैसे पुत्र्य सभी अवस्था में विवाह कर लिया करती थे। उदाहरण के लिए दुष्यन्त की कई रामियां पहले ही थीं उनके पञ्चभू शकुन्तला से उनका विवाह हुआ था। अवश्य ही वे प्रीति होने और शकुन्तला और उनकी वनध से बनेह अन्तर होता। वह सीमा मातृमिकाग्निमित्र से बहुत बड़ी दिखाई पड़ती है। भारिणी भी अग्निमित्र की सबसे बड़ी रानी थीं का पुत्र अशुमित्र युद्ध में मया था और उसने बड़ी बीरता से अशुओं को बुर अघाया और अश्वमेध के घोड़े को शत्रुओं के हाथ से छुड़ा लिया। इसके अनुसार अग्निमित्र की अवस्था अवश्य ही प्राचीन वैतासीन के आद्यपाद होती। जिस समय का यह प्रसंग है उसी समय मातृमिका, जो मुबती परगु कुमारी थी और राजा का प्रम-म्यापार भी सकती है और राजा के साथ अन्त में उसका विवाह भी हो जाता है।

अतः पुराणों के विवाह के लिए कोई भी बन्धन नहीं था। उनकी उम्र नहीं देपी जाती थी। वे किसी भी अवस्था में और जाड़े जितने विवाह कर सकते थे। इसका एक और भी कारण था। जैसे बहाने के लिए ही विवाह किया जाता था, अतः यदि पुत्र न हो तो वे बसरा -  
 नो जाने दे।

स्त्रियों के विवाह के सम्बन्ध में दो बातें बहुत महत्वपूर्ण हैं। पहली बात यह कि विवाह को समझने की उनमें यथेष्ट बुद्धि होती थी यानी वे समझदार होती थी। इसका तात्पर्य यह कि विवाह छोटी अवस्था में नहीं होता था।

बेधा पहले कहा जा चुका है कि अज्ञात कन्या के साथ विवाह अच्छा नहीं समझा जाता था। अश्वमेध<sup>१</sup> तक में उदाहरण है कि इस प्रकार की कन्याएँ पिता के घर में ही बूढ़ा हो जाती थीं। यदि इस बात को छोड़ दिया जाय तो ब्रह्मजानकाकुत्स के राजा दुष्यन्त उकुत्सला के विषय में साफ-साफ पूछता है कि यह आश्रम हिरणियों के साथ खेळती रहेगी या विवाह होने तक हो इसका उपस्थिती बेध रहेगा<sup>२</sup> ? इसका उत्तर प्रियवरा देती है कि 'गुणे पुनरस्या अनुकम्पवत्प्रदाने संकम्प'<sup>३</sup>। मनु ने भी इस बात का समर्थन किया है कि यदि योग्य वर न मिले तो आश्रम कन्या पिता के पास रहे। किसी भी अवस्था में अयोग्य वर के हाथ पिता की कन्या नहीं सौंपनी चाहिए<sup>४</sup>। इन बातों से साफ व्यक्त होता है कि विवाह अवश्य ही हो ऐसा कोई नियम एवं सख्त बंधन नहीं था। कालिदास के समय में भी यह बन्धन नहीं था अथवा दुष्यन्त के मुख से ये इस प्रकार का वाक्य नहीं कहलता।

अब प्रश्न आता है कि स्त्रियों का विवाह किस अवस्था में होता था। अश्वमेध में स्त्रीयों अपने पति स्वयं चुनती थीं इसका स्थान-स्थान पर संकेत है<sup>५</sup>। काने की सम्मति के अनुसार युवती होने से कुछ पहले या बाद में विवाह हो जाता था<sup>६</sup>। इसकी पुष्टि धर्मसूत्र और गृह्यसूत्र भी करते हैं। अत्रिकाण्ड में सभी गृह्यसूत्रों में कहा गया है कि छाडी होने के पश्चात् दम्पति यदि अधिक नहीं तो कम-से-कम तीन रात ब्रह्मचर्य अवस्था में रहें। अर्थात् तीन रात्रियों के पश्चात् संमोच करें<sup>७</sup>। यदि विवाह-योग्य अवस्था आठ या दस वय मानी जाय

१ अश्वमेध ११७७

२ ब्रह्मजानकं किमस्या व्रतमाश्रमाद्ब्यापारोधि मन्त्रस्य निषेधितम्यम् ।  
अरयन्तमेव मन्त्रेणयवत्तमाभिराहो निवस्यति सर्वं हरिषांगनाभिः ॥

—अभि० १।२३

३ अभि० अंक १ पृ० २१

४ मनु० १।८६ ६०

५ अश्वमेध १० २७ १२ अश्वमेध १० ८६, २६-२७

६ ब्रह्मसूत्र का इतिहास पृ० ४४०

७ पारस्कर गृह्यसूत्र १८ आश्वलायन गृह्यसूत्र १८.१०, आरम्भम् ८ ८-९, मनुष्य गृह्यसूत्र ११४ १४....



तो इसका फिर कुछ अर्थ ही नहीं रहता। जब रत्नस्वयं होने के समय के बाद पास ही विवाह होता होना या रत्नस्वयं होने के पश्चात्। आश्वलायन गृह्यसूत्र के टीकाकार हरदत्त ने जो कर्ममग्न बारहवीं घण्टायी में हुए, इसी बात की पुष्टि की है कि तीन रात्रियों के बाद वसति का समानम हो<sup>१</sup>।

एक और बात भी विशेष महत्त्वपूर्ण है। विवाह होने के बाद चौथे दिन 'अनुर्वी कर्म' संस्कार का सभी गृह्यसूत्रों में उल्लेख है। जैसा पहले कहा जा चुका है कि अनुर्वी कर्म और वर्मावात संस्कार एक ही बात है। वर्मावात-संस्कार का चौथे दिन होना ही स्त्रियों का युवती होना प्रमाणित करता है। ऊपर की सभी बातों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अवस्था कम-से-कम सोलह बर की अवस्था होनी।

याज्ञवल्क्य स्मृति तक ऐसी ही अवस्था मिलती है पर इसमें रत्नस्वयं होने से पहले अवस्था ही विवाह हो जाना चाहिए, ऐसा जोर दिया गया है। अवस्था प्रत्येक रत्नोद्यम पर माँ-बाप को नम गण करने का पाप कहेगा<sup>२</sup>। इसका (स्मृति का) समय २ इसी घण्टायी माना जाता है। जब से ही बात-विवाह का प्रचार हुआ। काश्मिरास के समय पर भी इससे बहुत अधिक प्रकाश पड़ता है। स्वयं काश्मिरास ने अपनी सभी नायिकाओं की पूज युवती सिद्धाया है। हनुमती का अपनी पसन्द से घर बुलाना<sup>३</sup> पावती का चित्र के लिए उपस्था करना<sup>४</sup> प्रमाणित करता है कि उन्हें सब बातों का पूरा ज्ञान होता था। विवाह के समय मुद्रादाय सिक्काला कड़की की स्वीकृति देना<sup>५</sup> कड़की का बुद्धिमती होना व्यक्त करता है। बकुलदा का दुष्कृत को स्पर्शवि के लिए रोकना<sup>६</sup> उत्पत्त्यात् उसका पम्बती होना कुमारसम्मन में विवाह के पश्चात् सत्काश ही चित्र-पावती की रति-क्रीडा<sup>७</sup> कड़की की परिपक्व अवस्था का ही प्रतीक है। मकुलदा की सतिर्वा भी सब कुछ जानती थीं दुष्कृत के जा जाने पर फिरी बहाने हैं। मकुलदा को अकेला नहीं छोड़ना<sup>८</sup> उसकी वर्मावस्था की जानना<sup>९</sup> तथा पहले दुष्कृत के सम्मुख अव्यक्त रूप से बात रखना 'वयस्य बहुवत्सभा रात्राग' श्रुत्यन्ते। यथा नी

१ ब्रह्मदास का इतिहास पृ० ४४९

२ रघु० सर्ग ९

३ याज्ञवल्क्य स्मृति ३।६४

४ कुमार सप्त ३

५ अ० १०।

प्रियसखी बन्धुजनसोचनीया न ममति तथा निवर्तय १ उसका पूष मुचती होता बताता है। कब भी शकुन्तला की विदा के समय उनके नगर-प्रवेश पर आपत्ति करते हुए कहते हैं कि इसका भी यमो विवाह होगा है २।

उसकी, मालविका कोई भी बात इस वय को भालिका नहीं दीवती। प्रेम बाणों से विद्य होना चाहे जगकी परिपक्व अवस्था का हो चोतक है। मत मणि यह मान भी मिया पाय कि विवाह छोटी अवस्था में होता था उस भी बौरह से पहले छड़की और बीस से पहले छड़के का विवाह न होता होगा। प्रमाण यद्यपि कालिदास ने खदियों के लिए है और उन्होंने सभी नायक-नायिकाएँ खानि रखी है पर यह नियम सामान्य ही होगा। स्त्री का विवाह मुचती होने पर ही होता था। कालिदास की सभी नायिकाएँ उपनोदसमा है। शकुन्तला का उल्टा जीवन 'प्रियवशा (सहासम्) — अथ पयोधरविस्तारमितु भारमनो वीजनमुपासम्भस्त'। मां किमुपासम्भस्ते' ३ तथा बन्धुलता पुरस्तादवशा अवनमीरवात्पद्मात् (१।६) से व्यक्त होता है। मालविका की पूष मुवावस्था — 'निविडोन्मत्तस्तनमुरः मध्य पाणिमिथो निठम्बिबन' ४ स्थान-स्थान पर व्यक्त की है। 'नबहुसुमवीजना बन्धोत्तना बद्धफलतयोपमोमर्षम सहकार' ५ वाक्य में नबहुसुमवीजना म माविक बम होने का मरिह है और बद्धफलतया में सहकार के पुष्ट बीज फल उपमोम की समता स्पष्ट कही गई है। अर्थात् शकुन्तला का मन संभोय मुक्त की और मरसर हो रहा है इस बात को कवि न प्रकृति के व्याज से कहलवाया है। इसी प्रकार—

'उस्या प्रविष्टा नतनामिरभ्रं रराज तन्वी नवलोमपदि' ६

मध्येन सा वैविस्ममम्या वक्तित्रयं चारु बभार वासा ।

भारोक्षाय नवमोमनेन कामस्य सोपानमिष प्रमुक्तम् ॥ ७

बन्धोममुत्पीडयदुत्पलाभ्यां स्तनत्रयं पादु तथा प्रमुक्तम् ।

मध्ये यथा ह्याममुक्तस्य तस्य मृगालम्बात्तरमप्यसम्भम् ॥ ८

मात्र के द्वारा पावती का लिसे मौनवासी बताया है।

इससे कहा जा सकता है रजस्वला होने के बाद विवाह होता होगा अर्थात् सोलह वय से पहले नहीं। कालिदास का सम्पूर्ण नवलिप्त-जनन इसका प्रमाण है। स्वर्णर में छड़की काटी समतावार होनी चाहिए। यह धूमरा प्रमाण

१ मभि० अंक १ पृ० २१

२ मभि० अंक ४ पृ० ७१ पूर्वोक्तम्

३ मभि० अंक १ पृ० ११

४ भाष० २।३

५ मभि०, अंक १ पृ० १४

६ कुमार० १।३८

७ कुमार० १।३८

८ कुमार० १।४०

करते हुए पुरोहित को दे दी जाती है, तब वह विवाह कहलाता है। यदि विवाह में पिता घर से एक भवना हो जोड़ा गाय का लेकर कन्या को दे देता है (परन्तु यह शुल्क नहीं है)। विवाह के समय पिता घर-कन्या से यदि यह कहता है कि तुम दोनों समस्त धार्मिक कृत्य एक साथ करो तो यह प्राजापत्य विवाह कहलाता है। आसुर विवाह में पिता घर से अपने हस्तगुणधारक बन लेकर कन्या को देता है। केवल काम भावना के बधीभूत होकर घर-कन्या यदि परस्पर संयुक्त हो जायें तो यह गान्धर्व विवाह कहलाता है। इसका उद्देश्य संयोग ही है। कन्या के शान्धर्वों की हत्या कर बलात्कार घर से कन्या को हर माना और उसकी अनिच्छा से विवाह करना राजस विवाह है। पैशाच सेटी हुई मत्त-प्रमत्त (पायस) बेहोश स्त्री से एकान्त में संयोग करना है। यह प्रकार सबसे भयम है।

प्रथम बार में घर को कन्या-दान दिया जाता है। दान का वाचन की जाने की सम्मति में पिता का उत्तरदायित्व घर के उत्तरदायित्व में स्थानान्तरित होता है। जहाँ कन्या-दान है, वहाँ कन्या बन्धुगुण से अर्द्धवृत्त ही हो जाती है। ब्राह्म विवाह सबसे उत्तम समझा जाता है, क्योंकि इसमें कन्या का पिता घर से किसी प्रकार का कोई दान उपहार नहीं देता। आप इसीलिए इससे निवृत्त हैं, इसमें पाय-बीज का जोड़ा जाये वह शुल्क रूप में न हो पर पिता देता अवश्य है। वेध केवल ब्राह्मणों में ही सम्भव है। प्राजापरय में पति जब तक पत्नी जीवित रहे, दूसरा विवाह नहीं कर सकता न हो उसके जीवन-काल में दानप्रत्यक्ष या संन्यास क सकता है। शेष बार निन्दनीय है। आसुर में सक्ती बेची हो जाती है। गान्धर्व में पिता का कोई हान ही नहीं है, न ही पवित्रता है अपितु काल है। राजस और पैशाच में न पिता की ही सम्मति रहती है न कन्या की।

राक्षस पैशाच आदि से यह न समझना चाहिये कि प्राचीन ऋषियों ने इनको भी विवाह के अन्तर्गत ठहराया था। विवाह के आठ प्रकार न कहकर परि इसे पाली बनाने के आठ प्रकार कहे, तो अधिक उपयुक्त है। अमिष्ट का यहाँ तक कहना है कि यदि बलात्कार कइको को हर माना गया है और संयोग के साथ विवाह नहीं हुआ तो वह कुमारो के ही समान है। उसका दूसरे स्थान पर विवाह जा सकता है। मनु तो ऐसे व्यक्ति के लिए कइे बह की भी व्यवस्था करती

में ग्रहण करे, यदि वह इसे स्वीकार न करे, तो कड़की का विवाह बूंदरे स्नान पर कर दिया जाय और उसे बहुत कड़ा दंड दिया जाय<sup>१</sup>।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि होम सप्तापरी आदि विवाह चाहे जिस प्रकार का भी हो आवश्यक है। स्वयं कस्मिन्नास<sup>२</sup> ने रघुवंश में इन्धुमती के स्वयंवर के बाद जब और इन्धुमती का विधिपूर्वक विवाह कराया था। सभी स्मृतियों का कहना है कि प्रथम बार ब्राह्म वैव आप और प्राजापरम प्रसस्त है। सभी इनमें वैशाख को सबसे अग्रम कहते हैं। मनु ने तीन सम्मत्तियाँ दी हैं पहली भारणा<sup>३</sup> यह कि प्रथम बार ब्राह्मणों के लिए उपयुक्त है। दूसरी भारणा<sup>४</sup> के अनुसार राक्षस और वैशाख के अतिरिक्त छ प्रकार के विवाह ब्राह्मण लोग कर सकते हैं। आसुर, गान्धर्व राजस और वैशाख तत्रिय लोग गान्धर्व राजस और वैशाख वैश्य और क्षत्र लोग कर सकते हैं। तीसरी<sup>५</sup> भारणा के अनुसार प्राजापरम गान्धर्व और राजस सभी वर्णों के लिए मान्य है परन्तु वैशाख और आसुर किसी भी वर्ण का कोई न करे। छिद्र भी मनु वैश्य और सूत्रों को आसुर विवाह की भी अनुमति दे देते हैं।<sup>६</sup> उनका यह भी कथन है कि गान्धर्व और राजस सत्रियों के लिए बहुत उत्तम है (सत्रियों के लिए कड़की को स्वयंवर में से हटाना सामान्य बात थी अम्बिका अम्बासिका सुमद्रा संयुक्ता आदि-आदि.....) या दोनों का यदि मिश्र-जुला रूप हो अर्थात् कड़की किसी विरुद्ध व्यक्ति से प्रेम करती हो और माता-पिता प्रसुत न हों ऐसी अवस्था में बलात्कार कड़की को हर स्नान वृत्त नहीं है<sup>७</sup>।

कस्मिन्नास ने गान्धर्व विवाह जवली और अनुन्दका का विधान है। यह व पद में न हों परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि राजवरणों में यह एक साधारण बात थी।

संक्षेप में विवाह के जाड़ों प्रकारों की दो वर्णों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम वर्ग में उस प्रकार के सभी विवाह आते हैं जिनमें पिता का समस्त उत्तर दायित्व रहता था और वह अपनी इच्छा से योग्य वर चुन कर उसे कन्या दे देता था—ब्राह्म प्राजापरम आसुर, वैव आप। दूसरे वर्ग में वे विवाह आते थे जहाँ पिता योग्य वर प्राप्त नहीं कर पाता था और कड़की को अपना वर चुनने की अनुमति दे दी जाती थी या वह अपनी इच्छा से ही वर चुन कर विवाह कर लेती थी या कोई वर के पाता था। इनमें गान्धर्व विवाह राजस विवाह, जिसमें

१ मनु० ८।११६      २ रघु० खण्ड ७      ३ मनु० १।२४  
४ मनु० १।२१      ५ मनु० १।२५      ६ मनु० १।२४      ७ मनु० १।२६

कभी-कभी कड़की की दण्डा भी रहती थी जाते हैं। इन विवाहों में पिता का कुछ उत्तरदायित्व नहीं था।

दूसरे वर्ग में 'स्वयंवर' का स्थान है। इसमें भी दो खंड हो जाते हैं एक में किसी प्रकार की बात 'रत्न' की जाती थी जिस प्रकार सीता और हनुमन् की बात हुआ। इसमें कड़की को पूरी स्वतन्त्रता नहीं होती थी। दूसरा वर्ग यह है जहाँ कड़की को पूरा अधिकार था जिसमें सामिन्नी समयन्ती का नाम दिया जा सकता है। कालिदास ने रघुवंश में हनुमन् की जिस स्वयंवर का वर्णन किया है वह भी इसी वर्ग में आता है।

विवाह की पवित्रता और उत्तमता का प्रभाव सन्तान पर पड़ता था। इस विषय में मनु का कहना है कि प्रथम बार प्रकाश के विवाह से उत्पन्न सन्तान कम पुन और घन से युक्त और कीर्तिशालिनी होती। वह दीनवि और वर्जित होती। अन्य बार की भूर कम करने वाली भूपालिनी और वेद्येयिनी होती।

कालिदास और विवाह—उपर्युक्त विषय विवाह के प्रकारों में कालिदास ने बार प्रकार के विवाहों का स्पष्ट संकेत किया है

( १ ) स्वयंवर—रघुवंशी राजाओं का विवाह स्वयंवर की रीति से हुआ था। राम-सीता का और अब हनुमन् का इसी वर्ग में आता है।

( २ ) प्राजापरम—कुमारसम्मन में पार्वती का महादेव की से साथ विवाह इसी रीति से हुआ था। वरनाभूपर्षों से अलंकृत पार्वती महादेव की को पिता के द्वारा विधिपूर्वक मन्त्रोच्चारण सहित कन्यादान-स्वरूप दे दी गई थी।

( ३ ) पाल्मव—सकुन्तला-दुष्यन्त का विवाह इसी वर्ग में आता है। पुरुरवा और उषरी को भी इसी वर्ग में रखा जा सकता है।

( ४ ) बामुर विवाह—इसका संकेत केवल एक ही स्थान पर है। यद्यपि इस प्रकार के विवाह का उल्लेख कहीं नहीं किया गया है।

( ५ ) कभी-कभी किसी राजा से डरकर दूसरे राजे अपनी कन्या उसे विवाह के रूप में दे देते थे। कालिदास के युग में ऐसी बातें अवश्य चरित होती होती। कुल और कुमुद्वी के विवाह में कालिदास ने इनका संकेत किया है।

( ६ ) कभी-कभी पर्वक राजे दूसरे की कन्यापत्नी को बताने जीन से

स्वमानं प्रमथामिषं तवाभूत्प पन्थानमजस्य तस्वी' (रघु०, ७।११) इस श्लोक में किया है।

**विवाह में प्रेम का स्थान**—काश्चित् ने विवाह किसी भी प्रकार का क्यों न दिखाया हो पर सर्वत्र उन्होंने प्रेम एवं आकर्षण को प्रथम किया। प्रेम के सूक्ष्म अंगों की अभिव्यक्ति प्रणय-व्यापार मदन-लेख काम विरह इसी बात की पुष्टि करते हैं कि वस्तुतः विवाह से पूर्व ही आकर्षण एवं प्रेम की उत्पत्ति को सफल विवाह की पहली सीढ़ी समझते थे। बुद्ध्यन्त को देखते ही लक्ष्मणा प्रभावित हो गई थी<sup>१</sup>। उसका यह प्रभावित होना बुद्ध्यन्त से छिपा भी नहीं था। निम्न विरूपक से वह कहता है—

वसन्तरेण वरणा शत इत्यकाञ्चे तन्वी स्थिता कठिबिदेव पदानि मत्वा ।  
आसीद्विद्वत्तद्वदमा न विमोचयन्ती धावासु वस्त्रजम्भसक्तमपि हुमावाम् ॥<sup>२</sup>

ऐसा ही प्रभाव लक्ष्मणा को देखकर बुद्ध्यन्त पर भी पड़ा था। उसके विरह में लक्ष्मणा की तरह वह भी चित्त-अस्थिर हो जाता था<sup>३</sup>।

इसी आकर्षण को हनुमती के स्वयंवर में भी देखा जा सकता है। दासी सुनवा एक-एक कर सभी राजपुत्रों के शीश के गीत सुना रही थी परन्तु जब को देखकर उसके मनमग्न सौम्य से प्रभावित होकर उसके मन में आने जाने की इच्छा नहीं हुई जिस प्रकार पद्मदासकी सहकार ने वास पट्टेबद्ध किसी भग्न वृत्त के पास जाने की इच्छा नहीं करती<sup>४</sup>।

जबसी के सौम्य को देखकर पुरुरवा कम प्रभावित नहीं हुआ। उसके सरोर का रण उठे बार-बार रोमांचित हो कर रहा था<sup>५</sup>। जबसी ठीक लक्ष्मणा की तरह पुरुरवा से प्रभावित हो गई थी। राजा को देखती हुई सनि-स्वाप्त

१ किञ्च तसु ह्यं वर्गं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिना विकारस्य वमनीयाग्रस्ति संवृता ।

—अभि०, अंक १ पृ० १७

२ अभि० २।१२

३ इवमजिपिरीरस्तस्तापाद्विषमभीकर्तं निधिं भुज्ज्यस्तापांगप्रसारिमिरभूमि ।  
अनमिसुस्तिज्याधातीर्षं मुहुर्दपिबोधयत्तज्जकजक्यं सस्तं सस्तं मया प्रतिपाद्यते ॥

—अभि० ३।११

४ तं प्राप्य सर्वाभिवानवद्यं व्यामिश्रतामोपयमात्तुमारी ।

न हि प्रकुलं सहकारमेव वृत्तान्तरं कांक्षति पद्मदासी ॥—रघु० १।९६

५ परित्रं रथसरोयार्येनार्यं मयापरीक्षय्या ।

स्पृष्टं सरोमर्षटकर्मपुरितं मगमिजेनेव ॥—विष्णु० १।११

वह बसी जाती है और बड़ी चाह के साथ राजा को बेसकर मन में सोचती है—  
'अपि नायपुनरप्युपकारिणमेतं प्रेक्षिष्ये' १ । पुनरा को ऐसा प्रतिभासित हुआ कि  
बाकाय में उड़कर आती हुई उसके मन को भी बलपूर्वक लींचे कि जा रही है २ ।

माकदिका का सौम्य भी कम प्रभावशाली न हो । उसको बेसकर राजा  
को माल होता है कि बिनाकार उसकी सच्ची तस्वीर उतार ली नहीं पाया ३ ।  
उसकी प्रत्येक मुद्रा राजा पर प्रभाव डाल देती है ४ । उसकी तिरछी चितवन  
राजा का हृदय समस्त रागियों की ओर से लींचा देती है ५ । राजा को बेसकर  
माकदिका का भी यही ह्रास होता है । अनेके से वह सोचती है—'अनिनातहृदयं  
वर्तारयमिहपस्यात्मनोऽपि । तावत्कथं ॥ कुतो विमयः स्निग्धस्य छडीबनत्वेन  
वृत्तान्तमल्पानुम् । न बालेऽप्रतिहारयुक्ता बेवना किमन्तं कथं प्रबो मा नेच्छतीति' ६ ।

मनुष्य तो मनुष्य बैठा भी इस जाकयन और प्रेम से अपने को न बचा  
पाए । महारैव की पालती को बेसकर इतने जाकपित हुए कि वह एक सत्र  
तक उनके बिम्बाफल के समान बीठों पर अपनी सलवाई बुद्धि डाले रहे और  
पालती की फसे हुए गए कवच के समान पुच्छिर्छिर्छनों से प्रेम व्यक्त करती  
हुई लगीकी लींचों से अपना सुन्दर मुख कुछ तिरछ कर लेती रहे ७ ।

१ विक्रम० संक १) पु० ११६६

२ एषा मनो मे प्रसन्नं दृष्टीपालिता परं मध्यमकुसुमवती ।

सुगन्धना कर्पसि लीङ्गितामूर्धं मृत्तामिव च यज्जहती ॥—विक्रम० ११२०

३ बिभ्रमतायामस्या कान्तिविजयार्थकि ने हृदयम् ।

अम्प्रति चिचित्तमार्गि मन्त्रे येनेयमालिङ्गिता ॥—साध० ११२

४ बहो स्यात्स्वयस्वाम्यु नाकता लीमाण्डरं पुष्पवि तथा हि—

बार्म सविस्तिमितवर्णं मन्त्रं हृत्तं मिदम्बे

कृत्वा स्वामाविटपसवृत्तं अस्तमुत्तं द्वितीयम् ।

पाशंमुद्राकुटितकुसुमे कुटितमे पातितार्म

मृतादस्या स्विद्यमस्तित कात्तमुज्ज्वलताम् ॥—साध० २१६

५ सर्वान्तं पुग्गमिताभ्यापार्यतिनिबुत्तहृदयस्य ।

छा नामलोचना मे स्नेहस्वीकायनीभूता ॥—साध० २११४

प्रेम और सौन्दर्य—निस्तब्धेह इस प्रेम और आकर्षण में सौन्दर्य का बहुत बड़ा हाथ है। कासिदास ने अपनी सभी भाविकामों को अनन्य सुन्दरी निस्तम्ब्या है। अनन्य सुन्दरी उनही कवि के शब्दों में 'सुरसुन्दरी अपममराब्धता पोमोत्तुङ्गमस्तनी स्मिरयीवना तनुधरीरा हंसगति...' १।

दूसरी ओर मासजिका—'बीर्वाळ धरदिन्दुकास्तिवन्न बाहू मतावसयो' ... २।

निस्तम्ब-कन्या संकुम्भस्य का सौन्दर्य तो अनुपम है—

'अबर' किसकमराव कोमलबिटपानुकारिणी बाहु ... ३।

प्रेम और आध्यात्मिकता—कवि सौन्दर्य को सार्थकता प्रेम में समझता है, 'प्रियेयु सौभाग्यफलं हि चाकृता' ४ उसका बड़ा विश्वास है। शारीरिक सौन्दर्य निस्तब्धेह प्रेम का महत्त्वपूर्ण अंग है, परन्तु प्रेम की कसौटी नहीं। इसी कारण सौन्दर्य से बीतने में असमर्थ होकर पावती को धिक् को प्राप्ति के लिए घोर तपस्या करनी पड़ी। विवाह बीती कौकिक वस्तु से भी कवि धर्म को प्रयत्न रीता है। अतः शारीरिक सौन्दर्य के साथ आध्यात्मिक सौन्दर्य का सम्मिश्रण प्रेम में निवार करता है।

कवि का विश्वास है कि प्रेम की उत्पत्ति पृथ्वीवर्ष के संस्कारों के कारण होती है। मधुर एवं आकर्षक वस्तुओं का सम्मुख देखकर भी कभी-कभी मनुष्य उत्कण्ठित हो जाता है, इसका मूल कारण पृथ्वीवर्ष के अचरित प्रेम की स्मृति ही है ५। प्रेम जन्म-जन्मान्तर तक संयम रहता है ६।

धर्म पर आश्रित प्रेम ही फलदा है। पार्वती के धर्म को अपनाने पर ही धिक् प्रसन्न होकर कहते हैं—'अनेन धर्म सविद्यपमय मं त्रिबयसारः प्रतिभाति भामिनि...' ७। प्रेम की महत्ता नीतिकता और पवित्रता में है। व अस्वभावों को पति की तपस्या का साकार रूप कहत है। 'त्रिव्यापी यत्तु धर्म्मार्था उत्पत्त्यो मूलकारणम्' ८ उनके इसी विश्वास और भावना का साधक है। पवित्र एवं

१ विक्रम० ४१३६

२ मास० २११

३ भवि० ११२

४ कुमार० ४११

५. रम्भाणि कोक्ष्य मधुरांश्च निमग्नं रागान्ययुस्तुको भवति सम्मुखितोर्मयि वन्यु ।  
तन्वेतमा स्मरति नूनमबोधपूर्वम् मावस्तिवराणि जननाम्तरमौहवानि ॥  
—भवि ११२

६ मनो हि जन्मान्तरसंयतिजम्—रघु० ७११६

मात्रं तत्र सुपनिविष्टमुद्विग्नं प्रभूतेस्वरितुं....—रघु १४१६६

७ कुमार १११८

८ कुमार० ४११३



धुठाधारवासी कथा का प्रेम ही जीवन में पूषता लाता है। केवल काम मानना से उत्पन्न प्रेम कभी जीवन में सम्भवता नहीं ला सकता। अक्सर ही वे प्रेम में विश्वास करते थे परन्तु एकान्त में बिना गुस्सना की अनुमति से बिना उनकी सम्मति किए, बिना वादा-वीछा सोचे दिया गया प्रेम उनकी दृष्टि में अक्सर निम्ननीय है<sup>१</sup>।

प्रेम के अंग—प्रेम के साधारण व्यापार तथा सूक्ष्म अंगों पर कवि ने भरपूर दृष्टि डाली। प्रेमी को जो आनन्द अपनी प्रिया में मिलता है, वह सम्भव नहीं। उसके लिए वह देखी है जिसकी सेवा के सदृश सत्कार का कोई आनन्द नहीं। मेघ-सन्देश में यह अपनी प्रिया को अपना प्राण और जीवन कहता है<sup>२</sup>। पुष्करवा अपने साधाम्य से अधिक महत्ता प्रेमिका के संग और उसके लिए किए गए काय का देता है<sup>३</sup>। निराश प्रेमियों के लिए जो संसार अंधकारमय है, वही संसार युक्त-धर्मियों के लिए आनन्दमय<sup>४</sup> है। बन्धना की वे ही किरणें अलंकार के वे ही छिन्नीमुख जो दुःखी एवं निराश प्रणयी के लिए अग्नि-स्वरूप है। वे मुन्नी दम्पति के लिए अनन्तस्पर्शक है<sup>५</sup>। जैसे धूप का उत्तमा मनुष्य लौह में अग्नि छौठलता का प्राप्त करता है वही प्रकार दुःख भरे वियोग के पदपाद सयोज दुःखे आनन्द को उद्दीप्त कर देता है। प्रेमी चाहता है कि वे ही रात्रियाँ जो वियोगावस्था में अग्नि लम्बी लगती थी वे हम संयोग-वस्था में उसनी ही लम्बी हो जाय<sup>६</sup>। प्रेमी अपनी ही आँखा से सत्कार को देखता है, प्रिया की हर चेष्टा उसे अपने प्रति प्रेम व्यक्त करती हुई प्रतिमासित होती है<sup>७</sup>।

१ अतः परीक्ष्य कसम्प्य विद्योपारसर्ववर्त रहः —ब्रजि० १।२४

२ तां वासीयां परिमिश्रणां भीक्षितं न शितीयम् ।

बुरीभूते मयि सहचरे अन्नपानीमिवैकम् ॥—उत्तरमेघ २३

३ सामन्तनीक्षिमिरीक्षितपादपीठं एकस्तपनमवने न तथा प्रभुत्वम् ।

अस्यां सजे अरजयोरक्षयस्य कान्तं आत्माकश्यपमविब्रम् कथा वृत्ताय ॥

—विजय ३।१६

४ पादास्त एव शक्तिनः मुक्षयन्ति मार्गं बाधाम्स्त एव मदनस्य मनोमुग्धता ।

संरम्भकलमिव मुग्धरिः कक्षवासीन् स्वार्तगमेन मम लक्षयितुनीतम् ॥

—पदैवोपगतं दुःखात्पुनर्यं तत्रसत्तम् ।

—यस्य हि विद्योपनः ॥

सम्भवता—प्रेम की सम्भवता विज्ञानाने में भी कबि भूका नहीं। प्रेम में जब सम्भवता का आती है तब व्यक्ति का हृदय उसमें स्थिर हो जाता है। 'ममात्र भावैकरस मग' स्थिरं न कामवृत्तिवचनीयमीक्षते'। प्रेम की वारा रज होने पर भी अपना भाग नहीं छोड़ती भाग बचक जाड़े के<sup>१</sup>।

प्राथमिक व्यक्तीकरण—प्रेम का प्राथमिक व्यक्तीकरण अपनी ही सत्ता रखता है। प्रेम के विकास के सम्बन्ध में उसका कथन है कि प्रेम-रस का मूल प्रिया के सौन्दर्य का कथन मुनता है, परस्परित होना प्रिया को देखना है, उसमें कल्पित सब आती है जब प्रिया के स्पर्श से रमाव होता है<sup>२</sup>। हृदय से पृथक न रहनेवासी प्रिया के अभाव में व्यक्ति दुखी ही रहता है यद्यपि वह मन को समझाना चाहता है कि मरीर का क्षीय होना ठीक है क्योंकि उसे आत्मियन का सुख नहीं प्राप्त हो पाया। नेत्र भी व्यपूष हो सकते हैं क्योंकि प्रिया के दृशन नहीं हो पाते परन्तु हृदय क्यों दुखी है जब एक क्षण के लिए मा प्रिया समसे पृथक न हुआ<sup>३</sup>।

स्वभावतः प्रेम की उत्पत्ति हो जाने पर भी पहले स्त्री कभी पन्ना द्वारा उसको व्यक्त नहीं करती उसके प्राथमिक हस्त-भाव ही उसकी अविभक्ति कर देते हैं<sup>४</sup>। प्रेम की प्राथमिक अवस्था में स्त्री प्रेम में विभोर होकर प्रिय छवि को देखना चाहती है परन्तु वह अज्ञातों अधिक होती है—'कृत्वहन्मानपि निवृत्तसामीन' स्त्रीजन<sup>५</sup>। उनके धर्म सीमित ही रहते हैं—'प्रविरला इव मुग्धवक्षसा'। अज्ञा से झुकी मुन को आवा मोड़े हुए अपने प्रेम को सख्ख बृष्टि से व्यक्त कर लगी रह जाती है<sup>६</sup>। अज्ञा से बात न कह पाने पर भी

१ कुमार० १५८२

२ महा इव प्रवाहो विपमजिह्वासंकटस्तस्मिन्नवेगः।

विमित्रसमासममुगी भगमिधायः सतमुनी भवति ॥—विक्रम ७१८

३ तामाधित्य अतिरिचयतामाशया ब्रह्मकृत् सम्प्राप्त्यादा नयनविषयं कन्दरावप्रवाहः। हस्तस्पर्शमुत्तुम्भित इव व्यक्त रोयोद्गमत्वात्कुर्यात्कान्तं मनसिक्वत्कर्मा रसज फलस्य ॥—मात ४११

४ सतीरं क्षामं स्मारमति दयितास्मिन्मृगे भद्रस्तर्पं चतुः शयमपि न सादुस्वय इति।

तमा सारंभायसा स्मरति न कदाचिद्विरहितं प्रसक्ते निर्वाज हृदय परिहारं प्रवृत्ति किम् ॥—मात ३११

५ स्त्रीपामाद्य प्रणयवचन विप्रमो हि प्रियेषु—मेघदूत १ २४।

६ मात, अंक ४ प १२५, ७ रघू० २१३४

८ विदुष्यदी दीप्तमुनापि प्रायमदी स्फुरत्वाककवम्बवत्स्य।

तापीवता चारुनरेण सम्भी मुनेन पयस्तविमोचन ॥—कुमार १५८

सुखाचार्याजी कथा का प्रेम ही जीवन में पूर्णता लाता है। केवल काम-मापना से उत्पन्न प्रेम कभी जीवन में सम्मिलित नहीं ला सकता। अवश्य ही वे प्रेम में विश्वास करते थे परन्तु एकात्म में बिना गुरुओं की अनुमति से बिना उनकी सम्मति लिए, बिना आगा-पीछा छोड़े किन्ना गया प्रेम उनकी दृष्टि में अवश्य निन्दनीय है<sup>१</sup>।

प्रेम के अर्थ—प्रेम के साधारण व्यापार तथा सूक्ष्म अर्थों पर बहिन भरपूर दृष्टि रखी। प्रेमी को जो आनन्द अपनी प्रिया में मिलता है, वह सम्भव नहीं। उसके लिए वह बेबी है। अछि की सेवा के लक्ष्य सत्कार का कोई आनन्द नहीं। मेघ-सन्देश में यक्ष अपनी प्रिया को अपना प्राण और जीवन करता है<sup>२</sup>। पुकरवा अपने साम्राज्य से अधिक महत्ता प्रेमिका के संग और उसके लिए किया गए काय की सेवा है<sup>३</sup>। निराश प्रेमियों के लिए जो सत्कार अन्धकारमय है, वही संसार सुख-प्रेमियों के लिए आनन्दमय है। चन्द्रमा की वे ही किरणें अन्ध के वे ही घिसीमुख जो बुझी एवं निराश प्रेमी के लिए अग्नि-त्वक्म है। वे सुखी सम्पत्ति के लिए अन्धकारमय है<sup>४</sup>। जैसे रूप का सत्ताया मनुष्य छद्म में अति दीप्तता को प्राप्त करता है उसी प्रकार बुझ भरे वियोग के पश्चात् संयोग बुझने आनन्द को उद्दीप्त कर देता है। प्रमी पाहता है कि वे ही एणियाँ जो वियोगावस्था में अति लम्बी करती थी वे इस सयोगावस्था में उठती ही लम्बी हो जाय<sup>५</sup>। प्रेमी अपनी ही आँखा से सत्कार को देखता है, प्रिया की हूर चेष्टा उसे अपने प्रति प्रेम व्यक्त करती हुई प्रतिभासित होती है<sup>६</sup>।

१ अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विद्येयास्तंभयं यत् —अवि १।२४

२ हां जानीया परिमितकथां लीकितं मे द्वितीयम् ।

बुद्धिभूते भवि सत्कारे अज्ञानाकीर्तिर्लोकम् ॥—उत्तरमेव २३

३ सामन्तमौस्मिगिरिबिहारीपाठौ एकात्मकप्रभवे न तथा प्रमुग्धम् ।

अस्याः सन्ने अरण्यीरहमद्य कान्तं आकाशकल्पमविगम्य यथा हृत्पार्श्व ॥

—विहंगम १।१६

४ पादास्त एव दग्धिनः सुखान्तिं नाथं बाधाम् एव मरणस्य मनीनुकूला ।

संरम्भकसामिन्नुन्मत्तिं मरारासीन् तत्पर्वदमेन जम तत्तद्विषमुरीभम् ॥

—पद्मेनोपनतं बुद्ध्यात्मनं तत्तद्विषमुरीभम् ।

५ हि विद्यमानं ॥

सन्मयता—प्रेम की सन्मयता दिखाने में भी कबि बूका नहीं। प्रेम में जब सन्मयता या जाती है तब व्यक्ति का हृदय उसमें स्थिर हो जाता है। 'ममात्र भावैकरस मन स्थितं न कामवृत्तिवचनीयमीक्षते' १। प्रेम को चाप ध्य होने पर भी अपना भाव नहीं छोड़ती मान अवल बाड़े से २।

शारीरिक व्यक्तीकरण—प्रेम का शारीरिक व्यक्तीकरण अपनी ही सत्ता रहता है। प्रेम के विकास के सम्बन्ध में उसका कथन है कि प्रेम-तत्त्व का मूल प्रिया के सौन्दर्य का वचन सुनना है, पस्ववित होना प्रिया को देखना है, उसमें कस्मिन् तब आती है जब प्रिया के स्पर्श से रोमांच होता है ३। हृदय से पृथक् न रहनेवाली प्रिया के अभाव में व्यक्ति बुरी ही रहता है, यद्यपि वह मन को समझना चाहता है कि शरीर का जीव होना ठीक है क्योंकि उसे आत्मिकता का सुख नहीं प्राप्त हो पाया। नेत्र भी अधुपूज हो सकते हैं क्योंकि प्रिया के रसन नहीं हो पाते परन्तु हृदय क्यों बुरी है जब एक क्षण के लिए भी प्रिया उसके पृथक् न हुई ४।

स्वभावतः प्रेम की उत्पत्ति हो जाने पर भी पहले स्त्री कभी पशुओं द्वारा उसको व्यक्त नहीं करती उसके शारीरिक हृदय-भाव ही उसकी अभिव्यक्ति कर देते हैं ५। प्रेम की प्रारम्भिक अवस्था में स्त्री प्रेम में विभोर होकर प्रिय छवि को देखना चाहती है परन्तु वह सज्जावली अधिक होती है—'कृयूहृत्मानपि नितनमाखीन स्त्रीजनः' ६। उनके चरम सीमित ही रहते हैं—प्रविरता इव मुग्धवपुः ७। सज्जा से मुकी मुन को आवा मोड़ी हुए अपने प्रेम को मलम्ब दृष्टि से व्यक्त कर जाती रह जाती है ८। सज्जा से बाध न कह पाने पर भी

१ कुमार० १६८२

२ तथा इव प्रवाहो विपमचित्तवदस्त्वस्त्विवम् ।

विनिमिषमागममुक्तो मनमिषमः सतयुक्ती भवति ॥—विष्णु० ७१८

३ तामाभिरयं वृत्तिपथमाद्यमाद्यमाद्यमूलं सम्प्राप्तार्थं नयनविषयं कदाचनप्रवालं ।  
हन्तस्यार्थमुपुम्भि इव व्यक्तं रोमीवृग्मत्वात्पुम्प्राप्तार्थं मनमिषवत्तर्मा रक्षतः  
पञ्चम्य ॥—मात० ४११

४ शरीरं धामं स्वारसति दमित्तात्मिकमनुम  
भवस्तार्थं चनुः शब्दमपि न सानुपयत इति ।

तथा शारमात्मा त्वमसि न कदाचिद्विरहितं  
प्रयच्छे निर्वाचं हृदयं परिवार्यं व्रजति किम् ॥—मात० ३११

५ स्त्रीधामाद्य प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियपु—मेघदूत १ २४ ।

६ मात० अंक ४ व० १२५, ७ रघु० ११३४

८ विजगती दीकमुनापि भावमयी रकरद्वालकवम्बवर्धः ।

पापीविता चारनरैव सखी मुनेन पयस्तविलोचनम् ॥—कुमार० ३१६८

प्रेम के कारण उसके शरीर में रोमांच छा जाता है<sup>१</sup>। युग्म हमसि सज्जा के कारण कमलियों से एक-दूसरे को देखते हैं और बुद्धि-विनिमय होते हो सिटपिटा कर नेत्र नीचे कर डेते हैं<sup>२</sup>।

कज्जा के साथ प्रेम की अभिव्यक्ति सबसे सुन्दर धनुःशला में है, जहाँ कवि दुःखान्त के चर्यों में कहता है—

‘बाध न मिथयति यद्यपि मूढोक्तिं कथं बहस्यनिमूर्धं मयि मादमात्रे ।  
कर्म न तिष्ठति मवाननसंमुखोना मूयिष्ठमण्डविपमा न तु बुद्धिरस्या’ ॥

इसी मान का दूसरा उदाहरण—

‘अमिमुचे मयि संवृत्तमीक्षितं हृमिषमयनिमित्तस्तोत्रम् ।  
विनयवारितवतिष्ठस्तथा न विवृत्तो मयसो न च संवृत्’ ॥  
बभौकुरेण चरणं जल इत्यकांठ तन्वी स्विता कतिचिदेव पदानि गत्वा ।  
बासीद्विबुधवला न विमोचयन्ती साक्षामु बलकल्पसकलमपि इमावाम्’ ॥

परिपक्व प्रेम में वह सज्जा नहीं बली जाती है<sup>३</sup>।

प्रेम की अभिव्यक्ति पुर्यों की भी कवि ने वर्णित की है। स्त्री के प्रथम स्पर्श से उनके शरीर में किस प्रकार का रोमांच छा जाता है<sup>४</sup> स्त्री की बाह-पिठ करने के लिए वे क्या-क्या चेष्टाएँ करती हैं बाधि-बाधि उन्हें स्नान-स्नान पर बिछाया है<sup>५</sup>।

प्रेम के मात्र व्यापार उदाहरणच स्वप्न<sup>६</sup> प्रतीक्षा लम्पयता मुचबुध छाडकर कल्पना में लीन होना<sup>७</sup> बाधि जो उन्हें विरसित किए हैं।

१ सा मुनि तस्मिन्ममिषापवन् शब्दाक शास्त्रोक्तया न वक्तुम् ।  
रोमचिस्त्वेष स वाधमपि मित्वातिराज्ञामवराकुर्या ॥—रघु० १८१

२ तयोऽप्यप्रतिष्ठारितानि क्रियातमापतिवर्तितानि ।  
ह्रीर्धनचामानदिरै मनीषायन्तोऽप्यसौक्यानि विमोचयानि ॥—रघु ७१२१

३ अमि० ११२१ ४ अमि० २१११ ५ अमि २११२

६ पपी त्रिवेणकसपथमपिस्तरपापिताभ्यामिव सोधनाभ्याम् ।—रघु २११६

७ बासीदुर कंठकितप्रकोष्ठः स्विन्नामुक्षी र्त्तिवते कुपारी ।—रघु ७१२२

—तयोद्भवः प्रादुरमुद्राका स्विन्नायुक्षी पुंनवेनुरासीत् ।—कुमार ७४७

—यदियं रचयिषीमार्थवेनां मयामतेभजया

८ मगमिदेवेन ।—विह्वल १११३

मदन-लेख एक प्रेम-पत्र—अवश्य ही प्रेम में मदन-लेख का अति महत्व है। प्रेम के सूक्ष्म अंगों पर कृष्टि रखने वाले ने इसको भुलाया नहीं। सकुन्तला का पत्र-लेखन<sup>१</sup> और उषधी का भूजपत्र पर लिखा प्रेमसन्देश<sup>२</sup> इससे प्रतीक है।

दूती—युवक प्रेमियों को मिलान के लिए किसी सम्पत्ति का होना भी आवश्यक है। सकुन्तला और दुष्यन्त के सम्मिलन में अगस्त्या और प्रियंवदा का हाथ था। इसी प्रकार उषधी और पुनरवा के संयोग में उषधी की सखी बिभ्रसेला का योग था। स्वयं कवि ने दूती<sup>३</sup> शब्द का प्रयोग किया है जो प्रथम-प्रकाशन में सहायता देती थी। पावती ने भी सिव के पास दूती रूप में सखी भेजी थी<sup>४</sup>।

विवाह के पूरा प्रणय में कवि को आस्था अवश्य थी। पर इस सत्यत्व में एक बात धरा पाह रखनी चाहिए—कवि प्रेम हो जाने पर भी विधिपूर्वक सबके सम्मुख विवाह हो जाने के पक्ष में है। सिव-पावती का आकषण और प्रेम विधिपूर्वक विवाह के द्वारा पूरा किया गया। माकविका के प्रति भी अग्निमित्र का कम आकषण और प्रेम नहीं था। इसकी भी समाप्ति विवाह में कारिणी और इरावती के सम्मुख हुई। सकुन्तला के प्रेम और गुणगुण कर्त्य की कवि ने निन्दा ही की है<sup>५</sup>।

विवाह-संस्कार—विवाह संस्कार के तीन माग किए जा सकते हैं—(१) विवाह से पूरा प्रारम्भिक क्रियाएँ (Preliminaryes) (२) मूख संस्कार, प्राणिग्रहण होम अग्नि-अश्विना और मष्टपरो (३) कुछ अन्य बातें—यथा मुख तारे की ओर देखना लोकाचार आदि।

विवाह के पूर्व की प्रारम्भिक क्रियाएँ—इसमें वर-बहू की गुप्त-परीक्षा कन्या के पिता के पास वर की ओर से किमी का बाना और कन्या के माथ

हर्म्येस्मिन्वर्तीय साध्वसवशागमश्रावमाना वस्तु

आनीमत्त पशत्पर्व कनुरया सवशा समोपान्तिकम् ॥—विज्ञ० ३।११

१ अमि० अंक ३ ३।२४ सम्पद्य लेख

२ स्वामिर्न्यभाविता यथाज्ञं स्वया जाता तथापुरस्तस्य परि नाम तपोतरि कि मे रुक्षितपरिव्रजतघयनीये भवन्ति नन्दनवनवाता अप्युत्पुष्पका शरीरके।  
—विज्ञ० २।१२

३ तां प्रत्यविष्यत्तमगौरवाणां महीपतीणां प्रथमाग्रहूय<sup>६</sup>।

प्रवाक्योमा इव पाशपातां शृंगार चेष्टा विविधा वसुधु ॥—रघु० १।१२

४ रूप विष्णवामने पौरी मन्दिरेण मित्र मशीम्।

शाना मे मूमनां माथ प्रमाणीकृत्यतामिति ॥—शुमार० १।१

५ अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विनोपसर्गमं रह।

अत्रातहुरदेदेवं वीरी भवति गीहृवम् ॥—अमि० ३।१४

विवाह कर देने की याचना करना बान्धान्नाह्वि है। स्वयं कालिदास ने छंदर के द्वारा सप्तयित्री को राजा हिमाक्ष के पास निम्नवाया है तथा प्रार्थना करवाई है कि वे अपनी पुत्री पावती का विवाह उनके साथ कर दें<sup>३</sup>। विवाह का प्रस्ताव केन्द्र बानेशालों में स्त्री भी हो सकती थी—

आर्याप्यस्त्वती तव व्यापारं कर्तुमहति ।

प्रायेक्षेवं विवे कार्यं पुरंधीनां प्रथमता ॥<sup>४</sup>

बान्दान से विवाह निश्चित हो जाता है और इसके पश्चात् अन्य सांगठिक क्रियाएँ प्रारम्भ हो जाती हैं। स्वयंवर विधि में भी गङ्गे में जिसके मान्य डाढ़ ही जाती है उसके साथ विवाह निश्चित हो जाता है। पक्ष में माता डाढ़ना बान्दान का ही पर्याय है।

बान्दान के पश्चात् विवाह-सम्बन्धी क्रियाएँ प्रारम्भ हो जाती हैं। मंडप करव बबू-गृह्ययन मनुष्यक स्नापन परिवारण प्रविष्टरत्न बबू-वर निष्कमन इन्हीं सांगठिक क्रियाओं में आते हैं। ये सब सभी गृह्यसूत्रों और भ्रम सूत्रों में एक-से ही मिलते हैं और कालिदास ने भी इन सबका ऐसा ही उल्लेख किया है। यह सब सविस्तर ब्रह्मस्थान स्वयंवर और प्राजापत्य विवाह के प्रसंग में बताया जायगा।

**मूळ विवाह-संस्कार**—इसमें कन्यादान अग्निस्वापन होम पाणिग्रहण काबाहोम अग्निपरिचयन ब्रह्मरोहण सप्तपदी मूर्धाभिरुपक आदि आते हैं। सविस्तर ब्रह्मस्थान इनका भी उल्लेख किया जायगा।

### विवाह के पश्चात् की सांगठिक क्रियाएँ

**कौतुक-गृह लोकाचार**—इसमें प्रवारास्त्वती वरान आशान्तरपेयन तप्य स्नात् कुछ अमिनयावि से बरबबू का विनोद करना आता है। इनके पश्चात् कौतुकाचार में बर-कन्या पहुँचा विवे जाते हैं वहाँ वे रात्रि में बसत करते हैं।

**विवाह की सांगठिक सामग्री**—इन सामग्रियों में मृगरोचन वृद्धी तीर्थमृत्तिका सोम्य मोरीचन आदि का प्रसंग कवि ने प्राकृतिकता की विधा के समय पावती और हनुमती के स्वयंवर के पूर्व तथा विवाह प्रसंग के बीच में ब्रह्मप्रसंग दिया है।

**स्वयंवर**—कालिदास ने स्वयंवर का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। वैसे मूळ विवाह और क्रियाओं में चाहे स्वयंवर हो या माता-पिता के द्वारा

**वैवाहिक कर्मा—**यौनिक इसमें कन्या के छतर ही समस्त पुत्रा का उत्तरदायित्व था वत माता-पिता का यही काम था कि वे अपने विश्वासपात्र एवं अच्छे योग्य राजपूतों के पास भेजकर उनको स्वयंवर में जाने के लिए निमन्त्रित करें<sup>१</sup>। जिनके साथ माता-पिता अपनी कन्या का सम्बन्ध करना अच्छा समझते वे उनको ही निमन्त्रित करते थे<sup>२</sup>। राजपुत्र अपने माता-पिता की अनुमति पाकर अपनी सेना के साथ कन्या के गृह की ओर प्रस्थान कर देते थे<sup>३</sup>। मार्ग में स्वातन्त्र्य पर पड़ाव रहते हुए अन्त में वे कन्या के देश में प्रवेश करते थे<sup>४</sup>।

**स्वागत—**कन्या के पिता को जब वह समाचार मिला कि अमुक राजपुत्र आया है तो वह नगर के बाहर उसके पड़ाव में जाकर उसका स्वागत करता था<sup>५</sup>। इसके पश्चात् राजपुत्र को अपने साथ छतर नगर में प्रवेश करता था<sup>६</sup>। राजसेवक आकर पहले ही से मनोनीत स्थान महल में राजपुत्र को विद्याभार ले जाते थे<sup>७</sup>। प्रत्येक के टहरने के लिए पुष्क-पुष्क प्रबन्ध रहता था और प्रत्येक राजमन्दिर के द्वार पर जोड़ियों पर बस से भरे मंगलमन्त्र रखे रहते थे<sup>८</sup>। प्रत्येक प्रकार के आधम के सामग्री से राजमन्दिर भरपूर रहता था। यही वे रात्रि भर विद्याम कर प्रातःकाल उठकर नहा-बोहर अपने को वस्त्र-भूषण से अलंकृत कर निश्चित समय पर स्वयंवर के स्थान में प्रवेश करते थे<sup>९</sup>।

१ अनेनैरेव कन्यगिकानां स्वयंवरार्थं स्वमुरिमुत्सृज्या ।

आप्तं कुमारानयनोरसुकेन भोजेन वृत्तो रचयन् विमुक्तः ॥—रघु० ५।३६

२ तं दद्यात्सम्बन्धमगौ विदित्य दारिद्र्यमाप्यर्थां च पुत्रम् ।

प्रस्थापयामास सतीत्यनेनयतां विदग्धविपराजयानीम् ॥—रघु० ५।४०

३ दैतिर्यु, पारटिण्णी नं० २

४ रघु० ५।४१-४२

५ तं सत्पितृनां मगदोरति तदागमास्तुप्रार्थ्य ।

प्रत्युज्जयाम इयद्वैधिनैश्चर्यम् प्रबद्धोर्मिरिबोर्मिमासी ॥—रघु० ५।६१

६ प्रवेत्यै चैतं पुरमग्रयणी नीचैस्तपोपाचरवर्षितमी ।

मेने यथा तत्र जग समेतो वैद्यमगागन्तुमर्ज गृहेष्टम् ॥—रघु०, ५।६२

७ तस्यापिवास्तुने प्रणीतं प्रविष्टां प्राप्तास्तेवैदिकिनिवेधितगूढधृत्ताम् ।

रम्यां रघुप्रतिनिधिं यन्मनोपकम्पं आत्मात्परायिणं यदां मन्त्रोऽप्युवाच ॥

—रघु० ५।६३

८ दैतिर्यु पारटिण्णी नं० ७

९ गृहपरिविष्टानुचरैश्च दितियसमाजमगास्तस्यैव ययम् ॥—रघु०, ५।७६



स्वयंवर में नागरिक जन भी आते थे और राजपुत्रों को देखते थे<sup>१</sup>। स्वयंवर में चारण रहते थे जो राजपुत्रों की बंधानसियों और नुनों का बखान करते थे<sup>२</sup>।

स्वयंवर-शोभा—गगर के बाहर बड़ा-सा घामियाणा<sup>३</sup> लगाया जाता था जिसमें प्रत्येक राजा और राजपुत्र के लिए मंच बनाए जाते थे<sup>४</sup>। प्रत्येक मंच पर एक सिंहासन रखा जाता था<sup>५</sup>। मंच और सिंहासन (सिंहासन मोने के बने होते थे जिनमें रत्न भी बड़ रहते और उस पर रत्न बिरेये बरत बिछे रहते थे<sup>६</sup>।) दोनों ही जूब सजे रहते थे<sup>७</sup>। मंच के ऊपर सिंहासन तक जाने के लिए सीढ़ियाँ<sup>८</sup> बनी रहती थी। इसी बहुमुख्य सिंहासनों पर सज-बजकर छल्लाट से राजा लोग बैठते थे<sup>९</sup>। घामियाणा नदियों (बीजयन्ती) और जपरबतियों से सजा रहता था<sup>१०</sup>। मंगल-वाद्य बजते रहते थे<sup>११</sup>। मंचों के बीच में राजमार्ग<sup>१२</sup> रहता था। इसी राजमार्ग पर से होती हुई पारकी पर बीड़ी बैबाहिक बस्त्रा भूपणों से अलंकृत कन्या स्वयंवर के लिए जाती थी<sup>१३</sup>। राजपुत्री के साथ उसकी दासियाँ और सखियाँ भी रहती थी<sup>१४</sup>।

- १ नेत्रवचा पीरजनस्य उस्मिन्निहाय सर्वात्मपतीन्निपेनु ।  
महोत्कटे मेचिजुप्यनुता पन्वद्विपे बभ्य ह्य द्विरेफा ॥—रघु १/१०
- २ अब स्तुते बनिभिरम्बमङ्गै सोमत्कबंस्ये नरवैबलोके ।—रघु १/८
- ३ प्रमुदितवरपक्षमेक्यस्तस्मिन्निपतिर्मङ्गलम्ययो विवसन्म् ।  
सयसि सर ह्य प्रपुष्कपर्वम् कुमुदवनप्रतिपल्लनिद्रमासीत् ॥—रघु० १/८१
- ४ ॥ तत्र मंचेषु ममोच्चैषामिहसप्तस्वानुपचारवस्तु ।  
वैमानिकानां मकतापमक्षबाहुष्टलीकालरलीकपालान् ॥—रघु० १/१
- ५ पराध्यवर्णांस्तरेणीपपन्नमासेक्ष्वान्तरत्नवदासनं च ।  
भूविष्टमासीदुपमेयक्रान्तिर्मनूरपृष्ठमजिवा मुहूत ॥—रघु १/४
- १७ देखिए, पाठनिष्पत्ती नं० ५
- ८ वैदर्भीनिर्विष्टमसी कुमारः कल्पतेन दीवानपद्येन मंचम् ।—रघु० १/३
- ९ तामु भिमा राजपरम्परासु प्रसाक्षितोपोऽनुनिरीक्षय ।  
सहस्रचारमा व्यहचद्विपक्षः पयोयुवां पक्षिपु विद्युतेन ॥—रघु० १/५  
—तेषां महाहसितसंस्थितानामुदारनैप्ययुतां स मध्ये ।  
ररात्र बाष्पा रघुमुनुरैव कल्पटुमाधामिब पारिजात ॥—रघु० १/६



ही स्त्रियाँ पचासों से उनको देखने के लिए लौट पड़ी थी<sup>१</sup>। वर हजिरी के ऊपर रहता था<sup>२</sup>। सम्भवतः कन्या पहले भी तरह पालकी पर।

मधुपर्क—किसी सम्माननीय अतिथि के स्वागत और सम्मानन उसके हाथों में मधु मेंट दिया जाता था। दार्शनिक शब्द 'मधु' का 'सरण' है। किसी अतिथि के जाने पर आसन चरण चोने के लिए जब अर्घ्य आचमन के लिए जब मधुपर्क और राध ली जाती थी। गृह्यसूत्रों<sup>३</sup> के अनुसार ऋत्विज आचार्य वर, राजा स्नातक तथा कोई जन मधुपर्क के पात्र होते थे। कुछ गृह्यसूत्रों में इन ९ व्यक्तियों में सातवाँ अतिथि और जुड़ा हुआ है<sup>४</sup>। यह कहा जाता है कि वर में एक बार हो मधुपर्क दिया जाता है परन्तु यदि वर में सारी हो ग्य हो तो मधुपर्क बाह्य के व्यक्ति उसी वर में जा भी चुके हों फिर भी उनको देना चाहिए<sup>५</sup>।

मधुपर्क बिबाह में विशेष स्थान रहता है। मधुपर्क में बरा-बरा होना चाहिए इसमें मतभेद है। आप्तकाम्य और आपस्तम्ब वही और सह्य का मिश्रण अथवा वी और वही के मिश्रण को मधुपर्क कहते हैं<sup>६</sup>। पारम्पर मधु पर्क में वही भी और सह्य तीनों का घोल होना चाहिए ऐसा कहते हैं<sup>७</sup>। आपस्तम्ब किसी अर्घ्य की सम्प्रति उद्धृत करते हैं कि वही सह्य और घृत के अतिरिक्त यक्ष मा बाली भी होना चाहिए<sup>८</sup>।

वर स्वयंवर के पश्चात् राजमन्त्र म जाता था<sup>९</sup>। राजमन्त्र मन्त्र सामर्थियों की सहायता से अभिमन्त्रित रहता था<sup>१०</sup>। वर को सम्बन्धी-जन मन्त्र

१ उत्तस्तत्रासीकस्तम्बरानां सीधेषु चामीकरजात्मवत्सु।

वैश्वदेवित्त्वं पुरगुम्बरीणां त्यक्त्याप्यकाशीणि विधेयितानि ॥—२धु० ७।१

२ वरीज्वरीयां करेनुकाया स कामग्येववत्सहस्र ॥—२धु० ७।२

३ मानव गृह्यसूत्र १.२.१ याज्ञवल्क्य स्मृति १ का ११०

४ बोधायन गृह्यसूत्र १.२.१५ नीलम जमसूत्र २.१५ आपस्तम्ब गृह्यसूत्र १.३.१८-२ आश्वलायन श्रमसूत्र २.३.८ ३-६ बोधायन श्रमसूत्र २.३.६३-६४—मनुस्मृति ३ का ११८

भीर में के बाहर सिंहासन पर बिठा देते थे<sup>१</sup>। वहाँ जा माता को दुकूलमुग्म रत्नमुक्त अर्घ्य और मधुपक भेंट की जाती थी<sup>२</sup>। इसके पश्चात् विवाह-संस्कार के लिए बर को कन्या के साथ ले जाया जाता था<sup>३</sup>।

### विवाह-संस्कार

(अ) कन्यादान—बैसा पहले कहा जा चुका है माता पिता जब बर दूबने से असमर्थ होते थे तब कन्या को स्वतंत्रता दे देते थे कि वह अपना बर स्वयं दूब बैठ उत्तरदायित्व स्वयंवर में माता पिता का न होकर स्वयं कन्या का होता था। यही कारण है कि इसमें कन्यादान का कोई महत्त्व नहीं रहता। कवि ने संभवतः इसी कारण कन्यादान का यहाँ उल्लेख नहीं किया।

(ब) अग्नि स्थापन और होम<sup>४</sup>—कन्यादान के पश्चात् मा पूर पुरोहित की बाहि सामग्रियों से हवन कर उसी अग्नि को सांसी बनाकर बर बधू का संयुक्त कर देता था। अग्नि की ओर शमी के पत्ता से मुगन्धित हो जाती थी (रघु० ७।२९)।

(स) पाणिग्रहण<sup>५</sup>—बर बधू के हाथ पकड़ता था कदाचित् स्वीकृति की सूचना भर हो।

(द) अग्नि-परिणयन<sup>६</sup>—बर और बधू दोनों विवाह के समय स्थापित की हुई अग्नि की प्रक्षिप्ता करते थे।

(य) छाज्राहोम<sup>७</sup>—उत्तरचात् कन्या पुरोहित के बहने से अग्नि में रौमें डालती थी।

१ वैद्यनिर्दिष्टमथो विवाहमारोमनांसाव अनुष्मन्त ।—रघु० ७।१७

२ महाहसिहसमनमन्मिहोऽसौ मरत्नमर्घ्य मधुपकमिधम् ।

भोजोऽनीतं च दुकूलमुग्मं अवाहं साथं वनिताफटान् ॥—रघु० ७।१८

३ दुकूलमामा न बधूसमीपं निन्दे विनीतैरबरोधरसौ ।

बैसासवासं स्फटकेमराजिनवैदशान्निव अम्भपारि ॥—रघु०, ७।१९

४ तत्राचिहो भोजपते पुरोधा हुत्वाग्निमाग्याग्निमिरिभिः ।

तमेव आवाय विविहमाभ्ये बधूबरो मयमयाञ्चकार ॥—रघु० ७।२०

५ हस्तेन हस्त्रं परिगृह्य बध्वा स राजसन्तु मुनरां चकामे ।—रघु० ७।२१

भोट बर-बधू का बैसा और विवाह-संस्कार प्राजापत्य विवाह हो या स्वयंवर एक-सा ही रहता था ।

६ प्रक्षिप्यप्रश्नमग्राह्यानोर्यश्चिपस्तन्मिधुमं चकामे ।—रघु० ७।२४

७ निष्ठम्बधुरीं मुग्धा प्रयुक्ता बधूविधातुप्रतिभेन तेन ।

चकार सा मत्तचकोरनेत्रा लज्जावती कामचिपगमनी ॥—रघु० ७।२५

मोट कावे ने बर्मसूत्रों के अनुसार पाणिग्रहण के पश्चात् साबाहोम तत्पश्चात् अग्नि-परिचयन दिया है पर कालिदास ने साबाहोम को अग्नि-परिचयन के पश्चात्<sup>१</sup>। पाँचवीं-छठी सताष्टी के आसपास अग्नि-परिचयन के बाद ही साबाहोम का उल्लेख मिलता है। बाणभट्ट ने राज्याभी के विवाह में अग्नि-प्रवक्षिणा के बाद साबा-हवन का निर्देश किया है—हुये च हुणमुवि प्रवक्षिणाप्रवृत्तामिर्बभूवन्नविशोऽनकशुद्धिनीमिरिषः । आतामिरेव सह प्रवक्षिण बभ्राव । पात्यमाने च साबाबलौ नक्षमयुजववक्षिणतुरदुत्पूर्ववचु वररूपं विस्मयस्मर ह्वादुस्तथ विभाषम् ।

—हपचारित पृ २०८ बन्ने संस्कृत धीरिष

सप्तपदी—कालिदास ने इसका कोई नकेल नहीं किया ।

विवाह-संस्कार के बाद की क्रियाएँ—छेरे हो चुकने पर जोड़ी बहुत अन्य मानसिक क्रियाएँ भी होती थी । त्रिमं भुव तारे को बचू को रिहाना और आश्रितारोपण आदि जाता है । कालिदास ने इन्नुमती के विवाह का विस्तारपूर्वक बखन किया पर भुवतारा वसन का कहीं प्रयोग नहीं दिया यद्यपि पत्नी के विवाह पर इसका नाम दिया है ।

आश्रितारोपण<sup>२</sup>—विवाह-संस्कार के पूरा हो चुकने पर वर बचू के ऊपर स्तुतक कुटुम्बी और सौभाग्यवती नारियौ सभी बारी-बारी से आश्रितारोपण करते थे ।

विवाह-संस्कार की समाप्ति पर स्वयंवर में मिलने राजा करते थे वे सब कन्या पल के द्वारा अनुमति पाकर उनकी बी हुई सामग्री को बेंट के बहाने सौटा कर अपने-अपने बैल कोट करते थे<sup>३</sup> । बीच में इत्यविश से राजा वरपत्र से मुछ भी करते थे<sup>४</sup> ।

वर बचू को लेकर अपने बैल लीज जाता था । कन्यापल के कर्त्त-वर्त्त अपनी सामग्री के अनुसार जन आदि लेकर उनकी सम्मानपूर्वक विशा करते थे<sup>५</sup> और कुछ दूर तक उन्हें पहुँचा भी जाते थे<sup>६</sup> ।

१ बर्मशास्त्र का इतिहास पृ० ११४

२ कन्याकुमारी वनकासनस्वाशाश्रितारोपणमन्त्रमूत्राम् ।—रघु० ७।१८

३ वैदधमामन्त्र्य ययस्तरीया प्रत्यर्प्य पूजामुपवाञ्छतेन ।—रघु० ७।१०

### प्राजापत्य विवाह

इस प्रकार के विवाह में समस्त उत्तरपायित माता-पिता का रहता है। माता-पिता विवाह निश्चित कर बार और कन्या से कहते हैं कि तुम दोनों समस्त धर्म के कार्यों को साथ एक करो।

**वैवाहिक-व्याख्या**—विवाह निश्चित करना माता-पिता का हाथ में ही रहता है, यद्यपि पावती ने यद्यपि हृदय से विवर्धी को बग लिया था परन्तु फिर भी उसने अपनी सखी से कहलवाना कि मेरा विवाह करवाना मेरा न करनेवाले मेरे पिता है। यदि आप मुझसे विवाह करना चाहते हैं उनको जाकर मना लीजिए<sup>१</sup>।

**बरदूत-प्रेषण**—यद्यपि विवर्धी ने सप्तर्षियों को स्मरण किया और उनसे कहा कि आप मेरी ओर से राजा हिमात्म्य के पास जाकर उनकी पुत्री पावती का माँग लीजिए<sup>२</sup>। प्राचीन काल में बर की ओर से ही कन्या के लिए प्रस्ताव होता था। आगे भी राज्यधी को माँगने के लिए प्रजाकरण्डन के पास राजा दूत भेजने लगे, ऐसा आज भी लिखा है<sup>३</sup>। विवाह का प्रस्ताव स्वीकार करते समय पिता अपनी पत्नी से भी राय लेता था

‘प्रायेण गृहिणी नेत्रा कन्यार्येषु कुटुम्बिन ... —कुमार० १।८५

**सागदान**—बर दूत भेज कर विवाह निश्चित करा जाता था। इसके पश्चात् सागदान के द्वारा सब कुछ निश्चित हो जाता था<sup>४</sup>। इसी समय कन्या-पक्ष के भाग विवाह की सुनतिवि भी निश्चित कर लेते थे<sup>५</sup>। विवाह प्रस्ताव के तीन दिन बार भी विवाह हो सकता था।

### वैवाहिक तैयारियाँ

**नगर की सजावट**—नगर की सड़कों को लण्डियों बन्दनवालों और फूलों से अच्छी तरह सजाना जाता था। राजा के घर यदि खाली है तो मम्पूज नगर

१ कुमार० १।१ पूर्वोक्तेषु २ कुमार० १।२६ पूर्वोक्तेषु

३ गामने च दिवसे ग्रहवर्जना कन्या प्रापयितुं प्रपितस्य पूर्वागतस्यैव प्रदानं दूतपुरणस्य करे सवराजंनुत्तमसर्तं गृहिवृत्तान्तममपाठयत् ... —

—हयचरिते ४ वा उच्छ्वास

४ इदमभात्तरं व्याम्यमिति बुद्धया विमृश्य सः।

आन्द्रे बचसामन्ते भंगसारसकृतां मुताम् ॥

एहि बिन्वामने बरसे नितागि परिकलिता।

मचिनो मुनय प्राप्तं गृहमभिषर्ष मया ॥—कुमार० १।८७ ८८

५ वैवाहिकीं विधिं पृष्टान्तराजं हरबन्धुना।

ते ग्रहान्धुमाकषायं चरुचौरपरिग्रहा ॥—कुमार० १।९३

सचामा बाटा बा<sup>१</sup> । साधारणतः गृहस्थ लोग केवल अपना घर और आसपास का स्थान सजा केते हुंने ।

घण्ट-शृंगार और वैवाहिक वेशभूषा—कन्याका के सभी सम्बन्धी-यन कन्या को बायीबाँहि सेते और गोद में बिठा कर कोई-न-कोई आमुपन दिया करते थे<sup>२</sup> ।

स्नापन परिधापन—विवाहवाले दिन प्रातःकाळ ही से कन्या का शृंगार प्रारम्भ हो जाता बा । पति और पुत्रवती स्त्रियाँ कन्या का स्वेत उपप और पूर्ण के अंगुठों से शृंगार करती थी<sup>३</sup> । तत्पश्चात् 'निर्गमि कौशेव' आनाकर बास जोस दिया जाता बा<sup>४</sup> । सोमाप्यवती और पुत्रवती स्त्रियाँ कन्या के घटीर पर लगे रेल को सोझ की बुकनी से सुचाकर सुश्रुति इव्यों से यस्त अंतरता सगाती थी<sup>५</sup> । इसके पश्चात् उसको स्नान के क्रिय के बासा जाता बा । स्नान के क्रिय पृथक् बस्न दिया जाता बा<sup>६</sup> ।

बाँकी पर कन्या को बिठा कर पाले-बचाले हुए कन्या को गहलम दिया जाता बा<sup>७</sup> । स्नान के पश्चात् पूज की ओर कन्या का मुख कर वैवाहिक-शृंगार होता

१. उत्तानकम्भीर्गमहापयं लम्बीनायुर्क कमिपतकेमुपाकम् ।  
मासोऽग्न्यस्तत्काम्भनतीरुपानां स्वानाम्तरं स्वम इवावमासे ॥—कुमार ७१३
२. अंकाद्यबाकं कमुदीरितापी सा मण्डनागमण्डनमम्बयुक्त ।—कुमार ७१५
३. मीकमुद्रुत सद्यमाङ्गेन योचं गतासुतरकम्पुनीप ।  
तत्त्वा घटीरे प्रतिकर्म अङ्गुलान्मुक्तिमो वा पतिपुत्रवत् ॥  
सा गौरसिद्धार्धनिवेशकप्रियुषीप्रबाहं प्रतिश्लिषोक्तम् ।  
निर्गमि कौशेयमुपासबाणमग्नेयनेपध्यमर्लनकार ॥—कुमार ७१६ ७
४. बैलिए पादटिप्पनी नं ३ म —कुमार ७१७
५. बैलिए, पादटिप्पनी नं ३ में —कुमार ७१६ ( पतिपुत्रवत् )  
ता कोप्रकम्पेन हृतायनेकमास्यानरातेयकताङ्गुपयाम् ।  
बासो बसन्ताममिणेकमोयं नार्यदवतुष्कामिमुलं व्यनैपु ॥—कुमार ७१८
- नोट 'बास'—रात्रि शीत बास को कमर में जोसते हुंने । बाण रात्रि बाति का प्रतीक है ।

सा । मंगल बेरी पर आसन बिछा कर कन्या को बिठाकर मंगल, चन्दन के घूम से बाक मुहाकर बालों में फूल गूँथ दिए जाते थे । झूठा बनाकर बूँद में पिरोई पीसे महुए के फूलों की माला झूड़े पर लपेट दी जाती थी<sup>१</sup> । शरीर पर स्नेह जगद का बना मंगराम लगाकर गीरोचन से शरीर पर चित्रकारी ( पत्र-रचना ) की जाती थी<sup>२</sup> । कपोल पर कोमल पराग लगा कर गीरोचन से पत्र-सेला बनाई जाती थी<sup>३</sup> । कानों में बबलकुर पहना दिए<sup>४</sup> जाते थे । चरणों में महाभर<sup>५</sup> आँखों में काचक<sup>६</sup> डोस्टों पर लमछी<sup>७</sup> लगाकर सुवर्ण चाँदी और मोतियों आदि के महुने पहना दिए जाते थे<sup>८</sup> । माथे पर हरताक और मैनसिल का तिलक लगा दिया जाता था<sup>९</sup> ।

कौतुकहस्त सूत्र—कौतुकहस्त सूत्र को जायनिक काल में कंपन कहते हैं । कामिद्राम ने रघुवंश में विवाहकौतुक<sup>१०</sup> और ऊनवक्ष्य<sup>११</sup> छन्द का प्रयोग किया है परन्तु यह कब बीचा जाता था इसको नहीं बताया । कुमारसंभव में भी विवाह वाले दिन पावती को माँ के हाथ में ऊर्णमय कौतुकहस्त सूत्र<sup>१२</sup> पहनवाते हैं । बर-बधू दोनों के हाथों में यह सूत्र बीचा जाता था<sup>१३</sup> ।

- १ धूपोष्मया त्वाजितमाश्रयानं केघान्तमन्त्रं कुमुम तृतीयम् ।  
पर्याश्रितकाञ्चिदुदारवन्धं ब्रूयन्तिता वाङ्मयपूजयन्ता ॥—कुमार ७।१४
- २ विन्यस्तं युक्तानुगुणं चक्ररेण गीरोचनपत्रचित्रमस्तमस्या ।—कुमार ७।१५
- ३ कर्णापिण्डो कोमलकपायन्तो गागेचनलोपनिशान्तवीर ।  
तस्या कपोले परमजगलमाश्रयन्धं चतुर्षु भवप्ररोह ॥—कुमार ७।१७
- ४ रेक्षितं पात्रपिण्डौ नं० ३
- ५ सा रंजयित्वा चरणी कटाटीमस्मिन् तां निवर्जयन् वसान ।—कुमार० ७।१९
- ६ न चतुषोः कामिद्रियेषु बुद्ध्या काकाजिनं मगलमित्युपात्तम् ।—कुमार० ७।२०
- ७ रेखाविमक्तां सुविमक्तमाभ्यां किञ्चिन्मधूञ्जितमिष्टमिष्टगम ।—कुमार० ७।२८
- ८ मा सम्मदद्भिः कुमुदेकत्रेण ओतितमिरस्त्रिद्विरिष विवाया ।  
सरिद्रिहरीरिष श्रीममानीरामुच्यमानामरणा चकामे ॥—कुमार० ७।२१
- ९ अषांमुक्तिभ्यां हरिताम्रमात्रं भाग्यमाश्रय मन्त्रविद्यां च ... ।—कुमार ७।२३  
—तमेव मेना बुद्धिः कर्त्तव्यविवाहरीतातिलकं चकार ॥—कुमार ७।२४
- १० अथ तस्य विवाहकौतुकं लक्षितं विभ्रत एव पाचिव ।—रघु० ८।१
- ११ तस्या स्तुष्टे मनुजगतिना माह्वयसि हस्ते  
मायस्यापचितिनि पुरं पावकस्योज्ज्वलस्य ।—रघु० १९।८७
- १२ चार्मगुलीभिः प्रतिभाषमाषमूर्णमयं कौतुकहस्तमूषम् ।—कुमार० ७।२५
- १३ अथमुनिवर्गपरं कथं नु ते करोम्यमायुषतविवाहकौतुकं ।  
चरेथ तामोर्वकपीकृताहिना मद्दिव्यते तत्प्रथमावसम्भनम् ॥—कुमार० २।६६



समाया जाता था<sup>१</sup>। साधारणतः गृहस्थ लोग केवल अपना घर और मासपास का स्थान सजा लेते हुये।

**घमू-शृंगार और वैवाहिक वेशभूषा**—कन्यापस के सभी सम्बन्धी-गण कन्या को बाड़ीबाहिर बेते और गोप में बिठा कर कोई-न-कोई आभूषण दिया करते थे<sup>२</sup>।

**स्नापन परिष्ठापन**—निवाहवाले दिन प्रातःकाक ही से कन्या का श्रृंगार प्रारम्भ हो जाता था। पति और पुत्रवती स्त्रियाँ कन्या का श्वेत छपप और दूर्वा के बंधुरों से श्रृंगार करती थी<sup>३</sup>। उत्पत्त्यात् 'निर्गमि कौशेय' पहनाकर बाल सोंस दिया जाता था<sup>४</sup>। सौभाग्यवती और पुत्रवती स्त्रियाँ कन्या के शरीर पर छने ठेक को शोध की कुकनी से मुखाकर सुगन्धित द्रव्यों से यक्ष अंगराम कराती थी<sup>५</sup>। इसके पश्चात् उसको स्नान के लिए ले जाया जाता था। स्नान के लिए पुष्प वस्त्र दिया जाता था<sup>६</sup>।

बौकी पर कन्या को बिछा कर पाटे-बजाते हुए कन्या को गहना दिया जाता था<sup>७</sup>। स्नान के पश्चात् पूज को ओर कन्या का मुख कर वैवाहिक-शृंगार होता

१. सन्तानकाकीर्णमहापथं तन्वीनायुक्ते कल्पितकेयुमासम् ।  
मासोन्मत्तकाञ्चनतोयपालो स्वानाम्तरं स्वर्ग इवावभासे ॥—कुमार ७१३
२. अकाशयार्चकमुदीरिताक्षी सा मन्थनान्मध्यममन्थयन्त ॥—कुमार० ७१६
३. मैत्रेमुहूर्तं पञ्चमाङ्गमेव धीमं कृतासूतरकसुलोपः ।  
तस्याः शरीरे प्रतिक्रम चतुर्ध्वस्त्रियो वा पतिपुत्रवत्य ॥  
सा भीरुसिद्धार्धनिवेशवद्रिपुत्राप्रवर्त्तते प्रतिमिन्नसोमम् ।  
निर्गमि कौशेयमुपासवानमम्यवनेपथ्यमर्चयन्त ॥—कुमार ७१७
४. देखिए, पारम्प्यिषी नं ३ में —कुमार ७१७
५. देखिए, पारम्प्यिषी नं ३ में —कुमार० ७१६ ( पतिपुत्रवत्य )  
सा भीमप्रकम्पेन हृतागतीकमाश्रयानकालेयकताञ्जलयाम् ।  
बासो वसानामभियक्योर्ध्वं गम्यन्नुप्यद्रिमिमुलं ध्वनिपुः ॥—कुमार ७१८
- नोट 'वाच'—सशिव लोग वाच को कमर में बाँधती होने। वाच सशिव वाति का प्रतीक है।

या । मंगल बेदी पर आसन बिछा कर कन्या की बिठाकर अयस्क, अन्न के धूम से बाछ सुलाकर बालों में फूँक गूँथ दिए जाते थे । अङ्गा बगाकर दूध में पिरोई पीसि महुए के फूलों की माछा अङ्गे पर कपेट की जाती थी<sup>१</sup> । खरीर पर खट अंगर का बना अंगराय लगाकर गोरोकम से खरीर पर चित्रकारी ( पत्र-रचना ) की जाती थी<sup>२</sup> । कपोल पर ओझ परान लगा कर गोरोकम से पत्र-लेखा बनाई जाती थी<sup>३</sup> । कानों में यशोदुर पहना दिए जाते थे । बरगों में महावर<sup>४</sup> बीजों में काजल<sup>५</sup> होंत्रों पर खाली<sup>६</sup> लगाकर सुनघ चाँदी और मोतिया आदि के महुने पहना दिए जाते थे<sup>७</sup> । माथे पर हरलाक और मैनसिख का तिछक लगा दिया जाता था<sup>८</sup> ।

कौतुकहस्त सूत्र—कौतुकहस्त सूत्र की बाधुनिक काल में कबन कहते हैं । कामिबाध ने रघुवंश में विवाहकौतुक<sup>९</sup> और ऊनबन्ध<sup>१०</sup> छन्द का प्रयोग किया है । परन्तु यह सब बीधा जाता था इसको नहीं बताया । कुमारसंभव में भी विवाह नामे दिन पावती को माँ के हाथ से ऊनबन्ध कौतुकहस्त सूत्र<sup>११</sup> पहनावते हैं । बर-बधू दोनों के हाथों में यह सूत्र बीधा जाता था<sup>१२</sup> ।

१ धूपोष्मणा रपावितमाश्रमा नैषान्तमन्त्रं कुसुमं तथीयम् ।

पर्वसिपत्काचिदुवारबन्धं दूर्वाविता पाशमञ्जुकान्ता ॥—कुमार ७।१४

२ विष्मस्तं शुक्लमगुहं अङ्गुरं योरोचनापत्रविभक्तमस्या ।—कुमार ७।१५

३ कर्मापिचो कौम्यक्यायकने पागेचनायेपलितान्तगौरे ।

तस्या कपोले परमागलमाश्रबन्धं असूयि मन्त्रप्ररोह ॥—कुमार ७।१७

४ रेखिए, पावटिप्पकी नं० ३

५ सा रंजयित्वा बरणी कृताशीमस्त्रेन तां निबन्धनं अयान् ।—कुमार ७।१९

६ न असूयो कामिबिद्येयबुद्ध्या बालाजनं ममलक्ष्मिपुत्राय ।—कुमार ७।२०

७ रेखाविभक्तं सुविभक्तमास्यां द्विचित्रमङ्गुलिच्छदविमुष्टरागं ।—कुमार ७।१८

८ सा सन्मन्त्रि कुमुमेकतेव व्योतिमिरस्यद्विरिव विषामा ।

सरिद्रिह्वैरिव सीयमानैरामुष्यमानाभरणा चकले ॥—कुमार ७।२१

९ अवागुन्मिमां हरितामसां मातस्यमाशय मन्त्रिणां च ॥—कुमार ७।२३

—तमेव मेवा बुद्धिं कर्त्तव्यिवाहृदीतातिलकं चकार ॥—कुमार ७।२४

१ अथ तस्य विवाहकौतुकं अस्मिन् विभक्त एव पाविनः ।—रघु ८।१

११ तस्या सगुहं मनुजयतिना गाह्यययि हस्तै

मागस्याचविमयिनि पुरं पावकस्योच्छिद्यतस्य ।—रघु १९।७

१२ धाम्यगुलीनि प्रतिमायमाचमूर्णमयं कौतुकहस्तमूत्रम् ।—कुमार ७।२५

१३ अचम्युनिबन्धपरं कथं नु सं वरीज्यमायुतविवाहकौतुकं ।

करंय संमोचत्पीडिताहिना मज्जियते सत्यमाचममूत्रम् ॥—कुमार १।६६

**वैवाहिक वस्त्र**—वैवाहिक वस्त्र सोम के प्रयुक्त किए जाते थे<sup>१</sup>। कच्छत्त वस्त्र का भी उल्लेख है (कुमार० ४।१७)। सोम नवीन होता था। सफेद रंग का होता था। काशिरास ने उसकी सुकृता बन्नामा की सुकृता से व्यक्त की है (सोम केवाधिबिन्दुपाण्ड—अभि० ४।५)। उस पर कच्छत्त के बिन्दु पड़े रहते थे। प्रायः एक जोड़े सोम वस्त्र पहनाए जाते (परिमत्स्य श्रीमयुक्कम्—अभि० पृष्ठ १८)। वस्त्र पहनाने के साथ ही कन्या के हाथ में एक नवीन शर्पक बना दिया जाता था<sup>२</sup>। हाथ में शर्पक बचना उस समय का लोकाचार मान पड़ता है।

वैवाहिक सान्-सज्जा के पूरे हो जाने पर कुम्भ-रीति के अनुसार कन्या कुम्भ-देवताओं को प्रणाम करती थी। तत्पश्चात् अग्न्य सौम्याप्सवती स्त्रियों का<sup>३</sup>। स्त्रियाँ आजीर्णारि होती थीं कि 'पति का अन्वेषण प्रेम प्राप्त करें'<sup>४</sup>।

**वर-शृंगार तथा वेष्टनमूपा**—बन्धु की तरह वर के शरीर पर सितांगण<sup>५</sup> लगाया जाता था। हँस बुलूस वस्त्र पहनाया जाता था<sup>६</sup>। गाने पर हल्लाक का शिल्पक<sup>७</sup> छिर पर ब्रह्ममणि<sup>८</sup> शरीर पर लच्छ-लच्छ के आभूषण<sup>९</sup> घोसा दिया करते थे।

**बरात की शोभा**—वर के साथ उसके मित्र और बन्धुगण रहते थे<sup>१०</sup>। वर किसी सवारी पर धम्मवत्<sup>११</sup> हविनी<sup>१२</sup> पर जाता था। बिब भी बेल पर

१ श्रीरोचकसेन सफेदपुष्पा पर्याप्तबन्धेन धारयितवान्मा

नर्ग लक्ष्मीमनिवासिनी सा भूमो नमो दपणमारचयता ।—कुमार० ७।२६

२ वेक्षिण, पादटिण्णनी न० १

३ तामचित्ताम्यं कुच्छदेवताम्यं कुच्छप्रतिष्ठां प्रणमय्य मत्ता ।

अकारयत्कारमित्यवस्थां ब्रमेन पादवह्णं लतीगाम् ॥—कुमार० ७।२७

४ अर्धवितं प्रेम कजस्य परपुरित्युष्मते शामिरता स्म नम्रा ।—कुमार० ७।२८

५ बभूव मस्मैव सितामयवः कपालमेषामलसोपगम्भी ।

६ कलमयवः ॥—कुमार० ७।३२

बास्य वे । बाये-याये मंगल-पाश बजते रहते थे<sup>१</sup> । घर के ऊपर छत्र<sup>२</sup> रहता था बास्य-पाश चेंबर<sup>३</sup> हुआ करता था<sup>४</sup> । विवाह कराने के लिए पुरोहित घर पक्ष का ही रहता था<sup>५</sup> ।

घर-पक्ष का स्वागत—कन्या-पक्ष के लोग घर-पक्ष की आने बढ़कर मयबानी करते थे<sup>६</sup> और सबेरे हुए मकर में घर तथा उसके पक्ष के लोगों की प्रविष्टि करवाते थे<sup>७</sup> । मकर में भारत के प्रवेश करते ही स्त्रियाँ गंधाओं से भारत देखने लड़ पड़ती थीं<sup>८</sup> ।

मधुपर्क—कन्या-पक्ष के द्वार पर भारत के पहुँच जाने के पक्ष स्त्रियाँ छात्रमुष्टि<sup>९</sup> डालती थीं । घर को बाह्य से उतार कर सम्मान के साथ महल बजवा घर के अन्दर ले जाया जाता था<sup>१०</sup> । वहाँ घर को कन्या-पक्ष के पिता रत्न जप्य मधु, दही और नवभुज्य मधुपर्क-रूप में भेंट करते थे<sup>११</sup> । इसके पश्चात् कुछक पढ़ने हुए घर को कन्या के पास वैवाहिक-संस्कार के लिए ले जाते थे<sup>१२</sup> ।

विवाह-संस्कार—अग्नि-स्थापन<sup>१३</sup> और होम के पश्चात्, जैसा स्वयंवर

१ छत्रो मयै चूषमृत पुरोगैस्त्रीरितो मंगलपूषधीप ।—कुमार० ७१४०

२ उपारहे तस्य सहस्ररिमस्तुष्टा नवं निर्मितमातपणम् ।—कुमार० ७१४१

३ मूर्ते च मगायमुने तत्रानी सजामरे वैवमसेविपाताम् ।—कुमार० ७१४२

४ विवाहपक्षे विद्यते च पूषमज्यपण पूषवृत्ता मयेति ।—कुमार ७१४३

५ तमुष्टिमश्चम्बुजनाधिकैर्बु न्नीयमाना विरिचक्यते ।

प्रमुञ्जमानागमनमतीत प्रफुल्लवृक्षे कटुकैरिव स्व ॥—कुमार० ७१४२

६ स प्रीतिपोमात्रि कसम्बुजधीर्जानापुरसेसरामुपेतम् ।

प्रान्तेममन्मन्दिरमृद्धमेगमासुस्तुकीर्जानमापणम् ॥—कुमार० ७१४५

७ तस्मिन्मुहूर्ते पुरमुञ्चरीजामीशानसदृशनकाश्रयानाम् ।

प्रान्तावमासानु बभूवुरित्त्वं त्यक्तान्यकार्याणि विषष्टितानि ॥—कुमार० ७१४६

८ केयूरचूर्णैर्हृतसात्रमुष्टिं हिमाश्रयस्याश्रयमाससाय ।—कुमार० ७१४६

९ तत्रावलीयैश्च्युतवत्तहस्त धरव्यनाहीयितिमानीबोलेष ।

कान्तानि पूष कमलाशनेन कस्यान्तराष्यप्रिपठेर्विषेध ॥—कुमार० ७१७

१० तत्रैवरो विष्टराम्यपावत्सरत्नमर्घ्य मधुमज्ज गण्यम् ।

नवे हुनूते च नगीपनीतं प्रत्यङ्गहीलानममग्गवजम् ॥—कुमार० ७१७२

११ कुम्भपाशो स बपुसमीधं त्रिन्ये विनीतैरनरोपहरी ।—कुमार ७१७३

१२ प्रशप्रिप्यक्रमणात्कथानीदृशविपस्तम्बिबुनं चकाले ॥—कुमार० ७१७५

**वैवाहिक वस्त्र**—वैवाहिक वस्त्र शीम के प्रयुक्त किए जाते थे<sup>१</sup>। कच्छसंस्कृत का भी उल्लेख है (कुमार० ५।१७)। शोध नवीन होता था। सखेय रंग का होता था। काष्ठिवास ने उसको बुनकरा चन्द्रमा की बुनकरा से व्यक्त की है (श्रीमं केनाचिदिनुपाण्ड—वमि ४।१५)। उस पर कच्छसंस्कृत के चिह्न पड़े रहते थे। प्रायः एक बाड़े शीम वस्त्र पहनाए जाते (परिधत्तव्यं शीमयुगलम्—वमि० पृष्ठ १८)। वस्त्र पहनाने के साथ ही कन्या के हाथ में एक नवीन वपन बना दिया जाता था<sup>२</sup>। हाथ में वपन पहना उस समय का शोकाचार मान पड़ता है।

वैवाहिक साज-सज्जा के पूरे हो जाने पर कुल-रीति के अनुसार कन्या कुल-देवताओं को प्रणाम करती थी। उत्पत्तवात् अस्य श्रीमाम्पत्नी स्त्रियों को<sup>३</sup>। स्त्रियाँ आम्नीर्वादि देती थी कि 'पति का जलपत्र प्रेम प्राप्त करो'<sup>४</sup>।

**वर शृंगार तथा वेल्लभूपा**—बच्ची तरह वर के शरीर पर सितावस्त्र<sup>५</sup> लगाया जाता था। हंस बुकूक वस्त्र पहनाया जाता था<sup>६</sup>। माने पर हस्तक का टिक्का<sup>७</sup> सिर पर चूड़ामणि<sup>८</sup> शरीर पर तरङ्ग-तरङ्ग<sup>९</sup>। आभूषण<sup>१०</sup> घोभा दिया करते थे।

**बरात की शोभा**—वर के साथ उसके मित्र और बन्धुव्य रहते थे<sup>१</sup>। वर किसी सबाटी पर सम्मनित<sup>२</sup> हूँचिनी<sup>३</sup> पर जाता था। तब की बैर पर

१. श्रीरोहदेवैव सकेतपुत्रा पर्याप्तचन्द्रेव शरत्त्रियामा

नरं नवश्रीमनिवादिनी सा मूढा नवीं वर्णनमावधाना ।—कुमार ७।२९

२. देविण्ड, पाण्डिपनी नं १

३. तामचिदाम्यं कुलदेवताम्यं कुलप्रतिष्ठां प्रणमय्य माता ।

मकारयत्कारयितुम्वरणा क्रमेण पारग्रहणं शरीरान् ॥—कुमार० ७।२७

४. अक्षरितं प्रमं जमस्व पत्नुरित्युच्यते तामिदमा स्म नम्रा ।—कुमार ७।२८

५. बभूव मस्मैव सितांगरागं कपलमेवामलसेपरशी ।

उपाशमावेपु च रोचनाको गजजिमस्मैव बुकूकमात्र ॥—कुमार ७।३१

बास्व बे । जाने-जाने मंगल-वाद्य बजते रहते थे<sup>१</sup> । घर के ऊपर छत्र<sup>२</sup> रक्ता  
या बास-वास चैत्र<sup>३</sup> झुकाए जाते थे । विवाह कराने के लिए पुरोहित घर  
जा का ही रहता था<sup>४</sup> ।

घर-पक्ष का स्वागत—कन्या-पक्ष के लोग घर-पक्ष की मागे बढ़कर  
मनबानी करते थे<sup>५</sup> और सजे हुए नगर में घर तथा उसके पक्ष के कोमों को  
प्रविष्ट करवाते थे<sup>६</sup> । नगर में बारात के प्रवेश करते ही स्त्रियाँ गवाशों से बारात  
देखने ढोड़ पड़ती थीं<sup>७</sup> ।

मधुपर्क—कन्या-पक्ष के द्वार पर बारात के पहुँच जाने के पूर्व स्त्रियाँ  
लाजमुष्टि<sup>८</sup> डालती थीं । घर को बाह्य से उठार कर सम्मान के साथ महल  
जमा घर के अन्दर ले जाता था<sup>९</sup> । वहाँ घर को कन्या-पक्ष के पिता  
रत्न कर्ण मधु, रही और नवदुःख मधुपर्क-वप में भेंट करते थे<sup>१०</sup> । इसके पश्चात्  
दुःख पहने हुए घर को कन्या के पास वैवाहिक-संस्कार के लिए ले जाते थे<sup>११</sup> ।

विवाह-संस्कार—जपि-स्वायम्<sup>१२</sup> और होम के पश्चात् वैसा स्वयंवर

- १ छठी मर्षा दूधभृत पुरोगैस्वीरिती मयस्तूर्यबोप ।—कुमार० ७१४०
- २ उपदरे तस्य सहस्ररश्मिस्तपद्मा नभं निर्मितमातपत्रम् ।—कुमार ७१४१
- ३ मूर्ते च मगाममुने तदानीं सवामरे देवमक्षेपिस्ताम् ।—कुमार० ७१४२
- ४ विवाहयज्ञे विरुतेऽन धूममध्यमव पूजयुता भवेति ।—कुमार ७१४३
- ५ समृद्धिमद्बन्धुजनविबुधं श्रेयजानां गिरिचक्रवर्ती ।  
प्रसृज्जगामात्मनप्रतीतं प्रफलकवृत्ती कटकवि स्व ॥—कुमार० ७१४२
- ६ ॥ प्रीतियोगाद्विकसन्मुखश्रीर्बामानुरधेमरत्नामुपेत्य ।  
प्रवेशामम्भिरमृद्धमेनमागुष्ककीर्णारिणमार्गपुण्यम् ॥—कुमार ७१४४
- ७ तस्मिन्मुहूर्ते पुरमुन्वरीमाधीनानसंरक्षनभाक्मानाम् ।  
प्रमादमात्मानु बभूवुरित्थं त्यक्ताम्यकार्पाणि विचण्डितानि ॥—कुमार० ७१४५
- ८ केयूरचूर्णीवृत्तकावमुष्टिं हिमालयस्याब्जमासमानं ।—कुमार० ७१४६
- ९ तत्रावलीप्याम्बुतप्रहस्तं धारदपनाहीविस्तिमानिबोदय ।  
कान्तानि पूष कमलासनेन कम्पान्तराभ्यत्रिपतेर्विषय ॥—कुमार ७१७०
- १० तत्रेस्वरो विष्टरमाग्यवावत्सरत्नमध्य मधुमध्य वषट्म् ।  
नभे दुःखै च नमोऽर्पणीतं प्रत्यग्रहीन्मममग्नवज्रम् ॥—कुमार० ७१७२
- ११ दुःखममात्रा स बभूवमीर्य भियो विनीतैरवरोपयती ।—कुमार० ७१७३
- १२ प्रशमिप्रक्रमभाक्कथानोदशविपस्तगिबुनं चराते ॥—कुमार० ७१७६

विवाह में कहा है, पाणिग्रहण<sup>१</sup> होता था। इसके पश्चात् अग्नि प्रशमिषा<sup>२</sup>। जब अग्नि के तीन फेरे हो चुकते थे तब बच्चे कावाहोम पुरोहित करवाते थे<sup>३</sup>। कावाहोम का ब्रह्म बच्चे सूँघती थी<sup>४</sup>। यही अग्नि विवाह की साक्षी समझी जाती थी। पुरोहित कन्या से कहता था कि हे बत्ते! यह अग्नि तुम्हारे विवाह की साक्षी है, आज से तुम सब प्रकार की लंका छोड़ कर पति के साथ धार्मिक कृत्य करना<sup>५</sup>।

विवाह-संस्कार के पश्चात् की क्रियाएँ और सोकाचार

(अ) ध्रुवदर्शन<sup>६</sup>—वर कन्या को ध्रुवतारे की ओर देखने को कहता था। इसका अन्तम यह था कि तुम ध्रुवतारे की तरह अपने पति के प्रति उन मन बन से सच्ची तथा अटक रहो।

(ब) आर्द्राक्षतारोपण<sup>७</sup>—विवाह-संस्कार के पश्चात् वर-कन्या अन्तर बौक म साथ बैठते थे और वहाँ दोनों पर सम्बन्धीगण और इष्टमित्र गीठे ब्रह्मरु छिड़कते थे। सम्मन्वित मनोविनाश के लिए नाटक अभिनय आदि भी बना जाता था<sup>८</sup>।

कौतुक गृह<sup>९</sup>—विवाह के पश्चात् विधायक और सयनाथ वर-कन्या एक कमरे में पहुँचा दिए जाते थे। वहाँ सेव सिद्धी रहती थी कच्छ मरु बग रहता

१ तस्या करं सैरुमुक्ष्यनीलं बध्राह ताभ्रायुक्षिण्टमूर्ति ।

उमास्तनो दूकृतनी स्मरस्म लब्धकिन पूर्वमिव प्रयेहम् ॥—कुमार ७।७९

—रौमोद्भम प्रादुरमूर्दुमाया स्निग्धानुक्ति पुंगवकमुपसीत् ।

भूतिस्तया पाणिप्रभापयन सम विमक्तेन मनोमयस्व ॥—कुमार ७।७७

२ दक्षिण, पिछले पृष्ठ को पारद्विषयी नं १२

३ स कारमामास बच्चे पुरोनास्तस्मिन्समिद्धाक्षिणि काजमोसम् ॥—कुमार ७।८

४ सा काजभूमिद्विनिपटगन्धं मुकगवैसाह्मर्गं निनाय ॥—कुमार ७।८१

५ बम्बु दिन प्राह तस्यैव बत्ते बह्निर्विवाहं प्रति कर्मगात्री ।

सिधेन भर्ता महु बर्मभर्ता कार्वा तया मुक्तविचारयेति ॥—कुमार ७।८२

६ ध्रुवेष भर्ता ध्रुववचनाय प्रमुग्धमाना प्रियरक्षिण ।

सा वृष्ट इत्यननमुत्तममध्य ह्रीसम्पदंटी कयमप्यथाच ॥—कुमार ७।८४

७ आमापती लौकिकमेधनोयमाद्राक्षतारोपणमन्त्रमूढाम् ॥—कुमार ७।८८

वा । संक्षेप में बौध्दगृह उस कमरे को या घर को कहा जा सकता है जहाँ नर न्यू जाकर अपनी सुहागराज मगाते हैं ।

काम-कीड़ा—रति के प्रधान तीनों अंगों का (आतिथ्य, पुम्बन एवं संयोग) कवि ने सम्यक् विवेचन किया है । नई ब्याही नरु का भगाने हुए पति के निकट जाना और पति का प्रारम्भ में सद्य रति का प्रथम लेना जिससे कि वह बचराए नहीं पति का न्यू के द्वारा बाधित होने पर भी अगरे रस का तृप्ति के साथ पीना बीरे-बीरे मन्मथ रस के ज्ञात हो जाने पर न्यू को रतिपुस्योन्मत्ता का विमुक्त हो जाना छप्पयान् निरुपरति—केलों का अस्त-व्यस्त हो जाना अथर का नाद ईशम मलयस्र से छपीर नर जाना आदि आदि प्रत्येक बात का कवि की कविता में पूरा उल्लेख है<sup>१</sup> ।

### गान्धर्व विवाह

गान्धर्व विवाह प्रेम-विवाह का । इसमें किसी प्रकार का कोई सत्कार नहीं होता था । नर-कन्या आप ही एकान्त में अपना विवाह निरविश कर लेते थे । माता-पिता अथवा गुरुजनों की कोई सम्मति नहीं लेता था<sup>२</sup> ।

इस प्रकार के विवाह में काम-भावनाओं की सम्पुष्टि ही प्रधान उद्देश्य थी । बाधम मान में काम हो जाता था अतः बाध में अपनी भूल मानूम होने पर क्षमाचार होता था<sup>३</sup> । गुरुजन भी इसे अच्छा नहीं समझते थे और इस प्रकार के विवाह की निन्दा करते थे । शकुन्तला ने गान्धर्व विवाह पर गीतमी और चारंगरथ ने उसे पटकाया था कि विशा सोने-ममल का काम किया जाता है उससे ऐसा ही कुछ मिलता है । मुष्ट प्रेम बहुत ममल-भूम कर करना चाहिए । किसी अपरिचित के साथ बिना उमर स्वभाव आदि को समझे हुए यदि विवहा की जाती है तो वह छत्रुता ही बन जाती है<sup>४</sup> । अन दीक्षवती कन्याएँ अपनी

१ विधेय विवरण के लिए देखिए परिणिच्छ २ कामिनाय के समय में काम भावना के अन्तर्गत प्रथम-मिच्छन तथा रति प्रीति ।

२. मानेचितो गुरुजनामया त्वया पट्टा न क्षुब्धः ।

एवैवमथ चरिते मयापि किमेकमवश्य ॥—अभि० १।१९

३ कि वयकायेतो नम प्रति विमुक्ता कृतावता ।—अभि० १।१८

—मुष्टु तावदथ स्वच्छन्दचारिणी इत्यस्मि याद्वयस्य

पुरवैगप्रत्ययेन मुगमचोद्वयसिपुविषयस्य इत्यस्मात्तामुपमया ।

—अभि० अंक १ पृ० ६२

४ अभि० १।२४ पूर्वोक्तेय



इच्छा के अनुसार रूप और मुन बाड़े दर को चुनकर भी विवाह के लिए पिता की आज्ञा के बिना चाहती है जिससे कोई भूठ न हो<sup>१</sup> ।

संस्कृतका के पूर्व भी गंधर्व विवाह हुए थे ऐसा दुष्पन्त ने कहा अवश्य है—

पान्थर्वेन विवाहेन बह्वृषो राजर्षिकस्यका ।

भूयन्ते परिबीतास्ताः पितृमित्राभिनन्विताः<sup>२</sup> ॥

परन्तु किसी अन्य का कहीं प्रसंग न मिलने के कारण सम्भव है कि दुष्पन्त ने उसकी राखी करने के लिए हो अपने स्वाचरस कह दिया हो ।

यदि माता-पिता न स्वीकार करें तो सम्भवतः उसकी अधिकार या कि वे किसी अन्य के साथ अपनी कन्या का विवाह करें । यह माता-पिता की इच्छा पर या कि स्वीकार करें और अनुमति दें अवकाश नहीं<sup>३</sup> ।

### आसुर विवाह<sup>४</sup>

विस्तार से इसका संक्षिप्त काश्मिरास ने कही दिया ही नहीं है । एक स्थान

१ श्री सामिन्मपापि पुरोरनुतां बीरेण कन्या पितुराचकाञ्च ।—रघु ३।१८

२ अमि० ३।२१

३ बकाञ्चनप्रवृत्ता कन्या मन्वेर्यहि न संवृता ।

अन्यस्मिं विविक्तेष्वेवा यथा कन्या तथैव सा ॥—वसिष्ठ १७-७१

यदि कन्या के इच्छानुसार लड़का उसके साथ सम्मान करे ( गान्धर्व विवाह ) तो पिता को बन्ध-स्वरूप यदि वह चुमना चाहे तो देना हाया । मेवातिवि का कहना है यदि पिता न चाहे तो राजा को बन्ध-स्वरूप चुमना दे कि कड़की उसे दे बी भाय । यदि कड़की उसे ( दर ) न चाहे तो उसका विवाह अवश्य किया जा सकता है, यदि लड़का उसे स्वीकार न करे तब भी उसका विवाह अवश्य होना जरूरी—

अनुवचन काकोत्तरं गांधर्वः । प्रागृतो भुङ्क्ते बन्धो वा ।

अथ कन्यायाः का प्रतिपत्तिः । तस्मा एव देवा ।

मित्रतामिच्छाया चेत्यापमन्थ्य प्रतिपाद्या । ...

दरप्रेमिन्मृताभिभाषी हृदयं प्राप्नुवितव्यः । ....

—मनु० ८ ३११ ३१७ ( मेवातिवि की टीका )

... की ओर नेपास में अब भी प्रचलित

पर 'इहियु दूष्क संख्या'<sup>१</sup> से अनुमान किया जा सकता है कि कानिम्बल के समय में इस प्रकार के विवाह का प्रचार रहा होगा। इस प्रकार के विवाह में नर कन्या के अमिताभक पिता आदि को उनके द्वारा मर्गा हुआ बन देकर ही लड़की के साथ विवाह कर सकता है।

**बधू-अस्थान**—विवाह के पश्चात् नर स्नान के नर एक मास तक रहता था<sup>२</sup> पर अपने हस्तानुसार चाहे तो बन्दी भी कर सकता होगा। अब हनुमती के नर कितना रहा कहा नहीं जा सकता। हाँ सिक्की अबस्य एक मास रहे थे।

**मधुमासिनी (हनीमूम)** मनाने के छिय नवम्यति सुन्दर प्रकृतिक प्रदेशों में जाते थे<sup>३</sup>। माता-पिता अपनी कन्या को इतना प्यार करते हैं कि सन भर के लिए भी उनको अपने से पृथक् रहना नहीं चाहते। यह सोचते ही कि भाग कन्या बली जाएगी हृदय उदास तथा आँसुओं से कण्ठ पड़ हो जाता है। मुँह से शब्द नहीं निकलते। स्वयं कन्या को बनवाती और त्यागी से उदास होकर कहते हैं कि अब मुझ बनवासी को इतनी व्यथा हा रही है तब उन गृहस्त्री

हैं। इस बीच में दोनों साथ रहते हैं। कन्या अपने माँ-बाप से अलग रहता है। वह अपने जीविका-निर्वाह के बाव भी अपने लड़की के माँ-बाप को हर महीने सारी ज़िम्मेगी कुछ-न-कुछ भेजता रहता है। इसी बीच में वे दोनों निश्चय करते हैं कि इसको विवाह करना है कि नहीं। यदि लड़की नर्मवती भी हो चाप उस भी नहीं। तत्पश्चात् दोनों एक दिन लड़की के माँ-बाप के पास जाकर कह देते हैं कि हमारा विवाह कर दो। यदि दोनों का विवाह अस्वीकार ही उस भी कोई बात नहीं पर लड़की पनवती न हो। लड़का लड़की को माँ के नर छोड़ आवेगा। ऐसा अच्छा ही रहता है। वहाँ चाहे कभी माँ की किसी स्त्री के साथ साथ बच्चे भी हों उस भी कोई पुरुष चाहे ता उसने पति को कितना वह कहे, हर्जाना देकर उस स्त्री को से जा सकता है और बच्चे बाप के साथ रहेंगे माँ के साथ नहीं आएंगे। यदि नर कन्या को देखने बाव और कन्या को मना कर दे कि मुझे पसन्द नहीं है और उसकी छोटी बहिन तैयार हो चाप तो नर माँ-बाप और बड़ी बहिन दोनों का हर्जाना देना।

१. रघु० ११।३८

२. एषमिन्द्रियमुद्यस्य बलमन मेवनाश्रयुपशीलमम्यथ ।

पौनराज्यमने सद्योमया मामपाश्रमवसदुपपन्न ॥—कुमार० ८।२०

३. कुमार० मग ८ श्लोक २ के पश्चात् ।

को कितना कष्ट होया जो पहले-पहल अपनी कन्या को दिया करते होंगे<sup>१</sup> परन्तु बिबाह पश्चात् कन्या को अपने पास रखने से सर्वत्र निष्ठा होती है। मनुष्य माना प्रकार की बातें कहा करते हैं। अतः बिबाह बाद पति पत्नी को बाहे बन्धा नहीं पर पत्नी का पति के घर में बाहे वह बायी के ही रूप में रहे रहना उचित समझा जाता था<sup>२</sup>। माता-पिता सङ्की को परमात्म ही समझते हैं। अतः पति के घर भेज कर ही उन्हें सच्ची शान्ति प्राप्त होती है<sup>३</sup>। अपनी कन्या के जीवन को पति के द्वारा भोगा जाता देखकर उन्हें संतोष होता है और जब वे देख केते हैं कि मेरी कन्या का पति उसे प्यार करता है उस वनका भी हल्का हो जाता है<sup>४</sup>। अतः कन्या को भी से प्यार करने पर ही वे घर के द्वारा इच्छा प्रकट किए जाने पर कन्या को उत्कलस बिबा कर देते हैं<sup>५</sup>।

बिबा के समय बधू को वेष्टमूपा—प्राप्त-काच बहुत कत्ती ही कन्या स्नान कर छेदी की<sup>६</sup>। उसके बाद उसकी सज्जिया उसका मंगल शृंगार करती थी<sup>७</sup>। मार्गसिक शृंगार के लिए मोरोचन तीर्णमृत्तिका पूर्वाङ्कितक्य केसर

- १ यास्यत्यद्य सङ्कुततेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कलया  
कठः स्तमितवल्ग्वनृत्तिकमुपशिक्षिताजहं दयनम् ।  
वैमल्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहाभरण्यीकृतं  
पीडयते पृथिव्यं कथं नु तनयानिदमेतद्-खेनैव ॥—अभि ४१६
- २ सतीमपि क्षातिकुनैकसंयया कनोऽप्यया भूतु मती विचकते ।  
अतः समीपे परिणतुरिष्यते प्रियाप्रिया वा प्रमथा स्ववन्धुमि ॥—अभि ४१७  
—उदैपा मवन्त कास्ता त्यज बीना मृहाय वा ।
- उत्पलना हि वारेयु प्रभुता सवतीमुनी ॥—अभि ४१२९
- ३ बर्धो हि कन्या परकीय एव तामद्य संग्रेष्य परिवृहीनु ।  
जातो ममार्थं विषयः प्रकाशं प्रत्यर्पितम्यास इयान्तराया ॥—अभि० ४१२२
- ४ नीलकण्ठपरिमुस्तयौमला ता विलोम्य वननी समाससत् ।  
भूतु वस्तुमयया हि जालसी मालुरस्यति धुवं बधूकम् ॥—कुमार० ८१२२
- ५ सोऽनुमान्य हिमवन्तमात्मभूरात्मजाविशुद्धपतेरितम् ।  
तत्र-तत्र बिबाह्यार संपतन्प्रमेययतिना वक्ष्यता ॥—कुमार ८१२१

मासिका धूम सामग्री थी<sup>१</sup>। चरणों में महावर<sup>२</sup> और शरीर के अंगों में आम्रपत्र<sup>३</sup> धोमायमान रहते थे। वस्त्र में शोभयुक्त<sup>४</sup> का प्रयोग होता था। इसके ऊपर सत्तरीय भी रहता था। इसी का अवगुंठन समयानुसार प्रयुक्त किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व की प्रथा न रहने पर भी गुरुजनों के सम्मुख पति के सम्मुख स्त्रियाँ मुख नहीं झोकती थी<sup>५</sup>।

विदा के समय की कुछ-रीसियाँ—विदा के समय घर के सभी गुरुजन कन्या को आशीर्वाद देते थे। आशीर्वाद में प्रायः पति के उत्पन्न भ्रम का प्राप्ति करते<sup>६</sup> 'अर्चोर्द्धि प्रेम समस्त' (कमार ७२८) 'बल्ले मनु बहुमानमूचकं महादेवी शत्रुं समस्त' (अभि० अंक ४ पृ० ६६) तथा यदि बहु मन्त्रवती होनी तो 'वीर्यसन्निवी भव'<sup>७</sup> आशीर्वाद दिया जाता था। वस्तु से पूव सद्योक्ति से मुक्त अग्नि की प्रवर्तिता कन्या करती थी<sup>८</sup>। कन्या का माग दत्त्यापवारी हो ऐसी ही धूमकामना और आशीर्वाद दिया जाता था<sup>९</sup>।

कन्या को पहुँचाने उनके सम्बन्धी कुछ दूर तक जात थे। इन्दुमती को पहुँचाने विदर्भराज गए थे<sup>१०</sup>। कन्य और शकुन्तला की सन्धियाँ भी शकुन्तला की विदा के समय कुछ दूर तक पहुँचाने गई थी। ममकत जलापय तक प्रिय जनों को विदा करने के लिए सम्बन्धी-जन जाया करते थे<sup>११</sup>।

१ अभि० अंक ४ पृ० ६४      २ अभि० ४१६      ३ अभि० ४१६

४ इन्दुपांडुरवा शोभ—शोभ सङ्केत का विदा के समय प्रयोग ।—अभि० ४१६

५ अफज्यामि तावत्तज्जगुंठनम् तत्तस्या भर्ताग्निश्राम्यति ।

—अभि० अंक ३ पृ० ८८

६ मनुबहुमता भव—अभि० ४१७ अंक ४ पृ० ६६

७ अभि० अंक ४ पृ० ६६

८ बल्ले इत सद्योहुताग्नीग्रहसिद्धीकृत्य —अभि० अंक ४ पृ० ६६

९ अनुमत्तमना शकुन्तला सन्धिरियं वनवासवन्धुनि ।

परमृतविरक्तं कर्म यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदुताम् ॥

रम्याभार कमलिनीहरीलं सरामिरत्नायात्रुमीनिधमिताकमयून्तर ।

मृपात्कृद्येष्टारजोमृदुरेष्टुरस्या दाम्नामुक्कुरवगवत्तं त्रिवरत्नं पया ॥

—अभि० ४११० ११

१० पूर्वोत्सेग

११ यवजोदवान्तं म्निग्धो जनीज्जुयस्तथ्य इति धूयत ।

तद्विं मरस्तीरम् अत्र संविध्यं प्रतिगन्तुमर्हसि ।—अभि० अंक ४ पृ० ७१

अविवाहिता लङ्किक्यां सख ययह बीर सब स्थानों पर गहीं जाती थीं इसी कारण सकृन्तका के कहने पर कि ये यहीं से लौट चार्ययी कन्य ने कहा था कि हाँ इनका भी विवाह होला है<sup>१</sup> ।

कन्या की विवाह हामी पर नी जाती थी<sup>२</sup> या पाण्की में भी बिठ कर उसे भेज दिया था । यह पाण्की बार मनुष्य छठते थे<sup>३</sup> ।

ऐसा प्रतीत होता है कि कन्या एक बार जाकर फिर पिता के घर नहीं लौटती थी । विवाह के समय जब सकृन्तका पिता से पूछती है कि जब इस जन्म के वर्त्तन कम होंगे ? तो ये यही कहते हैं कि 'वागप्रस्थ में पुत्र के ऊपर पत्न्य मार छोड़ कर ही पुन इस जन्म में आ पाओगी<sup>४</sup> ।

पिता का पुत्री को उपदेष्टा—ममतामयी वात्सल्य की बोध में पत्नी तथा बुझती पुत्री के मविष्य के विषय में पिता को अपार चिन्ता रहती थी । कन्या को पति के हाथ में अर्पित करते हुए उसके हृदय में एक ही अभिलाषा रहती थी कि वह अन्य स्त्रियों की तरह इसका भी आचर करे । पति के प्रेम को प्राप्त करना ही पुत्री का सौभाग्य समझा जाता था अतः जिस प्रकार वह स्नेह को प्राप्त करने में समर्थ हो ऐसी ही कन्या भी सिखा-सीखा रहती थी । विवाह के समय पिता पुत्री को उपदेश देता था कि पति के घर पहुँच कर समस्त बुझनों का आचर करना उनकी सेवा-शुश्रूषा करना अपनी-जैसी पति की अन्य स्त्रियों को बहुत के समान समझना । अपने ऊपर अधिकार कर सेवाको के प्रति अनुदार न होना । पति के विरहकार करने पर भी उनकी विनुबता में भी प्रतिकूल आचरण मत करना अपनी पुत्री को अपनी सुगृहिणी बनाना ही पिता के उपदेश का सार था<sup>५</sup> ।

१ बल्ल इमे अपि प्रदेये । न युक्तमनवीस्तथ यन्मुम् ।—अभि अंक ४ पृ० ७-९

२ इयं च तेज्या पुरतो विदग्धना बहुभ्या बारणराज्यार्थया ।—कमार० ११७०

३ मनुष्यबार्ह्यं चतुरस्रयाममध्यास्य कन्या परिवारयोमि ।

विशेष मन्त्रान्तराजमार्थं पतिवरं कल्पयित्वाह्वयेता ॥—रघु ९११

४ भूत्वा चिरम चतुरस्रमहोसपत्नी शौचस्त्रिमप्रतिरथं तदर्थं निवेद्य ।

अर्था उत्तरिच्छृङ्खलमरेण सार्धं शान्ते करिष्यसि एवं पुनराश्रयैः प्रीयम् ॥

कन्या की विदा के समय सपहार और आज़ीबाद (ठहरे) — अपनी सामर्थ्य के अनुसार बन सुवर्ण रत्न आभूषण वस्त्र दना उस समय भी प्रचलित था। विदमराज अपनी बहन हनुमती के विवाह के पश्चात् मन्त्र को अपनी सामर्थ्य के अनुसार बन देकर विदा करता है<sup>१</sup>। स्वयंवर में आए रामा भी भेंट देते थे<sup>२</sup>। कुमारसम्मान में भी विवाह से पूर्व सुवर्ण रत्न और सुवर्ण-भूषणों से पावती सजाई जाती है<sup>३</sup>। पावती का परिवार की सभी स्त्रियाँ मही और आधीरात होती हैं<sup>४</sup>। दक्षिणका की विदा के समय भी—

सौम केनचिचिन्नुपांशुतस्वा मायव्याविष्कृत  
निष्ठपूतत्परणोपभोगसुकमा साधारस केनचिन् ।

अन्येभ्यो वनदेवताकरतर्करापवनागोत्थिन  
वत्तम्याभरणानि तत्पिसकम्योद्भेदप्रतिशन्तिभि ॥<sup>५</sup>

आज़ीबाद—पति के प्रेम को प्राप्त करना स्त्री का सीमांत था। इसी का आधोर्वासि सूक्त है।

( १ ) अक्षण्डितं प्रेम समस्त परम् ... ।<sup>६</sup>

( २ ) गर्जुबहुमानमूषक महारेवो यन्त्रं समस्त ।<sup>७</sup>

( ३ ) वन्दे मत्तु बहुमता मन्त्र ।<sup>८</sup>

१ भर्तापि तावत्कवचेतिवलाभमुच्छिद्यानन्तराविवाहः ।

सत्त्वानुसूपाहरणीकृतभी प्रस्तापयशाधनमन्त्राणां ॥—रघु० ७।३२

२ विदममामन्त्र्य यमुस्तरीयां प्रत्यप्य पुत्रामुपधाच्छमेन ॥—रघु० ७।३०

३ ता सम्पन्नान्नि शुभमैमतेष चोत्तिमिस्तद्भिर्गिरिजियामा ।

तर्पिहंरीरिष जीयमानैरामुष्यमागामरमा चक्रामे ॥—कुमार० ७।२१

४ अक्षयपावकमुदीरिताजो मा मण्डनामण्डनमन्त्रमुक्ता ।

सम्पन्नमिन्नोर्पि गिरे कुत्सस्य स्नेहस्तदरायतनं जगाम ॥—कुमार० ७।१६

५ अमि० ४।५

६ कुमार० ७।२८

७ अमि अक्ष ४ पृष्ठ ६५

८ अमि ४।३

छठा अध्याय

## गृहस्थ जीवन

वाम्पत्य जीवन—वाम्पत्य जीवन का मुख पति-पत्नी के प्रेम पर आधारित था। वाम्पत्य प्रेम का आदर्श रूप 'वक्त्रा वक्त्री वा। कवि 'रघोमनाम्नोरिव भान्वदन्धनम्' कह कर अपने हृदय का उच्चार व्यक्त कर बैठा है<sup>१</sup>। पति-पत्नी का अत्यन्त अधिक मुक्त-मिल जाना एक-दूसरे की बड़ाई करने में समुष्ट न होना अथ भर के लिए भी पुनः होने पर एक-दूसरे के लिए तड़पना बड़ा प्रेम का लक्षण था<sup>२</sup>। इस वाम्पत्य मुख में सम्यक् प्रेम बहुत मूल्यवान् बन जाती थी। दोनों का पारस्परिक प्रेम अथपि समान पर बैठ जाता था परन्तु इससे प्रेम में गहवाई जाती थी<sup>३</sup>।

वास्तविक जगत् में इन आदर्शों का कोप हो जाता था। जीवन में पर्वत विच्छेद पड़ता था वक्त्री भी और पतिव्रत तथा पत्नीव्रत निर्माना कठिन हो जाता था। कवि ने अनेक प्रसंगों में इसकी पुष्टि की है। पुरुष अपनी कामवाग्मना की पूर्ति के लिए विवाह-पर-विवाह करते जाते थे। दुप्यन्त पुरुषवा अग्निमि अग्नि सब इसके प्रमाण हैं। रघुवंशी अग्निवध की कानवासना-मृष्टि और काम कटा का कवि ने लज्ज बिम्ब उपस्थित किया है। इसके व्यभिचार में स्त्रियों का भी बहुत उत्तरदायित्व था। दूसरी दासियाँ सभी यथावसर अपनी प्रिय की शान्ति अग्निवध से कर लेती थी<sup>४</sup>।

परन्तु प्रायः स्त्रियाँ पातिव्रत निभाती थीं। पुरुषों को विवाह-पर-विवाह करते देखकर झुझती बीजती और उपाङ्गम होती थी<sup>१</sup>। जबस्य ही के मन-ही मन दुखी रहती थीं परन्तु पति के सुल के लिए झुझती स्त्री से विवाह करने की अनुमति भी दे दिया करती थी। पुरुषों की रानी काशी-नरेश की पुत्री तथा बारिणी के हरिष (माह<sup>२</sup>) इसके अकादश प्रमाण हैं।

पुरुष अपनी स्त्री के अतिरिक्त अन्य लक्ष्मणों से भी सम्पर्क रखते थे। इस प्रकार की स्त्रियों और साधवियों के लिए कवि न पारिवर्तिक धर्मों का अनेक स्थानों पर व्यवहार किया है। जबस्य ही यह धर्म और यह ओझसी संस्कृति कवि के समय प्रचलित होयी। यत्र किसी स्त्री से केवल एक बार सम्पर्क किया रहता था तो उसे 'सङ्कल्पप्रलय'<sup>३</sup> धर्म से व्यक्त किया जाता था। 'सपत्न्य' <sup>४</sup> धर्म भी कुछ ऐसे ही प्रणयों के लिए प्रचलित था। बुरा के बुरम भी धर्मों के समान शृंगार-वेष्टा करने से विमुक्त नहीं हुआ करते थे<sup>५</sup>। सुन्दर स्त्री को अपनी ओर आकर्षक करने के लिए वे भी ऐसी से जाती एक का जोर लगाया करते थे। इस प्रकार की शृंगार-वेष्टा को प्रणयझुझी समझा जाता था<sup>६</sup>। एक ही धर्म कई स्त्रियों से प्रेम करना और उसे विवाह से बाना शुद्ध नागरिक का काम समझा जाता था। नागरिक वृत्ति<sup>७</sup> और दाक्षिण्य<sup>८</sup> इसी धर्म में रहते थे। दो स्त्रियों से एक साथ प्रेम करने वाला और दोनों की ही प्रसन्न रखने

१ अमि० माह० विष्णु तीनों मन्त्रों में इनका दृष्टान्त है।

२ सङ्कल्पप्रलयार्थ धन — अमि० अंक ३, पृष्ठ ८०

३ ई निर्वैय इमतिगतामि सत्यमप्यमतरप्यगह्यत्।

येषु बीजतपस परिग्रहो वासवसपत्न्यतया ययौ ॥—रघु० ११।३३

४ कुशोपमातामहतेन कचित्करम देवाप्यजकोष्ठतः।

रत्नापुत्रीयप्रभयानुविज्ञानुशीरयामास सतीकमताम् ॥—रघु० ६।१८

—रघु० ६।१२-१६ तक सभी शृंगार वेष्टाओं के प्रमाण हैं।

५ तां प्रपन्नियमप्रपन्नारवर्णा महीपतीनां प्रणयप्रपन्नम्।

प्रवाङ्मयीमा हव पादपानां शृंगारवेष्टा विविधा बभूव ॥—रघु० ६।२२

६ अमिनवमभुजोमुपो भवस्तया परिचुम्ब्य जूतमञ्जरीम्।

कमलवसतिपार्श्वनिवृत्तो मधुकर बिस्मृतोऽस्येतां वयम् ॥—अमि ३।१

—गण्ड नागरिकवृत्ता संज्ञापदार्थम्—अमि० अंक ३, पृ ८०

७ अमि मन्त्रे अम्यमञ्जरीप्रयाना नागरिकमार्यापामयिकं दक्षिणा भवति।

माहति यवान्त पुनरियं दाक्षिण्यमेकपदे पृष्ठतः वयम् ॥

—विष्णु० अंक ३ पृ० २२४



बाके बहुत पुरुष की उपमा कवि ने बलिष्ठ पवन से लेकर दक्षिण्य शब्द को मज्जी भाँति समझा दिया है। 'इस वायु का बलिष्ठ कहलाना ही ठीक है क्योंकि माधवी कला को सीधता हुआ और क्रुद्ध कला को मचाठा हुआ यह पवन ऐसा प्रतीत होता है मानो सबसे प्रेम करने वाला और सबको प्रसन्न करता हुआ कोई कामी हो'। यदि किसी विवाहित पुरुष को किसी अन्य स्त्री में आसक्ति उत्पन्न हो जाती थी तो वह मई प्रेमसी से प्रायः ऐसा कहा करता था 'मैं तो केवल कहने के लिए उसका पति हूँ मेरा यथावत् प्रेम तो तुमसे है'। काव्यशास्त्र में बँकित नामिकाव्यों की वर्णों को है<sup>१</sup> जो एक ओर पुरुषों की वृष्टता और क्रमुकता प्रदर्शित करती है और दूसरी ओर स्त्रियाँ पुरुषों के इन कार्यों को अच्छी तरह जानती थी इसका भी परिचय दिया है। दूसरी स्त्री के पास से उत्पन्न हुए पति को 'आर्द्रपराधी'<sup>२</sup> और ऐसे अपराध को 'आर्द्रपराध'<sup>३</sup> की संज्ञा दी गई है। यदि किसी पुरुष की किसी कुमारी या स्त्री के साथ बध्नाच्छ उड़ जाती थी तो इस कोलीन<sup>४</sup> कहा जाता था। स्त्रियाँ बरस्य ही पुरुषों की बनावटी बातों को पड़चानती थी<sup>५</sup>। इस प्रकार की बनावटी और फुसलाने वाली बातें 'उपचार' कहलाती थी<sup>६</sup>।

- १ निमित्तव्याधकी कर्मों कलां कौन्हीं न सातयन् ।  
स्नेहदासिध्दयौर्पोगात्काव्यीन प्रतिभाति मे ॥—विज्ञान० २१४
- २ ननु ध्वन्यपति द्वितीह त्वमि मे भावनिबन्धना रति ।—रत्न० ८१२२
- ३ प्राप्तेत्यपरिमोगजोमिना बध्नेन कृतकंजनध्वजा ।  
प्राग्बन्धक प्रथमिनी प्रसादयन्तोऽनुनीताभयमन्तर पुन ॥—रत्न० १२१११
- मृगशाह त्वमपि ध्वने कंठस्थता पुरा मे ।  
निद्रा गत्वा किमपि वदति सम्भनं निप्रबुद्धा ॥  
मात्सर्हतां वपितममकत्पुच्छदृष्ट त्वया मे ।  
दृष्ट स्वप्ने किञ्च रामकल्पापि त्वं मयेति ॥—उत्तरमेव १४
- ४ १. नवकिमक्यरावैशाशादेन बाता स्फुरितमखदधा हनुमर्हयनेन ।  
अनुमुमितमदोर्क बोहचानैकया वा प्रथमितनिरसं वा कोटपार्श्वपराधम् ॥  
—मातृ अंक ३ १२
- ५ कौन्हीं नौवर्ग ध्वनत ।—मातृ अंक ३ प० २११

उपरोक्त वर्णित दायित्वकी तथा अभिसारिका मत्की अपरा आत्मा की प्रत्नों में भरमार इस बात की सादी है कि गृहस्थ जीवन भीतर से जोलता हो रहा था परन्तु आदर्श अभी भी परम्परागत बही पुराना था। दूसरे की स्त्री की ओर इष्टिपाठ न करना उनके विषय में न मोचना उच्च वर्ण के प्रतीक था<sup>१</sup>। दूसरे की स्त्री का स्वयं पाप समझा जाता था (परम्परीसंग्रहामुक्त —अभि ५।२६)। एना जान पड़ता है कि शास्त्रयुग जीवन का मुख्य उद्देश्य काम-मुक्त ही था। 'प्रजायै गृहमेविनाम्' मन्त्रालय की कामना से स्त्री-अभ्याग की चर्चा की अवश्य पर सम्पूर्ण मेघदूत अश्वमेधाय उत्तिमिवाय विष्णुमोक्षयोग मालविकाग्निमित्र आदि में स्त्री-पुरुष के काम संसार के अतिरिक्त गृहस्थ के किसी उच्च उद्देश्य की संज्ञा नहीं है। एक-दूसरे के अभाव को याद करना मलयकन्य मुक्त को याद कर रोता आदि कामकीड़ा मुक्त हो है। अवश्य ही दूरव की उदारता और प्रेम को प्रयत्नता न बचन होते हैं पर काम-मुक्त से ऊपर उठकर व्यापक भावन को सामने रखकर कोई पाप कुछ करता हुआ क्यों नहीं दिखाई पड़ता। कामिनाम के प्रत्नों में शास्त्रयुगीन का विकासमय पक्ष धार्मिक एवं सामाजिक पक्ष से कहीं प्रबल और व्यापक है। तत्कालीन भारतीय संस्कृति धर्म की अपेक्षा नस्ल और सौम्य में मत्त हा रही थी। कर्म और मौल्य दोनों का अविच्छन्न सुबत्ती गारो थी। दुष्प्रवृत्ति के 'तापमवृद्धे'<sup>२</sup> में बुराई की उद्देगा की पराजित संज्ञा है। जहाँ गृहिणी कामपूर्ति में अनलक्ष रहती थी वहाँ नगकी अपरा आदि में नग तृप्ति कर लिया करता था।

पत्नी का कर्मव्य और उत्तरदायित्व—पत्नी का प्रमुख धर्म गृह था। बग गृहधर्मों की सेवा करना गृहस्थी के कार्या में सलक्ष्य रहना और मन्त्रान की उत्पत्ति करना उसका मुख्य कर्तव्य था<sup>३</sup>। पति ही उसका स्वयं अविच्छिन्न तथा

—हृदये बसतीति मतिप्रियं यत्रवाचस्पत्यदशमि केतवम् ।

उपचारपर्यं न चिद्वै त्वमनयं यममनया रति ॥—सुमार० ८।६

१ मनः परस्त्रीविमुक्तप्रवृत्तिः ।—रघु० १५।८ बगिना हि परपरिग्रहमन्त्रेण परंमुनी कृति ।—अभि ५।२८ अविच्छिन्नोप परकर्मव्यम् ।

—अभि० अ० ५ पृष्ठ ८५

२. यद्यने विविगीपूषा प्रजायै गृहमेविनाम् ।—रघु० १।७

३ तापवृद्ध ।—अभि० अंक ५, पृष्ठ ९१

४ पुरुषस्य गृहस्थस्य प्रियमन्त्रीकृति मपत्नीजन परस्विप्रवृत्ताग्रैः रोषकनया या म्म प्रतीत्यं नम ।

भूमिष्ठं भव दक्षिणा पवित्रेण भाव्येऽनुमन्त्रिणी

वाचस्पते गृहिणीपत्यं युक्तयो वाया गृहस्थापप ॥—अभि० ८।१८

सबस्व था । उसकी सम्पुष्टि के लिये बड़े-से-बड़ा ख्याम करना उसका ध्येय था<sup>१</sup> ।  
 वे सौत काने के लिये भी तैयार हो जाती थीं । पत्नी का पति के सम्मुख जति  
 उच्च स्थान था । गृहिणी पद पर सोमिष्ठ सभी बातों का उत्तरदायित्व उम पर  
 था । उस उत्तरदायित्व में वह अपने पिता एवं अन्य सम्बन्धियों के बिबुधने का  
 कुछ भुल जाया करती थी<sup>२</sup> । पति के लिये पत्नी न केवल गृहिणी ही थी अपितु  
 सचिव भी थी एकान्त-मन्त्री भी लक्षितकर्मियों से शिष्या भी<sup>३</sup> । पत्नी सन्धो  
 सङ्घमचारिणी थी । वार्मिक-कियाएँ बिना पत्नी के सम्पन्न नहीं हो सकती थी<sup>४</sup> ।  
 पति पत्नी से गृहस्थी के कार्यों में सहाह किया करते थे । कन्या का सम्बन्ध  
 कहीं स्थिर करते समय पत्नी की सम्मति का बहुत ध्यान रखा जाता था<sup>५</sup> ।  
 त्रिवर्ष पति की इच्छा से बाहर कभी काय नहीं किया करती थी<sup>६</sup> ।

अतिथि का स्वागत करना प्रधान-कृतव्य था । कन्य की अनुपस्थिति में  
 अतिथि-सत्कार का सम्पूण भार सङ्कृतका पर जा पड़ा था<sup>७</sup> । पार्वती भी पित्रकी  
 के बह्मचारी के बेस में जाने पर उनका उचित उत्कार करने से पीछे नहीं  
 हटती<sup>८</sup> । गृहस्थ होने का सन्धा फल अतिथि को प्रशन्न करना था<sup>९</sup> ।

- १ अथ प्रभृति मां स्त्रियमामपुत्रं प्राचमते वा चावपुत्रस्य  
 समाममप्रचयिनी तथा सङ्गमया प्रीतिबन्धेन वतितव्यम् ।  
 —विहङ्ग अंक १ पृष्ठ २०३  
 —अहं तस्य आरमणं सुखानसामेनापुत्रं निमुत्तरोरं अनुमिच्छामि ।  
 —विहङ्ग अंक १ पृष्ठ २६
- २ अमित्रजनवदो मत्सु स्नाय्वे स्निता गृहिणी पदे  
 विभवगुर्वभि कर्यस्तस्य प्रतिक्षणमाकुलम् ।  
 तनयमभिरात्रापीवार्कं प्रभूतं च पावनं मय  
 निरुद्धा न त्वं नत्ते शुभं वषदिष्यति ॥—अथि ७।१३
- ३ गृहिणीमचिवं सखीं मित्रं प्रियशिष्यां ललिते कन्याविधौ ।—रघु ८।१७
- ४ त्रियाणां तस्य धर्म्याणां सत्पत्नयो मूलकारणम् ।—कुमार १।१३
- ५ प्राप्तेषु गृहिणीनेषां कन्यार्षेणु कुटुम्बिनः ।—कुमार १।८३
- ६ भवस्यस्यनिचारिण्यो भगुरिते पतिव्रताः ।—कुमार १।८६
- ७ इदानीमेव दुहितरं सङ्कृतकायतिथिसत्काराय  
 नियम्य वैवमस्यां प्रतिपूर्णे शययितुं सोमदीपं नत्त ।—अथि अंक १ पृ० ३

स्त्री पति की सम्पत्ति थी। अतः पति को अपनी पत्नी के सम्पत्ति में प्रत्येक प्रकार के अधिकार प्राप्त थे<sup>१</sup>। स्त्रियों के लिए भी अच्छा यही समझा जाता था कि विवाह होने के पश्चात् पति द्वारा तिरस्कृत होने पर भी उसके पास शासीभूति में रहे। पिता के घर रहने से कहीं अधिक भोगस्वर समझा जाता था<sup>२</sup>।

**बाह्यश्रेयः**—गृह के बाहर भी पत्नी पति का साथ दिया करती थी। पति के आमोद-प्रमोद में उद्यान-झीड़ा बस-बिहार, उत्सवादि देखने में भी पति की सहमोदिनी थी<sup>३</sup>। माघारण चरों की स्त्रियाँ लेख<sup>४</sup> उद्यानादि में भी काम किया करती थीं। पुष्पलाबी<sup>५</sup> शब्द उद्यान में काम करने वाली स्त्रियों अर्थात् मास्त्रियों के अर्थ में ही प्रयुक्त किया गया है। उद्यान-मास्त्रिका शब्द का भी यही आशय है<sup>६</sup>।

रत्ना के अन्त-पुर में स्त्री परिचारिकाएँ, यवनी मास्त्रि का उत्पत्त है। इसके

१ उपपन्ना हि नारेषु प्रमुखा सर्वतोमुखी ।—अभि १।२६

२ अतः समीपे परिभेतुरिष्यते प्रियाप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुमि ।—अभि १।१७  
—अथ तु वेतिमि भुविप्रसमात्मनः पतिरुक्ते तत्र दास्यमपि समम् ।  
—अभि० १।२७

३ रघु० १६।६८ ६९ ७ बसझीड़ा ।  
इच्छाम्याद्यप्युपेय महः शोकादिगोहृणमनुभविष्यति । भवताप्यस्यै प्रतिज्ञातम् ।  
तत्प्रमत्तनमेव नृपछाव ।—मातृ० अंक ३ पृ २९३ उद्यानझीड़ा ।  
अपनु अस्तु भर्ता । ईदो विज्ञापयति—उपनीयाद्योक्तस्य कुसुमसहस्रसंज्ञेन  
ममारम्भः सफलः क्रियतामिति ।—मातृ० अंक १, पृ ३४२ उत्सव

४ स्वयंभूतं कथिफलमिति भूविज्ञानानभिधी ।  
प्रीतिस्तिग्मेर्जगत्प्रकृच्छोचन पीयमान ॥  
सद्यः सीरोत्कथनमुरभिः शेषमानस्य मासं ।  
किञ्चित्पश्चाद् अत्र लज्जगतिभूय एवात्तरण ॥—पूर्वमेव १९  
—इत्युक्तमपिपारिग्व्यस्तस्य गोप्यगुणोद्ययम् ।  
आकुमारवर्धोदार्तं छास्त्रियोप्यो जगुर्वस ॥—रघु० ४।२०

५ पंडितस्वयंभूतपनरः आकलान्तकर्णोत्पत्तानां  
छापाराजान्दणपरिचितः पुष्पलाबीमुखानाम् ।—पूर्वमेव २८

६ तत्र प्रविष्टपुद्यानगालिका—मातृ० अंक ३ पृ २६  
—अथोरेषोद्यानपामिक्यास्तिरस्करणी .....—अभि० अंक १ पृ १०२

सबस्व था । उसकी सन्तुष्टि के लिए बड़े-से-बड़ा त्याग करना उसका ध्येय था<sup>१</sup> ।  
 वे सौष्ठव काने के लिए भी तैयार हो जाती थी । पत्नी का पति के सम्मुख अति  
 प्रणम स्वान था । गृहिणी पद पर सोमिव सभी बातों का उत्तरदायित्व उम पर  
 था । उस उत्तरदायित्व से वह अपने पिता एवं अन्य सम्बन्धियों के विरुद्धने का  
 कुछ भुल जाया करती थी<sup>२</sup> । पति के लिए पत्नी न केवल गृहिणी हो भी अग्नि  
 सन्निध भी थी एकान्त-सखी भी सकलकलत्रों में छिप्या भी<sup>३</sup> । पत्नी सच्ची  
 सहबन्धुचारिणी थी । वार्मिक-क्रियार्थ बिना पत्नी के सम्पन्न नहीं हो सकती थी<sup>४</sup> ।  
 पति पत्नी से गृहस्त्री के कार्यों में सहाय्य किया करते थे । कन्या का सम्मान  
 कहीं स्त्रिय करते समय पत्नी की सम्पत्ति का बहुत ध्यान रखा जाता था<sup>५</sup> ।  
 स्त्रियाँ पति की इच्छा से बाहर कभी काम नहीं किया करती थी<sup>६</sup> ।

अतिथि का स्वागत करना प्रधान-कृतव्य था । कन्य की अनुपस्थिति में  
 अतिथि-सत्कार का सम्पूर्ण भार सकुन्तला पर आ पड़ा था<sup>७</sup> । पालकी भी पितृनी  
 के सहाय्य के बंध में जाने पर उनका उचित सम्कार करने से पीछे नहीं  
 हटती<sup>८</sup> । गृहस्व होने का सच्चा फल अतिथि को प्रसन्न करना था<sup>९</sup> ।

- १ अथ प्रभृति या त्रिविधमायुषः प्राचमते या चार्यपुत्रस्य  
 समागमप्रणमिनी तथा सह मया प्रीतिवन्धेन वतितम्यम् ।  
 —विष्णु अंक ३ पृष्ठ २०३  
 —अहं सन्तु आत्मन सुखावसानेनायुषं निवृत्तदोरेण अनुमिच्छामि ।  
 —विष्णु अंक ३ पृष्ठ २६
- २ अभिजनवतो मनु स्थाप्ये स्थिता गृहिणी पदे  
 विभक्तगुरभिः कर्तव्यस्तस्य प्रतिपद्यमानुका ।  
 सप्तमविराट्प्राचीवार्क प्रभुष च पावनं मम  
 विरुद्धा न त्वं वसेत् शुभं वनमिष्यति ॥—अग्नि ८।१६
- ३ गृहिणीसन्निधः सखी मित्र प्रियतिथ्या भक्ति कन्याभिधी ।—रघु ८।१७
- ४ क्रियायां सन्तु वर्म्याणां सत्कालयो मूलकारणम् ।—कुमार १।१३
- ५ प्राप्तेय गृहिणीनेत्रा कन्यार्षेणु बुद्धिमन् ।—कुमार १।८२
- ६ भवन्तप्यभिचारिण्यो मनुष्ये पतिव्रता ।—कुमार १।८६
- ७ इदानीमेव बुद्धितरं सकुन्तलापतिविम्वकाराय  
 विष्णु अंक ३ पृष्ठ १५०

स्त्री पति की सम्पत्ति थी अतः पति को अपनी पत्नी के सम्बन्ध में प्रत्येक प्रकार के अधिकार प्राप्त थे<sup>१</sup>। स्त्रियों के लिए भी अच्छा यही समझा जाता था कि विवाह होने के पश्चात् पति द्वारा तिरस्कृत होने पर भी उसके पास वासीवृत्ति में रहे। पिता के घर रहने से कही अधिक खेमस्कर समझा जाता था<sup>२</sup>।

**वाद्यक्रोश**—गृह के बाहर भी पत्नी पति का साथ दिया करती थी। पति के आमोद-प्रमोद में उद्यान-क्रीडा जल-विहार, उत्सवादि करने में वे पति की सहयोगिनी थी<sup>३</sup>। साधारण घरों की स्त्रियाँ खेत<sup>४</sup> उद्यानादि में भी काम किया करती थी। पुण्यसाही<sup>५</sup> उच्च उद्यान में काम करने वाली स्त्रियों अर्थात् मास्त्रियों के वर्ग में ही प्रयुक्त किया गया है। उद्यान-पालिका उच्च का भी यही आशय है<sup>६</sup>।

राजा के अन्त-पुर में स्त्री परिचारिकाएँ, यक्षी आदि का उल्लेख है। इसके

१ उपपन्ना हि वारोप प्रभुता सखतोमुखी ।—अभि० १।२६

२ अतः समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः ।—अभि० ५।१७  
—अथ तु वेत्ति शुचिप्रसन्नमार्गम् पतिदुक्ते तव वास्यमपि क्षमम् ।

—अभि ५।२७

३ रघु० १६।६८ १६७ जलक्रीडा ।

इच्छाम्यामपुत्रं तद्द बोलाविरोहणमनुभवितुमिति । भवताप्यस्य प्रतिज्ञातम् ।  
तत्रमरुतमेव मच्छात्र ।—मात० अंक ३ पृ २९३ उद्यानक्रीडा ।

अपतु अस्तु मर्ता । बेबी विज्ञापयति—तपनीयाजोक्तस्य क्षुत्तुमसहृदयनेन  
ममारम्भः मच्छात्रः श्रियतामिति ।—मात० अंक ५, पृ ३४२ उत्सव

४ स्वध्यामत्तं कपिष्ठमिति भूविज्ञानमिति ।

प्रोतिमिन्मैत्रनपरवधुलोचने पीयमानः ॥

मद्यः पीरोत्पथमुरभिः खेजमागृह्य मानं ।

विचित्तरवाद् द्रव्यं सम्पुनक्तिभूय एवात्तरेण ॥—पूषमेव १६

—इत्युच्छासनिपादित्यस्तस्य धोतुगुणोत्तमम् ।

आहुमारकबौद्धार्ण वासिगोप्यो जगुर्गता ॥—रघु० ५।२०

५. पदस्वेदापनयनं जातकाम्यकण्ठोत्पत्तानां

छायाशान्ताकाशपरिचितं पुण्यसाहीमुगानाम् ।—पूषमेव २८

६ ततः प्रविशत्युद्यानपालिका—मात० अंक ३ पृ २६

—अनयोरेकोद्यानपालिकयोस्तिरस्करणी ... —अभि० अंक ६ पृ० १०२

दिन हो किसी तरह उनका व्यतीत हो जाता था परन्तु रात्रि बड़े कष्ट से बीता करती थी। वही रात्रि जो जी भर कर संभोग कर बहु लज्जा भर के समान बिठा देती थी विछोह की चिन्ता में क्षीण सुने पर्वण पर एक करण केटी गरम-गरम बाँसुओं में बिताया करती थी<sup>१</sup>। बरती पर केटी चनीसी अवस्था में प्रयत्न करती थी कि किसी प्रकार मित्रा का जाय<sup>२</sup>। व्यतीत के दिनों की याद करती हुई वह काव्यमय संभोग के आनन्द का मन-ही-मन रस छिया करती थी<sup>३</sup>। वह मित्रा का आवाहन ही उसमिष्ट किया करती थी कि किसी प्रकार स्वप्न में ही प्रिय से संभोग हो परन्तु अनवरत रोते रहने से उसको मित्रा भी प्राप्त नहीं होती थी<sup>४</sup>।

विरहिणी आसूयन पहनना विरज्जुल छोड़ देती थी<sup>५</sup>। भोजियों की करवनी खाति सब पहनना छोड़ देती थी (मुक्तावार्त्त चिरपरिचितं स्थायिनी ईववत्या—उत्तरमेव १८)। जंजन न करने से उनकी जालें कभी हो जाती थीं मरिचापान न करने से भ्रूविशाल संकुचित हो जाता था<sup>६</sup>। जिस दिन पति विदेष्ट जाता था उस दिन जो नैनी नैनी जाती थी वह प्रिय के आगमन पर ही खुश होती थी। स्वयं प्रिय ही उसे खोजा करता था। उसमें फूट नहीं बुँबे रहते थे और बहुत दिनों तक बँबे रहने के कारण वह नयी कठिन शुष्क और विषम हो जाती थी। इस उल्टी और बिखरी नैनी को वह अपने बड़े हृत्ता ननों वाले हाथों से (विरहा

- १ आशिक्षाया विरज्जुलमने संनिपन्नैकपात्नां प्राचीमूले तनुमिष कसमापरोषा द्विधाशो ।  
नीता रात्रि राध इव मया सावमिच्छारतीयं  
तामेवीचीर्विरहमहतीमधुनिर्वाणवन्तोम् ॥—उत्तरमेव ११
- २ मत्संदिरो मुखपितुमत्तं पत्य साध्वीं निधीये  
तामुनिद्राभयनिद्रावनां लीलवातामयस्य ।—उत्तरमेव २८
- ३ मत्संगं वा हृदयमिहिवारंभमास्वापयन्तो  
प्रादेयैते रम्यविरहैर्जगतां विमोहाः ।—उत्तरमेव २७
- ४ मत्संगोऽपि कथमुपनयेत्स्वप्नजोऽपीति मित्रा

बस्त्रों में नख नहीं काट जाते थे) अपने मुख से बार-बार हटाती थी<sup>१</sup>। बेनी एक ही ली जाती थी। एसा आभरण होता है कि वह पीठ की ओर न होकर एक कनपटी की ओर ही लूनी जाती थी। कबि ने बेनी के बार-बार कपोल पर आने का संकेत किया है<sup>२</sup>। परन्तु जलकों कक्ष में लेख न पड़ने के कारण मुख पर बिखरी रहती थी। धुइ स्नान का आश्रय ही बिना लेखादि लगाए कोरे जल से स्नान करना है<sup>३</sup>। बली जलकों पीछे कपोल पर छिपी रहती थी और धूपों से चूम होती थी इसका संकेत रघुबंध में भी है<sup>४</sup>।

विरहत्वस्था में पूर्वाभ्यास के कारण धीवत्तशायिनी वस्तुओं तथा आसुताम से प्रविष्ट होती चन्द्रमा की किरणों से विरहिणी अपने लपट छटीर को धाम्त करना चाहती थी पर विरह के कारण वे ही अत्यन्त दुःखी करने वाली है ऐसा देखकर औसुखों से भरी ओखें बन्द कर लेती थी। जबि इस प्रकार की सती की तुलना उस स्वतन्त्रमित्री से देता है जो न खिन्नी ही है और न बन्द ही<sup>५</sup>।

वपमादुरम से ही किसी प्रकार भन बहुलस्या जाता था। यद्यपि पत्नी के पन में इसका प्रमाण नहीं मिलता परन्तु मेघदूत में पत्नी का कपोलामुख देखकर भी प्रकृति के सौन्दर्य से बंश की शान्ति नहीं होती। उसे पत्नी के सौन्दर्य के सम्मुख उसके छादुष्य की सभी वस्तुएँ फीकी लगती हैं<sup>६</sup>। इसी प्रकार जल भी इन्दुमयी

१ आये बद्धा विरहविषये या पिच्छा राम हिरवा  
सात्स्मान्ते विमन्त्रिमुखा वा यथोद्वेगीमा ।

स्पष्टस्किष्टामयमितनयेगासकरसारमन्त्री

यस्यमोकात्पञ्चिपिपमामेकवर्णी करेय ॥—उत्तरमेघ १४

२ भूयो भूय कटिमविपमां सारमन्त्री कपोल-

हामोक्तस्यामयमितनसेनैकमेवी करेय ।—उत्तरमेघ १०

—स्पष्टस्किष्टा.....—उत्तरमेघ १४

३ त्रिदामेनाकरकिंसकपक्षैरिजना विविपन्त्री

धुइस्नानात्तद्वचनकं नूनमानीद्वन्द्वम् ।—उत्तरमेघ ११

४ पक्ष्याभिचरं पौडुकोपलम्बान्मन्मारगुयामलकोद्वकार ।—रघु० १।२१

५ पाणिमोरमृतापिपरां आसमायप्रविष्टा

न्युव्रीत्या गतमयिमुनं संनिवृत्त तथैव ।

बभूवोदाम्नातिसमुदधिं परममिषष्टांयन्त्री

साभेऽहोष स्वतन्त्रमस्मिन्निव प्रमुखां च पुताम् ॥—उत्तरमेघ १२

६ स्यामाम्बं चचितहृत्पिपराभे दुष्टिपलम्

पक्ष्मपापी शनिनि शिनिना बर्हिभारेपुकेगान् ।



काश्चित् के ग्रन्थ उत्कल्लोह संस्कृति

के विरोध में बिलस करती हुए कहता है कि तुम्हारी भीठी बौली कोयलों ने ते  
की महात्म्य प्रति कम्पूहिंसिनी ने के की तुम्हारी बचक चितवन हरियों को मित्र  
पई तुम्हारी बचछटा बापु से हिल्ली कताओं में पहुँच गई। यद्यपि मन बहछाने  
के लिए तुमने मे गुप्त नहीं छोड़ दिए, पर मेरे हृदय को किसी प्रकार भी संतोष  
नहीं मिल रहा है<sup>१</sup>।

संसार में प्रोपितभर्तृ का बड़ा शरीरसंस्कार, समानोत्सवदशन हास्य  
पूतरे के घर मनन जाति छोड़ देती थी<sup>२</sup>। यहाँ उनका बारह वा। विरहिनी  
सकुन्तला का चित्र लीनकर कवि ने विरहिनी स्त्री की मनोरमा और मनोमार्गों  
पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। मन्त्रिण बन्धु सतादि के कारण पुष्प मुख और एक  
वेनी विरहिनी का स्वल्प अंकित कर देते हैं<sup>३</sup>।

विरहपीडिता का सौम्य चित्र सकुन्तला में मिलता है। पति के विरोध में  
माँ का मुरझा जाना भूँह का सूख जाना स्त्रियों की कठोरता का विरोध हो  
जाना वैह का पीका पड़ जाना कन्नों का झुक जाना उसके विरहजन्य बसह दुःख  
के बावक हैं<sup>४</sup>। इष्टप्रवासजनित बबका-जनों का दुःख निस्सन्देह दुःख ही है<sup>५</sup>।  
परन्तु इस भाषा से कि मिलन कभी होया ने दुःख सहने में समर्थ हो पाती है<sup>६</sup>।  
विरहजन्य स्त्री के उपचार के लिए उषीर का अनुकेप मुवात और नखिली

उत्पत्त्यानि प्रतनुपु नवीनीचिपु अविभासात्

हृत्कस्मिन्कचिदपि न ते बन्धि साधुस्यसति ॥—उत्तरमेघ ४१

१ कलमम्यमुतातु जावितं कम्पूहिंसिपु महात्मतं पतम्।  
पुपपीपु विभोष्मीसितं पवनोद्भूतकृतापु विभ्रमा ॥

विदिवात्पुत्र्याप्यवेक्ष्य यां विहिता सारयमी गुणात्प्रवया।  
विरहे तव मे मुदम्यन् हृदयं न त्वबलमिनुं धमा ॥—रघु० ८१६, १

२ ब्रीडा शरीरसंस्कारं समानोत्सवदशनम्।  
हास्यं परमुद्देयानं त्वमेवोपितभर्तृ का ॥—मन्त्रिणाव टीका रघु० ११२

३ बसने परपूतरे बसना नियमधाममुली पुरतकचि।  
७१६ विरहवर्त विमर्ति ॥—अभि० ७१२१

एक का प्रयोग किया जाता था<sup>१</sup>। यद्यपि अधिक उद्दिष्ट होने पर इससे कोई काम नहीं होता था।

शर्मिष्ठी पत्नी—वर्मविस्था न पत्नी पीली पड़ जाती थी। सीमता एक पुत्रकला के कारण यह गहनों का भार सह सकने में असमर्थ हो जाती थी<sup>२</sup>। मुक्त सीमन्त के फूल की तरह पोसा पड़ जाता था<sup>३</sup>। उसकी उपमा कवि रात से बैठे हैं, जिसमें पी पड़ते समय कुछ ठारे बरफिष्ट रह गए हों और चन्द्रमा की घोमा प्येकी पड़ गई हो<sup>४</sup>। यद्यपि मुक्त सरपत के समान पीला पड़ जाता था परन्तु नेत्रों में चमक आ जाती थी<sup>५</sup>। ब्राह्मों का अल्पमात्र रहना अन्धकीरुत के समान मुक्त की पाण्डुता और पयावर का अल्पमात्र पड़के से अधिक क्षाम पड़ जाता। पति को इज्जित कर देता था कि पत्नी वर्मवती है<sup>६</sup>। पति पत्नी का आदर करता था कि इस समय बोट्ट की पूर्ति के लिए विशेष प्रयत्नशील रहा करता था<sup>७</sup>।

बहुधा वर्मविस्था न स्त्रियाँ मिट्टी पाने लगती हैं। अतः मिट्टी खाने से पत्नी का सौंघा मुख पति के लिए विशेष आह्लादकारी हो जाता था<sup>८</sup>। वर्म के प्रारम्भिक कष्ट-दिवसों के व्यतीत हो जाने पर पत्नी का सौन्दर्य पुनश्च हो जाता था जैसे बसन्त ऋतु में पुराने पत्तों को गिराकर लगाएँ नवीन सुपोमिष्ठ होती है<sup>९</sup>। वर्म के बढ़ने पर छठने-बैठने में कठिनाई का इतना अधिक होना

१. वस्येदमुधीरानुष्ठेपनं मुषालवन्ति च नस्मिन्निपत्राणि नीयन्ते ।

—अभि० अंक ३ पृ० ४१

२. घटीरसाशरसमममूषया मुखेन सान्त्वयत कीदृशपात्रात् ।

तनुप्रकाशेन विवेकधारणा प्रयातवत्या तस्मिन्व दायरी ॥—रघु० ३।२

३. ४. वैगिए, पाण्डिप्यनी नं० २

५. अवापिकस्निग्धविशेषजन मुनेन सीता वारपादुरेज ।—रघु० १।४२६

६. आविष्ठपदोपराधं लवली-लपादुराननज्ज्यायम् ।—विक्रम० ३।८

—तामङ्कमारोप्य वृष्टाधिर्याह वर्यान्तिराजान्तायवोवराधाम् ।—रघु० १।४२७

—दिनेषु गच्छन्तु मितान्तपोवरं तशोयमासीत्सुखं स्तनद्वयम् ।—रघु० ३।८

७. अवापिकस्निग्धविशेषजन मुनेन सीता वारपादुरेज ।

मानन्दमिश्री परिषेनुरामोहनघर्ष्यजित-गोहरेन ॥—रघु० १।४१६

—उनेस्य सा बोददुग्धपीत्स्वा यरेव बन्ने तन्पदपद्मद्वयम् ।—रघु० ३।६

८. तशानं मृत्सुखं मितीरवरो रहस्युपाग्राय न तृनिमामपौ ।—रघु० ३।३

९. अनेव निस्तीर्य च बोदुश्मन्ता प्रवीदमाणावयवा रराज सा ।

पुण्यवारागमारण्यधरं लतेव र्मनद्वयनीजपन्कजा ॥—रघु० ३।७

कि पति के स्वायत्त के सिद्ध ह्रास खोजने में आँख का निकलना पति की अति प्रमत्तता प्रमाण किमा करता<sup>१</sup>। पति पत्नी के सुख का इतना ध्यान रखता था कि वह अनुर विचित्रताओं से किस प्रकार छुटता है प्रसन्न हो उपाय करवाता रहता था<sup>२</sup>।

विधवाओं की अवस्था—काश्मिर ने विधवाओं की अवस्था पर भरपूर प्रकाश नहीं डाला परन्तु पदवीव्यवस्था<sup>३</sup> किटना असाध्य होता है इस उक्ति से उनकी दयनीय अवस्था व्यक्त होती है। मांगिक कार्यों में उनकी उपस्थिति अशुभ समझी जाती थी। अतः विवाहादि अवसरों पर श्रृंगारि वस्त्रादि स्त्रियाँ ही किया करती थी<sup>४</sup>। शत्रु-पक्ष की विधवाओं की ओर ध्यान नहीं दिया जाता था। सैनिक उनको मृत के आते ओर दूषित कर देते थे।

परन्तु फिर भी सतीप्रथा का अधिक प्रचार न रहने के कारण कवि ने अनेक स्त्रियों पर विधवाओं का उल्लेख किया है। सामाजिकान्तिमित्र की परिवर्तिका अमिताभशक्तिक में व्यापारी घनमित्र की स्त्री अमित्र की मृत्यु के पश्चात् उसकी गर्भवती घनी का गद्दी पर बैठना विधवाओं के प्रमाण है। पति की मृत्यु होन पर यदि गम है तो गमस्व शिशु ही पिता के जन सम्पत्ति और राज्य उत्तराधिकारी हुमा करता था<sup>५</sup>।

मर्त्य-प्रथा—निर्लम्बिह सीमावर्ती रिश्तों का सम्मान विधवाओं की सुकला में बहुत अधिक था। यदि पत्नी के जीवित रहते हुए पति का देहान्त

नोट दोहर—मम की दोहर कहते हैं। मल्लिकार्जुन इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं 'महद्वेग नमहद्वेग न त्रिहृदया धर्मिणी'। सम्मान-विवादागर्भी दोहृदमित्युच्यते।—टीका २५ ३११

१ सुरेन्द्रमात्राभितयमगीर्वातप्रयत्नमुक्तासुनया मृगमत्तः।

तयोपचाराजर्मिस्त्रिहृदयतया नमन् पारिष्कलनयया २५ ॥—२५ ३११

२ कुमारमृत्यापुनर्जन्मुष्टिने मियग्निराप्तेरथ गममर्थनिः।

पति प्रतीतः प्रसन्नोपमकी प्रिया वर्या काले विधवाभितायिनि ॥ २५० ३१२

३ अथ मोहपरायणाक्षी विधवा नामवधूनिबोधिता।

नववैद्यव्यमनःप्रवैरनृ ॥—कुमार ३१३

हो जाता था तो पत्नी आसूषणों आदि से अर्न्तकृत कर बिठा पर रख बी बाजी थी<sup>१</sup> परन्तु विषयाओं के प्रथम बीर उनकी बयनीय अवस्था से इस निष्कर्ष पर पहुँचा था सफ़टा है कि सतीप्रथा का बहुत प्रचार नहीं था परन्तु आशय बही परम्परागत पुराना था। प्रशस्तीय यही मार्ग था। अतः रति कामदेव की मृत्यु के उपरान्त उसके साथ सती हो जाने की कामना करती हुई वसन्त से अपने लिए बिठा चुनने का अनुरोध करती हैं<sup>२</sup>। जनि ने इस मार्ग को स्त्रियों के लिए इतना स्वाभाविक कहा है कि न केवल अतन अपितु जड़ पदार्थों में भी यही भावना दिखाई देती है। अग्नि के साथ चाँदनी मेघ के साथ बिजली इमी के प्रमाण हैं<sup>३</sup>।

परदे की प्रथा—वाकिशम के समय में परदे का आशय विनयशीलता और उच्च संस्कृति का प्रतीक था। शत्रुल्लाह अपने मुद्रकों के सम्मुख दुष्यन्त के साथ जाने में लज्जा का बोध कर रही थी<sup>४</sup>। दुष्यन्त के सम्मुख राजदरबार में उनका मुख अवर्णित से हका था मन् राजा को कौतूहल हुआ था कि यह अवर्णितवता क्यों नहीं है<sup>५</sup>। इसी लज्जा को सम्बोधित करते हुए गीतमी ने उससे कहा था कि हाथ-आँख के लिए अपनी लज्जा त्याग दे मा मैं तेरा अवर्णित बोल देती हूँ जिससे तेरा स्वामी तुझे पहचान के<sup>६</sup>।

अर्थात् स्त्रियों के लिए स्वच्छाचार अच्छा नहीं समझा जाता था परन्तु कहीं भी जाने-जाने की उनके लिए रोच-टोक नहीं थी। वे बन्धु-बापों के

१ अथ तस्य कर्षचिह्नवत् स्वजनस्तामपनीय मुन्दरीम् ।

विमन्त्र सदन्यमहनामनलायागुनचमनैवमी ॥—रघ० ८।७१

२ अमूर्तव कषामितन्तनी मुसमन प्रिययात्रमस्मता ।

नवपम्पसंस्मरे यथा रचयिष्यामि तनुं विभावती ॥

पुनुभास्तरणे सहायता बहुधा सीम्य मलम्बमाधवी ।

पुन नम्रति तावशामु मे प्रथिशानात्रमिषाचितरिचिताम् ॥—कुमार० ४।३४ ३३

३ सधिया सह याति कौमुदी सह मधन सवित्प्रमीयते ।

प्रसरतः पस्तिवत्परा इति प्रसितम् हि विचेतनैरति ॥—कुमार० ४।३३

४ त्रिल्लेमि आधपुनेव मह बुध्यामीपं यन्मुम् ।—अभि० अंक ७ पृ० १३३

५ वाक्चिह्नवर्णितवती नातिपरिष्कारादीरलावण्या ।—अभि २।१३

६ जाने मुक्त मा लज्जस्व । जानेप्यामि तावसेऽवर्णितम् ।

तन्मया भर्ता अभिज्ञाम्यति ।—अभि० अंक० २, पृ० ८८

गृह-उत्सव में सम्मिश्रित हुआ करती थी<sup>१</sup>। अस्मिन्हार, स्नान<sup>२</sup> आदि में भी पति के साथ रहती थीं। बेटों की रक्षावासी करती नीत जाती थी<sup>३</sup>।

इन सब बातों की भी सीमा थी। स्त्रियाँ अन्त-पुर में स्वतन्त्रता से रहती थीं पर वहाँ पुरुषों का प्रवेश सीमित और मर्यादित था। स्त्रियों के रहने का स्थान पुरुषों के स्थान से पृथक् रहता था। सम्मिश्रित मातृशिक्षा को अन्त-पुर में सुरक्षित से नहीं देखा गया था।

समाज में नारी-स्थिति—भारतीय परम्परा में नारी भोग्यप्राप्त है। एक चन्दन के साथ नारी की बधना भी होती आई है<sup>४</sup>। कर्मिणां नारी को इन्द्रियार्थ-वृत्तिसाधन मानते हैं<sup>५</sup>। अतः योग्यवस्तुओं में ही उनकी वृत्ति में नारी का स्थान है।

समाज में स्त्रियों का भवेद्य आदर था। सुन्दर स्त्रियाँ अपने पति पर प्रभुता रखती थी<sup>६</sup>। पति के समान ही स्त्रियाँ आदर और सम्मान प्राप्त करती थी<sup>७</sup>।

१. संन्यसिन्मोक्षि विरे कृतस्य स्नेहस्तदेकवर्तन वगाय ॥—कुमार ७।५  
—उद्योगदीर्घां करेषु कामा स कामक्येस्वरत्नहस्त ।

वैश्वनिर्दिष्टमथो विवेच्य नारीमनासीव वतुष्कमन्त ॥—रघु ७।१७

२. दूतोच्चान् कृतस्यरजोर्ध्वमिवमन्त्रवन्ता-  
स्तोमश्चिह्नानिच्छद्वृत्तिस्तानिपतैमवद्भिः ।—पूर्वमेव १७

—कथा की रानियों के साथ अलक्ष्मीदा—रघु १९।१९-७०

—मीनोन्मत्तविलासिनीस्तनजोभलोमकममाराच वीरिणा ।

मूढमोहनबृहस्तत्रम्बुभिः स व्यवसाहत विवाहमगमन ॥—रघु १९।१९

३. इक्षुच्छामनिग्राह्यस्तस्य शोणुमुजोरमम्  
आकुमान्कपोद्धारं द्यादिगोप्यां अनुयथा ।—रघु ४।२०

४. इन्द्रियार्थसम्पन्नवर्तनवितादेरिन्द्रियविपमावृमरीय इति किमुत वदनम् ।  
—टीका मसिन्नाथ रघु ७।३१

५. निरिचरय आनन्दनिवृत्तिबाल्यं त्यागेन पाल्या परिमत्पु मीच्छन् ।  
अपि स्वदेहात्मिन्मृतेन्द्रियार्थोद्योगपानां हि पथो यतीय ॥—रघु १९।१९

—आराध्यमानं प्रमदाभिर्षं तदाश्रय पन्थानमत्रम्य तस्यै ।—रघु ७।३१

—प्रमदैवाभिर्षं भोग्यवस्तु । 'आभिर्षं स्वस्त्रियां मतिः स्याद्भोग्यवस्तानि इति

संकर ने बरुक्पत्नी का पुरुष समान ही भावर किया था। पति स्वयं पत्नी का बहुत अधिक भावर करता था<sup>१</sup>। इन्जुमती की मृत्यु पर अब का विचार कि तुम ही मेरी एकान्त की सखी, सम्मतिदाता कवितककाओं की चिप्या की प्रम के साथ नारी का भी स्थान व्यक्त कर देता है<sup>२</sup>। मेघपूत में यश के विचार से भी इसी बात की पुष्टि होती है। राम सीता से कितना स्नेह करते थे यह सीता का परित्याग कर देने पर भी सम्मन के मुख से समस्त वृत्तान्त सुन बंधु महाना व्यक्त करता है<sup>३</sup>। सीता के प्रति भावर और स्नेह की पराकाष्ठा यज्ञ में सीने की मूर्ति का रखना देना है<sup>४</sup>।

परन्तु नारी के विषय में समाज में अचक्षुष प्रचलित थे। यद्यपि पत्नी सह बर्माचारिकी बरुक्पत्नी सुगृहिणी अनन्य प्रमिका सती-साध्वी होती थी पर स्त्रियों के विषय में कुछ विशेष प्रकार की उक्तियाँ भी सुनने को मिल जाती हैं, यथा स्त्रियों की सेवा का काम बहुत ठका है,<sup>५</sup> स्त्रियों का स्वभाव बहुत कठोर होता है,<sup>६</sup> स्त्रियाँ स्वभाव से ही बड़ी आलस्य होती हैं<sup>७</sup> स्त्रियाँ जब अधिक कामासक्त हो जाती हैं तब उनको ज्ञान नहीं रहता कि हमको क्या करना चाहिए, क्या नहीं? स्त्रियों की प्रकृति ही दुष्टा की है। शकुन्तला के ऊपर दुष्यन्त न मनेष्ट करता है जैसा 'इसे कहते हैं स्त्रियों की प्रत्युत्पन्नमति'<sup>८</sup> अपना काम साधनेवासी स्त्रियों के पीछे फुसलाने में कामी लोग ही आते हैं<sup>९</sup> स्त्रियाँ बिना विचार्य ही बहुत चतुर हो जाती हैं तब जो समझवासी हैं उनका क्या कहना।

- १ अचिता तस्य कौटस्या प्रिया वैक्यवयवा ।—रघु० १०।१५५
- २ गृहिणी सखि सतीमिका प्रियचिप्या ललिते कवामिनी ।—रघु० ८।१७
- ३ बभूव राम महसा सबापस्तुपारवपीव सहस्यवन्त्र ।—रघु० १४।८४
- ४ सीतां जिन्वा वयमुपरिपुनोपयेमे यदभ्या  
तस्या एव प्रतिवर्ति सखी मत्कृतनाशहार ।—रघु० १४।८७
- ५ सेवाकारा परिचरितरभूत्स्त्रीषु कष्टाऽधिकार ।—भिक्रम ३।१
- ६ बहिता बालु स्त्रियः ।—बुधार्क ४१५
- ७ निमर्गनिपुणा स्त्रियः ।—मात० अंक ३ पृ० २६४
- ८ अस्यान्वो हि नारीणामकासजो मनोमयः ।—रघु० १२।१३
- ९ इह ताप्रत्युत्पन्नमति स्त्रीमिति मनुष्यते ।—अभि० अंक १ पृ० ६०
- १० तत्रवर्तिभिरामवायनिवर्तिनीनामनूतमयवाहमधुमिराज्यन्ते विपक्षिण ।  
—अभि अंक १, पृ० ६१

जब तक कोयल के बच्चे उड़ना नहीं सीखते तब तक वह दूसरे पक्षियों से ही अपने बच्चों का पालन करवाते हैं, आदि-आदि<sup>१</sup> ।

परन्तु यह सब क्यासमाज ही है । किसी दुष्ट स्त्री का चरित्र उनके ग्रन्थ में नहीं मिलता अतः अवश्य ही उन्हें समाज में उच्च स्थान प्राप्त था । कत्ती भी पुत्री उसके प्रति ही आदर को भावना थी । पराई स्त्री पर जाँच न डालने का आदर्श था<sup>२</sup> । इसके अतिरिक्त स्त्री का आदर बिना किसी भेदभाव के होता था । उदाहरण के लिए संकर का अकम्बरी के प्रति उद्गार<sup>३</sup> पावती की उपस्थिति के समय बड़े-बड़े क्षत्रिय-मुनियों का उससे मिलने जाना<sup>४</sup> सेना का मुनियों द्वारा सम्मान<sup>५</sup> आदि । विदुषी स्त्रियाँ समाज आदर की पात्री होती थीं । उनका निर्भय स्वकीय मान्य होता था । कौशिकी का निमय सबने ही स्वीकार किया<sup>६</sup> । यद्यपि एक-दो उदाहरण यथा कुप्यन्त का द्युक्तका के प्रति स्त्रियों की स्वाभाविक दुष्टता कहकर आरोप लगाना<sup>७</sup> तथा क्षत्रियों को मातृविका से दिल बहुलते देख कर दण्डनी का रचना से ताकित करने का प्रयत्न करना है,<sup>८</sup> तथापि वे अपवाद ही हैं । पति को विश्वासपात्र करते देख और बस्ती से दिल बहुलते देख क्रोध आ जाना स्वाभाविक है पर बीसा बाब में देखा गया पत्नी स्वर्ग स्वामी को

१ स्त्रीभावधिसिद्धपटुत्वप्रमाणुपीपु उवृत्तते क्षिप्त या प्रतिबोद्धवत् ।

प्रागन्तरिद्यमनमास्त्वमपरममातृमयीत्रिभे परमृता खलु पीयवन्ति ॥

—अभि० ५।२२

२ अनिबन्धनीयं परमद्वन्द्वम् —अभि अंक ३, पृ० ८३

३ तामभौरजमेरेन मुनीरथापश्यसीस्वर ।

स्त्रीपुमानिरयमास्वीया भुर्त हि महि सताम् ॥—कमार ६।१२

४ क्तामिपेका हृत्पातवेरतं त्वभुतरागपतीमभीतिनीम् ।

विदुषवस्तामपयोऽम्पुपायमग्न बभूवेषु बभू लमीरयते ॥—कमार० ५।१५

५ सेना मुनीनामपि माननीयाम्.. —कमार० १।१८

६ मय्यस्वा भगवती नी भुजवीयत परिच्छेत्तुमर्हति ।—माक० अंक १ पृ. २७२

७ इदं ताम्यपुत्रान्ममति स्त्रीभूमिति यवुच्यते ।—अभि० अंक ५, पृष्ठ २०

१. ५. ५. विपदिष ।

हमरा विवाह करने की अनुमति दे देती है। बाराही का पुत्र इतना बड़ा है कि मठ करने जाता है, विजयी होता है। अथवा ही अग्निमित्र अवस्था में काफी बड़े होने और भासबिका उनके सम्मुख बालिका ही होती। पर फिर भी पति की अनुरक्ति देखकर बारिनी भासबिका के साथ अग्निमित्र का विवाह कर देती है। हरावती भी इसका समर्थन करती है<sup>१</sup>। अतः हरावती की ताड़ना क्रोधवश ही थी।

नारो-जीवन पर सांगोपांग दृष्टि—नारी क तीन रूप है पुत्रो पत्नी तथा माता। कहना अर्थात् न होना कि काश्चित् ने दोनों ही रूपों को अपनाया तथा मम्मक दुष्टि डाली।

कन्या-रूप—पथ की तरह ही कन्या का परिवार में मान था। मृगुषी से पिता बन्ध हो जाता था<sup>२</sup>। उसके जन्म के समय भी पुरुषोत्पत्ति की तरह ही मान्य मनाया जाता था। पुत्र के समान ही कन्या भी माँ-बाप का स्नेह पाती थी<sup>३</sup>। पावती माता-पिता बानो की ही दुष्टापी था। कन्या ही परिवार का जीवन और आनन्द की (कन्यैव कलत्रोचितम्—कुमार० १।१२)। वात्स्यायना में अपनी सपियों के साथ नाना प्रकार की क्रीड़ा करतीं कभी गैर खेल्ती<sup>४</sup> कभी बालू छट पर बेसी बनाती<sup>५</sup> कभी गुड़िया खेल्ती<sup>६</sup> और कभी बालू का घर बनाना शक्ति खेला करती थी<sup>७</sup>।

सिद्धा—पुत्र की तरह ही कन्या को भी पिया ही जाती थी। पिता के अतिरिक्त उनके कर्मितकलाओं की पिता ही जाती थी। शुक्रवत्सा कविता करना जानती थी इसका दृष्टान्त उसका पथ-वेक्षण है<sup>८</sup>। प्रथापनकछा अननूया

१. हरावती पुनर्बिभ्रपति—मरुतं देव्या प्रभावया ।

तत्र वचनं सवत्सितं न ह्यवसेज्यवावतु इति ।—मातृ अंक ५, पृष्ठ १५५

२. प्रमा महत्या सितयेव दीपद्विभागयेव विरिचम्य माय ।

तत्कारवायेव मित्र मनीषी तज्ज न पूतञ्च विमृषितरञ्च ॥—कुमार० १।२८

३. महोमठ पुरुषवोपतिं दृष्टिस्तस्मिन्प्राये न जगाम तृप्तिम् ।—कुमार० १।२८

४. मन्दाकिनीमेकतबारिकाभिः सा कम्पुर्कं कश्चिन्पुनर्करञ्च ।

रेने मुहुर्मध्यगता सन्नीता क्रीडारम निविद्यतीव बाधे ॥—कुमार १।२९

५. ५. दैविण, पारटिप्पणी नं० ४

६. तत्र सन्तु मन्दाकिन्या पुष्पिनेषु यथा मित्रतापवतवैशीभिः कीदृशी विद्यावर बारिकोरपवती नाम तेन राजपिथा निष्यस्येति कुरिता वचपी ।

—चिन्म० अंक ४ पृ० २१६

८. तत्र न जाने हृदयं मम पुनः कायो विवासे सनिमति ।

निमृञ्च ताति बन्धोपस्त्वयि कृतमनीरवार्थयानि ॥—अयि०, १।१४



और मिराबरा दोनों जानती थी<sup>१</sup> । मातृविका मूल-सर्वीत-विचारवा भी । परि  
प्राप्तिका म केवल संगीतकला की समझा थी अपितु वैदिकशास्त्र का भी अच्छा  
ज्ञान छेते था<sup>२</sup> । यज्ञ-मन्त्री का पति-निर्भोग में विश्र बनाना<sup>३</sup> बीजा पर बाले-गाले  
मूच्छना आदि भूषण आवा<sup>४</sup> उसके सतिवकन-सम्बन्धी ज्ञान का परिचायक है ।

कर्त्तव्य—सकुन्तला का मिराप्रति भूत सीबना<sup>५</sup> पालवी का पूजा के निमित्त  
पुष्प चुनना बेरी की घोला पोंछना गिरवर्ध के छिए बल और कुछ लम्बा<sup>६</sup>  
व्यक्त करता है कि लवकियों को प्रत्येक प्रकार का काम सिखाया जाता था ।  
अतिथि-सत्कार उनका सबसे बड़ा कर्त्तव्य था । सकुन्तला की सखियों का दुष्यन्त  
का सत्कार छिष्ट मायम उनकी उन्म सिखा और संस्कृति की बहिष्पत्ति है ।  
जन्म ने सकुन्तला पर अतिथि-सत्कार का भार डीका था<sup>७</sup> । पार्वती का बह्मचारी  
बेध में आए छिद का सत्कार भी अतिथि-सेवा के कर्त्तव्य की व्यक्त करता है<sup>८</sup> ।  
राजा हिमात्मक ने अपनी पत्नी और कन्या की सप्तर्षियों के आपमन पर  
अतिथि-सत्कार के छिए वर्णित किया था<sup>९</sup> ।

१ बये अनुपपुन्य नृपगोर्ध्व जन ।

विश्वकर्षपरिवयेनापेपु ते जागरणविनिर्गोर्ध्वं क्रुम ।—अभि० अंक ४ पृ० १७

२ छेवो वृद्धस्य दाहो वा असेवा रक्तमोक्षकम् ।

एतानि द्रष्टमावातामामुष्मा प्रतिपत्ताव ॥—वाक ४४

३ मरसादुर्ध्वं विरूतनु वा चावगम्यं सिन्धवती ।—उत्तरमेव २५

४ उत्पन्ने वा मन्त्रिबलनं छीम्य विक्षिप्य बीजा

मधुयोगं विरचितपुं धनमुदुवागुकाया ।

तर्हीमर्द्या नयमसङ्गिने मारमिवा वर्षादिभू

भूवो भूय स्वयमपि कृता मूच्छना विस्मरन्ती ॥—उत्तरमेव २९

५ लवोर्ध्वं तलकन्धस्वाधमकराका शिवतरा इति तक्ष्माणि येन

लवप्येनेवां जातमान्दूरने निवृत्ता ।—अभि०

शिक्षा का आदर्श—शिक्षा का आदर्श वास्तविकताओं को योग्य गृहिणी और माता बनाना था। कर्म का संप्रेषण इसका साधन है<sup>१</sup>। उमा की शिक्षा के विषय में बताया हुआ कि विभिन्न ज्ञानों के विषय में बताया है जो उसे गठ जीवन में स्वतः प्राप्त हो गए थे<sup>२</sup>। शकुन्तला की शिक्षा उसको उच्च संस्कृति की। उसका शिष्टाचार, संयम सहनशीलता रूप के कारण उद्बोधित न होना यदि उसकी वास्तविक शिक्षा के प्रतीक है। शकुन्तला का ब्रह्म सत्ता<sup>३</sup> और हरिषों से प्रेम<sup>४</sup> उसके हृदय की विधात करणा अभिव्यक्त करता है। कवि 'निसमन्तिपुत्रा' लिख<sup>५</sup> कह कर ही उनकी विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता की प्रशंसा कर देता है।

पंक्षा—समूह घटों की कन्याएँ गृह में ही रहती थी पर सामान्य वर्ग या छोटी जातियों की कन्याएँ यहाँ न काम करती<sup>६</sup> राजावा और समूह व्यक्तियों के घटों में काम करती थी। प्रायः राजा की परिवारिकाएँ कुमारी ही होती थी<sup>७</sup>। मासिकाग्निमित्र में उपवन पास्तिका<sup>८</sup> सौरभांडरिका<sup>९</sup> तथा अन्य परिवारिकाओं मास्तिकाओं बहुलावस्तिका यवनौ मासि का प्रसंग है। अमित्रान पास्तिकम् और विरामोक्तोय में भी यवनौ और अन्य परिवारिकाओं का उल्लेख है। प्रायः इन नौकरानियों का चरित्र वृषित हो गया था क्योंकि राजा इनसे अपनी कामुकवृत्ति की सन्ति कर लिया करते थे<sup>१०</sup>।

१. शुभूपस्य नुबन्धुव प्रियमखीर्वात् सपत्नीजने  
परमर्षिप्रहृष्टाप्रप ऐवचतया मास्य प्रतीपं मम ।

भूमिष्ठं मम दक्षिणा परिजन माय्येधनुस्तेकिनी  
मास्त्येर्षं गृहिणीपथं शुभतयो वासा कुलस्याधम ॥—अमि० ४।१८

२. स्विरोपदेसामुपदेसकाले प्रपेदिरे प्राक्तनब्रह्मविद्या ।—कुमार० १।३०

३. न केवलं तातनियोव एव । अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु ।

—अमि० अंक १ पृ० १२

४. यस्य त्वया व्रणविरोपणमिगुदीनां तैलं न्यविष्यत मुने कुसमृच्चिदिदे ।

स्वामाकमुष्टिपरिवधितको ब्रह्मसि सोऽयं न पुनश्चतकं पश्यी मृगस्ते ॥

—अमि० ४।१४

५. मास० अंक ३ पृष्ठ २६४

६. इधुच्छापनिपादित्यस्तस्य गोपुनुगोवयम्

आनुमारकयोर्वात् दासिमोष्यो अगुर्यध ॥—रघु०, ४।२०

७. वास्तिका आयपुनश्चनमनुतिष्ठन्—मास० अंक ४ पृष्ठ ३२१

८. एतं प्रवितरमुच्छलपास्तिका ।—मास० अंक ३ पृ० २६०

९. पत्नारभांडनृव्यापारिता मायविका वैष्वा संरिद्धा ।—मास० अंक ४ पृ० ३१९

१०. कल्पतपुष्पस्यनास्मत्तागृह्णन् वृत्तिवत्तमार्गदंग ।

अन्धवृत्तपरिचयायनारतं ताद्विरोधमयवापुत्तरम् ॥—रघु० १६।२३

कुमारी-जीवन के आदर्श—भारतीय मातृसुख की का चित्रण साम्प्रदायिक के अतिरिक्त किसी कवि ने पूरकपक्ष से नहीं किया। कुमारसम्भव की उमा मातृसुख शक्ति है। लक्ष्मी की मातृसुखसे उसका कहीं अधिक मनोहारी रूप दर्शाया गया है। वहाँ वह उसकी मातृसुखियों का उत्प्रेषण करता है वहाँ उसके दिल में प्रति चपलीयमान लौकिक और छवि का वरुण साहित्य की अभिव्यक्ति है। वह हिन्दू शक्तिशाली के वरुण से गुणा करते हैं वह इनके वरुण में मस्तक सिद्ध होता है। लक्ष्मी का महत्त्व साम्प्रदायिक आचरण के कारण है। प्रेम की सुकुमारता और सुकमला पुत्री के वरुण से ही पृथ होती है पुत्री ही पिता में कोमल अनुमति उत्पन्न करती है क्योंकि वह कुछ समय के लिए ही परिवार को आनन्द दे पाती है। वरुण की मातृसुख वहाँ उसके तत्त्व पाठ से टकराई वह दूसरे गृह की ही सुपमा बन जाती है। जब कल्प जैसे वनवासी और निरुद्धी मनुष्य भी सुकुमारता को बिना करते समय 'आज सुकुमारता नहीं पाएगी' सोचकर और सुकमले वरुणों से इतने अवच्छेद हो रहे हैं तब उन गृहस्थों का किताब कष्ट होमा को पहले-पहल अपनी कल्पियों को बिना करते होये। इसका अनुमान पाठकों को कुछ में देना होता है। कल्पा दूसरे का वरुण है, वह पति के गृह में बैठकर पिता के वार्षिक वरुण होती है। कल्पा के सम्बन्ध में इन विचारों ने पिता और पुत्री के पारस्परिक सम्बन्ध में प्रेम के किंचित सुकुमार, कामल उच्च तथा मातृसुखर वरुण की सृष्टि की अवस्था ही यह कामिवास का आचरण था।

### सुकुमारी : पत्नीरूप

कल्पित और आदर्श—समाज में सुकुमारी नारी का स्नेहमय सम्मान था। सुकुमार और जीवन के जीवन की अवस्था मातृसुख स्पष्टीकरण थी। यह सीधे

१. मातृसुखस्य सुकुमारस्यैति ह्येव संस्पृष्टमुत्कटव्या  
कंठं स्तम्भितवाप्यवृत्तिरनुपपन्नविन्ताज्ज्वलं वरुणम् ।  
वैकल्प्यं मम तस्मिन्पुत्रादियं स्नेहावस्थायीनम्  
पौत्र्यस्यैव वृत्तिरिति ननु तस्माद्विस्मयवन्तु जीवन्ति ॥—अभि ४१६
२. वरुणो हि कल्पा परलोच्य एव तामस्य संस्पृष्ट परिणयिणु ।

पुरा के लिए सबसे अधिक आकर्षक वस्तु थी। उनके विभ्रम और प्रणय भावनों से सारा समाज मुहुरित था। जीवन बीतने पर कौट कर नहीं जाता बत इसका उपभोग करना ही वांछनीय है<sup>१</sup>। ऐसा ही मुहुरितों के सम्मुख आदर्श था। जो अपने जीवन का उपभोग नहीं करती थीं, उन्हें 'रत्न भरी मजूपा की संज्ञा दी जाती थी। जैसे 'रत्न भरी पिटारी रत्न होते भी सनका लोग नहीं करती वैसे ही बिना जीवन किन्ना हुआ जीवन भी व्यर्थ है<sup>२</sup>। सुन्दरी स्त्री सुन्दर मुर्तों से युक्त भी समझी जाती थी<sup>३</sup>।

पत्नी बम-गाली थी<sup>४</sup>। पति के अभोक्तृक आचरण करना उसका सबसे बड़ा धर्म था। स्वैच्छाधारिता उसके लिए अच्छी नहीं समझी जाती थी<sup>५</sup>। के प्रत्येक काय में सहायता देना<sup>६</sup> पुरुषों की परिचर्या करना गृह-संभालन करना उसका परम कर्तव्य था<sup>७</sup>। पति ही उसका सबका था। उसके घर में वास्तव्यवृत्ति भी पिता के घर रहने से कहीं अवसर थी<sup>८</sup>। पति का पत्नी पर पूर्ण अधिकार था<sup>९</sup> पर पत्नी अपने ब्रह्म प्रम से उसको जीत लेती थी। पति के लिए ही उसका समस्त सुन्दर था<sup>१०</sup>। पति के ब्रह्म प्रम को प्राप्त करना ही उसका धर्म कर्तव्य था<sup>११</sup>। पति के प्रम की प्राप्ति करने के लिए वे

- १ रमजतमानममं कत विवहेन पुनरति नत चतुरं वय ।—रघु० ६।४७
- २ मुनेशानी मंजूषा रत्नमांडं जीवनय चहसि ।—मातृ अंक ४ पृ० ३२३
- ३ मनुष्यते पावति पापवृत्तये न उपमितयम्यविचारि सृष्टि ।  
तथा हि ते धीरमुवाचरसने तपस्विनामप्युपदेष्टा यतम् ॥  
—कुमार—०, ६।३६
- ४ धिरेन धर्मां सृष्ट बमचर्मां कामां लया मुक्तविचारयेति ।—कुमार० ७।८६  
—किं न केति सहबमचारिणं ब्रह्माकृतमवृत्तिमात्मन ।—कुमार० ८।३१
- ५ किं कुपोमाने स्वातन्त्र्यमवकम्बस ?—अभि० अंक २ पृ० ६४
- ६ सर्वस्वविचारिण्यो भर्तुरिहे पतिपता ।—कुमार० ९।८९
- ७ शुभ्रवस्व मुक्तमुक्त प्रियसखीवृत्ति सफलीजन  
पण्यविमहतामपि रोपयतया या स्म प्रतीपं नम ।  
मृद्विहं मम हसिणा परिजने मायेष्वनुलेकिनी  
यान्तेवर्षं गृहिणीपर्वं ब्रह्मयो वामा मुनम्यावय ॥—अभि० ४।१८
- ८ पतिपुत्रे तव वास्तवमपि धमम् ।—अभि० ४।२९
- ९ उपपत्ता हि दारैषु प्रभुता सखतीमुगी ।—अभि० ४।२९
- १० स्त्रीणां प्रियानौकट्यो हि वेद्य ।—कुमार० ७।२२  
—प्रियेक सौभाग्यपथा हि चास्ता ।—कुमार०, ४।१
- ११ अर्गतिर्न प्रम तमस्य पत्न्यु—कुमार० ७।२८

सब कुछ त्याग करने को प्रस्तुत हो जाती थीं। यहाँ तक की सँत कर्म को भी तैयार हो जाती थी<sup>१</sup>। वे छती-साध्वी और सच्चरित्रा होती थीं। पति उनके लिए देवता थे<sup>२</sup>। उनके पाप पर ध्यान न देती हुई वे अपने को ही अपराधिनी समझ अपने भाग्य को निम्ना किया करती थीं। छीटा ने राम हाथ परित्यक्त होने पर राम की निम्ना न करते हुए अपने भाग्य को ही कोसा<sup>३</sup>। न बूसर कर्म में भी उसी पति को पतिरूप में प्राप्त करना चाहती थी<sup>४</sup>। पति का अनादर उनकी असह्य था। उनके पादिकृत का यही सच्चा आदर्श था। छती न पिटा द्वारा पति के लिए अपमानसूचक सम्बोधनों को धुन योग से अपना सरीर छोड़ दिया<sup>५</sup>।

पति की प्रसन्नता और सन्तोष उनके जीवन का सच्चा सुख था। अपना अहंकार और स्वस्व छोड़कर प्रिय जिसे प्यार करे उसे प्यार करने को प्रस्तुत हो जाता उनके स्वाम की पराकाष्ठा थी<sup>६</sup>। यह सब सैद्धान्तिक नहीं अस्तित्वव्यवहारिक था। वे सपत्नियों के साथ स्नेहपूज और कान्तरपूज व्यवहार करती थीं इसके दृष्टान्त मातृविकान्तिमित्र और विक्रमोन्मदीय में हैं<sup>७</sup>। सपत्नी के

१. प्रतिपक्षभापि पति सेवन्ते भर्तुं नित्यम् साध्वी-  
अल्पसंख्यामपि अर्धं समुद्रमा प्रापयन्पुत्रवत् । मातृ० १।१९
२. तनयमन्तपतिं पतिदेवता ।—रघु० १।१७
३. न चावदद्गुरुं रत्नमासीं निराकरिण्योषु जितकृतेऽपि ।  
अपमानमेवास्मिन्नुत्तमार्जं पुनः पुनःकृतिर्न निमित्तम् ॥—रघुः १।४५७
४. साहं तपः सूर्यनिवृत्तिदृष्टिर्धर्मं प्रसूतेऽवर्तितुं यत्तिष्ठे ।  
भूयो यथा मे जगन्मन्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न न विप्रवीय ॥—रघु० १।४६६
५. यदैव पूर्वं जग्मे सरीरं सा वलारोपात्सुवती समज ।  
तत्राप्रमृत्तेव विमुक्तमंगं पतिं पदुनापपरिग्रहोऽभूत् ।—कुमार० १।११  
—अबाधमानेन पितुः प्रयुक्ता दशस्य कन्या बधपूर्वपत्नी ।  
छती छती योयविमृद्धेद्वा तां जग्मे सौतवर्षं प्रपेदे ॥—कुमार १।१२१
६. अद्यप्रभृति यां विजयमार्यपुत्रं प्राचयते या चाद्यपुत्रस्य समानप्रचयिनि तथा

आवर के कारण ही सबकी धरने पुत्र से बड़ी माँ की प्रणाम करने को कहती है<sup>१</sup>। पति के लिए प्रियानुप्रसादन वर भी किया करती थी<sup>२</sup>। स्त्रियाँ अपने पति के मार्ग का अनुसरण करती हैं वह चेतन में नहीं अपितु बड़ पशुओं में भी है<sup>३</sup>। हमने उनके प्रेम की महुराई व्यक्त होती है। अतः पति के वर जाती पशुवत्ता को लापम स्त्रियाँ यही मायीबाँध देती हैं कि वह पति के सम्मान और स्नेह की प्राप्ति में सफल हो<sup>४</sup>। जबकी को भी यही आलोचना मिलती है<sup>५</sup>।

वर्ष के महाभुखार नारी का आचरण पत्नीत्व और मायुत्व है, अतः पति और पुत्रवती स्त्रियों का बहुत सम्मान होता था। सुषोम्न पति को ही गर्द कम्पा बून्दें गूह को भी ज्योति बन जाती है साथ ही अपने पुत्र गूह को भी आलोच्य करती है<sup>६</sup>। स्त्री और पुरुष दोनों ही समान हैं। वमर्षि के सम्मान में यह स्त्री है, अतः इसका सम्मान न किया जाय ऐसा नहीं होता था। राजकुम्भी ने अश्वमेध का उदना ही सम्मान दिया था जिसका उनके स्वाम पर कोई पुरुष होता तो उसे देते<sup>७</sup>। पावती का सम्मान सभी मुनिगण करते थे अर्थात् वह धरत्ता में बहुत छोटी थी<sup>८</sup>। मेना योगिया उपस्थितों के द्वार से पूजा जाती थी<sup>९</sup>। पूजा और आवर वरिष्ठ के कारण होता है, पति के कारण नहीं<sup>१०</sup>।

विवाहादि मामलों में पत्नी की सलाह लेना<sup>११</sup> स्त्री की मुखिणी सचिव

१ ज्येष्ठमातरमभिवन्दस्व ।—विष्णु० अंक ५ पृ० २५६

२ किं नामधेयमस्तद्देव्या वरम् ? अथ प्रियानुप्रसादनं वाम् ।

—विष्णु० अंक ३ पृ० २०४

३ पशिना सह याति कौमुदी सह मैत्रेय तद्विप्रश्नीयते

प्रमथा पतिवत्तमा इति प्रतिपन्नं हि विप्रश्नीयते ।—कुमार०, ४१३३

४ आते भुवभुमानमूर्ध्व महादेवीशब्दं लभस्व ।—अभि० अंक ४ पृ० ६३

५ विष्णु अंक ५ पृ० २४२

६ अघोष्मा हि त्रिभुः कम्पा सद्गुण प्रतिपात्रिता ।—कुमार० ९१७६

७ स्त्रीपुमानित्यन्यत्वेण वृत्तं हि महितं सज्जम् ।—कुमार० ९१२२

८ कथाभिप्रेकां हुतमात्रवेदसं त्वमुत्तरासंयत्नीयधीतितीम् ।

त्रिभुवस्ताम्रपयोऽम्बुपागमस्य वमवृद्धसु वयं समीक्ष्यते ॥—कुमार० ४११६

९ न मानसी मन्मथः पितृणां कम्पा वृक्षस्य स्थितये स्थितिम् ।

मेनां भुमीनामपि माननीयामागमाणां विधिगोचरके ॥—कुमार० ११८८

१० ऐषिए, पाणिनीयी नं ७

११ लोकं मन्मथवामोर्ध्वं मेनापुनमुत्तत ।

प्रायेण बृहिसीमेन वम्यार्धेषु वृत्तिभिः ॥—कुमार०, ९१८३

कालिदास के पुनः उत्कालीन संस्कृति

सबो सिप्यादि कहना? उसके प्रति पति के सम्मान को व्यक्त करता है  
 रही नहीं धार्मिक अनुष्ठानों का उनके बिना न होगा? दूसरा विवाह करने के  
 पूर्व जोछ पत्नी से मगना करना उसकी अनुमति पर ही विवाह करना"  
 (Kalidasa his poems etc's & Influence by Ram Swami Shastri  
 Page 222) इसका पुष्ट प्रमाण है।

यह कहना कि उस समय नारी का कोई व्यक्तित्व नहीं था उसका यही  
 काम था कि वह सैदा पति को करती चाय छीक नहीं। कालिदास ने कहा  
 है कि स्त्रियों का अधिकार है कि वे आवश्यकता समर्थ तो पति को किसी बात  
 से रोकें। स्त्रियाँ किसी बान्धव से ही पति पर क्रोध करती हैं<sup>१</sup>। यह उनके  
 अधिकार और स्वतन्त्र व्यक्तित्व की पुष्टि करता है परन्तु अधिकार का समर्थन  
 किसी अवस्था में न होना चाहिए<sup>२</sup>। अनुमति की पिता का यही सबसे बड़ा  
 उपदेश है कि बह्वार न करना<sup>३</sup>।

स्त्रियाँ पति के अतिरिक्त अपनी सास के प्रति भी विनमरीक थीं। सास  
 की बहुओं से प्रेम करती थीं<sup>४</sup>। पत्नी की स्नेहीता और वित्त प्रयत्नीक थी।

१ गृहिणी सखि सखी मिय प्रियसिप्या ललिते वनविवा १—रघु० ८१०  
 २ क्रियाणां लक्ष्म्यं चर्याणां सम्पत्तयौ मूलकारणम् १—कुमार ११२४

३ पारिणी (मासविका इत्येव गृहीत्या) इवमाक्युव प्रियनिवेदनानुकं पारिणीकं  
 प्रतीच्छति। मासविनामगुणवती कृत्वा बाधपुत्र इरानीमिमां प्रतीच्छन्तु।  
 राजा—स्वच्छातमात्रवृत्ता एव वयम् १—मास० अंक २, पृ १२२-१२३

४ राजा की मासविका के प्रति अनुरक्ति देखकर देवी कहती है—यदि  
 राजकार्येषु ईदृशमुपायनिपुणताकपुत्रस्य तदा योग्यं नवैन्।  
 —मास० अंक १ पृ० २०२

५ अनिमित्तमिच्छुवन्न किमपि नवत पदहमुपौ भवति।  
 प्रभवन्त्योऽपि हि भवन्तु कारणकथा दुष्टमिच्छन् ॥—मास० ११८  
 ६ नारदायते उवाच नमो योगिनाय ॥—मास० ११९  
 ७ ११८

वे स्वामाधिक भङ्गा से जोतप्रोत होती थीं। मुकुटनों के सम्मुख पति के साथ जाने में संतुष्टि होती थी<sup>१</sup>। पति को वे कार्यपुत्र कह कर सम्बोधित करती थीं।

मनोरञ्जन के साधन—मनोरञ्जन के लिए वे उपवन में बिहार करती<sup>२</sup> झूला झुम्टी<sup>३</sup> बल-झीड़ा भरती<sup>४</sup> बीजा या पीठ गाली<sup>५</sup> बिज गाली<sup>६</sup> कपा सुगली<sup>७</sup> तथा मही किनारे बालू में टीके बनाकर जोड़ लेता करती<sup>८</sup>। मरिच-नाल भी कभी-कभी करती थी<sup>९</sup>।

मातृ-रूप—पति के बंध को बसाने के लिए पत्नी ही एकमात्र कारण थी। बौर पति के समान स्निग्ध बौर पुत्र की माता बनने को भी सामानित रहती

१ त्रिहोम्यापुत्रेण सह गुरुसमीपं गन्तुम् ।—अमि० अंक ७ पृ १४३

२ राधा के प्रेम में संतुष्ट माकबिका मन बहकाने में। लिए उपवन में जाती है। वही अपने मन में छिपे प्रेम को खटुट छत्रों में व्यस्त कर मन को हल्का करती है। प्रमदवन का उत्प्रेम उपवन-बिहार ही था। प्रमदवन सभी माटकों में जाया है।

३ मधवसंततत्तारम्यपदेतेनेरावत्या निपुनिकामुक्तन प्राप्तिं तो मवान्—  
इक्ष्माम्यापुत्रेण सह लोकाधिरोहणमनुमविपुमिति ।

—माळ० अंक ३ पृ० २६३

—माकबिके गौतमबाणकाहोस्तापरिभ्रष्टमा सखी मम भरणी ।

—माळ० अंक ३ पृ० २६६

४ कुच की रानियों के साथ बलझीड़ा—रघु १६।२६-७०

५ उत्सवे वा मलिनवसने सौम्य मिश्रीप्य बीजा  
मङ्गोभाङ्गं विरचितपर्यं मेममुद्गामुजामा ।—उत्तरमेघ २६

६ मत्तावृत्त्यं विरहकुन्तु वा भावगम्यं लिप्यन्ती ।—उत्तरमेघ २६

७ भववति ! रमणीयं कथावस्तु । तत्तत्तत् । प्रवाल समने देवी निपन्ना  
रक्तचम्पनधारिणा परिजनहस्तमतेन बरधेन मगवत्या कथाविधिनीधमाणा  
तिष्ठति ।—माळ० अंक ४ पृ० ३१७

८ तत्र तत्तु मन्त्राकिया पुक्तिनपु मता मित्रतापवतवैलेवि अडिन्ती मिद्यावर  
वारिचमोदयवती नाम तेन रावपिना निध्यातेति वृत्तिरा उवती ।

—विश्रम० अंक ४ पृ० २२३

९ चटि निपुनिके श्रुतामि बहुषो मधः किम् एतौजनस्य क्षिरोपमम्भनमिति ।  
( अवस्थामधुतं परिक्रम्य ) चटि मदेन बलाभ्यमानमाभ्रान्तकार्यपुत्रस्य वदन्ति  
हृदयं त्वरयति वरधो पुनन मम प्रसरत ।—माळ० अंक ३ पृ० ३०१

नोट पचाम्बान इगवा विस्तृत बचन किया जायगा ।



थीं । बड़ा पुत्रपटी होने का ही उनको आशीर्वाद दिया जाता था<sup>१</sup> । और पुत्र की माँ बनने में वे औरक अनुभव करती थीं । मातृकामिमित्र में वसुमित्र की विजय पर परिणामिका कारिणी को बधाई देती ॥ तब कारिणी यही कहती है कि मुझे नहीं सुख है कि मेरा पुत्र पिता के समान पराक्रमी निकला<sup>२</sup> । माँ अपने पुत्र की विजय के लिए रत रहती थी वसिष्ठादि देती थी<sup>३</sup> । कौटल्यादि अपने पुत्रों की बीट देखकर इतनी कातर हो गई कि उनको माँ कष्टभया बण्डा नहीं क्या । यह उनके पुत्र-प्रेम की पराकाष्ठा है<sup>४</sup> । पुत्र-प्रेम से उनके स्तनों से दूध की धार टपक-टपक कर बोली को गिबो देती थी<sup>५</sup> ।

मातृ-रूप का समाज में यथेष्ट सम्मान था । पति पत्नी के दोहब की पूर्ति पाव-पत्र से करता था<sup>६</sup> । अन्तान के प्रति ममता विश्व प्रकार की होती है

१ बत्से । और प्रसन्निनी मन्त्र ।—अभि० अंक० ४ पृ० १३

—कस्यादि औरप्रसवा मन्त्र ।—कुमार० ७१८७

—तमन्त्र नेत्रावरणं प्रमृज्य संनिता विष्णुपात्रिस्ता मन्त्रे ।

तस्यै मुनिर्होहर्षिणावर्षी वास्वाम्बुपुत्रादिपमित्पुत्राव ॥—रघु० १४७१

२ मर्वासि-बीरपत्नीनां वसुध्वानां स्थापिता पुरि ।

बीरसूरिणि अम्बोऽयं तनयात्पामुपस्मिता ॥—माक० २११९

—मन्त्रवति । परिपुष्टास्मि अतिपतरमनुवासी मे वत्सक ।

—माक० अंक २ पृ १२१

३ बत्त प्रभृति सेनापतिप्रभुरंयराजने निमुक्तो ननु बारहो वसुमित्रस्तथा प्रभृतिस्तस्यानुनिमित्तं निष्कसतमुत्पन्नपरिभाषा देवी वसिष्ठादी परिप्राह्यति ।

—भास० अंक २ पृ ११६

—देव्याज्जवति आवमिति अतुर्धविषसे प्रवृत्तपारणो मे वपवासो नमिष्यति ।

तत्र बीर्वाविप्राऽवश्यं संभावितव्येति ।—अभि० अंक २ पृ १६

४ से पुत्रयोर्मिश्रतयास्वमावर्मावर्माविर्वागे सत्यं स्पृष्टव्यम् ।

अपीप्सितं सत्रकुलांजनानां न बीरसूत्राव्ययकामयेताम् ॥—रघु० १४४

५ इयं से जननी प्राप्ता त्वत्समोक्तमतरा ।

स्नेहप्रसन्नमिन्नमनुग्रहणी स्तनांशुकम् ॥—विष्णु० अंक २, १२

६ न मे ह्रिया संसति किञ्चिदीप्सितं स्पृहावती वस्तुपु केयु मामयी ।

इसको सिखाने के लिये यहाँ से पीछों को सीखना सिखाया जाता था। सोना से वास्मीकि ने इसी कारण पेड़ सीखने को कहा था<sup>१</sup>। पाबलो को भी स्तनों के समान यहाँ से सीखे गए पीछों के प्रति इतना अनुराग हो गया था कि बाब में कार्तिकेय के जन्म उपरान्त भी इन पीछों पर वात्सल्य कम नहीं हुआ<sup>२</sup>।

---

१ बरोबरटेरायमवात्सवात्स्यैवचयन्ती स्ववत्तानुवर्तै ।

वर्मवर्षे ब्राह्मणयोगवर्षे स्तनवर्षयतीतिमवात्स्यमि त्वम् ॥ —२५० १४७८

२ अत्रमिता सा स्वयमेव वत्तवात्स्यवत्तनप्रवर्षयैव्यवचयत् ।

कुम्भेति येषां प्रवर्षात्तज्जगमा न वृत्तवात्स्यमवाकरिष्यति ॥—कुमार०, ४।१४

## सातवीं अध्याय

# खान - पान

भोज्य पदार्थों के प्रकार—खान-पान के सम्बन्ध में काश्मिर की कृषियों में पर्याप्त चर्चा नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि उन दिनों की सम्प्रदाय के अनुसार खान-पान की चर्चा काम्य में करना प्राम्द माना जाता था। जैसे ही गलकों में भोजनादि को रसमन्त्र पर दिखाने का निषेध था। अतः सामाजिक मनोरञ्जन के लिए ही विरूपक के पेटु होने की अभिव्यक्ति है।

पाणिनि के समय में भोज्य और भक्ष्य में भेद माना जाता था परन्तु पञ्चम्वक्ति ( २३० ई पू० ) के समय में यह भेद टूट जाता था। जैसा कि महाभाष्य के निम्न अवतरण से जान पड़ता है—

‘मभिरयं खरविभवे एव वर्तते तेन इवे न प्राप्नोति। नावस्य भक्षि खरविद्ये एव वर्तते। किं तर्हि। अन्यत्रापि वर्तते। तद्यथा वायुमयः।—महाभाष्य ७।३।१६

अर्थात् यह कहना कि मग ध्वज का प्रयोग जो खर विद्ये हो उनी के साथ होता है, जो इव या येव हो उनके साथ नहीं ठीक नहीं है; क्योंकि जो खर विद्ये नहीं है, उसके लिए भी मग ध्वज का प्रयोग होता है। जैसे अल-मन्त्रण वायु मन्त्रण। आज भी बंगाली इस खात्री रहती है।

काश्मिर के पक्ष में कोई बात निश्चय कर नहीं लही जा सकती।

कात्यायन ने सम्पूर्ण खान-पान की एक पंक्ति के द्वारा अम्भहारस्य पञ्च विहितं मन्त्रभोज्यकैह्यवीप्यपानीयमैरेन’ पुनरुक्तेन स्पष्ट कर दिया है। काश्मिर भी कात्यायन के ही पक्षगती है। उन्होंने स्वयं ‘पञ्चविधस्याम्भहारस्य’ पर इनी कारण प्रयुक्त किया है। इस दृष्टिकोण में सम्पूर्ण भाष पक्ष पाँच वर्गों में विभाजित हो जाते हैं। मन्त्र वय में न पक्ष्य आते हैं अिनको वाटकर

मनु आदि चान्कर ज्ञानिवाले पदाव आते हैं चोप्य में गन्ना आदि बूझ कर खाने वाली वस्तुएँ और पानीय में पेय-पदार्थ ।

काश्मिराम ने यद्यपि प्रत्येक लाल रीत्य छोटी-छोटी वस्तुओं का बर्णन नहीं किया तथापि जो आवश्यक सिद्ध आदि अनाज दूध वही मत्स्य मनु पुत्र तथा मोक्षक मत्स्यपण्डिका आदि मिठाइयों का परिचय दिया है । 'रसोईघर में पाँच प्रकार के पकवानों को बेसने-भर से हमारी उदासी दूर हो जायेगी'—विदूषक के इस कथन से आभास होता है कि काश्मिराम के समय में मनुष्य जले-मीने के शीकीन थे । काश्मिराम ने अपने समस्त नाटकों में विदूषक को खाने की वस्तुओं से रचि रखने वाला दिखाया है यह केवल निष्ठान्त हास्य के निमित्त नहीं अपितु सत्काशीन जनमाचार्य की रचि-सदृश के हेतु ही किया । विदूषक एक स्थान पर कहता है कि मेरा पेट हज्जवाई की कढ़ाई की भाँति बड़ा था रहा है<sup>१</sup> । इस उपमा से यह कहा जा सकता है कि तरह-तरह की मिठाइयाँ पकवान आदि हज्जवाई की दूकान पर निरन्तर बनते रहते होंगे तभी उसकी कढ़ाई सदा बछ्छी रह सकती है ।

निरुपम तथा सामान्य दोनों प्रकार के मोक्षकों का बर्णन था । उस समय के ब्रह्मण तक मांसाहारों से अठ मांस खाना बुरा नहीं समझा जाता था । इस पर मयस्पान प्रकाश डाला जाएगा ।

मुक्ता के लिए समस्त जात-परायों को अनाज दूध तथा वही मनु आदि नामा मिष्ठान्न पाण्ड फल इलायची काशी मिश्र लौंग नमक आदि भसाले पान सुपारी आदि बगैरे में विभावित किया जा सकता है ।

अनाज—मुख्य रूप से काश्मिराम जी आवश्यक और सिद्ध चीज ही अनाजों का नाम देते हैं । मुख्य अनाज, गेहूँ तक का वहीं संकेत नहीं है । सम्भव है उनके बर्णित प्रदेयों और स्थानों में गेहूँ की उत्पत्ति नहीं होती हो इसी कारण कहीं प्रसंग नहीं आ पाया ।

यक्ष—यक्ष का कवि ने अनेक स्थानों पर प्रयोग किया है । विवाह आदि भावार्थिक अवसरों पर इसका प्रयोग बहुधा किया जाता था । कानों में गूँजन जो कि अंकुर न केवल विवाह की घोषा थे<sup>२</sup> अपितु वयस्य मनु में

१. रसिण्ड, पिछले पृष्ठ की पादटिप्पणी में ।

२. बुद्ध विपश्चिन्नुत्तिष्ठ य उरराम्यमरं ब्रह्मदे ।—मात० अंक २ पृ० २८६

३. तस्या कपीने परमाण्वमादृश बभूव चतुर्णि यक्षप्ररोह ।—दुमार ७।१७

—बभूवुर्न कर्णान्तयवावर्तममाचार्यमयाह्वानादुत्तमूष ॥—दुमार० ७।८२

—तारंजनक्येव सपापुत्तार्थं प्रमत्तानवीजापुत्तर्चपूरम् ।—राम० ७।२७

बिनासी पुरुषों के कार्यक्रम-किन्ना भी बे<sup>१</sup> । रात्र्याभिषेक के समय बड़ की छात  
और दूबिल के साथ यवाकुर भी बाखी उठारने के लिए धूम समझे जाते बे<sup>२</sup> ।

बाबल—बाबलों के कई प्रकारों का कवि ने वर्णन किया है । जिनमें—  
‘घासि नीबार, कलम और क्यामाक मुख्य है ।

( १ ) घासि<sup>३</sup>—श्री वासुदेवचरण अग्रवाल के मतानुसार यह एक प्रकार  
का बाबल है, जो बाड़ों में पेदा हुआ करता है और जिसे जड़हन भी कहते हैं<sup>४</sup> ।

( २ ) नीबार<sup>५</sup>—यह भी बाबल का एक प्रकार है परन्तु निकट घेवी  
में जाता है । यह खेबलों में अधिक पैदा होता था । अतः ज्योवन-जवन में ही  
इसका प्रसंग अधिकता से देखा जाता है<sup>६</sup> ।

( ३ ) कलम<sup>७</sup>—मस्तिष्नाय की टीका के अनुसार यह घासि का ही  
प्रकार-विशेष है<sup>८</sup> ।

१ अस्मररागनिषेधिमिरंसुको मयनकम्पवैभव यवाकुर ।

परमृताविरतैश्च बिनासिग स्मरवधैरवर्जकरसा कृता ॥—रघु० ६।४४

२ दूषीपबाङ्कुरप्यज्जलत्वयमिन्नपुटोत्तरान् ।

बातिवृद्धैः प्रमुक्तास्त मेघे नीराजनाभिनीम् ॥—रघु० १७।१२

३ सम्पूष मनुसंहार मे इसके अनेक उदाहरण हैं ३।१ १० १५ ४।१ ८  
११, २।१ १५

—मनास्तराजोक्पवात्प्रसिद्धतचमूप ।

तस्युस्तेष्वाहमुक्ता सर्वे क्लिप्ता इव शास्त्रम् ॥—रघु० ११।७८

—ममघासिपद्मनीलस्तस्य वृद्ध निषेधिरे ।—रघु १७।१३

४ A kind of rice growing in winter which is replanted and  
called Jadhon.

—Indic as known to Paris, Page 102-103

५ नीबार पट्टभाकमस्मान्मुपहूरित्वति ।—अभि अंक १ पृ ३३

—प्रतिष्ठितनीबारहस्तामि स्वस्तिबाणिका

मिन्दापसीभिरभिनन्दमाणा यमुन्तता विष्टति ।—अभि० अंक ४ पृ० ६२

६ राममैष्यति मम द्यौक कथं नु बलौ त्वया रचितपूषम् ।

उटवडादिकई नीबारबालि विलोकयत ॥—अभि० ४।२१

—अपदैरिच नीबारभापयेयोचितैर्यगी —रघु १।१०

( ४ इयामाक<sup>१</sup>—टीकाकार राघव मट्ट इपको 'बान्धविरोध' कहते हैं<sup>२</sup> ।

तिल—यह तथा बावळ के अतिरिक्त अनाज में तिल का नाम भी कबि देता है । मृत्यु होन पर तिल की अञ्जलि देने की प्रथा थी<sup>३</sup> ।

छात्र—विवाह आदि भागतिक अवसरों पर कामाञ्जलि और साग्राहोम किया जाता था<sup>४</sup> । छात्र का साधारण भाषा में आमकल 'बीज' कहते हैं । राजा के सत्कार के उपलक्ष में पीर कम्पारें उन पर बीजें बरसाती थी<sup>५</sup> ।

दाहि—पाणिनि का समय ईसापूर्व १टी शताब्दी माना जाता है । कम-अ-कम वे कालिदास के पूर्व अवश्य हुए । पाणिनि मुद्रय और माप दो दालों का प्रयोग करते हैं<sup>६</sup> । यद्यपि काम्बिजान के इन्कों में किसी दाल का संकेत और प्रसंग नहीं है परन्तु उनके समय में इनका प्रयोग अवश्य होता होगा ।

### मृदू तथा इसका परियस्तित आकृति

कालिदास के समय में दूध दही और मक्खन का प्रचार अनुयायत से था । उस समय गौ की पूजा हो इसी कारण की जाती हो कि इसमें दूध दही मक्खन आदि की प्राप्ति हुवा करती है । विसीप और सुरक्षिया को नम्रिनी की सेवा करनी पड़ी थी क्योंकि पूज्यज्य में रिक्षाप ने कामधेनु की प्रणाम नहीं किया था । इन वर्ग में कवि के बर्णित प्रमंथों में सबसे पहल हय दूध का नाम है

- १ मत्स्य तथा अश्वविरोधमिगुनीनां तीर्त्तं मयिष्यन् मुनें कुद्यन्नुचिचिडे ।  
इयामाकमुष्टिपरिषिक्तको ब्रह्मिष्ठि मोर्म्यं न पुनश्चक पदवी मयस्ते ॥

—ममि ४१४

- २ इयामाको बान्धविरोध ।

- ३ इत्यथा अन्ध-य मिषर्त में तिलोदकम् —अभि० अंक ३ पृ० ४६

- ४ अकार ना मल्लकौरुना लज्जावती लज्जविम्रगमनी ।—रघु० ७।२६

—किपूरुर्भीषितलामनुत्ति हिमात्मस्वात्म्यमाममा ।—कुमार० ७।६६

—स कारपायाय कर्षुं पुरोवाप्त्यभिन्त्यमिर्द्याचरि लज्जमोत्तम् ।—कुमार० ७।८

- ५ अश्वविरोधालक्षणा प्रमूर्त्तलक्षारलक्षारिव पीरकम्पा ।—रघु० २।१०

—विषेय लीमोद्वतलक्षारवर्षामुत्तोरणामन्धरावधानीम् ।—रघु० १४।१०

- ६ India as known to Persians by Sri V S. Agnew's Page 104 मृदूय ( Mudg ) ( IV 4 25 ) Masha ( V L 7, V 2 4 )

- ७ ब्रह्मविमाने पुनरेव बोग्नी भेज मुञ्जोष्ठिन्तरिपुर्निपण्णाम् ।—रघु० २।२३

—अग्न्या मुरी मय्यनुकण्णया च प्रीतास्मि ते पुत्र वरं वृषीन् ।

न केवलाया पयसा प्रसूतिर्वर्द्धि वा कामदुवा अग्न्याम् ॥—रघु २।६३

सकते हैं। दूध के साथ इसकी निमित्त वस्तुवा में रज्जुबन्ध में लीर<sup>१</sup> का प्रयोग है। मन्त्राग के लिए कवि नवनीत<sup>२</sup> और हिर्यगनीन<sup>३</sup> शब्द का प्रयोग करता है। यही<sup>४</sup> भी उस समय मनुष्य शीक से आते थे। यही से सिद्धादिनी साध-मशान बनाया जाता था।

मधु तथा मिष्टान्न—मधु का प्रयोग मनुष्यक में किया जाता था। वैवाहिक अवसरों जबवा किसी बलिधि के आ जाने पर उसके स्वागत के उपलक्ष्य में अर्घ्य जबवा मनुष्यक भेंट में दिया जाता था। मनुष्यक में मधु, जामुन और दूध रहते थे।

गन्धे का प्रयोग बन्धों में बहुत ही मिलता है। इससे सक्कर अपना गुड़ को उत्पत्ति होती होती। गुड़-विकार को टीकाकार मन्त्रिराम लण्ड चकरादि कहता है। गुड़-विकार गुड़ की बनी कोई वस्तु होगी। इसी प्रकार मालविकानिमित्त में मत्स्यविका<sup>५</sup> शब्द का प्रयोग हुआ है। मत्स्यविका को टीकाकार चकरादिरोंप कहता है। आकार में नाम से ऐसा आशयित होता है कि मन्त्रि के आकार की होती।

मिष्टान्न मन्त्रि मोक्ष का नाम बहुत ही होता है। जामुन जबवा देवों के आटे में चक्कर मिला कर भी में भुन कर गोम-गोम लखू बना लिए जाते होते। कवि इनको स्वयं एक स्थान पर चन्द्रमा की तरह गोम बर्णित करता है<sup>६</sup>।

मांस तथा मछली—वाकिरास के समय मनुष्य मांसप्राप्ति होते थे। जबवा यह कहना चाहिए कि उस समय मांस खाना बुरा नहीं समझा जाता था।

—यो हुनिष्यति बर्षं तथा द्वायं रक्षिष्यति पुत्रम्।

हंसो हि लीरमावसे तग्विष्ठा वज्रवत्पण ॥ —अमि० १।१८

१ हेमपात्रमर्त रोम्यामावधान- पयस्वदम —रपु० १।१६

मन्त्रिणाग के अनुसार—पयस्वदं पावमानं 'अनवभाविताष्टव्यपम' औरनश्च चर इति याजिका । स तेषां वैष्णवं पन्थोर्भिमेवे चरन्तिवित् ।

—रपु १०।१४

२ अहो नवनीतकमहुरप्य जायन्तु । —मान० अर्च ३ पृ ३०६

विष्णुपक्ष को हरिणी का मांस अच्छा लगता<sup>१</sup> प्रमाणित करता है कि बाह्य भी मांस खाया करते थे। शत्रिय राजा शिकार के शौकीन होते थे। राजा दुष्यन्त मृग सुन्दर, सिंह के शिकार के शौकीन थे<sup>२</sup>। राजा दशरथ के शिकार का कवि ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। हिरण्य सुन्दर बंगसी मैसा बारहसिया सिंह बाघरसूय बाघि पशुओं का दशरथ ने शिकार किया था<sup>३</sup>। हाथी को मारना सस्त्र के निरुद्ध था<sup>४</sup>। हाथियों को राजा पकड़ा मोंगते थे और उनको मुँह के लिए घुरासित रखते थे<sup>५</sup>। अग्निहोत्रादिक्रम में छत्रनिम्नक<sup>६</sup> का प्रसंग आया है। चिड़िया बाघि भी मार कर छाई जाती थी।

मकली का समाज में आम प्रचलन था। यदि ऐसा न होता तो मुहावरों के रूप में इसका प्रयोग न होता—‘मिन्नहस्ते मस्ते पछाधिते निर्बिम्बो भीषरो’

१ अहमपि प्राप्यमानो यथा मिष्टहरिणीमांसमोजर्ज न लभे तदैतत्सकीतयन्ता द्वासमाभ्यात्मानम् ।—विष्णु अंक ३ पृ० २०१

२ एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो बभूव्यभावेन निर्बिम्बोर्ममि ।  
मयं मृगोऽयं बराहोऽयं शाकूळ इति मध्याह्न्यपि धीप्प  
विरमयावपञ्चायासु वनराजीप्राहिर्मयतेऽष्टवीरोऽष्टवी  
वज्रतकरकपापाणि कटूनि गिरिनीबभानि पोषन्ते ।

—अभि० अंक २ पृ० २९

३ तं बाह्नादवनतोत्तरकायमोपहृषिष्यन्तमुद्धतसदा प्रसिहन्तुमोषु ।

मात्मानमस्य निमिषु सहा बराहा बृहोषु विदमिषुमि बधनात्मजेषु ॥

—रघु० १।१०

—तैनामिषात्तरमस्य विषय्य पशो बभूव्य नैवविषरे महिषस्य मुक्तः ।

निमिष विषह्वमद्योनिस्तसिप्तपुंसस्तं पातया प्रबभूवमास पपात पत्न्याम् ॥

—रघु० १।११

—प्राप्तो विषाणपरिमाणाकपूतमांगान्नेपाचकार नृपतिर्निघिते क्षुर्ये ।

भृगं सद्युक्तमिषाभिषक्तं परेषामस्यभिर्घृतं न ममूष न तु दीपयासु ॥

—रघु० १।१२

—आमानमीरमिमुनीत्यतिगण्युहाम्य धुम्कातमाघवितपानिष बाधुरग्यान् ।

सिंहाविद्योयकपुस्तस्य विषेयात्पूषीचकार वारपूरितववनदन्त्रान् ॥

—रघु० १।१३

४ नृपाने प्रसिधितमेव तत्कृतवान्किरको विषय्य यन् .....—रघु० १।७४

५ तं मैत्रुवाताग्नयवममृषीरमृचिष्ठं कमिमिष्यबभूव .....—रघु० १।१२

६ ततो बहत्वेन प्रत्युषे दाम्या पुनै द्युनिगुण्यैर्वनप्रहृषकोत्तारकेन प्रतियौकि-  
तोमि ।—अभि० अंक २ पृ० २७



काष्ठिदास के पुत्र उत्कलीन संस्कृति

मज्जति पञ्च बर्षों में अविध्यवाति (विक्रय० बंड १ पृ० २०९)। पशुओं और पक्षियों के अतिरिक्त मछलियाँ भी उस समय के बाजार में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती थीं। मछली एक खाति-विशेष था जिसका पैसा ही मछलियाँ पकड़ना<sup>१</sup> और उनका बेचना था। रात-दिन यही काम करने से उनके घरीर तथा मछलियों की दुर्गन्ध से मरे रहते थे<sup>२</sup>। मांस खाने की विधि का एक स्थान पर संकेत है। भाव भी उक्तार्थों में मांस के छोटे-छोटे टुकड़े पीरोकर ऊपर रख दिए जाते हैं नीचे मांस बहती है। ये खाने में बहुत स्वादिष्ट समझ जाते हैं। इस प्रकार के मांस पकाने का संकेत 'सूयमांस' में मिलता है। (अग्नि० बंड २ पृ० २६)। मछलियों कई प्रकार की होती थी। इनमें 'रोह' का नाम कमि ने अग्निब्रह्मप्राप्तुत्तर में किया है। इसी क पेट में बंभूरी मिली थी।

मांस के प्रकार—जल मांस के प्रकार के जाते तीन बत हो जाते हैं। पशुओं का मांस पक्षियों का मांस और मछली। पशुओं में शिरा सिंह, सुअर, बंभूरी भैंसा बाएँसिया का मांस खाया जाता था। पक्षी प्रत्येक प्रकार के ही का लिए जाते होंगे। मछलियाँ भी सभी खाद्य-पदार्थ थीं। हाथी को छोड़ कर सभी भक्ष्य थे। यहाँ तक कि नाय का मांस भी। मनुष्य में किसी समय इसका विशेष स्थान था<sup>३</sup>। मछली की गन्ध पहचानना बाजार में बेचना खाति मछलियों के प्रकार का नाछाव प्रमाण है।

१ अहं जाग्रोन्माताविमिमत्स्यबन्धनोनावेः सुदुस्मरन् करोमि।  
—अग्नि० बंड १ पृ० ६०

२ जानुक विगमन्धी गोबाही मात्स्यबन्ध एव नि-संघायम्।  
—अग्नि० बंड १ पृष्ठ ८८

३ एकस्मिन् दिवसे लंडयो रोहितमात्स्यो मया कर्तितो यावन् सन्धोरत्स्यन्तर  
इह रत्नमागुरयंयुनीयकं बुध्वा पदचावहृतस्य विज्ज्यायेः दृश्यन्गृहीतो जावमिधेः।  
—अग्नि० बंड १ पृ० ८८

The Manava of 1 9 22 says that the veda declares that not be without flesh and so it recommends a meat may be offered. Band a goat or ram

प्राप्ति स्थान—शिकार के द्वारा ही मांस की प्राप्ति नहीं होती थी; अपितु बूकानों भी वही मांस बिकता था। ये बूकानों बहुधा एक ही स्थान पर होती थीं। यद्यपि इन पर बीच में डराते रहते थे<sup>१</sup>।

फल—अतिवि-सत्कार के लिए अथवा किसी से भेंट करते समय यदि और कुछ न मिले तो फलों का ही व्यवहार उत्तम समझा जाता था<sup>२</sup>। तपोवन में तो फल आहार के विशेष पदार्थ थे। अतिथियों का सत्कार फलों से ही किया जाता था। बुध्नत का सत्कार फलों से ही किया गया था<sup>३</sup>। इसी प्रकार रघुवंश कुमारसम्मन<sup>४</sup> में भी तपोवन में अतिथियों का सत्कार फलों से किया जाता था ऐसा प्रसंग कवि ने दिया है। इन फलों में आम<sup>५</sup>

१. मवानपि धुनापरिसरचर इव गृध्रे जामिपल्लोकपो भीरकदम्ब ।

—माळ० अंक २ पृष्ठ २८१

२. सखि ! मगवत्याश्चापमति । अरिस्तपाधिनास्मादुद्यमनेन तत्र भवती देवी दृष्टव्या । तद्ब्रीजपूरकेण शुभ्रपिण्डमिच्छामोति ।—माळ० अंक ३ पृ० २६०

३. हृता दधुन्तसे ! यच्छोटजम् फलमिममवमुपहर ।—अमि० अंक १ पृष्ठ १७

४. निरोचितलोन्मिस्तपूवमरसरं हुमिरभीष्टप्रसवर्धितातिवि ।—कुमार ४।१७

५. कन्तावियोमपरिलसितचित्तमृतिषु पद्माञ्जयः कुसुमितान्सहकारवृक्षान् ।

—मद्यु १।२८

—विद्युज सुन्दरि मममठाञ्जल तव चिरात्प्रभृति प्रथयाम्युजे ।

परिगृह्णान् मये सहकारतां त्वमतिमुक्तकृताचरितं मयि ॥—माळ ४।१३

—नवकुसुमबीजना वनज्योत्स्ना बद्धफलतयोपमोन्नयन सहकार ।

—अमि० अंक १ पृष्ठ १४

—शामरमुज्जित्वा कुत्र वा महत्प्रयत्नतरति ।

क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तकृता पश्यन्तितां सहते ॥

—अमि० अंक ३ पृष्ठ ४७

—भूतपादपस्य पादव ईषत्परिभ्रान्तेर्वाभिसिता सा शकुन्तला ।

—अमि० अंक १ पृष्ठ १११

—मातामहुरितपाण्डुरं ओषितमथ वसन्तमामस्य

दृष्टोऽग्निं भूतवोरकं क्षणुर्मयम् त्वां प्रणामामि ।—अमि० १।२

—मपुरिके ! भूतवत्किं दृष्टबोध्यता परमृतिषा भवति ।

—अमि० अंक १ पृष्ठ १०२

—सलीमवन्मय स्थिता अतांशुरं पृच्छति ।—अमि० अंक १ पृष्ठ १०३

—परलोक विभी च माघन स्मरमुहिष्य विमोक्षयन्महा ।

निबधे सहकारमञ्जरी प्रिय भूतप्रभवो हिते मया ॥—कुमार० ४।१८

बम्बु<sup>१</sup> ( बामुन ) बाजा<sup>२</sup> ( बंबूर ) बाजूर,<sup>३</sup> मारिमक<sup>४</sup> बीजपूरक<sup>५</sup> ( बीजू ) का नाम कवि के प्रश्नों में मिलता है । नाम का वर्णन सबसे अधिक है ।

मसाले—मसालों में इलामबी<sup>१</sup> काली मिर्च<sup>२</sup> लौह<sup>३</sup> लमक<sup>४</sup> का प्रयोग

—सम्नोपान्त परिणतफलसोतिमि कामनामै

स्वय्यास्ते छिन्नरमकल स्निग्धवैनीसमर्थे ।—रघुमेघ १८

१ अये इयमास्तपान्त संवृत्तमवा बम्बुविटपमध्यास्ते ।

परमृता विह्वयमेव पथिता बातिरेपा ।—विक्रम० अंक ४ पृ २२

—महर्षिपरबु अं कीतकं सध्वबाहु प्रलयमगन्धित्वा मममाप्सुवत्स्य ।

अवरमिव मथान्वा पातुमेपा प्रवृता फलमभिमुखपार्क रात्रबम्बुद्रुमस्य ॥

—विक्रम० ४१२७

२ विनयस्ते स्म तद्योषा मधुमिर्विजयधमम् ।

आस्तीर्षाजिनरत्नानु इन्द्रावक्यमृमिपु ॥—रघु ४१६५

३ खजूरी स्तम्भनद्यानी मयोद्गारमुपमिषु ।

वटेपु करिणां येपु पुंनायेस्वा शिखीमुखा ॥—रघु ४१६७

—यथा कम्बापि पिण्डखजू रैरुद्रक्षितस्य तित्तिध्यानमिकापो

मयेत् तथा स्त्रीरत्न परिमाणिना मवत इयमम्यपना ।

—अधि० अंक २ पृ ३३

४ ताम्बूलीना बसेस्तत्र रथितापानभूमय ।

मारिवेस्तासर्ष बोधा छावर्ष न पपुमरा ॥—रघु ४१४२

५ समाहितिके देवस्वोपवनस्य बीजपूरकं गृहीत्वागच्छेति ।—माल अंक ३ पृ २६

—तद्बीजपूरकं शुभ्रकिमुमिच्छामीति ।—माल अंक ३ पृ २६०

—तनु समिहितं बीजपूरकम् ।—माल० अंक ३ पृ २६१

६ ताम्बूलप्रसङ्गीपरिणद्धपूयास्वभाकृतानिभित्तचन्दनानु..... —रघु० १११४

—ससम्बुद्रुपदसम्भानामेकनामुत्पत्तिज्ज्व ।

मुत्पत्तिमिपु मलमकटवु कलरेणव ॥—रघु ४१४७

७ बर्करप्युपितास्तस्य विजिगीषोर्गताम्बन ।

मारोषोद्भ्रान्तहारीता मन्वाश्रयत्यथा ॥—रघु ४१४६

किया जाता था। गमक बीड़ों को काटने के लिए भी दिया जाता था<sup>१</sup>। इसी<sup>२</sup> का प्रथम भी अभिलेखानसालुत्तस में मिलता है। मोजन को मुस्नातु बनाने के लिए मसालों के साथ इसका भी व्यवहार किया जाता था<sup>३</sup>।

बायुनिक काष्ठ की तरह पहले भी मनुष्य पान \* सुपारी \* का प्रयोग किया करते थे। पान के लिए चामूक और सुपारी के लिए पूरा शब्द कवि के प्रयोगों में मिलते हैं।

पेय-पदार्थ ( मदिरा )—उत्काशीन भारतीय समाज में मदिरा पीने की प्रचलित प्रथा थी । काम-क्रीड़ा के सहायक द्रव्यों में मधु की प्रमुखता थी । रति प्रसंग में कामिन्वास में बार-बार इसके महत्त्व और प्रभाव का ज्वन किया है । उन्होंने मधु को जनगदीपनम्<sup>१</sup> 'कामरतिप्रबोधक'<sup>२</sup> 'मदनीयमुत्तमम्'<sup>३</sup> 'स्मर सक्तम्'<sup>४</sup> आदि माना है । वे इसको जबलम मण्डनम्<sup>५</sup> भी कहते हैं । मधु स्थियो

१. बेनिफिट पिछले पृष्ठ की पावरटिप्पणी नं० ६

- २ यथा कस्मापि पिण्डजनू रैरुत्प्रेक्षितस्य तिष्ठित्वाप्यमभिलापो  
भवेत् तथा स्त्रीरत्नपरिभाषितो भवेत् इत्यमरस्यमता ।

—अभि० अंक २ पृ० ३३

१. लाम्बुलीनां वसिस्तत्र रजिवापानभूमयः

नारिकेलसुखं घोषा घात्रं च पपुर्मय ॥—रघु० ४१४२

—तान्दुलमास्तीपरिणेतुपुनारबेलाकृतादिमित्तबन्दनाम् ।

तमात्मनोऽस्तरणाम् रक्तं प्रसीद चक्षुष्यमयस्वलीपु ॥—रघु १/१४

—गृहीतान्मूलविभेदयन्त्रं पुण्यामबामोदितवचनपञ्चजा ।—अतु० ५।५

- ४ वाय्व्यूलहस्तीपरिणतपूगस्तेषामप्याह्नमितचन्दनाम्.....—रघु ६।१४

—उद्योतेताहटेनैव फलवात्पगमादिना ।

अनस्यचरिहोमागामनादास्यमयो ययौ ॥—रप० ४४४

६. मान्यभक्तिरप्यथा सतीजन-सेष्यतामिश्रधर्मगरीपनम् ।

इत्युत्तरमभिधाय तत्करन्तामपापयत् पानमम्बिकाम् ॥—शुभार० ८१७७

- १ मुमग्निनिर्वाणविक्रमिणोऽप्यमं मनाहरं कामरतिप्रबोधकम् ।

निष्ठामु हृष्टा सह कर्मिभिः स्थिरा पिबन्ति मर्त्य मयनीयमुत्तमम् ॥

—आहु० ३११

- ७ रेसिप्, पारटिणजी भं० ६

८. षष्ठिपु निर्दिष्टियुग्मधुमगमा-स्मरुत्तमं समर्थहनसजितम् ।—रघु० २।३५

- १ वेति निपुणिके शृण्वामि बहुधो महा भिलस्वीजस्य विशेषमण्डनम् इति ।

अथ सत्य एव लोचनम् ।—भासः अंक ३ पृष्ठ ३ १

के नमनों को विभ्रम धिक्का देने में सक्षम है<sup>१</sup>—ऐसा उनका कहना है। मर के कारण उनकी जीर्ण भूमि कमती थीं शान्ति की वृत्ति स्थापित होने कमती थी।

मयनाम्यद्वानि मूर्धन्याम्यद्वानि स्वस्वम्यद्वे पदे ।

असति त्वमि वादनीमह प्रमथामाममुना विह्वला ॥—कुमार० ४१२

मनु-ममत्व-अप्य अस्त्वह सीम्वर्य से विमूषित पुष्टियों के मुख की कामीन पड़ते बाँध से ही वेर तक पीते थे<sup>२</sup>। मनु-अप्य निक्षिप्ता केवल मनबले एसकों को ही नहीं सुखनों के लिए भी सुख होती थी। मनुपाल से रमनीयता मनु जाती है, ऐसा उस समय का विश्वास था<sup>३</sup>। काश्मिर ने मनुपाल से बड़ी रमनीयता को बाधता का सङ्काष्ट में परिणत हो जाना माना है<sup>४</sup>।

स्त्रियाँ अपने मुख को सुशामित करने के लिए मनुपाल करती थी<sup>५</sup>। इससे उनके मुख से ताजे मौलसिरी के फूल-सी सुर्गिष जाती थी<sup>६</sup>। अपने एक रमोक्त में काश्मिर ने मनु की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कर दिया है। मिठवन बादि मनु-विकास में एक एवं सहायक बकुल की सुबन्ध को भी पद्यबिठ करनेवाले काम के मित्र ( काम की उपमानेवाला ) मनु को स्त्रियों ने इसी भाषा में पीका जिससे पति-धेन के रस में किसी प्रकार की बाधा न पड़े<sup>७</sup>।

१ कामरिचर्च मनुमनयोर्बिभ्रमादेरादधं  
पुष्पोद्भूतं सह किसक्यैर्मूपयाना विवस्वाम् ।  
लासाद्यमं चरकममम्यासयोर्ध्वं च यस्या-

मेकं मूले सकलमममममममं कल्पवृक्ष ॥—उत्तरमेघ १२

—प्रत्यादेरादधि च मनुनी विस्मृतप्रविक्रामम्—उत्तरमेघ ३७

२ मनुमानमममं स्वककर्म स्वैद्विगु मनुकारणमिममम् ।

माननेन न तु तावदीद्वररररररर विरमुमामुलं पत्नी ॥—कुमार० ८१८०

३ वैद्विगु पादटिप्पणी में ४ बीर पिछले पृ की पादटिप्पणी में ८।

४ पावतो तनुपयोगसम्भवा विविक्यामपि उता मनाहराम् ।

अप्रतर्क्यविजियोगनिमित्तामाप्रतेव सहचारतां ययी ॥—कुमार ८१८८

५ पुष्पागवामादमुगम्यबवना निरबानवार्ते गुरभीष्टताप.....—शत्रु० ४१२

—सुशामिनं हृष्यतर्कमनोदूरं शिषामुनाब्दामचिरपितुं मनु ॥—शत्रु० ८१३

कवि ने स्त्रियों के ही मधुपान का बार-बार संकेत नहीं किया। अश्विपु पुरयो के विषय में भी इसका प्रसंग मिला है। शक्ति में शक्तित्व आने पर वे भी मधुपान करते थे। यह जिसप्र प्रकार से समझाया जाता था। इसके पीछे ही पुनः प्रेयसी छोट जाता था<sup>१</sup>। जब आने पर तथा मगोरजन के लिए भी मधुपान किया जाता था। रघु को सेना का मधिरा पिया जाना इसका प्रमाण है<sup>२</sup>।

रति-प्रसंग में स्त्री के साथ पुण्य भी मधिरागान किया करते थे। पत्नी के साथ सिव इन्दुमती के साथ अथ अरि का मधिरागान भी कवि ने इंगित किया है। प्रेयसी के पिये हुए मधु को—लेप मधु को उसी पात्र में पीना प्रेयसी का अपने मुख में घराब भर कर शिव के मुख में डालना शिव का अपने मुख में मधिरा भर कर प्रेयसी के मुख में डालना अर्थात् शिव द्वारा प्रेयसी को स्वीयमुक्त पदार्थ का शान कवि ने सूक्ष्मता से चित्रित किया है।

मधुद्विरक्तः कुसुमैकपात्रं पयो द्विषां स्वामनुबलमान —कुमार० १।३६

बरी रसात्यंकरेणमन्त्रि गजाम मधुपयजर्ज करेभु-

मधोयमुक्तेन विभेन आयां लमावयामाम रसायनामा ॥—कुमार० १।३७

स्त्रियां बहुत पात्र से एसा मधु बाहरी थी और पुण्य भी बहुत बोहद की

१ मत्तं कल्पं बहुकारमायव रक्तपात्रं लमायमं पयो ।

तैव तस्य मधुनिममात्कच्छिन्नोनिरमवत्पुनव ॥—रघ० ११।४६

इसमें मधुनिमयान् से बलवत् के हो बने जाने की नहीं अश्विपु शीव के स्वयं होना की भी व्यंजना है।

रति-जीवन मधु के बनाने का प्रकार मस्तिनाय ने इस प्रकार कहा है—

—तात्त्वरीरसितामृताममगुह्यमसायिकाताहृमा-

शक्तिमद्रुममोरटेतु कहली पुष्पमद्रुममैयुतम् ।

हरं चैवमधु पुष्पमैयुपचितं पुष्पमृतावृतं

कपायेन स्मरलोपनं रतिकर्म मुग्धानु शीतं मध ॥

—मैपदुत की टीका उत्तरमेघ ५

२ विनयन्ते स्म तद्योवा मधुभिर्विजयमधम् ।

माप्स्यीजीविरलाम् प्राप्तावत्तममृमि ॥—रघु० ४।६५

—तांबूनीनां दलैस्तत्र रचिताऽऽगाममुपय ।

नारिकेलामर्षं योषां शान्दं च मधुपता ॥—रघु० ४।४२

कालियास के दग्ध तालाबोर्न संस्तुति

तद्वत् स्त्रीमुख-मधु के लिए कालापित रहते थे<sup>१</sup> । कालियास ने  
प्रक्रिया को काष्ठामस्तोह<sup>२</sup> का प्रतीक माना है ।

मरिचा जपक य भी जाती थी । जपि न एक स्थान पर ।  
मरिचा जपक से ही है<sup>३</sup> । समुद्र व्यक्तित्व रत्नवच के सुयकान्त ।  
मधु का पाम किया करते थे<sup>४</sup> ।

मरिच पीने का स्थान और बाठावरण भी विशेष ही होत<sup>५</sup>  
भूमि<sup>६</sup> और मरिचास्त्र के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि इन  
मिछटी की और एक साथ बहुत से मनुष्य बैठ कर पिया करते ।  
वे जहाँ मरिच मिछटी तो भी परन्तु बैठ कर पीने के लिए  
ऐसी ही बुकान के सामने स्नात और बीर ने (अभिज  
पक्षी की भी<sup>७</sup> ।

१. तातिरेकमवकार्यं रहस्तेन वत्तमभिःकेयुरपना ।  
तानिरप्युपहृतं मुखाद्यं सौप्रिवद्वकुम्भुस्यबोहव ॥—रघु०

—मरिचपि मरालगार्पितं मधु पीत्वा रत्नवत्कथं नु मे ।  
अनुपास्यसि वाग्यवृषितं परकोशोपगतं जलानन्तिम् ॥—रघु०

२. 'इदं च तद्वत् स्वभावकुटिलत्वं अभिव्यक्त्यवस्थामुष्मिपति मर  
परीक्षा प्रवर्तते यद्यहं ते प्रिया तन्मदुभिच्छ्रुतं मुक्त्वा यद्यहं ते व  
क्षेयमुपमुक्त्वा ।—मोक्ष भूनामप्रकाश भरतकोष पृ ७६२—  
३. जिष्ठीमूषोत्कृष्टधिरः फलमाह्वया ज्युषी धिरस्वीकृत्यकोत्तरव ।  
रम्यसिद्धिं सौमित्रमद्यकुम्भा रराज मृत्योरिव पानमुमि ॥

४. कोद्विषाकमभिजात्रगार्पितं कस्यवृत्तमधु विभ्रति स्वयम् ।  
त्वामिदं स्थितिमतीमुपागता यद्यमादमवनाभिदेवता ॥—कुमा

५. यस्यां वतां तितमभिःमयाम्येत्य हस्यस्वत्तानि  
व्योतिरछायाभुभुमरजिताम्बुसामस्री लहाया ।  
अभ्येवन्ते मधु रतिफलं कस्यवृत्तमसूतं  
त्वद्गर्भोत्पन्नमिदं धनम्

रति प्रसंग में श्रीराम तनु में प्राप पुच्छी सदाव तिमको कवि पुराण  
धीभू<sup>१</sup> रहता है, पी जाती थी। यह सहकार की मंजरी के टुकड़े और रामे  
पात्र के चक्र से सुवासित रहती थी। बाइों में पुष्पासव<sup>२</sup> पी जाती थी। यह  
स्पष्ट है कि मरिचा कई प्रकार की होती थी। जैसे कवि ने मरिचा के लिए मद्य<sup>३</sup>  
आम्र<sup>४</sup> मधु<sup>५</sup> बास्वी<sup>६</sup> काश्मरी<sup>७</sup> धीभू<sup>८</sup> मरिचा<sup>९</sup> सबों का प्रयोग  
किया है। मरिच ही इनमें हल्की तेज एवं रंग और प्रकार आदिका भन्तर रहा  
होया। कवि के ग्रन्थों में बार प्रकार विशेष आए हैं।

- १ मनोज्ञगन्ध सहकारजं पुच्छगीभु नव पात्रं च ।  
संबन्धता कामिजनेपु घोषा सर्वे निषाधार्थिना प्रमुष्टा ॥—रघु० १६।५२  
—यस्य कर्मसहकारमासर्व रक्तपाटकसमासं परी ।  
तेन तस्य मधुनिधमात्कच्छिन्नयोनिरभस्यतुमनः ॥—रघु० १६।४६
- २ पुष्पासवामोहमुमन्निबन्धनी निस्वाधवाते मुरभीकृतानि ।  
परस्परामन्त्रविपंगमासी सेते जन कामग्मानुबिह ॥—रघु० ४।१२  
—मूर्हीतहाम्बुर्भक्तिपेनमत्र पुष्पासवामोहितवक्त्रपकवा ।—रघु० ४।१३
- ३ निघातु हृष्टा सहका-भमि स्त्रिय पिबन्ति मद्य मरुनीममुत्तमम् ।  
—रघु० ४।१०
- ४ ताम्बुलीनां बन्धस्तत्र रक्षिताऽप्यनमूमय ।  
नारिकेलसंघं घोषा घातनं च वपुयज ॥—रघु० ४।४२  
—छानिरप्युपहतं मुनामर्षं छोऽपिबद्ध्यकुलपुष्परोह ॥—रघु १६।१२  
—पुष्पासवामुन्निघनेवर्जमि प्रियामुक्त्वं किपुरपरचुम्बम् ।—रघु० ४।१८  
—अथ चितोऽमृतपल्लवमुपनीतं प्रियकरमुहस्तेन ब्रमिष्यतु  
ठावत्तन्मममुर्धिरतं दास्यकीर्तयम् ॥—चक्रव ४।४४
- ५ मरिचाक्षि मराननाविर्त मधु पीत्वा रक्तवत्कर्म नु मे ।  
अनुगम्यनि बाणद्विगुणं परकोकोपनतं जलाबन्धिम् ॥—रघु० ८।१८  
—चिनयन्ते रम लघोषा मधमिचिजप्रममम् ।  
आसीर्णाग्निनरत्नानु आशावन्मममिषु ॥—रघु० ४।१५
- ६ मयमाग्न्यश्चानि भूषयन्मनानि स्नात्यप्यपे परे ।  
अमति स्वधि बास्वीमय प्रमदानामनुना विहग्यता ॥—रघु० ४।१२
- ७ हेतिपु, पादटिप्पणी नं ७ पृ० १६२। ८ हेतिपु, पादटिप्पणी नं १
- ८ हेतिपु, पादटिप्पणी नं ५, मरिचा—उत्तरमन्त्रा मय मये मरिचैषाया  
तस्या ममावतमिवावनमाननन ।—चक्रव० २।१३ —मधुकरमरिचरसा  
शंख तस्या प्रकृति.....—चक्रव ४।४२



उरु स्त्रीमुख-मधु के लिए समर्पित रहती वे<sup>१</sup> । काकिलस ने इस यन्त्र के प्रक्षिप्ता को काट्यगच्छस्नेह<sup>२</sup> का प्रतीक माना है ।

मदिरा चपक में पी जाती थी । कवि ने एक स्थान पर शिरस्त्राज की उपमा मदिरा चपक से की है<sup>३</sup> । समुद्र व्यक्ति रक्तवर्ण के सूर्यकांक्ष मणि के चपक में मधु का पान किया करते थे<sup>४</sup> ।

मदिरा पीने का स्थान और वातावरण भी विशेष ही होता था<sup>५</sup> । पाम-भूमि<sup>६</sup> और मदिराक्षय के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि इन स्थानों में मदिरा मिश्रित थी और एक साथ बहुत से मनुष्य बैठ कर पिया करते थे । ऐसे ही स्वस<sup>७</sup> थे जहाँ मदिरा बिक्री तो थी परन्तु बैठ कर पीने के लिए स्थान नहीं था । ऐसी ही बुकान के सामने स्वाक और बीबर ने (अभिज्ञान०) मिश्रा पक्की की थी<sup>८</sup> ।

१. सातिरेकमधकारणं रक्षुस्तेन दत्तममिकेपुरंगना ।

तामिरप्पुपहृतं मुञ्चासुर्धं सोऽपिबन्धुमनुत्परोद्दह ॥—रघु० ११।१९

—मदिरासि मदानार्पितं मधु पीत्वा रघवत्कर्त्तुं नु मे ।

अनुपास्वसि वाप्पुगुणितं परलोकोपगतं ब्रह्मवसिम् ॥—रघु० ८।९८

२. 'इह च उरुते' स्वभावाकृष्टिकर्त्तुं अमिष्यकल्पवस्त्रानुमिपति यदर्थं नाम प्रम परीक्षा प्रवर्त्तते यच्चहं ते प्रिया तन्मदुच्छिष्टं धृत्वा यच्चहं ते दयितं उन्मुक्त-होवमुपमुंक्ष्व ।—शोक शृंगारप्रकाश भरतकाव्य पृ० ७६२ पर उद्धृत ।

३. शिखीमुखोत्पुच्छितः कलभ्या व्युतं शिरस्त्रैश्चपकोत्तरव ।

रगक्षितिं धोषितमद्यकुस्या रराज मृत्पीरिव पामभूमि ॥

—रघु ७।४६

४. लोहिताकयनिभावनार्पितं कल्पवृक्षमधु निभति स्वयम् ।

त्वामिदं स्थितिमतीमुपावता यक्षमावनयनाभिदेवता ॥—कुमार० ८।७४

५. यस्यां यथा स्थितमनिमयाभ्येत्य हर्म्यस्वसामि

ज्योतिरक्षमाकुमुभर्चितामनुत्तमसूत्री सहाया ।

मासेवन्ते मधु रतिफलं वरुणवृक्षप्रतप्तं

त्वर्यभीरजनिपु दानकं पुष्करं ज्वाहतेपु ॥—उत्तरमेघ ३

६. शिखि, पादटिण्णी न ३

रति-प्रसंग में शीघ्र श्रुतु में प्रायः पुरानी धाराब जिनकी कवि पुराण चौबु<sup>१</sup> कहता है वी जाती थी। यह सहकार की मंजरी के टुकड़े और ठान पाटक के फूल से सुवासित रहती थी। जाहों में पुष्पासव<sup>२</sup> वी जाती थी। अतः स्पष्ट है कि मरिचा कई प्रकार की होती थी। जैसे कवि ने मरिचा के लिए मद्य<sup>३</sup> आसव<sup>४</sup> मधु<sup>५</sup> बारणो<sup>६</sup> काश्मिरी<sup>७</sup> दीपु<sup>८</sup> मरिचा<sup>९</sup> शब्दों का प्रयोग किया है। अथवा ही इसमें हल्की तेज एवं रंग और प्रकार आदिका भिन्न रहा होगा। कवि के शब्दों में चार प्रकार विशेष आए हैं।

- १ अनामिकायं सहकारयोः पुराणदीपु नव पालं च ।  
संबन्धता कामिजनेषु योषा सर्वे निवाधावधिना प्रमृष्टा ॥—रघु १६।१७  
—यत्स हस्तमहकारासवसं रक्तपाटकसमायमं ययौ ।  
तेन तस्य मधुनिगमात्कण्डाविवत्तयोनिरभवत्पुननव ॥—रघु० १६।४६
- २ पुष्पासवामोश्नुयन्निवबभौ निस्वासवार्त्तं मुरभीकटांश ।  
परस्परपम्प्यतिपमघाटी शोने जन वामरमानुविद्ध ॥—श्रुतु ४।१२  
—पूहीतताम्बूलविलेपनस्रज पुष्पासवामोहितवक्त्रपकशा ।—कालु० ५।१५
- ३ निमानु हृष्टा सहका ममि क्रियं पिबन्ति मयं मरनीयमुत्तमम् ।  
—श्रुतु ५।१०
- ४ ताम्बूलीनां रत्नैस्तत्र रचिताऽऽपानमूमय ।  
नारिकेलानव योषा भावत् च ययुषया ॥—रघु ६।४२  
—तामिप्युपहृतं मुद्रासवं सोऽपिबद्बहुस्तुत्यपोह ॥—रघु १६।१२  
—पुष्पासवापूनिचमकघाति प्रियामुलं किपुर्गदचुचुम्ब ॥—कुमार ३।१८  
—मयं विरोद्गतपस्त्रममुपनीतं प्रियकरेभूहस्तेन अमिलयतु  
तावशमकमुरभिरत्नं यस्तप्रीधनम् ॥—विजय ४।४४
- ५ अरिराति मयलनगपिठ मयु पीत्वा रसवत्सर्वं नु मे ।  
अनुताम्यनि बाणद्विपितं परलोकोपनत्रं यत्तामस्मि ॥—रघु० ८।१८  
—विनयन्ते स्म तद्योषा मधुमिविजययमम् ।  
धातुनीर्माजिनरत्नायु हातावलयमूमिपु ॥—रघु० ४।६५
- ६ मयमास्यरकाणि ब्रूयन्मयनानि स्वसपत्यहं पदे ।  
अगतिं स्वमि वाकपीमयं प्रयत्नामपुना विद्वन्मना ॥—कुमार० ४।१२
- ७ देगिए, पाटटिण्डी नं० ७ पु० १६२ । ८ देगिए, पाटटिण्डी नं० १
- ८ देगिए, पाटटिण्डी नं० ६, मरिचा०—उत्तरमया यम मय अरिरेतापा  
उपवा तमापतमिवाननमालनन ।—विजय० २।१३—मधुकामरिचास्या  
निम तस्या प्रवृत्ति.....—विजय ४।४२

( ५ ) गारिबेन्नास<sup>१</sup>—यह गारिबेन्नास से बनाई जाती होती । इसी कारण इसका नाम गारिबेन्नास पड़ा ।

( ६ ) फूलों के पराग से बनी मखिरा जिसको पुष्पास<sup>२</sup> की संज्ञा दी गई है ।

( ७ ) खंनूर की बनी मखिरा<sup>३</sup> ।

( ८ ) सीपू<sup>४</sup>—मस्तिनाब की टीका के अनुसार यह घले से बनाई जाती थी । सहकर की मंथरी के टुकड़े और ताजे पाटल के फूलों से यह सुवासित रहती थी<sup>५</sup> । प्रचलित उच्च कुल के मनुष्य सुगन्धित मखिरा का प्रयोग किया करते थे ।

मखिरा ■ उन्नत मनुष्य को और भी उन्नत करने वाली वस्तु मत्स्य-पिका थी<sup>६</sup> ।

श्री वासुदेवचरण ब्रह्माल रति-कर्म<sup>७</sup> को मखिरा का पर्यायवाची शब्द मानते हैं तथा उनके मतानुसार कावम्बरी<sup>८</sup> जिसका उल्लेख अभिज्ञानशाकुन्तलम् में किया गया है, एक विशेष प्रकार की मखिरा है<sup>९</sup> ।

१ बेकिट, पिछले पृष्ठ की पादटिप्पणी नं० ४ ।

२ बेकिट, पिछले पृष्ठ की पादटिप्पणी नं० २ —अनु० ४११२, अनु० ४१२,  
—नं० ४ कमार० ३१२८

३ बेकिट, पिछले पृष्ठ की पादटिप्पणी नं० ३, —रघु० ४१६२

४ बेकिट, पिछले पृष्ठ की पादटिप्पणी नं० १

५ 'सीपू' पक्षीभूतप्रकृतिक भूतविशेष —टीका मस्तिनाब  
—रघु १९१२

६ वयस्य एतत्तन्तु सीपुपानोद्भूतस्य मत्स्यपिकायमता । —माक० अंक १  
पृ० २२६

७ मोक्षयोगे मयु रतिकर्म कल्पवृक्षप्रभृति । —उत्तरमेव ४

८ पूर्व उल्लेख । —अभि० अंक ९ पृ० १०१

९ On page 197 in the names of wines known to kalidasa 'Rati-  
manti'

## आठवाँ अध्याय नेश-भूषा

संस्कृति' राज्य को भारतवासियों ने बचान तथा बच तक हो बहुधा सीमित रखा। चाहे बच कर कुछ मनीषियों ने कहा तक इसका विस्तार किया परन्तु परिधि अभी भी सीमित थी। वे भारतवासियों की ही उस मुख्य विशेषता को मुका बैठे कि धर्म अथ काम और मोक्ष का उचित समुत्पन्न ही मूल तत्त्व है। इस दृष्टिकोण से संस्कृति का अर्थ स्वतः व्यापक और विस्तृत हो जाता है। अतः संस्कृति के अर्थ को अब और विस्तृत करने की आवश्यकता पड़ा। धर्म और मोक्ष के क्षेत्र की समीक्षे से पर धर्म और काम को महत्त्व किसी ने नहीं दिया था।

'काम भारतीय जीवन का विशिष्ट अंग है, इसमें कोई संदिग्ध नहीं। यदि ऐसा न होता तो अन्य शास्त्रों के साथ इसकी तुलना करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। साधु कल्पित का साहित्य इस बात का साक्षी है कि रामपुरा की प्रिया का यह एक मात्रायक अंग समझा गया। महाभारत में प्रवृत्तियों को बचाना नहीं अपितु उचित मात्रा में तथा उचित विधि से उपयोग करना ही स्वास्थ्य और मानसिक विकास की सृष्टि करता है। भारतीय शास्त्रों के अनुसार धर्म धर्म काम और मोक्ष के मनुस्मृत प्रयोग से ही उन्नति की ओर हम अग्रसर हो सकते हैं। धर्म और मोक्ष के साधन में कभी रहने से तथा धर्म और काम को विकट्टक छोड़ देने से जीवन एकांगी हो जाता है। उसमें पूर्णता नहीं आ पाती।

यह कामवृत्ति अट्ठाशिका बहुत अलंकृत नगर, बेजमुवा नावसंग्रहा आदि के प्रति रवि रास-रानी की बहुलता समी में दृष्टिगोचर होती है। सबसे अधिक इस प्रवृत्ति की प्रवणता 'सौम्य प्रतिष्ठा' में देखी जाती है। यहाँ अनुचित नहीं कि कवि श्री दुष्टि इसके सम्पूर्ण अर्थ पर पड़ी। कवि 'सर्व सिद्ध सुन्दर' पर विराम करने हुए भी सुन्दर की समुचित स्थान देना नहीं भूला। प्रवृत्ति के साथ साथ मानव के सौम्य को भी उन्होंने भी भरकर देखा और बहना आसक्ति नहीं कि सौम्य के दोनों अर्थ मानसिक और शारीरिक उनकी केरली से मिल चले। हर अंग का उन्होंने समीक्षा वर्णन किया। उनकी सूक्ष्म विवेचना किसी भी दृष्टि-कोण से चर्चा न होगी चाय सराहना करने योग्य है।

## काकियास की सौन्दर्य-प्रतिष्ठा

**श्री-सौन्दर्य**—कवि के अनुसार सौन्दर्य नहीं है जिससे नित्यप्रति ज्ञानन्द मिले। इसके साथ-ही-साथ इसकी प्रतिष्ठा और साधकता पति द्वारा प्रार्थना और उसके प्रेम को प्राप्त करना है<sup>१</sup>। कवि अपने सौन्दर्य के<sup>२</sup> लिए किसी उपकरण की आवश्यकता नहीं समझता। कमल सेवार से बिरा होने पर भी सुन्दर लगता है, कमला का कमल भी उसकी शोभा को बढ़ाता ही है। रूप में पवित्रता कवि का अहंस्व प्रतिमावृत्त होता है। वे इसकी तुलना बिना धुँबे हुए फूल नहीं से जलते पत्तन बिना बिबे हुए रत्न बिना बसा हुआ मनीन मधु और बिना गोपे हुए पुष्प के फल से करते हैं<sup>३</sup>।

कदाचित् कवि को सुकुमारता प्रिय है क्योंकि उनकी चित्तवृत्ति जिसकी नारी-सौन्दर्य-वर्णन में रही उसी पुरुष-सौन्दर्य में नहीं। पुरुष-सौन्दर्य में कठोरता और बीरता ही सबब दिक्कती है परन्तु अशक्य कमनीयता समोपाय श्री सौन्दर्य का प्रतीक है। स्त्री के एक-एक अंग में उन्होंने आश्चर्य और सुकुमारता के रहस्य किए। प्रतीत होता है उन्होंने स्त्री के शारीरिक-सौन्दर्य को बढ़ा और खूब देखा। सौन्दर्य की वरमप्रतिष्ठा को दो-बार पंक्तिपा में कहना वे अच्छी तरह जानते थे। यज्ञ की पत्नी के सौन्दर्य की वे एक ही रसक में व्यक्त कर सौन्दर्य का आश्चर्य प्रस्तुत कर देते हैं।

तन्वी श्यामा धिक्करिदृशना पञ्चविम्बावरीछी

मय्ये श्यामा अकिञ्चुरिभीप्रेक्षणाय निम्ननामि ।

श्रीमतीशारदकमलमना स्तोत्रनामा स्तनाम्ब

या तत्र स्थापुनतिविपयै सुहृदस्तत्र जगु ॥<sup>४</sup>

१ निमित्त रूपं हवमेव पावती प्रियेन सौमायकला हि वाप्या ॥—दुमार० ४।१

२ सरस्वतिमनुविर्द्धं सेवसेनापि रम्यं मस्तिष्मयि हिमांशोऽयम स्मरती तपीति ।  
इयमचिकमनोज्ञा वस्त्रसेनापि तन्वी किञ्चि हि मधुराणां मध्वं नापृतीनाम् ॥

—जनि० १।१२

—यथा प्रतिर्द्धमधुरं गिरीरहृदयजिह्वेयममृतपानम् ।

न ८२० ॥ निर पंकजं मरीचकामपमपि प्रकाशते ॥—दुमार० ४।१८

मनस्य सुन्दरी उचसी कवि वे चर्यों में—

मुरमुन्दरी जयनमराक्षमा पीनीसु वयनस्तनी  
स्त्रिरयोवना एनुचरीरा हसयति ।  
गयनोऽगस्तकानने मृगलीवना प्रमथी  
बृष्टा त्वया तर्हि विरहसमुन्तरागुत्तारय माम् ॥<sup>१</sup>

इसी प्रकार उसकी भाविका भी सौन्दर्य का आरध है—

दीर्घार्थं वरिष्ठमुकान्ति वचनं बाहु मन्त्रावमयो  
संक्षिप्तं निबिडोन्मत्तस्तनमुरः पात्रे प्रमृष्टे ह्रस्व ।  
मम्य पापिमितो निरुम्भि जवनं पात्रावराज्यपुर्ण  
छन्दो ननयिनुपयैव मनसि स्थिष्ठ त्वयाम्पा वनु ॥<sup>२</sup>

शत्रुसंहार की भाविकाएँ भी एसी ही सुन्दरी हैं। 'मुनितम्ब निम्नानामि  
मुमध्या कलकमम्भानि चाक्षनाम्नाधरोऽस्य वनतटनियन्त पात्रोपात्मनम  
मंत्रमन्त्रकेशं वदनविम्बं पुष्पवचनमराक्ष कविशानममध्या स्तनमरपरिमेयम्  
मन्त्रमन्त्रं वचनम्' ...<sup>३</sup>

सौन्दर्य के इसी आरध की वे बार-बार कहत हैं—

नेत्रेषु लोभो मन्त्रिराक्षेषु गण्डेषु पाण्डु वट्टि स्तनेषु ।  
मध्येषु निम्नो जयनसु पीनः स्त्रीयाममयो बहुधा म्बिरोऽय ॥<sup>४</sup>

कवि इतिमावरणमुच्छिन्न सौन्दर्य की ओरता वैयक्तिक सौन्दर्य को ही खोज  
जब उत्तम समझता है। एतन्मत्ता का आवरण अतिना दुष्यन्त को प्रभावित कर  
सब उग्रता किसी और रानी का नहीं। शत्रुमत्ता के अंग प्रहृष्टि के तर्प्यों के  
समान है। उसके अंगर विमुक्तमयु कीमल बिटप का अनुकरण करन वाली बाहु  
अंगों में मन्त्रद यौवनं पुष्पमयु लोभनीय है<sup>५</sup>। बेसर के वृक्ष के निरुत्त नहीं  
हुई वह लता के मनुष्य प्रतीत होती है<sup>६</sup>। यह विरायता निमग्न-नन्दा शत्रुमत्ता  
की ही नहीं है पावती भी अपनी विलास-वेष्टाओं की तन्वी लताओं के पास  
और विलोड्मुष्टि हरिणापनाओं के पास बरोहर के रूप में रक्त देती है<sup>७</sup>। यल

१ विहम० ४१५६

२ भाव २१३

३ शत्रुसंहार ११२२ १३ १४

४ शत्रुसंहार, ११२२

५ अवर. विमलमयराय जोमल बिटपानुवारको बाहु ।

पुष्पमयि लोभनीयं यौवनमयैषु लनदम् ॥—अभि० ११२०

६ लता मनाय ह्यार्थं वेगवृक्षक प्रविभाति ।—अभि० अंक १ पृ० १३

७ लतासु लम्बोऽयु विलासवेष्टित विलोड्मुष्टि हरिणापनासु च ।—कुमार० ३११३

अपनी प्रियतमा के जंगों के सौन्दर्य को प्रकृति में देखने की चेष्टा करता है । प्रियतु की छा में शरीर बड़ी हुई हिरणी की माँओं में पितृव्य चन्द्रमा में मुख मोर के पंखों से केच नदी-जीविनों में भूमिमास की शक्त देखकर उसे विरह में कुछ शामि मिलती है<sup>१</sup> ।

अर्थ—शारीरिक सौन्दर्य में सबसे प्रथम वय जाता है । कवि स्त्रियों के सम्बन्ध में बोरे रंज<sup>२</sup> का ही उचन करता है<sup>३</sup> । अनुपमी गोपजन के समान शरीरवत् की वनित है । अनु के समान कान्ति स्त्री-वय की निरूपता है<sup>४</sup> । पुरुष के लिए वय की कोई कीद नहीं स्वयंवर के समय पार्ष्वप देव के राजा नीलकमल के समान सौन्दर्य कहे गए हैं<sup>५</sup> । राजा रामचन्द्र को भी नाँवले थे । परन्तु उनके सौन्दर्य के सम्मुख सब कुछ तुच्छ था । कवि के अनुसार तो पुरुष का शरीर सौन्दर्य कीरता का प्रतीक था । अतः बच-बच में बीरता और कठोरता का व्यक्तीकरण है । इस प्रसंग में एक बात बहुत महत्त्वपूर्ण है । कवि गौर शरीर-वटि बतलै कन्या की सौन्दर्य वर्ण वाले पुरुष के साथ विवाह करने की महत्त्व देता है । वय के साथ विवाह की जो धर्म है वही इस प्रकार की मुक्ती की छा भी प्रस्तुति होती है<sup>६</sup> ।

शरीरवटि—पुत्रावस्था में शरीरवटि में अनुपम काव्य स्वत ही जा जाता है । मरिच के अभाव में भी अद्भुत मस्ती छा जाती है । इती कारण स्थिरावस्था<sup>७</sup> उर्वशी का प्रभाव पुकरता पर इतना अधिक था । वाग्धावस्था के

१. स्वामास्वयं अक्षिरिणीप्रेतने दृष्टिगतं  
वचनकानां उषसि चित्तिना बहुयारेणु केरान् ।  
उत्पत्तमि प्रतनु नदीजीविषु भूमिमास-  
मृष्टिकस्यम्बविधि न ते बौद्ध उत्तरकमसि ॥—उत्तराखण्ड ४६  
—वचनकमलकान्ति.....—पानु ११३२

२. कनकमलकान्ति.....—पानु ११३२

३. त्वं रोचनामोरशरीरवटि—रघुपथ ११६५ नितामतीरे—मुभा ७१७

व्यतीत हो जाने पर पावती की शरीरयष्टि बिना किसी मण्डिर के शरीर को भूतबाजा बना देने वाले जीवन के प्रवेश मार्ग से उसी प्रकार खिस उठा जैसे तूष्णिका से सम्मीक्षित चित्र लक्ष्मण सूर्य की किरणों से कमल<sup>१</sup> ।

सौन्दर्य के दृष्टिकोण से शरीरयष्टि कला के संपूर्ण स्रष्टा की हुई उत्तम मानी जाती है । अतः अनुशरीरा कवि की नायिकाओं की विशेषता है<sup>२</sup> । 'सल्लतांगि' और 'सल्लतमात्रि' शब्दों से ऐसा आभासित होता है कि शरीरयष्टि का कुछ मुका हुआ रहना खेप्ट माला जाता है<sup>३</sup> । जैसे श्री छबीसी प्रकृति की होने के कारण युवतियाँ बहुधा लुकी हुई-सी ही रहती हैं<sup>४</sup> ।

शारीरिक अंगों में कवि की दृष्टि हर स्थान पर पहुँची है । उसकी सूक्ष्म दृष्टि से कोई अंग भी अछूता नहीं रह सका । गलपिबल वर्णन में कवि की समता में अन्य कोई टकरा ही नहीं पाता ।

केन्द्र—सम्मे पने गुँवरले एवं काळे बाज सोन्दर की बरम प्रतिछा है । पावती के केन्द्र इतने सुन्दर थे कि यदि पद्मों में भी मनुष्यों के समान छत्रा होती तो जमरी अपने बाछों पर इतराना भूल जाती<sup>५</sup> । केन्द्र के पक्षार्थ सौन्दर्य से

- १ अर्तमूर्त मण्डमर्गमधुरमासबाज करमं मयस्थ ।  
कामस्य पुण्यध्वनिरिक्तमन्त्रं वाग्यात्परं साध वय प्रपेदे ॥—कुमार० १।११  
—उमीरिस्तं तूष्णिक्येव चित्रं नूयौषुमिभिन्नमिवावचिन्दम् ।  
बभूव तस्यास्वनुरग्यसोमि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन ॥  
—कुमार० १।१२

- २ तन्वो द्यामा घिसरिण्यगा... —उत्तरमेघ २२  
—अनुशरीरा—विह्वल० ४।५६  
३ संनतांगी—सा राजहंसिरेव संनतांगी मतेषु कीर्त्ताचिदविह्वलेषु ।  
—कुमार० १।१४  
संनतमात्रि—वस्तु सता संनतमात्रि भुवतं मनीषिभि साण्डपदीनमुच्यते ।  
—कुमार० १।१६

- अननतांगि—अद्यप्रभूत्यननतांगि तवास्मि वास ..... —कुमार० १।८९  
४ जगार सा मत्तचक्रोरनेना सज्जावती सात्रविमयमन्त्री ।—रघु०, ७।२६  
—धामीमठया —रघु० १।८१  
५. सज्जा विररणी यदि जेतति न्याहर्तृद्वयं पवतराजकुल्या ।  
तं वेद्यपापं प्रतपीदय नूर्यर्वातप्रियत्वे तिचितं जमय ॥—कुमार० १।४८



मयूर के प्रसारित पंख अधिक लम्बुन रहते हैं। विद्योपावस्था में इसी सिमीवहृमार को देखकर उसे (यक्ष को) अपनी पत्नी के केशों का अनायास स्मरण हो आता है<sup>१</sup>।

नितम्ब एक एक हुए बाल बालो यक्षी मुन्दरी मानी जाती है<sup>२</sup>। बाल लम्बे होने पर भी यदि सोचे हों तो सौन्दर्य में कटि नहीं होती। इसी कारण कवि कहीं अराक्ष-केत कहीं कुम्भ-केत कहीं विष्णुविठाग्रान् आवि यम्बों का प्रयोग करता है<sup>३</sup>। पत्नी इन्तुमरी अरावती आदि यम्बों के अराक्ष-केत से।

चुंभरासी के साव-ही-साव पत्नी एवं कामी सत्रे भी केत-सौन्दर्य को कटि तीव्र कर देती है। निरालम्ब नग पीछ कवि का शिष्य उपमान है<sup>४</sup>।

भू—सबन सहर ही भू का उपमान आया है। अत कहा जा सकता है कि सहर के समान अराक्ष अथवा कुछ बल भू ही मुन्दर मानी जाती थी<sup>५</sup>। सहरों के अतिरिक्त भू की उपमा वनस्पति में भी थी थी<sup>६</sup>। काव्यरस के अनुप को भी परास्त करने वाली लम्बी तथा मनोहर भू ही सौन्दर्य की पराकाष्ठा का प्रतीक थी। पक्ष की पत्नी नवीनोपि के समान भूयुक्ता थी और पावतो की लम्बी और मनोहर भू ऐसी प्रतीत होती थी मानो किसी न वृक्षिका लेकर बना दी हो। यही नहीं काव्यरस के अनुप की तुलना भी उसके सम्मुख पक्षों के पक्ष थी<sup>७</sup>। अतः अनुप के

१ श्यामास्वर्गं चकितहारिणीप्रधम वृद्धिपार्श्व

वचनञ्चम्यां योषिणि धिगिना बह्वारेण कथाम् । —उत्तरमेघ ४९

२ धिरोरुई शोचिस्तदात्ममन्विनि ..

स्त्रिय रतिं गन्तव्यति कामिमाम्—आनु० २।१८

३ अराक्षकेत—रामाचन्द्रमेघ स गायपतिं मिथ्याभिगम्यराक्षकेत्या ।—रघु० ८१

—कुटिलरस—रक्षणीतकपिता पयोमुखा कोय्य वृद्धिमेघिमाम्बय ।

—भूमार ८।४५

—अपराधिन मयि बह सहगमि किमुत वृद्धिमेघि ।—आनु० ३।२२

४ कैमालिठान्पननीकविष्णुविठाग्रान्पुनरपि नमिता नवमानतीनि ।

—आनु ३।१२

५ यमनीकविरोहस्ता ।



विस्तृत आकार में नेत्र लम्बी लम्बानी हो सकते हैं जब उन्हें कोई भाव भी हो। अतः कवि नेत्र के साथ चितवन प्रत्येक स्थान में बैठा है। चितवन की दृष्टि से सरलता भोजनार्थ तथा हलका-सा आनन्द कवि को अभिप्रेत है। कविना असांगत न होया कि यह मुख मूनी में व्यक्तियुक्त पाये जाते हैं। अतः कवि ने मुख उपमान का कमल से कहीं अधिक प्रयोग किया है। राजा विलीप जब मुद्रिका को कैकर बन जाते हैं तब हरिणों की सरल चितवन की वे मुद्रिका के नेत्रों के समान समझते हैं<sup>१</sup>। पावती के नेत्र आकार में कमलवत् वे परन्तु चितवन बचल मन की-सी थी<sup>२</sup>। उनकी चितवन को देख कर कवि को यह भ्रम हो जाता है कि हरिण ने उसके नेत्रों का मुख किया है या पावती ने हरिण के नेत्रों का<sup>३</sup>। यही नहीं उपस्था करते समय वे हरिण के नेत्रों से अपनी आँखें नापा करती थीं<sup>४</sup>। उन्होंने त्रिभुज प्रकार अपनी विलास वेश्याओं की कलाओं के पास पटोहर के रूप में रक्त दिया या उसी प्रकार अपनी विलीक दृष्टि हरिमागनाओं के पास<sup>५</sup>। पक्ष की पत्नी के नेत्र अर्चित हरिणी के समुदाय थे। अथवा स्त्रियोन्मत्सवा में उस को अपनी पत्नी के नेत्र इतने अधिक सुन्दर समझते हैं कि अर्चित हरिणों के नेत्र भी उस सौन्दर्य के सम्मुख पीछे लगते हैं<sup>६</sup>। इन्धुमती की मृत्यु के वरचस्व अत्र को ऐसा समझा है कि उसने पक्षि के मन को बहकाने के लिए अपनी मीठी बोली बोलने को आल हँसियों की और अंशु-चितवन हरिणियों

१ परस्परपक्षिष्वनुस्वमद्वुरोगिततवामसु।

मुमङ्ग्रेषु पश्यन्ती स्वभवावहृद्विष्टिषु ॥—रघु १।४०

२ अपि प्रसन्नं हरिणेन ते मनः —————

प- उत्कलाशिशि प्रचलितलोचनैस्तवाक्षिमापुस्तपिषु प्रयुज्जते ।—कुमार २।१२

३ प्रधानीलोत्पलनिर्विषेयमधीरधिप्रसिद्धमायतादया ।

तथा गृहीतं नु नृपांगनाम्यस्ततो मूहोर्तं नु नृपांगनाधि ।—कुमार १।४९

४ अरुणवीर्यावतिवामलाक्षिण्यतया च तस्यां हरिणा विघटयतु ।

समीनामिनीय मोचने ॥—कुमार २।१५

को दे दी थी<sup>१</sup>। राजा दशरथ मृग पर बाण चलाये ही बाणों से परन्तु उनके नेत्रों को देखकर उन्हें अपनी प्रियतमा के मेल स्मरण हो आए, यद्यपि उनके हाथ छोड़ने पड़ गए। उन्होंने बाण चलाये के विचार को अपने हृदय से निकाल दिया<sup>२</sup>। स्त्रियों को यह भोली चितवन मृग ही सिखाते हैं<sup>३</sup>। काकिनाड की सभी नायिकाएँ अनन्द-मृगशी और मृगजयनी हैं। चक्रवर्ती और मामदिका दोनों ही सारंगानी थीं<sup>४</sup>। यक्षपत्नी मृगानी<sup>५</sup> उसी मृगकोचनी<sup>६</sup> शत्रुघ्नहार की कामिनि थीं 'हरिचोरावाक्य' थीं<sup>७</sup>।

प्रिय प्रकार मृग का मोलारन कुछ चक्रवर्ती और कुछ आरक्ष्य का मोलारन नेत्रों की मृगमा की वृद्धि करता है, उसी प्रकार बंदोर की मस्ती भी गदना की मुमावना बना देने में समर्थ है, परन्तु इनका फिर भी कहा जा सकता है कि मृग का सौन्दर्य इसमें नहीं है और मोलारन तथा आरक्ष्यमिश्रित चक्रवर्ती इसमें तुलना में कहीं अधिक सुखी है। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि वही कभी

१ कलमम्यमृतम्भु भाषितं कलहंसीपु मराक्षमं यत्तम् ।

पपतीपु विद्योत्थीतिष्ठं पबनाद्भुतत्तानु विभ्रमा ॥—रघु० ८।५६

—निविद्योत्थमुक्याप्यवेक्ष्य भां निहिता सत्यमयी मुषात्मन्वदा ।

निरहं तव मे गुण्यर्थं हृदयं न त्वत्कर्मिणुं क्षमा ॥—रघु० ८।६

२ तस्यापरेण्यपि भूगेप धरात्तुमुद्योः कर्णान्तमेव विमिश्रं निविद्योत्थं मृष्टिः  
वस्त्राविद्यावच्छदौ स्वरत्नं भुजेन प्रीतिप्रिया नयनविभ्रमचोदितानि

—रघु० ८।५

३ न नमयितुमर्हस्यमस्मि सक्तां वनुरिदमाहितसायकं मृगेण ।

छर्चछतिमुपत्य र्धं प्रियाया कृत्वा ह्य मृग्यविद्योत्थोपवेष्ट ॥—अभि० २।

४ प्रथम सारंगस्या प्रियया प्रतिवाप्यमानमपि मृष्टं

वनुराधदुःकायैर्द हतहृदयं नम्रति विमुदयम् ॥—अभि० ६।७

—तना सारंगस्या त्वमपि न वराचिद्विरहितं

प्रसक्तं निर्वर्णं हृदयं परिहारं वरमपि विम् ॥—मात० ३।१

५ त्वय्यामले नयनमुरारिभ्यन्दि दक्षि मगास्या

वीनतोपान्नाकम्भुवन्मयीभुक्त्यायेप्यतीति ।—उत्तररथ ३७

६ मयाशतं मयकोचनीं निगाहर कोटिं

हरति यावन्मु नव हरिण्यस्यामयी धारापरी वर्धति ।—विहङ्ग० ५।८

७ अवश्यमाना हरिचोरापाव्य प्रवाचयन्तीष ममोरपानि ।—शत्रु० २।१०

असम्भार 'सारंगसि' और 'मृगासि' शब्द का प्रयोग करता है, वहाँ चकोर के समान नेत्र का ही स्थानों पर वर्णित है<sup>१</sup> ।

परन्तु स्त्री के मरमर नेत्र देखकर हो पुरुष अपनी सुख-सुख विचार होता है । मदिरा से मतवाले नेत्र बड़े ही कुभावने लगते हैं<sup>२</sup> । कवि को जितना 'मृगासि' शब्द प्रिय है, उतना ही 'मदिरासि' शब्द भी । इसी शब्द को उसने कई स्थानों पर बोझ-बहुत स्मान्तर कर प्रस्तुत किया है<sup>३</sup> । उनको हनुमती कुकुत्ता उर्वशी चमी के नेत्र मरमरे से जो पति की वियोगाग्नि की उदीप्त हो अधिक कर रहे थे ।

चरौनियाँ—बड़ी-बड़ी चरौनियाँ सौन्दर्य को प्रतिष्ठा है । चक्रवर्त्तिका के न केवल नेत्र ही शीर्ष थे अपितु चरौनियाँ भी बड़ी-बड़ी थी<sup>४</sup> ।

अक्षर—कवि के मतानुसार कमल चिकने और अक्षर का शोध कमल एक रत्ना के द्वारा निकले जोड़ से विभक्त सौन्दर्य का लक्षण है<sup>५</sup> । इसकी मन्त्रे

१ इतच्छकोरासि निष्कोर्येति पूर्वानुदिष्टा निगमात् भोग्याम् ।—रघु० ५।५२

—चकार सा मत्तच्छकोरनेना लज्जयावती लाजवियमिनी ।—रघु० ७।२५

२ पुष्पासबाधुपितलमसोमि प्रियामुक्तं किपुस्वरचुचुम्भ ।—कुमार० ३।१८

३ मदिरासि मदाननार्पितं मधु पीत्वा रत्नवत्कथं नु मे ।

अनुपमस्यमि बाष्पमूर्पितं परमोकोपनतं बलाञ्जलिम् ॥—रघु० ८।५८

—अत्यन्तमम मदिरेश्वरवस्तुमामिराहो निवत्सवति तमं हरिर्भावनामि ।

—अभि० १।२५

—अनिष्टममि मकरकेतुमगतो रजसावह्नामिमगो मे

मदि मदिरायतनयनां तावमिदम्य ग्रहरीति ।—अभि० ३।४

—अत्यदमया मम सत्ये मदिरेश्वराया तस्या सबापतमिबापयानमेन ।

—विजय २।१३

—मधुकर मदिराया दंग तस्या प्रवृत्ति चरतनुरचबाधो नेत्र वृष्टा त्वया म ।

—विजय ४।४२

कहीं बिभ्रम्<sup>१</sup> कहीं बिम्बाफल<sup>२</sup> अथवा प्रवास<sup>३</sup> के समान वर्णित है। यम की पत्नी के अथर पके बिम्बाफल के समान है, पावती और माकनिका दोनों ही की बिम्बाफलमत् अथरकान्ति ने महादेव और अग्निमित्र को अतिशय प्रभावित किया। संघर्षी श्वेताश्वी के भी पुष्प चंकर भी को दृष्टि तपस्या के झूठने पर सबसे प्रथम पावती के अथर पर ही पड़ी। पल्लव के सवृक्ष मुकुमार और बिम्बा के समान बाह अथर<sup>४</sup> बाकी कामिनिमाँ हर क्षण में पुष्पों के बीज को विसृज्य कर देती है<sup>५</sup>। इसका मोनय आली में हो है<sup>६</sup>। अतः इसकी कान्ति की उपमा रक्ताधोक्मत्<sup>७</sup> और कहीं बन्धू<sup>८</sup> के पुष्प के समान भी हो गई है। धरद् क्षण में बन्धू की कान्ति पुष्प को छोड़ कर स्त्री के अथरों में पहुँच जाती है।

१ पुष्पं प्रवासोपहितं यन्नि स्वाम्बुक्ताफलं वा स्फुटं बिभ्रमस्त्वम् ।

ततोऽमुदुर्वाक्षिणस्य तस्यास्ताधोऽवमस्तवच स्मितस्य ॥

—कुमार० १।४४

२ सुपल्लिनिदवाप्तबिभ्रत्तुष्पं बिम्बाधरास्तन्नवरं द्विरेकं ।

प्रतिपार्थ मंत्रमलाकदुर्द्धिर्लोभापिबिरेन निवारयन्ती ॥ —कुमार० १।४६

—हरस्तु किंचित्परिमृष्टचेयस्वप्राथमारम्भ इवाम्बुराशिः ।

उमामुले बिम्बाकम्बावरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ॥

—कुमार० १।६७

—कान्तिम् नाम बिम्बोष्ठि भावकानां कुलपत्रं

उभये दीपयिषि ये प्राणस्तते त्वदाद्यानिबन्धना ॥ —माल० ४।१४

—उन्मील्यमाना सिधरिरिदगता पक्वबिम्बावरोष्ठी

मध्यं शामा वलितहृषीप्रीतिरावा ..... । —उत्तरमेष २२

३ हेमिल, पादटिप्पणी नं० १

४ विलोचनेन्द्रीवर वारिदिनुमिनिपन्न बिम्बाधरावपत्स्वरा —श्रुतु० २।१२

५ अथरस्त्वि शोभां बन्धुप्रीतिं त्रिपाणां पयिकमन इदानीं रोदिति आनन्दवित्त ।

—श्रुतु० १।२६

६ कनकमलकान्तैश्चान्ताप्रापरोष्ठी अवलतटनियमैः पान्क्तोपान्तनेत्रैः ।

उपनि वचनबिम्बैर्मनसस्तनकेषु धिय इव गूढमध्यं संस्थिता योपितोऽद्य ॥

—श्रुतु० ४।१३

७ रक्ताधोक्विकम्पिताधरमधुमत्तद्विरेपम्बनः.....

अवन्निम्यं निजगु बन्धुप्यापमार्गगतम् ॥ —श्रुतु० ६।३६

८ बन्धवकान्तिमन्त्रेण मनोद्वरेषु कान्तिं प्रयाति शुभया धरदावमयी ॥

—श्रुतु० १।२७

प्रवासी पवित्र हो बालुबीर के पुण्य देख कर अपनी पत्नी के अचरों की याद कर रो भी बैठे हैं ।

दृष्टान्त—परन्तु निर्बीज सौन्दर्य में कोई आनन्द नहीं । अथवा कितने ही सुन्दर हों यदि उन पर मुस्कराहट न हो तो समझी मुखमा व्यथ भीरु एव कीकी हो है । सुन्दर मुस्कराहट स्त्री में प्राण सूँक बैठती है, इसीलिए कवि 'सुखस्मिते'¹ कब निर्बीज सौन्दर्यको तिरस्कृत कर बैठता है । मुस्कराहट के समय हलका-हलका हाँसो का बीखना ही कवि को अभिप्रेत है । इस प्रकार के सौन्दर्य की विवेचना करता हुआ कवि उल्लेख करता है कि यह इतनी सुन्दर लगती है जैसे मूँह के बीच बड़ी मुक्ता जबवा काट करोंक म कीई खेत पुण्य² । पिछरिबधना³ धम्म से व्यक्त होता है कि छोटे-छोटे हाँस उस समय के सौन्दर्य का मापदण्ड थे । हाँसों की उपमा कुम्ह की कमी से भी दी गई है⁴ । मुस्कान पर बसक उठने वाले यह सुन्दर की कला के समान हाँस न केवल कवि को ही प्रिय है अपितु वसन्त ऋतु भी इसके सौन्दर्य को परमस्त करने का प्रयास करता है⁵ ।

मुख-गन्ध—मदिरा से सुवासित मुख-सौन्दर्य में मर की नुहि कण्ठा है । स्वयं कवि को मदिरा-सुवासित मुख अति प्रिय है । अनेक स्थानों पर मुख की

१ सुखी कपुल्ली ज्जकठा इविर्मुखा सुखस्मिता मज्जवता मुमम्मया ।

विस्मित नेवप्रतिभासिणी प्रभामन्यदुष्टिः खितारमेवत ॥

—कुमार० ११२

—सुखयनिष घठः सुखिस्मितो विस्मिता कीतवत्तसस्तव ।

परमोक्तमसंनिवृत्तये यदनापुच्छय यथासि मादित ॥—रघु० ८४६

२ पुष्पं प्रवालोगद्वितं यदि स्यान्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुनस्यम् ।

तथाऽनुकुर्वादिद्यवस्य तस्यास्ताम्रीप्यर्पस्तदव नियतस्य ॥

—कुमार० ११४

३ तन्वी स्यामा पिछरिबधना पकविम्बापरोष्ठी

यध्ये धामा पकिठहुरिणीप्रेलना मन्मनाजि ।—उत्तरमेघ, २२

आसन्न गन्ध का उसने भक्षण किया है। भजन को देखने के लिए मयिरा हैं मुखासित मुख बाध्मी शरोर्ध्वों से छाँकती हुई स्निग्धा ऐसी प्रतीत हो रही थी माना शरोर्ध्वों में कमल खिले हुए हों<sup>१</sup>। श्रीराम ऋतु में रसिकों को प्रिया के मुख के बाध्य से मुग्धचित्त मयिरा ही प्रिय लगती है। वर्षा ऋतु में मयिरा पीकर ही अपनी सुखासित मुगन्ध से प्रमियों के मन में प्रेम उत्पन्न करती है<sup>२</sup>। हेमन्त ऋतु में पुष्पों के आसन्न से मुग्धचित्त मुख बाध्मी स्त्री-पुरुष अपने मुग्धचित्त निस्वाहों से एक-दूसरे के अंकों का मुग्धित करके कामरस का अनुभव करते हुए लयन करते हैं<sup>३</sup>। सिधिर में ताम्बूल इव आदि का प्रयोग कर तथा पुष्पासन्न से मुख को मुग्धचित्त कर स्निग्धा घन-गृह में पति के सम्मुख जाती है<sup>४</sup>।

किन्ती-किन्ती में यह मुखोष्णवासयन्त्र मैसर्गिक भी होती है। तबसी का मुखोष्णवास कमल की मुग्ध के समान मधुर एवं आह्लाददायक है। स्वयं मीरा तक इसको अनुभव कर केने के पश्चात् कमल को प्यार करना छोड़ देता—एमा पुररवा अनुभव करता है<sup>५</sup>। वन की पत्नी की मुखोष्णवास भरती के समान खोपी है। अर्वात् जिस प्रकार पत्नी पड़ने पर पृथ्वी में से मोखी-मोखी पन्ध्र जाती है, वैसी ही उसके मुखोष्णवास में भी थी। इसी को पाद करके बस दिन-प्रतिदिन कुग हाठा जाता जाता है<sup>६</sup>। पावती के दवान से कमल के समान गन्ध निकलता

१. साक्षात् मुनीरामवयम्भगर्ज्यन्तिन्तस्य शान्द्रकुम्हजानाम् ।

विस्तोत्तनेनप्रमरीगवाता सङ्गपत्रामरजा इवाम् ॥—रघु० ७।११

२. शिवामुखोष्णवास विकम्पितं मधु मुग्धचित्तं महत्तम्य दीपन

—सुखी निवीयेन्मुग्धचित्तं कामिन ॥—रघु० १।१३

—समोपुमि स्निग्ध रसि संजनयति कामिनाम् ।—रघु० २।१८

३. पुष्पासन्नानीमुग्धचित्तवन्न निस्वाहवाते मुरभीरुताम् ।

परस्परगन्धवतिप्रेमसायी शोभे जन कामरसानुविद्य ॥—रघु० ४।१२

४. पहीतताम्बूलविशेषमलजः पुष्पासन्नानीरितवत्पत्रकजा ।

प्रवामकास्तगुरुपुष्पवामितं विशामि शय्यागहमुत्सुका स्निग्ध ॥—रघु० ५।१३

५. यदि मुग्धचित्तमवाप्यस्तमुत्तोष्णवासगन्धं

तव रसिरनविप्यत्पुण्डरीके किमस्मिन् ।—विजय० ४।४२

६. वारागिकृतस्यममुग्धचित्तवत्पुष्पासन्नं वाते

दूरीकृतं प्रथमुक्ति मां पञ्चवागः सिधोति ।—उत्तरमेघ ४८



करती थी। यत आकर्षित होकर भीरे उनके सात-सम आठों के पास जाते थे जिन्हें वे बबरा कर छोटे-छोटे कमरों से मार कर मगा देती थी<sup>१</sup>।

घाणी—द्विध प्रकार चंचक बाँकी चितवन से रमणीयता में वृद्धि होती है, इसी प्रकार कोमल क समान मोटी बाँधी भी सबका हृदय आकर्षित कर लेती है। पानवी की बाँधी तो कोयल से भी मधुर थी यही नहीं उनकी मधुर बाँधी के सम्मुख कोयल की मीठी बोली भी बिना मिले बीणा के तार के स्रुत कमकटु प्रतीत होती है<sup>२</sup>। इन्दुमती की मुरमु क पदवात् उनकी मीठी बोली ही कोमल को मिल जाती है। ऐसा लगता है मानो बर का बिल बहलाने के लिए वह अपना पुन कोयल से छोड़ जाते हैं<sup>३</sup>। क्षुपयसा राम को गिराने के लिए कोमल के समान मीठी बाँधी का प्रयोग करती है, परन्तु सीता के हाथ से जक कर कन्या एवं कठोर हो जाती है, इसी से कस्मय ताड़ लेते हैं कि यह स्त्री बड़ी छोटी है<sup>४</sup>।

मुक्त-विन्द—मुक्त प्रायः दो प्रकार का पाया जाता है। अन्धविन्द की तरह जबका कमल की तरह कुछ लम्बा। कवि गीत मुक्त की अधिक प्रतिपत्ति देता है। उनकी इन्दुमती पुनो के अन्धमा के समान दोल मुक्त जाती थी<sup>५</sup>। उनकी पून

१ मुपनिविधस्तत्रिबुद्धतुल्यं विम्बापराक्षन्तरं विरेकम् ।

प्रतिपत्तिं संभ्रमभोद्युद्धिर्वीकारविन्देन विचारयन्ती ॥—दुमार ३।१६

—मुनेन या पद्ममुपनिधना निधि प्रक्षेपमात्रावरणरोमिता ..

—दुमार ३।२०

२ स्वरेण तस्याममृतमुतेव प्रत्रिणिपापामभिज्ञानवाणि ।

अप्यस्यपुष्टा प्रतिपत्तिरक्षय्योत्तुर्धितवीर्यं तादृपमात्रा ॥—दुमार ३।४३

३ कसमन्यभगामु आगितं जलजमीनु मयाकर्म पर्व ।

पुपतीपु विमोक्षमीक्षितं पवनापूतकृतानु विद्यमा ॥—रघु १।१६

—निदिशेन्मुक्त्याप्यवय मां निहिता मयममी मुपास्थया ।

दिदौ तव मे मुग्यर्थं हृदयं न त्ववतम्बिनुं क्षमा ॥

चन्द्रमा के समान मुखवासी अनन्य मुखरी थी<sup>१</sup> । पावती क मुख में चन्द्रमा और कमल दोनों के ही गुण पाये जाते हैं<sup>२</sup> । मायविका की मुख-कान्ति गरुकासीन हनु के समान थी<sup>३</sup> । मृगुगुहार की कामिनिषा चन्द्रमा से भी अधिक मुखर मुखवासी हैं<sup>४</sup> । कमल श्री मधाम्पान मुख का उपमान बनकर आया है<sup>५</sup> ।

दाह—सदाके सदा कम्भी पतली तथा मुहुमार बाहुएँ सौन्दर्य का बागार समझी जाती थीं । यहाँ से सजी मुखछाएँ एसी प्रतीत होती थीं मानो फूलों के बोस से सुजी हुई हरी बेला की टहनियाँ । कभी कभी को ये छायाएँ वृक्ष-मूषण बाहुकान्ति को हरती हुई भी आभासित होती हैं<sup>६</sup> । पावती की बाहुएँ मिरस के फूल से भी अधिक कामल थीं इसलिये कामदेव ने महादेव जी के गले में पावता की मुखछाओं का पत्ता डाला था<sup>७</sup> ।

१ न मुखमा सख्यैः सुमुखी च सा किमपि चेदमर्णवविचित्रिणम् ।

अमिमुनीन्विषकांश्चिदमिद्विषु स्रजति निवृत्तिमेकमपदे मन ॥

—विक्रम० २१९

—वर्हिष त्वामित्यम्भवे बाधकमेतत्तु बध बने

भ्रमता यदि त्वया दृष्टा मा मम कान्ता ।

निगमय मृगोकसवृणवन्मा हंसपति अनेन

विह्वल आत्मत्सारगतं तव मया ॥—विक्रम ४१२०

२ चन्द्रं गतादमयुजान्न भुक्ते वप्राभिता चान्द्रमसौमविक्रियाम् ।

उमामुलं तु प्रविश्य कोको त्रिचंभया प्रीतिमवाप न्यमी ॥

—कुमार० ११४३

३ दोर्घांश्च धरन्मुखांश्चिद्वर्णं बाहू गतावमया .....—माय० २१३

४ वरुणविजिगृह्यता वादिचरम्यान्तरस्य रचितमुमुममपि प्रायसो वान्ति वेम ।

.....प्रवसन्महेतोम्यकामंशीतयमा ।—मृगु० ११२३

५ विषयकमन्त्रवशा पुष्पमोक्षोत्पमाग्री...—मृगु० ११२८

—रक्तान्तोकिविजिगृह्यतापरममुमत्तद्विरेकमम ।

कुन्दातीकविह्वलनिकटः प्रोत्पत्त्यनुमानन ॥—मृगु० ११३१

—सुंदरीवमनि वृषदिहमुलं वेतरीरिख रसोमिच्छातम् ।—कुमार० ८१३८

६ त्वामागता कुमुदधारणतत्रावा स्त्रीणां हरन्ति वृक्षमूषणबाहुकान्तिम् ।

—मृगु० १११८

७ पिपीतुमाधिक सौकुमार्यं बाहू तरीपाविति मे विवकः...—कुमार० ११४१

कमल के समान लाल मुकुमार और सुन्दर हृदयिणी लम्ब्य का बिह्व समझी जाती थी<sup>१</sup> । अथवा यों जैसे लाल-लाल कोमल पल्लव मधुरा कोमल के समान मुकुमार हृदयिणी बाहुल्यता के गोमय को कहा पीती थी<sup>२</sup> ।

पयोधर—वीरन का प्रवेश-द्वार है पयोधर । वीरन की वृद्धि के साथ इसकी भी वृद्धि होती है । पुरुष वीरन में सौन्दर्य निहित करता है और उन्नत विद्याल एव पीन स्तन ही सौन्दर्य में मद प्रवाहित करते हैं । कवि की सभी गारिकाएँ वीरनवती हैं अतः उसी के स्तन पुरुष पीधर, उन्नत पीन तथा विद्याल हैं<sup>३</sup> ।

बाहुति में बड़े-बड़े पयोधर स्वाक-स्वान पर वर्णित हैं<sup>४</sup> । कदाचिन् इसीन्वि कवि मरुकाकार स्तन मधुरा म्दनमरुका का प्रयोग करता हैं<sup>५</sup> । गारिका के

१ मामिपमम्युत्तिष्ठति बन्दी मिनयाप्रभृतिष्ठा प्रियया

विस्तृतहस्तकमलया नरेन्द्राख्या बहुपतीष ।—मात्र० ११६

२ करकिमल्लकाणि पल्लवैर्मिद्रुमायै उपहसति वसन्त कामिनीमाधिवानीम् ।

—अनु० ५१३१

३ एता मुस्योविपयोधरत्वापराजानमुद्रोदुमघकमुत्प ।

पाश्र्वादेर्वाङ्गमिरण्मु बाका कसेतोत्तरं रायवद्यान्त्यन्ते ॥—रघु १११०

—तस्य निवपतिधमाकमा कल्लमूत्रमपदिश्य दीपित ।

अध्वरीत बहुश्रुतान्तं पीधरस्तनविस्तृतकम् ॥—रघु १११२

—पीननाम्नविष्ठातिगीस्तनसोमबीरकमलान्ध बीर्चिका ।

कृदमोहनमूलासतपम्पुभि म अगाह्य विगाडमन्ध ॥—रघु १११८

—स्तनेष तन्मधुकम्पलतमला निर्वेद्यमिति प्रमथा सवीरना ।—अनु ११३

—रपनि वरपुचावीर्यमतेहरिपथि प्रतनुगितपुष्पाप्यापनी ओमिदिम्बी ।

—अनु २१२६

—विपुल निमग्नवेरी मध्ये धामं गमुन्ननं कुक्षयो ।—मात्र० ११३

—मन्वारकुमुमशामा मुरग्या गृह्यते हुरपराणा ।

परिचाहकरी पयोधरयो ॥—विजय० ११०

अतिरिक्त उसमें कड़ापन भी होता चाहिए । 'स्तनेषु कठिन' यौवन की विशेषता है<sup>१</sup> । बिरह बधवा किसी अन्य सन्ताप से यह कठोरता क्षीय हो जाती है<sup>२</sup> । पयोधरों में विकसिता के साथ कुछ मृकत्व भी प्रारम्भ हो जाता है ।

बकवा-बकरी के बोहे के समान<sup>३</sup> मुनछ स्तन चित्त पीन एवं उन्नत होग चलते ही चने हीते जायेंगे<sup>४</sup> । वे उभर कर एक-दूसरे से सटते चले जायेंगे । इस प्रकार स्तनके बीच का अन्तर अल्प-अतिमध्य होता चला जाएगा<sup>५</sup> । यही साम्प्रत्य है । पालतों के पयोधरों के बीच यह अन्तर इतना कम हो गया कि मृणाल का मूल भी नहीं समा सकता था<sup>६</sup> ।

एक कुछ और कवि ने एक-ही स्तनों पर परिमलित किया है—स्तन के मार से कुछ भागे सका रहना<sup>७</sup> बकवा स्तन-मार से चाल का बोधी होना<sup>८</sup> ।

नामि—पानी की भँवर के समान गहरी नामि य कवि साम्प्रत्य देसता है । इन्दुमती जावतमनोऋणमि मुक्त यो । कुण की रत्नियों की नामिमों में जावत

१. नेत्रेषु स्नेहं बहिःपल्लवेषु पञ्चपु पाण्ड कठिनं स्तनम् । —मनु० १।१२

२. शान्तामकपोलमनमुरं बाध्यमृकस्तनं  
यस्य कलान्तरे प्रकामविततार्जनी छवि पाण्डुरा । —धर्म ३।८

३. शालग्रामो मलनामिकल्लेभ गो भ्रुवा इन्द्रपरा स्तनानाम् ।

—पु० १५।५३

४. सुरसुन्दरै जपनमराजना पीनोत्प्लवमस्तनो न्निखरीयता तनुपातरा हुनगति ।

—विहम ४।५२

५. कवि बनावारमप्यकुचान्तरा भवति पवतपवमु स्तनता ।

इवमननपरिग्रहमयता पुपुनितम्ब नितम्बवती तत्र ॥ —विक्रम० ४।४६

६. अन्धोम्यमुत्पीडयुत्पञ्चान्ता स्तनद्वयं पाण्डु तथा प्रवृद्धम् ।

मय्ये यथा स्याममुत्पत्य तस्य मृणालमृणालान्तरमप्यसम्पम् ॥ —बुभार० १।४०

७. मीनीमारावच्छगमना स्तोदनम्रा स्तनाभ्या

या तन स्याद्युक्त्विविषये सृष्टिराद्येव धाम्नु । —उत्तरमध २२

—जावजिता किञ्चिद्विष स्तनाभ्यां चाली बसता तद्वारुपम् ।

पर्याप्तपुष्पस्त्वववावममा सञ्चारिणी पञ्चविनी सनेव ॥

—बुभार० ३।२४

८. न बुबह्योनि पयोधरार्ता भिद्यन्ति मन्दो मनिमरमपुस्त । —कुमार० १।११

—पुबुत्रपनमराजता किञ्चित्तनमप्यता स्तनमरागिराशम्भममं प्रवन्त ।

—मनु० २।१४

सोमा को प्राप्त थी। यज्ञ-बली भी सुन्दरता के इस कक्ष को चारण किए हुए थी<sup>१</sup>। आभूषणों के समान निम्ननाभि का भी प्रयोग कवि ने किया है<sup>२</sup>। आकार में चाहे बड़ा परिवर्तन हो पर तात्पर्य दोनों से ही बहरी का है।

नटनाभि के नीचे पतली रोमरात्रि जो यौवन का सोपान है, सौन्दर्य के बुद्धि-कोष से उत्तम मानी जाती है। पावती की यह रोमरात्रि कमर पर बँधी रथना के बीच में स्थित लोचन की कामि-आहुर-जी जान पड़ती थी<sup>३</sup>। बर्षा की नव-पूहार से यह रोमरात्रि मानवित-सी होती है, अथ रोमांच हा जाने से लड़ी हो जाती है<sup>४</sup>।

कटि—उन्नत पीठ पयोधर के परचातु कवि की बुद्धि कटि-प्रदेय की ओर विलेप रूप से मुद्र जाती है। पयोधर कितने उन्नत गुण पीठ एवं विद्याम हों उसने ही सुन्दर माने जाते हैं और कटि बिठनी कण और तनु हो उसनी ही उत्तम है। दीप तथा कण्ड कटि सौन्दर्य को बढ़ा देती है कामिपद्म इसे कहीं नहीं भूले। उन्होंने अपनी प्रत्येक नायिका की कमर पतली बटाई है और इसी पतली कमर को कही से वेदास्मर्या<sup>५</sup> कही वैरिबिजयमर्या<sup>६</sup> बड़ी मध्य

१ मृगं समानसमनात्रनाभि सा व्यात्यगात्स्वबभूवमभिनी ।—रघु० १।१२

—मातृवृक्षोभानतनामिदमस्तेमङ्गो भुजां द्रुमचरा स्तनानाम् ।

—रघु १।१३

—कीचिद्योऽस्तनिप्रविहृयमभिकाञ्चीमुचामा

संसपम्प्या ललितमुनगं ददितवत्तनामे ।—युवमेव ३

२ लम्बी इयामा घिछरिन्नामा पञ्चविम्बाचरोष्ठी

मय्ये यामा अकिञ्चद्विषीप्रेक्षया निम्ननाभि ।—उत्तरमेव २२

—स्पर्शति कुसुमितम्बा निम्ननाभि गुमप्या

उपधि शकलमप्या कामिनी चापघोभा ।—युगु २।१२

३ तस्या प्रविष्टा नटनाभिरर्धं ररात्र लम्बी नटकायरात्रि ।

भीषीमसिद्धय सितोत्तरस्य लम्बायामप्यमभिरात्रि ॥—युगु १।१८

४ रोमरात्रि कलितवलिबिम्बमप्यवेरीच नाप ।

—याद २।२६

क्षामा<sup>१</sup> कहीं सुमध्या<sup>२</sup> कहीं मध्यगता सुमध्या<sup>३</sup> कहीं तनुमध्या<sup>४</sup> कहीं  
कुपोरि<sup>५</sup> कहीं पाणिमिनी मध्य<sup>६</sup> आदि-आदि शब्दों से व्यक्त करते हैं।  
शकुन्तला की पतनी कमर बिरह में और भी पतली हो जाती है परन्तु फिर भी  
उसकी सुन्दरता में कोई अन्तर नहीं आता वह वायुमध्य से मुखलाई पतिया नामसे  
मावरी कथा के समान लगती है<sup>७</sup>।

प्रियञ्जय—कवि को सूक्ष्म दृष्टि से निबन्धन की भी सोचा नहीं छूट सकी।  
उसकी दृष्टि के अनुसार माना कामरूप को ऊपर स्तन आदि वर्णों तक बढ़ा ले  
जाने के लिए नववीक्षण माना वह मोरान रच देता है<sup>८</sup>। कपिश्रितु म निबन्धन  
पर फूलों के पत्ते से तो रोमपात्रि विहर कर गड़ी हो जाती है इस छोटी-सी  
बात को भी कवि अपनी सूक्ष्म दृष्टि से क्षण भर को भी न हटा सका<sup>९</sup>।

- १ क्षमी क्षामा शिखरिण्यमा पक्षविम्बाचरोप्ये  
मध्ये क्षामा कश्चिद्वरिणीप्रसंगा निम्ननामि । —उत्तरमेघ २२  
—विपुलं नितम्बद्वेष्ट मध्य क्षामं समुन्नतं कुक्षया  
अत्यापन्नं मयनयोर्मम जीवितमेतदपानि । —माध० ३१७
- २ त्वजति नुनितम्बा निम्ननामि सुमध्या  
उपनि शयनमध्या कामिनी वाग्धामा । —स्तुतु० ३११२
- ३ दुखी अनुध्या<sup>१</sup> ज्वलता हविनुत्रा दृष्टिस्मिता मध्यगता सुमध्या.....  
—कुमार० ३१२०
- ४ अनेन तनुमध्या मुरारमुपरातादिमा नयान्मुग्धममन चरणेन संभावित ... ..  
—माध० ३११७
- ५ रस्ताचोकनृद्यावरो कनुयता त्यक्तानुरक्तं वनं । —विजय० ३१६२  
—विचारमापप्रतिनैत वेत्तमा न दृश्यते तच्च नृपारि त्वयि ।  
—कुमार० ३१४२
- ६ मध्य पाणिमिनी नितम्बि जपनं..... —माध० २१३
- ७ क्षामप्रामकरोपमानमुरा वाछिदयस्तुस्तनं  
मध्य क्कान्ततर प्रवामिननारंगो हवि वाग्धुग । .....  
—अमि० ३१८  
—तोष्या च प्रियमक्षना च मरनविन्दममाश्रयने ।  
परागाभिष शोषनन मरता स्पृष्टा लता माधवा ॥ —अमि० ३१८
- ८ मध्येन वा कश्चिद्विषमध्या कश्चिद्वर्ष वाट क्षमा क्षामा ।  
कारोहचार्य नववीक्षणं वाजस्य मोरानमिष प्रमुक्तम् ॥ —कुमार० ३१३६
- ९ मरजनरूपसेकाहुदुर्गता रामरात्रि मन्त्रितकविभिर्मयीमध्यदेवाच माय ।  
—स्तुतु० २१२९

नितम्ब—स्निग्धा गजमामिनी ही सुन्दरी मानी जाती है। अतः विद्यास  
मुत्र नितम्ब ही सौन्दर्य का मापदण्ड है<sup>१</sup>। उसकी विशेषता एवं पचकाट्या भारी  
एवं गोम में है<sup>२</sup>। अतः एक स्थान पर उबरी के नितम्ब बाल के समान कहे  
गए हैं<sup>३</sup>। नितम्ब के द्वार से धीरे-धीरे बहना शुभ लक्षण माना गया है। कवि  
ने अपनी नायिकाओं में इस विशेषता को भी बिभित किया है<sup>४</sup>।

नितम्ब की एक विशेषता और कवि ने छद्मस्तन और उबरी में दिखाई है।  
नितम्ब के द्वार से एड़ी का निखान बहुत पड़ना शुभ लक्षण माना जाता है<sup>५</sup>।  
शृंग के द्वार पर दृव्यस्त पीली रती में मारी नितम्बवासी स्त्रियों के पंखों के धन

१ एता कुर्यान्निपयोवरत्नाम्बरमालमुनेभूमशङ्कुवत्प-  
दाक्षानर्चैर्वाङ्गुनिरप्नु वाताः स्तेयोत्तरं पञ्चव्यात्मज्यस्ते ।—रघु० १६।६

—नितम्बपुर्वी मुख्या प्रमुक्ता बभूविवात्पुप्रतिपेन सेन।

बकाद सा मत्तबकोरमेवा कञ्जावती काञ्चविषयमाली ॥—रघु० ७।१४

—ह्यट्टे उर्ध्वस्तरसै स्तनमंडलानि शोभीतटं मुनिपुत्रं रत्नमाकलयते ।

—मत्स्यु० ३।२०

—स्पर्शति मुहुरितम्बा निम्ननाभिं सुमध्या

उपसि घयनमया कामिनो चाङ्गोला ।—मत्स्यु० ४।१२

—विपुलं नितम्बद्वेष्टे मध्ये ध्यामं समुत्तमं कूचयो ... —मात० १।७

—पुन्रनितम्ब नितम्बवती त्व ।—विजय० ४।४६

२ मदा विद्यात्पुङ्गवात्तनितम्बविम्बा मर्त्य प्रपाति समदा प्रमदा इवाद्य ।

—रघु १।१

—वधति वरदृवाग्रीरन्तर्हारीरपटि प्रतनुपितकुङ्कुमम्यावर्तं शोभिनिम्बे ।

—काश्या १।२६

३ रसायमाननिपुतो रसाङ्गधागिनिम्बया

मर्त्य त्वां पृच्छति रसो धनोरपघतेकुत्त ।—विजय० ४।३७

४ तन्वीयामा विस्तरिद्यता

स्तनान्म्यान् ॥—उत्तरमेव १२

चिह्नों को देखता है जो एही की ओर गहरे और आगे की ओर चले हुए हैं ।  
पुकरवा उर्वरी के इसी चिह्न को देखने की चेष्टा करता है । इसी से उसके मार्ग  
का जहाँ गई थी आभास हो सकता था ।

अथनप्रवेश—यद्यप्यन अथवा भरा हुआ अथनप्रवेश ही स्त्री का सुन्दर  
बनाता है । भरे अथनप्रवेश से ही बाल धीमी होती है<sup>१</sup> । जिसके कारण स्त्रियाँ  
गज्यामिनी कहलाती हैं । बाँध बिकनी और हलवाई अच्छी मानी जाती है । अतः  
इसके सौन्दर्य के लिए केके<sup>२</sup> अथवा हाथी की सूड़ से<sup>३</sup> इसकी उपमा दी जाती है ।  
पार्वती ने ये दोनों ही धुव हैं<sup>४</sup> । बिषाठा ने उसके अथन-निर्माण के लिए  
मुन्दरता की समस्त सामग्री एकत्र की ( कुमार० १।३६ ) ।

धरज—कवि की पावती सौन्दर्य को प्रतिष्ठा थी । उनके चरणों की मुन्दरता  
स्वभाविक लाल नीमल तथा कुछ ऊपर की चढ़े अंगुष्ठ में निहित थी<sup>५</sup> । इस प्रकार

१ रे रे हंस नि गोप्यते यत्पुनस्तरेण भया मर्यते केन तत्र पितृता एषा  
गतिरसिद्धा सा त्वया वृष्टा अथनमरात्मसा ।—विश्व० ४।३२

—मुन्दरता अथनमरात्मसा वीमोत्तयथन

स्तनी स्थिरमीनना तनुवरीण हंसवति ।—विश्व० ४।३२

—पुष्पअथनमरात्ता निविशानममभ्या स्तनमरपरितदात्मन्दमभं वज्रमय ।

—रघु० ६।१४

—अम्बुलता पुरस्तादवसाहा अथनगौरवान्पदवत् ।—अभि, ३।६

२ क्व न पशु सा रम्भात्मसा स्यात् ।—विश्व० अंक ४ पृष्ठ २१७

—अनेन यूनो सह पार्थिवेण रम्भाक कञ्चिद्व्यमसो रक्षिते ।—रघु० ६।३३

—संभोमान्ते यम समुचितौ हस्तसंवाहना

यात्परयुद्ध सरसवन्तमेस्तम्भोररथमस्वम् ।—उत्तरमेघ० १८

३ कुर्यात् तावत्करभोद पद्मात्मामे मृगप्रतिविम्बं दृष्टिपातम् ।—रघु० १३।१८

—अके निधाय करभोः पद्मामुर्धं से संवाहयामि चर्यावत् पद्मताम्री ।

—अभि० ३।१२

—सा कूर्मगौरं रघुनन्दनस्य पाथीवराम्या करजापमोह ।

भासत्रयामास पद्माप्रवेशं कठे नृपं मूलाविशानुरागम् ॥—रघु०, १।८१

४ करभोद कराति मादतस्वदुपावतनयोः मे यम ।—रघु० ८।११

—मादेऽहस्तात्म्याणि चकप्यवादेवान्तरादीत्यान्वदनीचिरोपा ।

—कुमार० १।३६

५ अम्बुलतागुलनप्रभाभिनिक्षपमाश्रयिणीद्विरग्नौ ।

आत्रहनुत्सवर्णौ वधिव्या इत्यारविमन्ध्रियमम्यवस्था ॥—कुमार० १।३३



भास्वराय के शब्द उत्काशीन संस्कृति

के बरनों से बछ्छी हुई से ऐसी प्रतीत होती थी मानो वे पग-पग पर स्वामकमल उमारी हुई बस रही हों। एकदम के ५२ कमल के समान मुखमार एवं बरब से<sup>१</sup>। बमबमते हुए नखोंवाके तथा नई कोंपल के समान पंजों से मुक्त मार्गिका के कारण अग्निमित्र को अतिमय प्रभावित कर बैठ है<sup>२</sup>। यथाय में कमल के समान उसके बरनों के प्रहार से यदि अशोक में कनिषा न पट्टी तो अग्निमित्र के अनुसार मुन्दरी के बरणायाल से फूल उठान की चाह को मस्त प्रेमियों के मन में होती है यह अशोक के मन में व्यर्थ ही हुई<sup>३</sup>। पावती के समान मार्गिका की भी उर्गतिमा कुछ ऊपर का उठी थी<sup>४</sup>।

बाल—मज्जिमानी और हसबति से परिकरित होता है कि पीरे-पीरे बल्ला हो मुन माना जाता था। इन्धुमती अपनी मुखर बाल की अपनी मृत्पु के उपरान्त मारों कर्णसिन्धियों को देती है<sup>५</sup>। युवती पावती लगलगाते हुए मृत्पु से जब बालती थी तो ऐसा प्रतीत होता था मानों राजहंसों ने मृत्पु की मधुर ध्वनि को सीखन के काम में अपनी मुखर बाल पहले ही उसे सिखा दी हा<sup>६</sup>। स्वयं उबड़ी भी हम की तरह पतिमुक्ता थी<sup>७</sup>। कभी-कभी हम भी

१ अकि निबाव करजोव यथामुग से संवाहयामि बरबावत पच्छामौ ।  
—ममि० ३११६

२ नवविस्मयरागेनात्रपारेन बाला स्फुरितनख्वा ही इन्धुपह्लनेन ।  
—मात० ३११२

—आशय कर्णविस्मयमस्माधियमत्र बरबमर्ययति ।  
उभयोः सपुसविमयाशरमार्गं बन्धिनं मन्वे ॥ —मात० ३११५

३ अनेन तनुमप्या मुखरमृत्पुटागिका नवमृत्पुटकीयसेन बरबेन सम्मानित ।  
अजोक यदि सद्य एव मुकुतैर्न संपत्सये नृपा बहूनि दोहर्दं कश्चित्तमामिमाचारकम् ।  
—मात० ३११७

मध्य पाणिमिती निरुद्धि ज्वरन पाशरराजीपुत्री । —मात० ३११

मरानसे यतम् —रप० ८१२६

मुनियों की इस मन-आवनी चाल को पराम्त करने की चेष्टा करते हैं<sup>१</sup> ।

मुद्रा—सुन्दर जब विषेय मुद्राओं में और भी सुन्दर लगते हैं । इसने अतिरिक्त मुद्राओं से विषेय भावों की भी अभिव्यक्ति होती है । पावती का सुन्दर मुख को कुछ तिरछा कर खड़ा रह जाना शिव के प्रति उनके प्रेम को व्यक्त करता है<sup>२</sup> । शकुन्तला का कविता रचते समय भू का ऊँचा करना उसको विचार-लग्नता के साथ बुध्यन्त के प्रति अनुराग की भी प्रमाणित करता है<sup>३</sup> । इसी प्रकार शार्ङ्ग वास पर हाथ रख बठी शकुन्तला का बुध्यन्त की स्मृति में अपनी सुख भूलो हुई क्यता है<sup>४</sup> । इसी प्रकार पनुप बीचने की मृग म जब सुदृशान अपने घरार का उमरी भाग कुछ भागे कर लेते थे बाक ऊपर बाँध लेते थे बाई बाँध मुका बैठे थे और बाय बढ़ाकर पनुप की डारी कान तक लाय लेते थे तब बहुत प्यार करते थे<sup>५</sup> । इसी प्रकार पावती के सौम्य स प्रभावित होकर शिव कर में ही सौमल कर उन्होंने दृष्ट-उदर देखा कि इस विकार को मन में लाया कौन ? उन्होंने उसी समय कामरुष का पनुप बीचकर गोल किए, दाहिनी बाँह की ओर तक घुटकी से घनप की छोरी खींचे शार्ङ्ग कर्म को मुकाए और बाएँ पैर का घुटका मोड़ बाय परमन का हम मद्रा म देना<sup>६</sup> । समाधि में स्थित महाशिव जी की निरचल मद्रा भी न कबल उनके संयम

१ हुंसेविता मुक्तमिता गतिरेवनात्मन्मार्गविकसितैर्मुखचन्द्रकान्ति ।

—पद्म० ३।१७

२ विदुश्चरी देहमुतापि भावमंगै स्फुरद् दानकरम्बकम् ।

साधोवता चालदरेण तस्मी मृगम पयस्तद्विचोचनेन ॥ —कुमार० ३।६८

३ सन्नमितैकभूम्भुतमालनमम्या पद्मानि रचयन्त्या ।

कष्टकितेन प्रथमति मय्यनुरागे नपोलेन ॥ —अभि० ३।१३

४ बामहस्तोपहितवचना निक्षितेव प्रियसखा । अतु वतया चिन्तया आरमानमपि मेया विभावयति कि पुनरागन्तुम् ॥

—अभि अंश ८ पृ० ६०

५ व्यरक्षित किञ्चिद्विबोतरापमुन्मत्तचूडैर्प्रचित गम्यमानु ।

आकर्णमापटनबाधपम्बा व्यरोचतास्तेषु विनीपनाम ॥ —रघु १८।११

६ म वप्रिमापागनिकितम्भि नतसमावृम्भितगम्यताम् ।

दशम वशेवतचारचारं प्रहृष्टम्युत्तमागमयोनिम् ॥ —कुमार० ३।७०

—पद्मदुर्गन्धिविपूबकापमश्रापनं सम्भमितोभयोमम् ।

उत्तानपानिदृगमिबसान्द्रदृक्करात्रीवमिवाभामध्ये ॥

कालिदास के ग्रन्थ साकाशीन संस्कृति

को व्यक्त करती है अतः उनके हृदय की एकाग्रता और अनन्यता की भी इससे पुष्टि होती है। इसी प्रकार नृत्य करने के पश्चात् जब मातृविका अपना बाया हाथ निताम्ब पर रख लेती है तब उस हाथ को बाती के समान होला और मधुर प्रतीत होता है। नीचे बाँधें किए अपने पैरों के अँगूठ से घाटी पर बिहार हुए फूलों को पीरे-पीरे सरकाती रहती है, उसकी यह मुद्रा नृत्य करने समय के सौन्दर्य से कहीं अधिक प्रभावशाली और लावण्य का वातावरण अतिमिश्र को प्रतिपादित करती है<sup>१</sup>। अतिमिश्र को उसकी यह बाहु-मुद्रा भी बड़ी प्यारी लगती है जिसमें मोह के चढ़ने से उसके माँसे की बिन्दी हट जाती है और निचला मोठ फड़कन लगता है<sup>२</sup>।

**पुरुष-सौन्दर्य**—कालिदास ने जिसका स्त्री-सौन्दर्य का वर्णन किया उसका पुरुष-सौन्दर्य का नहीं। नारी की सुकमारता को उन्होंने अंग-अंग में दिखाया इसलिये कि उसके लावण्य के लिए इसकी पार लावण्यता भी पर पुरुष-सौन्दर्य उसकी वृष्टि में बीर्या का प्रतीक है। अतः अंग-अंग में उन्होंने विद्यामता और बलशाली के वर्णन किए। राजा विभीषण का सौन्दर्य देखिए—

भूधोःस्का नृपस्यस्य सप्तप्रसन्नहामुखः ।  
आत्मकर्मधामं देहे साक्षात् सम इवाधित ॥ —रघु० १।११

इसी प्रकार रघु का सौन्दर्य—

मुखा बभ्रव्यायतबाहुरंशुः कपटवद्धा परिबद्धकंधरः ।  
बभ्रुः प्रकर्षावजयद्गुहं रघुस्तथापि भीषेन्नियतवद्वक्त्रम् ॥ —रघु १।१४

**वह्यप्रति**—कवि ऐसे ही बलवान् शरीर की प्रशंसा करता है जिसका आये

मुर्जमोन्मदवद्वक्त्रात् कर्णावसक्तप्रिमुलासमूत्रम् ।  
कंठप्रयासंनविद्योनीका वृष्णत्वचं ग्रन्थिपटीं दधानम् ॥

विजितप्रकाशमिति यो प्रहारी भू विक्रियानी विरतप्रसंगे ।  
विस्मयितव्यममानीकपीकतयापममोमयूनी ॥

—कमार १।१४ ४९ ८३

का भाग भिरगतर बनप बीपने से ऐमा कदा पड़ जाय कि उस पर न भूप का ही प्रभाव पड़े न पसीना ही छूटे<sup>१</sup> ।

बर्ण—वीर अथवा क्षाम कोई भी बल हो कबि इसमें कोई हानि नहीं समझता । स्वयं राम क्षाम बल के थे वीर सीता वीरवर्ण । इसके पहले भी हनुमती गौरोचन के समान वीर भी वीर मुनन्ता ने पाण्डव बेच के रात्रा का बचन किया कि यह नील कमल के समान छाँवले हैं । इनसे बिबाह कर तुम उसी प्रकार घोषित होगी जैसे घन के साथ बिबाही<sup>२</sup> । इसी बल में गरु के आकाश के समान छाँवले बल का पुत्र हुआ था<sup>३</sup> ।

नेत्र—बिघाक नेत्र पुरुष-सौन्दर्य में भी धूम लज्जल माने जाते थे<sup>४</sup> । कमल<sup>५</sup> तथा हरिण<sup>६</sup> इनके नेत्रों के भी उपमान बन कर आए हैं ।

अधर—साल ओट न सौन्दर्य का चिह्न माना जाता है । हिमाचल के अधर बालुवत् ठाढ़ थे<sup>७</sup> । इसका प्रसंग कैवल एव ही आया है ।

बाणी—स्त्रियों की तरह इनमें भी मधुर बाणी प्रशंसनीय मानी जाती थी । रघुवंशीय होमधन्वा के पुत्र बैबानीक इतना मधुर बोलते थे कि शत्रु भी उनका मित्रवत् आदर करते थे<sup>८</sup> ।

१ अमरततनुर्यास्तकामनरूपं रविजिह्वमहिष्णु स्वेदस्त्रीरुमिलम् ।  
अवधितमनि धामं श्यामलम्बुजस्य गिरिधर इव नागं प्रातमार्तं विमलम् ॥  
—मनि० २१४

२ इतीवदस्यामवतनुं पोञ्छो त्वं रोचनयोरपरीरयसि ।  
अग्नोष्मणोमादिरिचक्ष्वे वां योमस्तक्षितोष्मयोरिवान्मु ॥—रघु० ११६५

३ ममस्वरिणीतयया स कैमे नमस्तत्तस्यावतनुं समूहम् ।—रघु० १२१६

४ कामं कर्मास्तविभ्रान्ते बिद्याके तस्य लोचन ।  
बलुम्पता तु नास्त्रज मूढमकार्यावशिना ॥—रघु० ४१६

५ पोत्रं कुलस्यापि कुलोद्यमान ..... —रघु० १८१४  
—गुह्यपत्रमत्र गुह्य ..... —रघु० १८१३०

६ परम्पराप्रिसावुष्यमदूरीणिततवमय  
मृगहृदेषु परवन्ती स्वमन्ताउद्धृष्टिम् ।—रघु० ११४०  
—मुगावतारो मगवाविहाटी सिहारबाप त्रिपदं नृसिंह ।—रघु० १८१३५

७ बागुनाभापरं वाग्देवदाम्बुहृदमत्र प्रकल्पेव जिह्वोरस्कं मुष्मजो ..... ।  
—कुमार० ११५१

८ वरीं नुतरतस्य वतीवदस्यान्वेपामिवासीक्षिपतामपीष्टः ।  
नर-विभ्रान्तनि हि प्रयवर्णं मापुषयोहे हरिणान् पत्नीन्मु ॥—रघु०, १८१३१

कालिदास के ग्रन्थ तत्कालीन संस्कृति

स्कन्ध—ऊँचे बीर मारी कन्धे बीरता के चिह्न है। अतः अर्ध के समान स्कन्ध का ही जहाँ पुण्य-शौन्य विधायक गया है वर्णन है<sup>१</sup>। जिस प्रकार राम अर्ध के समान ऊँचे कन्धे बाल के बीच ही रघु भी जीवनसम्पत्ता में भारी कन्धे से युक्त हो गए<sup>२</sup>।

विद्यात्मक—पुरुष के हर अंग में बीरता का प्रवचन करने के लिए कवि ने विद्यात्मक विधायक है। जहाँ कभी वसन्धक का वचन है वहाँ कठोरा और विद्यात्मक की अभिव्यक्ति के लिए उसने कभी धिक्कपट्ट<sup>३</sup> के समान कभी कपट वचन कहा है। यदि वे उपमाएँ नहीं भी जाएँ हैं तब भी उसने विद्यात्मक वचन कहा है<sup>४</sup>।

मुजार्ज—सम्बन्ध एवं बढोर मुजार्ज पुण्य-शौन्य की परकाया है। वहाँ धातुप्रधान के समान<sup>५</sup> कहीं शौचमात्र के समान<sup>६</sup> कहीं वचन के मनुष्य<sup>७</sup> कहीं नगर-परिच के अनुरूप<sup>८</sup> उसने मुजार्ज का शौन्य कहा है। कभी अन्य उपमा

१ कलकवलह बाले कनीयान् मन्त्र मे ।  
इति रामो नृपम्बन्तो नृपम्बन् धामन राम् ॥ —रघु १२।१४

—अधोरन्तो नृपम्बन् धातुप्रधानामुब ।  
आत्मकमर्तमं देहं ताव वम इवाधित । —रघु ११।१३

२ यथा युगध्यायतबाहुर्गल कपटवद्धा परिवर्द्धकं पर । —रघु ११।१४  
३ तस्यामवतानुत्तरापीठं तिलं धिक्कपट्टविद्यात्मकता । —रघु १८।१७  
४ —बालुताप्रामर प्रागुर्वचनारबुद्धनुब ।  
प्रकृष्टीक विद्यात्मक मुख्यको द्विगुणिति ॥ —दुमार १।११

५ हेमिण, पाण्डिणो नं २

६ हेमिण, पाण्डिणी नं १ —रघु ११।१३

७ —अवतिनापाज्यमुपबद्धविद्यात्मकतास्तनुकुलमध्य । —रघु ११।१२

नं १ —रघु ११।१३

विद्यात्मक ।

— १४।११



कालिदास के ग्रन्थ तत्कालीन संस्कृति

स्कन्ध—ऊँच और भारी कन्धे की गता के चिह्न है। अतः कप के स्कन्ध का ही वहाँ पुष्प-सौम्य दिखाया गया है वयन है<sup>१</sup>। अतः प्रवा वृष के समान ऊँचे कन्ध वाले थे वैसे हो रघु भी यौवनावस्था में भारी युक्त हो गए<sup>२</sup>।

वक्षस्त्वल—पुष्प के हर अंग में वीरता का प्रवाह करने के लिए विद्यालता दिखाई है। वहाँ कहीं वक्षस्त्वल का वयन है वहाँ कठोर विद्यालता की अभिव्यक्ति के लिए उमने कमी दिखाए<sup>३</sup> के समान कमी वय<sup>४</sup> कहा है। यदि ये उपमान नहीं भी आए हैं तब भी उसने विद्यालता व वयस्य कह दिया है<sup>५</sup>।

मुजार्थ—सम्झी एवं बठोर भुजाएँ पुष्प-सौम्य की पराकाष्ठा है।<sup>६</sup> सामप्राप्त के समान<sup>७</sup> कहीं रोपनाव के समान<sup>८</sup> कहीं वक्षस्त्वल के समान<sup>९</sup> नगर-परिधि के अनुरूप<sup>१०</sup> उमने मुजार्थ का सौम्य कहा है। कमी वय

१ कलत्रवानहं बाले कनीयामं भवस्व मे ।  
इति रामो वृषस्यन्ती वृषस्कंधं शानाम् ॥ —रघु० १०।१४

—मृगश्रङ्गो वृषस्कंधं शालयाद्युपहामुब ।  
भारतकमशमं देहं धाम वम इवाधित । —रघु० १।१३

२ भुजा मुपम्यायतबाहुर्गल कपायबला परिजटकेपर । —रघु०  
३ तस्यामवायुनुशान्तीषां चित्तं चित्तान्दृष्टिपातकता । —रघु० १

—बालुतापायः प्राप्नुते वशान्दृष्टिमुब ।  
प्रवृत्तैव चित्तोत्सुकं मुवक्तो हियवातिनि ॥ —दुमार० १।१४

४ हेमिण्य पादटिण्णो नं० २

५ हेमिण्य पादटिण्णो नं० १ —रघु १।१३

—वचनितानाभोऽप्यमृदप्रवाहविद्यालतास्तनुमुत्तमव्य । —  
नं० १ —रघु० १।१३

विद्यालता

यावत्पुनरियं शुभ्ररूपकामि समुत्सुका ससीमियासि सम्पदस्तामि ।

—बिहम

‘कात्स्निकबुधनवती नातिपरिच्छुटघटीरुक्तमध्या ।  
मध्य तपोवनानां क्लिष्टमपमिव पाण्डुपत्राणाम् ॥—बमि

कमी-कमी कवि को स्त्री-सौन्दर्य प्राकृतिक भुषणों को भी पार करता हुआ होता है । उसे आभास होता है कि प्राकृतिक सौन्दर्य स्त्री-सौन्दर्य का बस वह प्रकृति में स्त्री-सौन्दर्य देखता है ।

जलविरेकजनमस्तिविषं मुख मधुसोस्तिस्वर्गं प्रकाश ।  
रायेन आत्मरूपकामनेन चतुप्रवासोद्यमसंस्कार ॥—हुमार ३।

अथ स्त्रीमलपात्रं कुरवकं वार्यं द्वयोर्ममिषो

रक्ताद्योक्तमुपोद्गापमुमर्गं मेरोमुर्धं तिष्ठति ।

ईषद्भठरज कजाद्यकपिद्या चूने नवा मंत्रो

मुगलस्य च यौवनस्य च सद्य मध्ये मधुपीस्तिष्ठा ॥—बिहम २॥

यौवन-श्री और सौन्दर्य के विषय में कवि का कहना है कि यह घटीरूपी कला का स्वभाविक शृंगार है, बिना मरिच के ही मन को मत्तबल बनाने वाला है ।

अममूर्तं मण्डनमगमयनासवाक्यं करणं महस्य ।  
कामस्य पुण्यव्यतिरिक्तमस्त्रं वाग्यात्परं साधनं प्रपदे ॥—हुमार ० १।३१

सौन्दर्य क्या है ?

सौन्दर्य के अनुभव में मिथ्या आनन्द है परिभाषा बनानी पड़ती ही पड़ती । एक कवि का कहना है—राधे-अधे मन्मथतामुपैति तदेव नरं रमणीयताया ।

अर्थात् कवि कोब का कहना है कि ‘सौन्दर्य बही है जो मनुष्य को सदा आह्लाद प्रदान करे’ (A thing of beauty is a joy forever) । रामस्वामी दासजी के मतानुसार सौन्दर्य परमात्मक गुण है और निरव्यक्त आत्मा के आनन्द की परावर्तक अभिव्यक्ति है । सौन्दर्य में मृदता अनुभूतता और अनुपमोप छटा का समावेश है पर यह उमरा सार तथा मूलरूप नहीं है । इसमें सदा नवीनता और ताजगी रहती है । यह स्वयं साध्य है पर नापन नहीं । इसकी उपस्थिति में ही तथा इसी की शक्ति से आत्मा के आनन्द तथा वाच्य उन्मेष होता है । अथ सौन्दर्य आत्मा के आनन्द की पूर्ण अभिव्यक्ति है । इसी कारण स्वर को आनन्द प्रम तथा सौन्दर्य के मार्गों से विभूषित करने हैं ।

Beauty is a dynamic quality and is the dynamic expression of the static bliss of the soul. Softness, symmetry are among its



चरण—प्रमाद की लाल फिरबों से नरै कथल के समान चरण तथा लाल लाल चरण-सौन्दर्य का प्रसीक समझा गया<sup>१</sup> । अग्निवर्ण में अर्धचन्द्र दोषों के होते हुए भी एक यह पुनः था ।

द्विषों में यदि बाधु को-सो बन्धवत्ता<sup>२</sup> अच्छी समझी गई तो पुरुष सागर के समान बन्धीर<sup>३</sup> तथा विपुल वृत्ति<sup>४</sup> वाले ही यद्यपि उत्तम माने गए । चोर पुरुष की न केवल आकृति ही बन्धीर होनी चाहिए, अग्नि हृष्य की गम्भीरता भी इतनी ही आवश्यक है ।

### सौन्दर्य की परिभाषा तथा उत्पत्ति

नेत्रों का कोई भी सौन्दर्य कितना हो प्रभावित क्यों न करे हृष्य में कितना ही कम क्यों न आए फिर भी यह अनुभव तथा वस्तु करना मनुष्य के लिए कल्पित अवश्य है कि आदित सौन्दर्य है क्या वस्तु ? इसके उत्तर क्या है ? अन्तः के लिए इसका प्रयोजन क्या है ?

कालिदास को इन सन्धियों का पूरा ज्ञान था । वह अच्छी तरह जानते थे कि कौन और पुरुष की आकृति में जो सौन्दर्य होता है वह प्राकृतिक-जीवन का ही एक अंग है । अन्तः कौन-कौन के वह कोमल पन्थर तथा चूल्हे हुई मृत्तिका से कभी बुरा नहीं करता—

आवर्जिता किञ्चिद्वस्तुनाम्नां वागो वसाना वरणाकराणाम् ।

मर्षास्तुप्तावकावकावना सञ्चारिणी मलविनी स्येव ॥ —कुमार० १।६४

अथ किमस्मदाग कोमलविष्णुकारिणी वा ।

कुमुदमिव कोमलीयं यौवनममेव ममताम् ॥ —अभि० १।२

१ तं वतप्रवर्णपीशुर्जीविनः कोमलात्मनःपरावर्णमिति ॥

मेदिने नवविधाकरावकावकावना सञ्चारिणी मलविनी स्येव ॥ —रघु०, १।६८

मायिनं वरुण्यीयुः भगवत्तमं गतम् ।

मातृपुनरियं सुभूरग्यकामि समुत्सुका सखीमिमसि सम्पकृतामि

—विक्रम०

कामिबन्धवमुच्छनवती नातिपरिस्पृष्टघटीरकावध्या ।

मध्य तपोधमाणां क्रिसम्पमिव पाण्डुपत्राणाम् ॥—अमि०

कमी-कमी कवि की स्त्री-सौन्दर्य प्राकृतिक सुपमा को भी पार करता हुआ होता है। उसे आभास होता है कि प्राकृतिक सौन्दर्य स्त्री-सौन्दर्य का अतः वह प्रकृति में स्त्री-सौन्दर्य देखना है।

सम्पद्विरेकाजगत्किञ्चिन् मुख मधुसोस्तिष्ठकं प्रकाश्य ।

रागेण बासाण्यकोयलेन चूतप्रवासोष्ठमसंनकार ॥—कुमार ३।१

अथ स्त्रीनक्षपाटस्य कुरवकं द्यौर्म उवाचगियो

रक्ताक्षोऽमुपोऽरुणमुमर्गं मेरोमुत्तं तिष्ठति ।

ईपद्मज्जरज कणाग्रकपिटा चूले नवा मंत्रये

मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सत्ते मध्ये मधुयीस्त्विता ॥—विक्रम० २।१

यौवन-यौ और सौन्दर्य के बिना य कवि का कहना है कि यह घरीर-यौ का स्वभाविक ऋणार है बिना मरिच के ही मन को पतझाला बनाने वाला है।

अनमृतं मण्डनममपट्णसबाक्यं करणं मयस्य ।

कामस्य पुण्यम्यतिरिक्तमस्य बाध्यामपरं साव वय प्रपेदे ॥—कुमार० १।११

सौन्दर्य क्या है ?

सौन्दर्य के अनुभव में कितना आनन्द है परिमाणा बनानी उठनी ही कठिन ।

एक करि वा बरना है—राजे-राजे यन्मवतामुपति तव वरं रमणीयताया ।

अंग्रेजी कवि कीव का कहना है कि 'सौन्दर्य बढ़ी है और मनुष्य को सदा आह्लाद

प्रदान करे ( A thing of beauty is a joy forever ) । रामस्वामी सास्त्री

के मतानुसार सौन्दर्य गत्यात्मक गुण है और निरवक आत्मा के आनन्द की

बाध्यात्मक अभिव्यक्ति है। सौन्दर्य में मुहुता अनुकूलता और अनुकूलनीय उदा

का समावेश है पर यह समता सार तथा मूलतत्त्व नहीं है। इसमें सदा नवीनता

और ताजगी रहती है। यह स्वयं माध्य है पर माधन नहीं। इसकी उपस्थिति

में ही तथा इसी की दक्षि में आत्मा के आनन्द तथा का चरम उन्मय हावा

है। अतः सौन्दर्य आत्मा के आनन्द की पूर्ण अभिव्यक्ति है। इसी कारण ईश्वर

को आनन्द प्रम तथा सौन्दर्य के नामों से विमूर्णित करने है<sup>१</sup> ।

Beauty is a dynamic quality and is the dynamic expression of the static bliss of the soul. Softness, symmetry are among its

स्वयं काठिवास सौन्दर्य को आध्यात्मिक जब में अधिक लेते हैं। इसकी पुष्टि शकुन्तला के सौन्दर्य के व्यक्तीकरण से होती है—

चित्र निवेद्य परिचयितसत्त्वमोषा कपोलचयन मगमा विविता कटा मु ।

— स्त्रीरत्नसुष्टिग्रन्थ प्रतिभाषि सा मे ॥—अभि० २।८

उपरी के सौन्दर्य का वर्णन करने में वे एक पंख और आने बड़े आते हैं। मोय-बिकास से दूर रहन वाले मृगि केमा रूप नहीं समझ कर उबरे बमल कामदेव अपना बन्दना न हो गया बर इसकी रचना की होती—

अस्या समविधो प्रजापतिरमृच्छन्ता मु कातिप्रद

मृगैरकरमु स्वयं नु मरतो मामो नु पुपाकर ।

महाभ्यस्तवह कथं नु विषयव्यावृत्तकीमुहुरी

निर्माणु प्रमथन्नाहमिह तपं पुराणो मुनि ॥

—विहम० १।१०

मह मे कवि का संकेत है कि सौन्दर्य में चित्र ही-सी ताजगी तथा स्मृतिदायक आनन्द है। इसमें विम्वल है अत इसके आरम्भ मुपमा और सुकुमारता से हृदय में आकर्षण अवश्य होता है। यही सबसे बड़ा कारण है कि सौन्दर्य में सभी बहुत अधिक प्रभावित होते हैं।

सौन्दर्य के लक्षण—कवि महमे प्रथम सौन्दर्य के लक्षण में सर्वप्रथमता को लेता है। अर्थात् जिस सौन्दर्य में कोई अभाव कोई दोष न हो। मानविका के सौन्दर्य में अनिमित्त की कोई दोष न लटका। प्रत्येक मुद्रा प्रत्येक अवस्था में वह एक समान ही सुन्दरी प्रकाश होती थी।

‘अहो मधस्वानानवद्यता रूपविलोप्य’—माक अंक ३ पृ० २८२

‘अहो सर्वप्रथम्यामु आरणा योजान्तरं पुष्यति’—माक० अंक २ पृ २८२

अनवद्यता के साथ-साथ चान्ति में स्वाभाविकता का होना चाहती है। दूसरे शब्दों में अस्तित्व कान्ति अनवद्यता के उपरान्त दूसरा लक्षण माना जाता

है। शङ्कुत्तमा की यही व्यक्तिष्ट वाणि<sup>३</sup> पुण्यन्त को प्रभावित कर गई थी। ऐसा सौन्दर्य प्राप्त करने बिना किसी श्रमियस्योग<sup>४</sup> सम्भव नहीं होता। शङ्कुत्तमा के सौन्दर्य में मागबल्य तथा देवत्व दोनों का योग था<sup>५</sup>।

सौन्दर्य में वह लाभ्य है जिसके लिए बाह्य साधन अपेक्षित नहीं हैं। सौन्दर्य स्वतः शरीर का सबसे बड़ा आयुषण है जो हर अवस्था में विकसित रहता है।

मरतिनमनुबुद्धं शेषमेवापि रम्य मस्तिनमपि हिमांशोत्कम्य लक्ष्मी उचोति ।  
इयमधिकमनाया वस्त्रमेवापि लक्ष्मी स्तिनिव हि मधुराणां मण्डनं नाकटोनाम् ॥

—मनि० १११६

पावली के मौखिक को भी सही बिगलता थी—

यथा प्रविष्टमक्षरं सिरोगृह्यमिहमप्युत्तममप्य ।

॥ दृष्टव्यमिति निवेद्य संक्षेपं महाप्रसादमयं प्रकथयते ॥ — कुमारः ३१६

जितना ही प्रयत्न करो म किन्ना जाय निपुण-स-निपुण चित्रकार भी लाक्षण की रक्षा भग्न सौच पाता है<sup>३</sup> । क्रिम प्रकार आभूषण ये सौन्दर्यवृद्धि होती है, वैसे ही सौन्दर्य स्वयं आभूषण की गोमा को विगमिश कर देता है<sup>४</sup> । शरीर जो सौन्दर्यपूर्ण है, आभूषण का ही आभूषण है । 'आभरणस्याभरणं प्रमाणविधेः प्रमाणविधयः'<sup>५</sup> ।

मौल्य का करम प्राप्त उन्होंने शङ्कन्यासा में ही लिखाया है—

अनामानं पुनर्दिनसमयमनूय करणैरनामिदं रत्नं मधु नवमनस्वादिठरसम् ।  
अनन्यं पुण्याना एवमिदं च तत्पुण्यमपि न जाने मोक्षार्थं नमिह समुपस्थाम्यसि विधिः ॥  
—अभि० ३१०

इसमें कोई शन्देय नहीं। कवि की प्रायेक उपमा मामिश्राय है। पूर और पता व सावगी और मुहुमारा है, रत्न की ज्यानि मश एक-मी रहनेवाली है।

१ दृष्टमपममयेषं चकमन्निदृशान्ति प्रथमपरिगृहीतं स्यात्तु वेदयन्मवस्यन् ।

—समि० ५।१६

२ यादुगीशु कर्षे वा स्वाभ्यः सगव्यं वैश्वम् ।

५ प्रमातरस्य कर्पातिर्येति समुपानयात् ॥ —मयि० ११२४

१. यद्यप्यत्र न विवेकं स्याद्विदुः सत्यस्य वा ।

तस्यापि तस्या साधनं रोग्या किञ्चिद्विद्यम् ॥—अभि० ११४

४ ब्रह्मसंख्या-स्तनबन्धुरस्य मुक्ताह्वयस्य च निम्नतम्य ।

नमोभ्यौपात्रनमादुबभूव सायारणौ मयपमप्यभाब ॥

—सुधार. १५४३

५. माधवच. — चिन्म. २१३

गृह्य आकर्षक है। अतः सौन्दर्य में आश्रय सुकुमारता महीमता और कान्ति ही नहीं अपितु यह ईश्वर की एक नम्याचरायक तथा पैवित्र देव है।

कालिदास का यह भी विद्वत्ता है कि मौन्य और पाप कभी साथ-साथ नहीं रह सकते। सौन्दर्य कभी पापाचार का कारण नहीं होता—

‘न तादृषा आकृतिर्विरोधा युक्किरोचिता वृत्तिः’—अभि० अंक ४ पृ० ४७

कुमारमंजरी में भी हम भाव की पुनरावृत्ति है—

यदुच्यते पावति पापकृतये न ह्यमित्यभ्यभिचारि तद्वचः।

तथाहि ते हीत्युच्चारयन्ति तपस्विनामप्युपदेयता यनम् ॥ —४।१९

कालिदास के समान अंग्रेजी नाटककार शेक्सपियर भी मौन्य की पर विरोधता मानता है<sup>१</sup>।

मानव-आत्मा पर सौन्दर्य का प्रभाव पड़ता अक्षय्य है। इन्दुमती के सौन्दर्य का प्रभाव स्वर्णर में आए प्रत्येक राजा पर पड़ता है और प्रत्येक के हृदय में उसकी प्राप्ति की कामना कम पान्ती है<sup>२</sup>। महान् सौन्दर्य अर्द्धकार ही नहीं अपितु जीवन की नी पवित्र कर देनवाला है, जगो प्रकाश देने लगे ईश्वर को प्रकाशित करती है और तथा तीनों लोकों को अन्तर्गत कर लेती है<sup>३</sup>।

नम्यात्मा और स्त्रियों का बचन कवि ने विशेष रूप से किया है। कुमार सम्भव प्रथम सर्ग में उमा की कन्या कम और पौनरात्म्या का अन्व-अरमण विषय किया है। इसके अतिरिक्त शाकविका का गत्य करती समय दोहर समय विरमेश का उबरी के विषय में बचन—‘अपि नाहमेव पुकरवा मनेयमिति’ शकुन्तला का पानी बैठे समय मौन्य विरहदग्धा शकुन्तला का सात्वध्य यद्य-यन्ती का हमी रपामा विपरिवर्तना... सात्वध्य का सत्य ही कोई अंग उम्हने मष्टा न छोड़ा<sup>४</sup>।

सुन्दर-सुन्दर काळङ्क और सुरग भी नहि की दृष्टि से न बने। अतः का सुन्दर हाव को आपा सिता कमल्यन् था<sup>५</sup> राजा विभीष विगमन बध विमान

वा शास्त्र के समान सम्झी मुझारे भी<sup>१</sup> । रघु विजयका बन्धन पाठ के समान वा मोर को परिषदात्मक<sup>२</sup> वा<sup>३</sup> दुष्टमत्त सम्झा मोर पुष्ट समी प्रबन्धीय है । सबसे समीय बन्धन महादेव का वर रूप है । कथ्य और मरीचि की शास्त्रमूर्ति भी प्रबन्धीय है ।

प्रयोजन—इसमें कोई मन्देह नहीं कि कालिदास ने सौन्दर्य का दार्शनिक तथा सांस्कृतिक अधिकांश में किया परन्तु उसने उन्होंने सौन्दर्य का प्रयोजन आध्यात्मिक ही माना । उन्होंने अच्छी तरह परमात्मा कि जीवन में सौन्दर्य का प्रयोजन है क्या । सौन्दर्य का समी मुख्य है जब वह हमारे अन्दर अन्तः आदर और प्रसन्नता के भाव उत्पन्न कर दे तथा हम सृष्टिकर्ता के प्रति इनके लिए अनुपस्थित हों यदि यह सोचना भी शक्य और सेवा की प्रकृति हो स्वभाव में मरत कर हृदय में मनीषता तथा अस्तित्व की उत्पत्तिकारिणी हो आत्मा में परमात्मा की अनुभूति प्रदान करनेवाली हो । इससे विपरीत यदि यह माह और लक्ष्मि-लक्ष्मी से युक्त कर मनुष्य को सामाजिक बनाए, शान और बलरता को उत्पन्न कर तो यह निरर्थक हो है । कवि उत्पत्ति की ओर के अन्तर्धानी सुन्दरता का पुजारी था । इसी के उत्पन्न के लिए उसने सब-सब कामायन्त्र मौर्य की भी उत्पत्ति की । कुमारसंभव का 'प्रियं सौभाग्यरूपा हि वाचना' स्त्रीणा प्रिया लोककवि द्वि अथ उनके हृदय के मन्त्रे विद्याम की अधिष्ठात्रिणी है । इसका अर्थ सौन्दर्य से विद्य की न ओर पाना ही प्रमाणित करता है कि सौन्दर्य की मूर्ति वा और मूर्ति की अगवन्त का अनुगामी बनना चाहिए ।

### अन्त

संस्कृति के अन्तर्गत अब तक किसी ने अपनी दृष्टि इन ओर नहीं डाली । किसी ने कभी ध्यान ही नहीं दिया कि भागवतमियों के बन्धन तथा पहिरान में भी कोई विवेकता हो सकती है । कौन यह मन्त्र है कि आजकल जिस ढंग से बानी मारी क्वाटर पगड़ी बाँधी पहनी जाती है वही ढंग पहने भी था । आजकल के और प्राचीन समय के अन्तरों में भी बहुत अन्तर पड़ा होगा । वस्त्रों के रंग और प्रकार भी कुछ दूसरे ही रहे होंगे ।

१. चूड़ोत्सवी वृणस्वध-शास्त्रांशुमन्नाभुज ..... —रघु० १।१३

२. मुवा युगस्यावतवाहुरेण्य-कपाटवन्ता पवित्रद्वन्द्वरः —रघु० १।१४

—अनवरतपद्मगर्भाष्टाङ्गनऊरपूषः रश्मिनिर्गमहिम्नु रवेन्मैत्रिमन्त्रम् ।

अर्वाचनमर्वा यान व्यावृत्तव्यावृत्तं विनिश्चर इव माह प्राग्गार् विनिश्चर ॥

## कालिदास के ग्रन्थ तत्कालीन संस्कृति

इस सम्बन्ध में पहला प्रश्न यह उठता है कि कालिदास के मर्म वस्त्र पहने जाते थे कि नहीं ? समस्त प्रश्नों के सम्बन्ध सम्पन्न करने से हम का कहीं प्रमाण नहीं मिलता । कंचुक वा कंचुकी का कोई वर्णन नहीं है । क्विपरीत कुक्कु कंचुक उत्तरीय उत्पीय स्तनाशुक स्तनाशु नाम मिथ्ये मिलते ध्वज्य रही होता है कि इस समय सिके कपड़े पहनने का चलन नहीं था । जैसे कूर्पासिक शस्त्र से ब्रह्मा वा मकता है कि मर्म्य पहने पर कपड़े मिले पहन जाते होंगे । एक वस्त्र निम्न भाग के ढकने का और दूसरा ऊपर के भाग को ढकने के लिए प्रयोग किया जाता था । कुक्कुशुम<sup>१</sup> और लोपशुम<sup>२</sup> का बही महत्त्व है । ऊन<sup>३</sup> शस्त्र मिलने के कारण ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि शीत अनुभव होने पर मर्म बाहर ओढ़ ली जाती होगी । भारतवर्ष में इसका शीत का प्रकीर्ण देखने में आता भी नहीं है । यहाँ नहीं अच्छा जीवन प्राप्त हो करने के कारण स्वतन्त्र भी यथेष्ट अच्छा रहता था अब हमने अधिक दो आच स्मरता भी अनुभव न होती होगी । स्तनाशुक और स्तनाशु नामों से शत्रु निश्चय निकलता जा सकता है कि आत्मकत की ध्माशुओं की तरह को<sup>४</sup> वस्त्र न था । अधिक शीत में स्त्रियाँ कूर्पासिक<sup>५</sup> पहनती थीं । यह कोई शीत-शस्त्र बर्षा-मा सिद्ध कुछ होना क्योंकि अधिकतर में इसका प्रयोग नहीं है ।

दूसरा प्रश्न यह है कि बस्त्र से शरीर शीत पर प्रकाश अवश्य पड़ना चाहिए, यह उन समय की शीत शूषा का उद्यम प्रतीक शाना है । मानवितान्त्रिक में परिश्रमिका माक-माक कहती है— यशोमतीश्वरान्ध्रकाले शिवनेरम्भपा बाधपा प्रवसो लु<sup>६</sup> । शास्त्र मीनोचन्द्र का भी ऐसा ही अनुमान है कि मिले कपड़ों में अंग ढक देने से उनकी गरम लुनी में नहीं बिगड़ जा सकती<sup>७</sup> ।

इस समय की स्त्रियों भी स्त्रियों की मूर्तिर्वा मिलती है । उनमें दो विशेषताएँ देखी जाती हैं—प्रथम वे ऊपर बाहर या जीनो नहीं डेनी द्वितीय उनका वस्त्र म्बल गता हुआ है, नाभि भी इसी प्रकार शीघ्रनी है । बहुत-से विद्वान् का लगा

से स्त्रियाँ निजी के मर्मभूत नहीं जा सकती ।

निम्नजन्मा को परिश्रमा

पयोधर के समस्त गुण—छटाखटा उगनतख पीनख बिगामखा आदि  
 नूब धन्डी तरङ्ग से एक-एक बात बधित है। यही तक रहता तो भी  
 बा। कहा जा सकता है कि यह सब बरख पढ़ने पर भी नहीं छिप सकती  
 गोरे स्तन और सीबकी धुन्धली जब तक दिखाई न पड़े तब तक कोई  
 नहीं करेगा। मांभि रोमाबसी सबका बखान प्रमाणित करता है कि छिछा  
 नहीं पढ़ता जाता होगा और सिखायी शृंगार के गद्यमे सुन्दर शब्दा मे  
 स्तनायुक्त तक बाण्य नहीं कहने वाली<sup>१</sup>। चन्द्रिका का बिब बनते समय स्तनों  
 के बीच मुनास तन्मुखा की माका गियाना भी इसी की पुष्टि करता है<sup>२</sup>।

रूपका के प्रकार—सूती रसमी और ऊनी तावा प्रकार के बरख उन  
 समय पाए जाते थे। कवि के दम्पा में कीरोप धाम पत्रोप कीरोप-पत्रोप  
 बुरख और अचुक नाम है।

कीरोप<sup>३</sup>—छाकर मोठीचन्द के अनुसार यह कीरोपकर बेष का बना रसमी  
 बरख बा<sup>४</sup>। बीछे ही यह जगो कड़ी प्रयुक्त हुआ है वहाँ रसमी बरख ही लपटा है।

कीम<sup>५</sup>—छाकर मोठीचन्द के अनुसार यह बहुत महीन और सुन्दर बरख  
 बा। यह अलसी का छाल के रेशों से बनता बा<sup>६</sup>। कीरोप के समान यह भी  
 रसमी बरख उब रस<sup>७</sup> ही प्रणीत होता है। शोम की उगमा बुबिया रंग के छोर  
 धामर मे बाण ले भी है। शोम चीना नाम से बरख है कदाचिन् धुमा या अलसी  
 नामक पीपे के रेशों से तैयार होता बा। मांग नन और पन्मन के रेशों से भी

१ तस्य निरवरतिप्रमाससा कण्ठमूत्रप्रपरिचय मोरिन ।

अपनोन्न बन्धुबन्धनं पीनरस्ननविमृष्टचरनम् ॥—रघु १६।३२

२ न बा दारकचन्द्रमणोविजोमम मुनासमूर्त्रं रजिनं स्तनाखरे ।—अभि १।१८

बाण का भी ऐसा करता है—शक्तिमी और बामगूह (मोम का  
 कमरा) और बाँ और नीब' जिनकी छन अचिचाप सुस्ती रहनी थी।  
 बाँ रानी धनोवती स्तनायुक्त की भी छोड़कर बाँनी में बीछी थी।

—हणचरित पृष्ठ ६२

१ कुमार० ७।७ बाणु १।८

४ बा मोठीचन्द प्राचीन बैन मूया भूमिवा पृ० १ अध्याय ४ पृष्ठ ५९

५ रघु० १०।८ १२।८ उत्तरमण ७ अभि० ४।१६, अर्च ४ पृष्ठ ६८  
 कुमार० ७।२६

६ बा० मोठीचन्द प्राचीन बरध मूया भूमिवा पृष्ठ ६

७ शीरोरबन्धे धन्धनपुष्पा परासिचन्द्रक दारतिवामा ।

नई नवछोपविद्यामिमी सा भूपो बनी ॥



बस्त्र तैयार किए जाते थे पर खीम अधिक कीमती मुलायम और बारीक होता था। चीनी भाषा में 'छुम' एक प्रकार की बांस के रेशों से तैयार बस्त्रों के लिए प्राचीन नाम था जो बांस के समकासीन एवं उससे पूरा प्रयुक्त होता था। यही चीनी बांस भारतवर्ष के पूर्वी भागों आसाम बंगाल में होती थी। अतः वह रेशों से तैयार होनेवाला बस्त्र है। यह व्यवस्था ॥ आसाम में बननेवाला कपड़ा था क्योंकि आसाम के कुमार भास्कर बर्मा ने हथ के लिए जो उपहार भेजे थे उनमें यह भी था<sup>१</sup>।

पत्रोण<sup>२</sup>—ऊन का अर्थ भी सीताराम चतुर्वेदी की प्रकाशित टीका में ऊन मिलता है। इससे यह व्यक्त होता है कि पत्रोण का अर्थ ऊनी बस्त्र ही था। माकबिका को पहनाने के लिए पत्रोण का नाम आया है अतः यह ऊनी बस्त्र ही होगा<sup>३</sup>। बैसे (सन् १९७१) में मेड़ को 'ऊर्णवर्ती' कहा है ता पत्रोण माने ऊन ही सकता है परन्तु डाक्टर मोतोचन का कहना है कि नापकृष्ट सिक्क बन्दूक और बटखों की छाकों से निकले रेशे से इनका निर्माण होता था। इनका रंग क्रमशः पेट्टा सफ़ेद और मन्मथ का-ना होता था<sup>४</sup>। नापकृष्ट से बना पत्रोण का कपड़ा पीला सिक्क का बेट्टा बन्दूक का सफ़ेद होता था<sup>५</sup>। गुप्तकाल में पत्रोण पुनः हुआ रेशमी बहुमुख्य कपड़ा समझा जाता था। बामुदेव जी भी इसे रेशम मानते हैं जिसे क्षीरस्वामी ने कीर्णों की लार से उत्पन्न कहा है ('समुच्चयविप्रेषु हृमितालोर्षाहृतं पत्रोणम् — क्षीरस्वामी') क्षीरस्वामी का कहना है कि इस रेशम को बड़ और लकड़ को पत्तियाँ पानेवाले कीड़े पैदा करते थे। छायाद यह किमी किम का जेवली रेशम रहा हो<sup>६</sup>।

कौशिय-पत्रोण<sup>७</sup>—यदि पत्रोण का अर्थ ऊनी क्रिया जाय तो कौशियपत्रोण से यह निष्पत्ति निकलता है कि ऊन में कुछ रेशम मिलाकर भी सुन्दर चित्रों व चुमनेवाले बस्त्रों का निर्माण होता होगा। यह कुछ अद्भुत बात नहीं है। आजकल भी ऊन में रेशम मिलाकर बस्त्रों का निर्माण होता है। यही तो यह भी रेशमी बस्त्रों का एक प्रकार है।

दुग्ध<sup>१</sup>—यह वस्त्र बुकून् वृक्ष की छाल के रेतों से बना करता है ऐसा शस्त्र मोतीवर्ण का अनुमान है। बंगाल का बना बुकून् मन्दैर होता था<sup>२</sup>। बिनाह बारि मायस्त्रि अक्षरों पर खोम तथा कीसेय का प्रयोग किया जाता था<sup>३</sup> परन्तु एक स्थान पर बुकून् का भी नाम आया है<sup>४</sup>। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार बाज कक भी शान्तिपुरी और चन्देरी की साड़ियाँ मृत्ते होते हुए भी १५० ६० २०० ७० और इससे भी मँहवो जाती है इसी प्रकार बुकून् का कोई प्रकार बहुत महीन और अच्छा भी होता होगा। अक्षर से बुकून् मोटा होता होगा क्योंकि पुष्प बुकून् ही बारन करता है<sup>५</sup> और स्त्रियाँ भी खरीर के निम्न भाग पर बुकून् ही का अधिकोद्य में प्रयोग करती हैं<sup>६</sup>। बुकून् का रंग बयोस्त्रा की तरह धवक वर्णित है<sup>७</sup>।

हसचिह्न बुकून्<sup>८</sup>—स्त्रेष्ठ बुकून् के अतिरिक्त छाया बुकून् भी होता था। बहुधा हंस चक्रवाक आदि के चित्र छने रहते थे। यह बहुत मांगस्त्रि समझा जाता था। बिनाहादि अक्षरों पर इसका प्रयोग होता था<sup>९</sup>।

अशुक<sup>१०</sup>—शोष्य में इसका अधिक प्रयोग होने के कारण ऐसा अनुमान है कि यह वस्त्रों का सबसे महीन प्रकार है। अशुक इतना दस्त होता चाहिए कि बागमा की निमल किरणों का धोखा हो जाय<sup>११</sup>। यह इनका महीन भी जाना चाहिए कि निस्त्राम में उड़ जाय<sup>१२</sup>। अशुक कई प्रकार का होता था। शिवाशुक

१ रघु० ७।१८ कुमार ७।३२ कुमार० ७।७२ ७।७३ कुमार० ७।७८  
शत्रु० १।४ २।२६ ३।७ ४।३ विक्रम० अंक ५ पृ ३३६ माल० ३।७

२ डा० मोतीवर्ण प्राचीन वैद्यभूषा सूचिका पृ० ८

३ कुमार० ७।७ ७।२६ अमि० ४।३ अंक ४ पृ ६८ रघु० १२।१

४ रघु ७।१८ कुमार ७।७२

५ रघु० ७।१८ कुमार० ७।३२ ७२-७३ ३।७८।

६ शत्रु० १।४ २।२६ ३।७ ४।३

७ शत्रु० ३।७ डा० मोतीवर्ण प्राचीन वैद्यभूषा पृ ५५ में पीढ़ देग में बने दुग्ध सीमे और बिजने मुषनकह्या में बने दुग्ध अलाई प्यि होने है करते हैं। बंगाल का बुकून् मन्दैर और मुषायम होता है।

८ कुमार० ३।९७ ७।३२ रघु १७।३२

९ वैगिए, पाइटिण्णो म० ६

१० कुमार १।१४ ७।३ ८।२ ७।३ शत्रु० १।७ ३।१ ४।३ ६।५, २।१  
रघु १०।१६, पूरुमेप ६६ रघु० ६।७३, विक्रम० ३।१२ ४।१७

११ कुमार० १।७१

१२ रघु० १६।४३

बीनायुक्त रक्तानुक्त नीलायुक्त<sup>१</sup>। अगरकोप में बीम और दुःख को पर्यायवाची कहा है और नम और अंधुक्त को समान व्यववाची। राजशर के वपन में बाण ने अंधुक्त और लौम व असम असम मत्ता है। अंधुक्त को उपमा मन्त्राक्षिनी के स्वेत प्रवाह से दी है। अन्धुक्त अंधुक्त की सुकमारता की उपमा दुःख की कोमलता से दी गई है (बीनायक सुकमारे घोषकते दुःखकोमले धमने इव समुप-विष्ट)<sup>२</sup>। अंधुक्त को प्रकार का वा एक भारतीय और दूसरा चीन देश में सम्या हुआ जो बीनायुक्त कहलाता था। यह भी रेसमी वस्त्र ही था<sup>३</sup>। बहुत पहले रेसमी कपड़े का चीन के वन रेसमी कपड़े का बीनायुक्त कहते हैं<sup>४</sup>।

तन्नुनि<sup>५</sup>—यह किसी विशेष वस्त्र का नाम नहीं लगता। ऐसा लगता है कि महीन वस्त्र के लिए ही इसका प्रयोग हुआ है।

काश्मिर में किसी ऊनी कपड़ का नाम नहीं दिया परन्तु डाक्टर मोतीचन्द ने ई० पू० १ सताव्वी से ई० पू० १ सताव्वी के बीच में ही मेड़ के ऊन से बने कम्बलों का प्रयोग दिया है। मेड़ के ऊन से बने सात (आधिक) सप्ते गहरे लाल या मिश्रित लाल रंग के होते थे<sup>६</sup>। डाक्टर मोतीचन्द ने अनेक प्रकार के ऊनी कपड़ों के नाम और प्रकार दिए हैं।

भारीवस्त्र—जिन प्रकार वस्त्रों में अंधुक्त का प्रयोग होता था उसी प्रकार बड़े गीत में भारी-भारी वस्त्रों की उपयोग में लाया जाता था<sup>७</sup> पर इन प्रकार के वस्त्र का वही नाम नहीं मिलता।

मुगछाला—विषय अस्मर पर वस्त्रों के स्थान पर इसका भी प्रयोग होता था। यह तथा विद्यारम्भ-संस्कार के समय पवित्र होने के लिये इसका प्रयोग किया जाता था। मुगछाला में वह मुग का वस्त्र अविन<sup>८</sup> और मैय्य<sup>९</sup>

१ निनायुक्त—अनु० १।१ विजय० १।१० बीनायक—अभि १।३२

रक्तानुक्त—अनु १।२१ नीलायुक्त—विजय अंक ३ पृ० १२८

२ बामुदेवचरण अक्षरान्त इत्यदि लक्ष्मी-संस्कृत-अध्याय पृ ७६

विधेय है। धानूक की लाक बिछाने का काम में भी आती थी। मेध्यात्रिण भी बिछाए जाते थे<sup>१</sup>।

चरुकर—उपम्बीजन बन्धा के स्थान पर बन्धन बाण्य करते थे। गङ्गुलना सीता आदि न भी उपोवन में बन्धन का ही प्रयोग किया पा<sup>२</sup>। राम ने बल आते समय मायनिक बन्धों का परित्याग कर बन्धन ही पहन लिया थे। इसी प्रकार वाचना भी अपने रंजनी बन्धों का उतार कर सात-सात बन्धन बन्ध पहन लेनी है<sup>३</sup>। इसी ची में बीरनी भी बोंड रखी थी<sup>४</sup>।

बन्धों के मुख्य रंग—मनुज सुगर-मुग्ग बन्ध पहनने के लीकीन थे। 'मनोस बेग' का रंग हमको पुष्टि करता है। वे रंगेन उज्ज्वल बन्ध भी बाण्य करते थे और रंजीन सा। रंग में सीला साव बापाय हरा कुमुम्नी और कुंजुम मुख्य थे। रंग में दुकम और बंदक दोनों प्रकार थे<sup>५</sup>। बिज्जो-बगीच में उबरी का अंगुष्ठ एक स्थान पर भीला और एक स्थान पर सुकोर 'स्वाम-बम का दा'। कमलासुगु में कुमुम्नी रंग का दुकम और कुंजुम के रंग में रंगा स्तनागु<sup>६</sup> धारण की जाती थी। दूसरे रंगों में किन्तु कुमुम्न और कुंजुम के बन्ध मित्रों पहना करनी थीं। सातारिक साव-बिमास को छोड़ देन पर कादार रंग<sup>७</sup> का बन्ध धारण किया जान। लाक रंग मित्रों का प्रिय रंग था<sup>८</sup>। अपने जीवन का सबसे महम दिन में श्रुमार के सबसे सुन्दर राधा में वे इसे बाण्य किया करती थी<sup>९</sup>। हर रंग का सा बही-बही प्रयोग है<sup>१०</sup>।

साधारण धन भूषा—साधारण रीति में बत-भूषा के विषय में यह कहा जा सकता है कि इसका लक्ष्य प्रधान रूप में मौल्य-वृद्धि का लोगों को धन्य

१ कुमार० ७।३३ रघु० १।८८१ ८।९३

२ रघु० १।३।२ अमि० १।१६ पु० १३ पु० १ १।१४ ६।१७

३ रघु १।२।८ कुमार० ३।८ ३।४४ ८।४

४ कुमार० ३।१९ २ रघु० १।१

५ मित्ररुन्ध-रघु० २।२६ गायमासुगु-रघु० ३।३ मित्राव-बिज्जो० ३।१२ वागागु-आगु० ३।१ दादबम-रघु० १।४६ १६।६३

६ बिज्जो० अंक ३ पुष्ठ १६८ ४।१७ / रागु० ६।३

७ रागु० ५।६ ६।३

८ रघु १।३।३ मा० अंक ३, पु ३३०

९ अत्रगागागु-रघु० २।४३ कुमार० ३।८ ३।१४ आगु० ३।६ ६।४ १५ २१

१२ कुमार ३।४४

प्रकार बनता गीन । काश्मिर का साहित्य इस बात स्पष्ट प्रमाण है कि अंग सोझन न केवल उसका प्रधान उद्देश्य है, अपितु नायक स्वयं नायिका के एक-एक अंग का उमार बल आकार कठोरता शिथिलता आदि गुण अच्छी तरह बैलता है । स्तन निरन्त्र जघन आदि का जसा चित्रण इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि जो भी वस्त्र उपयोग में लाए जाते थे वे सौन्दर्य-वृद्धि के लिए तथा शक्ति को ज्यों-की-त्यों सुरक्षित रखने को ।

स्त्री और पुरुष की बेस-भूषा में विशेष अन्तर नहीं पाया जाता । कल्पम बेस-भूषा एक-सी ही है । हाँ स्त्रियाँ स्तनांगुल और कूर्पासक आदि पहनती हैं पर इसके स्थान पर पुरुषों का कोई वस्त्र नहीं है ।

श्रीमद्युग्म<sup>१</sup> बुद्धबुद्ध<sup>२</sup> और कौटिल्य पञ्चोक्त<sup>३</sup> युग्म आदि पात्रों से स्पष्ट होता है कि पूरे शरीर को ढकने के लिए जो वस्त्र प्रयुक्त किए जाते थे । एक निम्न भाग के लिए और दूसरा ऊपर के भाग के लिए । पुरुष एक वस्त्र निम्न भाग को ढकने के लिए पहनते थे और दूसरा चारर या दुधाले की तरह ऊपर ओढ़ लेते थे । स्त्रियाँ भी एक वस्त्र निम्न भाग को ढकने के लिए चारर करती थीं और दूसरा ओढ़नी<sup>४</sup> की तरह ओढ़ लेती थीं परन्तु इस प्रयोग में एक बात ध्यान देने की है वह यह कि ओढ़नी का विवाह अचरा फिती विधाय अन्तर पर ही प्रयोग आया है । हमसे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि यह आवश्यक नहीं था कि वे ओढ़नी ओढ़ें ।

निम्न के ऊपर अधिर्वास में बुद्धूत चारर किया जाता था<sup>५</sup> । स्त्रियाँ कभी-कभी अंगुल या धोम भी पहनती थीं<sup>६</sup> पर पुरुष कभी नहीं । अतः कहा जा सकता है कि अंगुल से बुद्धूत मोटा होता होगा । इसी कारण निम्न भाग के लिए पुरुष भी बुद्धूत ही प्रयुक्त करते थे हाँ स्त्रियाँ बुद्धूत अधिक और अंगुल बहुत कम । बेशक भी पुरुष के वस्त्र में हर जगह कवि ने बढारता दिखाई है इसीलिए कराचिन् उनमें अंगुल नहीं चारर करवाया ।

बुद्धूत पहना कैसे जाता था ?—ताँबी के कई अङ्गुलिओं में ( गुंफ काशीन ) लानी पहनने की रीति आधुनिक मद्रास सादी पहनने की रीति में नहीं अधिक मिलती है । इसके अतिरिक्त दा और दाहिने में भी ताँबी पहनी

जाती थी। एक में जूनन की लीग पीछे लॉम की जाती थी दूसरे में वह दोनों पुण्य की तरह ही हुई। पहली में भी एक भाग कमर में बाठा था और जूनन की लीग पीछे लॉम की जाती थी<sup>१</sup>। हाकर कहता है कि सिपाई और पुण्य दोनों ही लीगदार होती पहनते थे<sup>२</sup>। इस पर प्रभाव सज्जित यशवि कुछ कहती हैं और सचता परम्परा फिर भी कुछ स्पष्ट अवश्य है। इतना तो प्रमाणित है कि आभकल की धाड़ी की समय सिपाई बुकल अवस्था अंगुल धारण नहीं करती थीं क्योंकि कहीं मजिठ नहीं है। अतः कहा का मकसद है कि आभकल की-सी मर्यादा और का भाव जम समय न था और सिपाई पुण्य की तरह ही निम्न । ऊपर वाली पहन लेती हाँसी और उसके ऊपर रमना मलका आदि धारण लेती होती पर इनकी सम्भावना कम है, क्योंकि यदि ऐसा ही होता तो बचन का कोई अर्थ नहीं रह जाता। कवि न गीता-बचन धारण का बर्णन स्वाभाविक प्रयोग किया है<sup>३</sup> अतः इसका भी कोई-न-कोई महत्त्व अवश्य होना चाहिए। उस समय लिके कपड़ा का धारण नहीं था अतः लॉम की सीकर हो पहन लेती होती इसमें ही बीबी बचन हो सकता है यह भी सम्भावना कम है। अतः इतना कहा का मकसद है कि बुकल या अंगुल का कहने की तरह पहनती होती। आभकल की तरह बीच पेटीकोट नहीं पहन जाने थे क्योंकि यन्त्र और बुकल के बाह्य बाहर का बचन हो जाता जब बुकल स्थानाभ्यस्त न हो इसलिये ऊपर रमना बोधी का मेगता बिछी में दूध करना बहुत आवश्यक था। हाकर मोटीबन्द बीबी की कमरबन्द या बन्का पहने हैं<sup>४</sup>। हो सकता है कि बुकल को लंग की तरह धारण कर ऊपर से इसे बनकर गोंठ बाँधकर पहन लिया जाता होगा। इसके ऊपर सिलव के लिए रमना आदि धारण कर भी जाती होती।

दूसरी बात मातृवर्णीक यह है कि आभकल को लंग नहीं नामि के ऊपर — से नहीं पहनी जाती थी। नामि और त्रिबन्ध दोनों ही पीगने रहते थे<sup>५</sup>। प्रान्त-महार के अनुसार जहाँ के जल से नामि की पीगानकी लड़ो हो जाती थी<sup>६</sup>।

१ डा० मोर्गनियन् प्राचीन बीज-भूषण पृ० ८१

२ डा० मार्गोबन्ध प्राचीन बीज-भूषण अध्याय ३ तथा अध्याय ६

३ उत्तरमय ७ पृ० ७१६, कुमार० ७१६० ८१६

४ डा० मार्गोबन्ध प्राचीन बीज-भूषण पृष्ठ १६

५ पृ० ६१३२ ६१६६ चरमेक ३० उत्तरमय २२ भातु० ४१२२ त्रिबन्ध-कुमार० ११३६

६ भातु० ११३ कुमार० ११३८

आश्रम की तरह नीची साड़ी भी नहीं पहनी जाती थी क्योंकि ऐंड़ी और मूष सदा रिसाई पड़ते रहते थे । इनका यह भी भाव्य नहीं है कि वह घुटने तक ल रहती होनी । नीचे का तारा अब ही डका रहता होगा<sup>१</sup> ।

स्तनान्मुक्त तथा कृपासक—नामि निबन्ध रोमछत्रि और पयोधरों का सावोपांग बन्धन इस बात की पुष्टि करता है कि आश्रम के छात्र की तरह कुछ न पहना जाता था । ये अंग खुले ही रहने हाने । उन्हीं में स्तनान्मुक्त<sup>२</sup> का बन्धन बहुत है । यह पहले ही कहा जा चुका है कि अंग-नीचर वस्त्र धारण करने का प्रथम स्तर का अंग लफना नहीं अतः चूँकि उस समय बन्धन सीता कोई नहीं जानता था इसलिए स्तनान्मुक्त का ही प्रयोग होता था । ही घोर भीन म से कृपासक<sup>३</sup> धारण करती थीं । डाक्टर मोतीचन्द इसे बाकी बांह की मित्रई कहते हैं<sup>४</sup> । यदि यह न भी माना जाय तब भी इसका अन्वय कहा जा सकता है कि उर्ध्वो उ वस्त्रों के बिना बीजा-आजा उल्ला-सीबा जपरनुमा बाई वस्त्र मोकर पहन लती हामी । कृपासक स्त्री और पुंस दोनों का ही पहनावा बीच घेद से था । मित्रों के लिए यह बोली क हग का था और पुरपो क लिए कजुई या मित्र के टग का । इसकी ही विशेषताएँ थी एक तो वह कटि से ऊँचा रहता था दूसरे प्रायः आस्तीन रहित । अस्तुतः कर्पासक नाम इसलिए पड़ा कि हमारी आस्तीन काट्टियों से ऊपर ही रहती थी<sup>५</sup> ।

अंधक रेणुमी वस्त्र है और इसका यहीन कि कमी-कमी निराशम से भी उड़ जाय<sup>६</sup> । इसी का दृष्टा संकर से बात स्वयं पर मापने से से जाकर पोछे तान बीच केरी थी जैसे ही अमे पाकुन्तला ने बन्धन बाँध रखा था<sup>७</sup> ।

ओदनी—अधुन अबका दुबूल तथा उत्तरीय<sup>८</sup> के धोड़ने का भी प्रथम पक्ष-तब मिलता है । बुध्वात क सम्मुख जब पाकुन्तला गई थी तब चलता मुग हवा हुआ था अतः अब्धप ही ओड़ना की तरह लीप उगने ओड़ रखा गया<sup>९</sup> । इसी

प्रकार मातृविका भी वसन्तोत्सव पर विवाह की वेष-भूषा में छोटी-सी ओढ़नी ओढ़े हुए थी<sup>१</sup>। पावती भी 'त्वगुत्तरासंयक्ती' थी<sup>२</sup>। विवाह के समय अश्वमुत्त<sup>३</sup> का वस्त्र था। अतः अवश्य ही कुछ ओढ़ा जाता होगा। कौशेयपञ्चोपनिषद्मन्त्र, लौमयुग्म अथवा बृहस्पत्युग्म शास्त्रों से स्पष्ट ही है कि ओढ़न का कोई पृथक् वस्त्र नहीं था। इन्हीं दो में से एक नीचे और एक ऊपर धारण किया जाता था।

ओढ़ने का ढंग—ओढ़ने में दो ही ढंग हो सकते हैं या तो दोनों छोर सामने लटकते रहते थे या एक सामने और दूसरा कंधे पर होता हुआ पीछे जा सकता है। आश्वत्थम वसा लहंगे के साथ दुपट्टा ओढ़ा जाता है वैसे कोई ढंग उस समय न था क्योंकि पहले ही कहा जा चुका है कि पयोधर लुग्न होकर ही रहते थे। कुमारमन्त्र सग ८ प्लोक २<sup>४</sup> का देखने से ऐसा आभास होता है कि छोर सामने ही लटकते रहते थे महीं तो एक-दो कमी अंशुक पकड़कर जाने से नहीं रोक सकते थे। डाक्टर माटीबन्ध का भी ऐसा ही अनुमान है कि आदमी नाममात्र के ही सिर्फ पड़ी रहती थी। कमी-कमी से सिर भी डक लेती थीं। परन्तु ऐसा आवश्यक नहीं था। प्रायः विवाहान्तर अवसरों पर वे डक लेती होती<sup>५</sup>।—

पुरुषों की वेष भूषा—स्त्रियों की तरह पुरुष भी प्रायः वस्त्र उपयोग करते थे। मकन्तसा के लिए यदि लौमयुग्म<sup>६</sup> शब्द आया है तो अत्र कल्पि बुद्धिसूचक<sup>७</sup>। इसका आशय यह है कि एक निम्न भाग को आवृत करने के लिए और दूसरा ऊपर के भाग को ढकने के लिए उपयोग किया जाता था। ऊपर वाला दुपट्टा या उत्तरीय होता था जो कन्वाचिन् वन्वा मे होता हुआ कर्ग क मीच से निश्चाल दिया जाता जामा अथवा बदन ढकता हुआ बाँध कंधे पर रख लिया जाता होगा। इस उत्तरीय का प्रयोग स्वान अथवा अवसर विहाय पर किया जाता था। विवाह साम्याभिषेक अथवा जनता में जाते समय<sup>८</sup>। साधारण रूप से उनके घरीर का ऊपरी भाग अनावृत ही रहता था कञ्चुकी अथवा सिल हुए चिड़ी

१ मातृ० ५१७

२ कुमार० ५११६

३ अश्वमुत्तवती इत्या—मातृ० अंक १ पृष्ठ ३५६

४ व्याहृता प्रतिषेधा न तदर्थं गम्युर्गच्छद्वयवर्त्मिणीभूताः।

देवने इमं ध्यानं परादमुगो सा तथापि रतये निनाकिन ॥

५ मातृ० ५१७

६ अमि० अंक ४ पृ० ६८

७ रघु ७१२१६

८ रघु ७१८१६ (विवाह)



वस्त्र का कहीं प्रसंग नहीं आया है। पहनने के वस्त्रों में सोम<sup>१</sup> और कुक्ष<sup>२</sup> दो ही नाम मिलते हैं। रज्ज्याभिवेक बादि मांगसिक अवसरों पर सोम<sup>३</sup> और वैसे अधिकतर कुक्ष ही से धारण किया करते थे। श्री डाक्टर मीठीचन्द के अनुसार कुक्ष को से लांगवार बाँटी की तरह पहनने में<sup>४</sup>।

बारबाज<sup>५</sup>—डा० बासुदेव के अनुसार गुप्ति सिक्कों पर समुद्रगुप्त चन्द्रगुप्त बादि जैसा कोट पहने है वही बारबाज ज्ञात होता है। बारबाज कंबुक की अपेक्षा ऊँचा मोटा बिन्दु की तरह का कोट था जिसका ईरान में जलन था। वह भी कंबुक की तरह का ही पहनाया था पर इसमें कम सम्भा बुटनों तक नीचा होता था<sup>६</sup>। डा० मीठीचन्द इन तरह के ऊनी कपड़ों में इसका नाम देते हैं। बारबाज भी ऊनी होते थे<sup>७</sup>। सामा शास्त्री को टोका में इसका वर्ण कोट दिया हुआ है<sup>८</sup>।

उज्ज्वीर—मिर पर पगड़ी बाँधने का भी उस समय प्रचलन था। कालिदास के ग्रन्थों में अस्मबेष्टन<sup>९</sup> गिरमा<sup>१०</sup> बच्छन घोमिना गिरम्य जस्त<sup>११</sup> छव्यों का प्रयोग मिलता है।

‘अस्मबेष्टन’ शब्द से ऐसा ज्ञात होता है कि इस प्रकार की पगड़ी क रेटे गिर के सम्म बाता से मिला-मिला कर बाँधे जाते थे अर्थात् इस प्रकार की पगड़ी बाता के साथ ऐसी छैन-नी जाती थी जि पगड़ी मिर से उतार कर कहीं रखी नहीं जा सकती थी।

गिरमा बच्छनघोमिना भी पगड़ी का ही दूसरा नाम है परन्तु प्रथम प्रकार की पगड़ी से यह विभिन्न है। यह पगड़ी रघु के वस्त्रों पर अत्र से रखी है। अतः यह बाँधे जाने के पश्चात् मिर से हटाई जा सकती थी। पवर्णिनी बँधी

१ रघु १२।८

२ रघु ७।१८ १६ १७।२६, कुमार ३।७८

३ रघु १२।८

बैबाई पहनी जाती थी<sup>१</sup>। स्वयं इस सज्ज से ऐसा आभास होता है कि यह बानों से न उलझ कर मिर के ही चारों ओर घुमा-फिरा कर बांधी जाती होगी।

मुड़ के प्रसंग में 'धिरस्त्रजाल' शब्द का प्रयोग हुआ है अतः यह धिरस्त्र धिरस्त्राज आदि की ही तरह कगता है<sup>२</sup>। यह भी सम्भव हो सकता है कि पगड़ी बाँधने से पहले सिर पर लोहे की निपट्टी टोपी रख कर ऊपर पनड़ी जैसी मटी-मटी बाँधी जाती हो कि जाल की तरह सारी टोपी को ढक दे।

पनड़ी के स्थान पर सोने के पट्टे भी चारण किए जाते थे। इसक लिए बाम्बूनपट्ट<sup>३</sup> शब्द कवि ने प्रयुक्त किया है।

कभी-कभी पगड़ी को सजान के लिए मातियों को लड़ियों का भी प्रयोग किया जाता था ( डा० मोतीचन्द प्राचीन वैद्य-भूषा पृ ७७ )।

जूता—पुरुषों में भी गजबन्ध को पादुका का प्रतीक आया है<sup>४</sup>। इसी प्रकार साम्प्रदायिकविषय में ना पादुका धर कर प्रयास मिलता है<sup>५</sup>। इसने विशेष बात तो निश्चयपूर्वक नहीं बही जा सकती। सम्भव है कि आशक्त की तरह बमड के जूते उस समय न पहन जात हों। बाँध चुभ सूत्र अथवा लकड़ी के बन्धन आदि के जूते ही सब प्रयोग करते हों। इस बात की इस कारण सम्भावना है कि आशक्त भी जहाँ आधुनिक सम्प्रदाय पूरी तरह नहीं घुसी है, विशेषकर बहारी स्थानों में जाल और सूत्र की अपूर्ण काम में लगी जाती है। अतः कहा जा सकता है कि इसी प्रकार की पादुका भी उस समय प्रचलित होगी। बमोर मनुष्य इसी पादुकाओं को बाँधी तीन तथा चार रूप आदि मयियों से ढक लेने लगे।

उत्तरच्छा<sup>६</sup>—इन बस्त्रों के अतिरिक्त शय्या मिहगल आदि पर चारर बिछाई जाने की जो उत्तरच्छा ब्रह्माती थी।

उपधान—शय्या पर उपधान<sup>७</sup> का भी प्रयोग प्रचलित था। डा० मोतीचन्द उपधान को परों से भरी लकड़ियाँ कहते हैं (प्राचीन वैद्य भूषा पृष्ठ ११ मृमिका)।

वस्त्र परिवर्तन—अनुमंथार इस बात को पुष्ट करती है कि अनुमंथार के अनुमंथार मनुष्य वस्त्र परिवर्तित कर देता था। न्ति तथा रान के

१ डा० मोतीचन्द प्राचीन वैद्य-भूषा मृमिका पृ० १३

२ रघु ७।६२ ६६ ३ रघु १।८।४४ ४ रघु० १२।१७

५ बमोर मनुष्य पादुकापरवीयेन द्रवितम्—मान० अंक ६ पृ १४७

६ शिववस्त्रोत्तरच्छा—बुमार० ८।८२ ८।८६ मिमिकाव्यमात्तरच्छा—रघु० १।४ १७।२१ विजय० अंक ६, पृ० २१६

७ बुमार १।१२

वस्त्र का कहीं प्रयोग नहीं आया है। पहनने के वस्त्रों में शोम<sup>१</sup> और दुग्दु<sup>२</sup> से ही नाम मिलता है। रात्र्याभिवृत्त आदि गान्धर्व अवसरों पर शोम<sup>३</sup> और ऐसे अधिकतर दुग्दु ही से चारण किया करते थे। श्री डाक्टर मीतोचन्त्र के अनुसार दुग्दु को वे लंगवाग बाँटी की तरह पहनते थे<sup>४</sup>।

चारबाज<sup>५</sup>—डा० बामुदेव के अनुसार गुप्त सिक्कों पर समुद्रयुत्त चन्द्रयुत्त आदि जैसा कोट पहने हैं वही चारबाज जस्त होता है। चारबाज कंबुक की जेबेवा जैसा मोटा चिल्लटे की तरह का कोट था जिसका ईरान में चलन था। बड़ भी कंबुक की तरह का ही पहनावा था पर इनसे कम लम्बा घुटनों तक नीचा होता था<sup>६</sup>। डा० मीतीचन्त्र उस तरह के ऊनी कपड़ों में इसका नाम देने हैं। चारबाज भी ऊनी होने से<sup>७</sup>। साया चास्त्रो की टोका में इसका जप कोट दिया हुआ है<sup>८</sup>।

दण्डी—निर पर पगड़ी बाँधने का भी उस समय प्रचलन था। कालिदास के ग्रन्थों में अलङ्कार्य<sup>९</sup> सिरमा<sup>१०</sup> वेष्टन साधिना गिरस्त वस्त्र<sup>११</sup> पद्मों का प्रयोग मिलता है।

अलङ्कार्य साध से ऐसा नामात्म होता है कि इस प्रकार की पगड़ी के फटे सिर के लम्ब बालों से मिला-मिला कर बाँधे जाते थे अर्थात् इस प्रकार की पगड़ी बालों के साथ ऐसी फँस-नी जाती थी कि पगड़ी निर से उठार कर नहीं रानी नहीं जा सकती थी।

सिरमा वेष्टनसाधिना भी पगड़ी का ही समान नाम है परन्तु प्रथम प्रकार की पगड़ी से यह विभिन्न है। यह पगड़ी रज्जु के बरतों पर अन्न से रती है। अतः यह बाँधे जाने के पश्चात् निर से हटाई जा सकती थी। पगड़ियाँ बाँधी

१ गमु० १२१८

२ रज्जु ७१८ १२ १७२५, नमार्० ३१७८

३ रज्जु १२१८

बैपाई पहुनी जाती थी<sup>१</sup>। स्वयं इस शब्द से ऐसा आभास होता है कि यह बाणों से न उलझ कर फिर के ही चारों ओर घुमा-फिरा कर बँधी जाती होगी।

युद्ध के प्रसंग में शिरस्त्रबाण शब्द का प्रयोग हुआ है अतः यह शिरस्त्र शिरस्त्रबाण आदि की ही तरह लगता है<sup>२</sup>। यह भी सम्भव हो सकता है कि पगड़ी बाँधने से पहले शिर पर लोहे की चिपकी टोपी रख कर ऊपर पगड़ी लेनी मटी-मटी बाँधी जाती हो कि जाण की तरह सारी टोपी को ढक दे।

पगड़ी के स्थान पर सोने के पट्टे भी धारण किए जाते थे। इसके लिए बाल्मूनवपट्ट<sup>३</sup> शब्द कवि ने प्रयुक्त किया है।

कमी-नदी पगड़ी को सजान के लिए मोतियों की लकड़ियों का भी प्रयोग किया जाता था (डा० मोतीचन्द प्राचीन बेध-भूषा पृ० ७७)।

जूता—अधुना में भी रामचन्द्र की पात्रुका का प्रसंग आया है<sup>४</sup>। इसी प्रकार मात्स्यिकाग्निमित्र में भी पात्रुका शब्द का प्रयोग मिलता है<sup>५</sup>। इसने विशेष बात तो निश्चयपूर्वक नहीं बूझी जा सकती। सम्भव है कि आजकल की तरह बनने के जूते उस समय न पहने जाते हों। बाँध लूण मूत्र जबका लकड़ी कम्बल आदि के जूते ही सब प्रयोग करते हों। इस बात की इस कारण सम्भावना है कि आजकल भी जहाँ आधुनिक सम्प्रदाय पूरी तरह नहीं मुक्त हैं, विशेषकर बहादी स्थानों में जान और मूत्र की जपलें काम में लाई जाती हैं। अतः कहा जा सकता है कि इसी प्रकार की पात्रुका ही उस समय प्रचलित होगी। अमीर मनुष्य इन्हीं पात्रुकाओं को चाँदी लौ तथा बैलूय आदि मणियों से ढक सेत हाथ।

उत्तरच्छद<sup>६</sup>—इन केशों के अतिरिक्त शय्या सिंहासन आदि पर चारों बिछाई जाती थी जो उत्तरच्छद कहलाती थी।

उपधान—शय्या पर उपधान<sup>७</sup> का भी प्रयोग प्रचलित था। डा० मोतीचन्द उपधान को पतों से बनी लकड़ियाँ कहते हैं (प्राचीन बेध भूषा पृष्ठ १६ भूमिका)।

वस्त्र परिवर्तन—अनुमंथार इस बात को पुष्ट स्पष्ट करता है कि अनुबा के अनुमार मनुष्य वस्त्र परिवर्तित कर देता था। दिन तथा रात के

१ डा० मोतीचन्द प्राचीन बैध-भूषा भूमिका पृ० १३

२ रघु ७।६२ ६६ १ रघु १८।४४ ४ रघु १२।१७

३ चरन पल मया पात्रुकोपवीर्य इवितम्—मान० अंक ५ पृ० १४७

४ अथर्वभोत्तरच्छद—कुमार० ८।८२ ८।८६ मित्राविपभोत्तरच्छद—रघु० १।४ १७।२१ चित्रम० अंक ५, पृ० २३६

७ कुमार ५।१५

वस्त्र पुष्य-पुष्य रत्न बाते थे<sup>१</sup>। स्नान करने के समय वस्त्र परिवर्तन कर लिया जाता था। यह स्नानीयक कहलाता था<sup>२</sup>। इसी प्रकार बिबाहु, रात्र्याभिवेक आदि अवसरों पर वेष्ट-भूषा नितांत दूसरी हो जाती थी<sup>३</sup>। वत उत्सवादि के अवसरपर भी वेष्ट परिवर्तित कर लिया जाता था<sup>४</sup>।

कपड़े सुगन्ध करने की प्रथा—वस्त्रों को कासा अगर आदि के धूप से सुगन्धित भी कर लिया जाता था। इस बात का उल्लेख ऋतुसंहार और रघुवंश दोनों में है<sup>५</sup>।

### वेष्ट-भूषा के प्रकार

कश्मिर के ग्रन्थों में माना प्रकार की वेष्ट-भूषाओं का परिचय मिलता है। मनुष्यों की वस्त्र वस्त्र और वेष्ट-भूषा की ओर विशेष परिपक्व थी। अवसर परिस्थिति और ऋतु के अनुसार वे पुष्य-पुष्य वेष्ट-भूषा धारण किया करते थे। प्रीत्य की वेष्ट-भूषा और शीतकालीन वेष्ट-भूषा में अन्तर था जो वैवाहिक वेष्ट भूषा भी वह वही अवस्था विरही की नहीं थी। धार्मिकता की ओर धिकारी की कुछ और ही अस्तित्व स्थिति हुई थी परन्तु इन सब वेष्ट-भूषाओं की रचना भर ही है। वेष्ट सब अनुमान ही करना पड़ता है।

धिकारी की वेष्ट-भूषा—संस्कृत और रघुवंश की ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है। बुध्यन्त अपने परिवर्तनों से कहता है कि अपनवन्तु मयमाधपम्<sup>६</sup>। इससे इतना ही अवश्य ही कहा जा सकता है कि धिकार करते समय विशेष प्रकार की ही वेष्ट-भूषा होगी। इससे अधिक स्पष्ट प्रतीति रघुवंश में है। धीरघ रवभी आच्छेद करने के समय अहेरी का वेष्ट धारण किए हुए थे। उनके ऊँचे कन्धे पर अनुप टंगा था उनके चेष्टा में वनमासा मुँची हुई थी और वे वृत्तों के पत्तों के समान गहरे गहरे रंग का कवच पहने हुए थे<sup>७</sup>। इससे यह निष्पन्न अवश्य निकालना या समझना है कि धिकार करते समय गहरे रंग के वस्त्र पहने जाते थे इन कारण कि पानधर गहरे-गहरे पत्तों के बीच उनको पक्ष्मात् न सके इसी कारण फिर से बंदगी फूलों की माला भी मुँची रहती होगी जिससे वह पून कवच-वपी गहरे-गहरे पत्तों के बीच बिलत हुए लगे।

डाकुओं की वेष्ट-भूषा—मातृविशालिनित्र<sup>८</sup> में डाकुमारी मातृविशाल और परिवात्रिषा को डाक घर सेती है। इन २१ की वेष्ट-भूषा स्वयं परिवा-

बिका इस प्रकार बगानी है—सहसा कन्नों पर लुणी<sup>१</sup> कसे बीठ पर कम्बे-कम्बे पंख बांधे हुए और हाथ में बनुप-बाण लिए हुए बाफू हम पर दूट पड़े। अतः कहा जा सकता है कि ये साग हाथ में बनुप-बाण लिए रहते होंगे। कन्नों पर लुणी<sup>१</sup> बांधा रहता होगा और पीठ पर कम्बे-कम्बे पंख किसी बिड़िया या मोर घुनुमुप बादि के बारब करते होंगे।

मसुए की वस्त्र-भूषा—अभिज्ञानसाधुस्तकम् के अंक ६ में मसुए का प्रसंग आया है जिसे राजा की गिरे अंगूठी प्राप्त होती है। बेसबिन्द्यास में कोई बात नहीं भिन्नती पर उनके पाप से कन्बे पाप की दुपन्ना आ रही थी ऐसा कहा गया है<sup>२</sup>।

यवनी घेस—यह पहले ही कहा जा चुका है कि स्त्रियाँ कम-से-कम दो अधिक-से-अधिक लोन वस्त्र पहनती थीं। यवनी का भी यही बेस होगा। अन्य स्त्रियों से यवनी का बस मोटा पृथक् रहता था। गिरकार के समय वे गले में बंदनी फूलों की माळा तथा हाथ में सदा बनुप रखती थीं<sup>३</sup>। यवनी राजा की सेविकाएँ होती थीं।

द्वारपाल का बेस-भूषा—कवि के समस्त कथा में द्वारपाल का प्रसंग है परन्तु उसने फिर भी कभी बेस का स्पष्ट आशय नहीं दिया। इसको बस-भूषा में कोई विशिष्टता न रही होगी हाँ हाथ में बेस की छड़ी का अक्षरय सब स्थानों में बचन है<sup>४</sup>।

अभिसारिका—अन्य स्त्रियों से इनका बेस-विश्यास पृथक् रहता था। इनका काम ही आकर्षित करना तथा रिक्तता या अतः कन्नों और आभूषणों की लड़क-बड़क इनकी विशेषता थी। परिस्थिति के अनुसार उनका बेस भी परिवर्तित रहता था। उत्तरमेघ में उनका वस्त्र बाली में यन्त्रार के पुण्य कानों में स्वयं कमल और गले में मोतियाँ थीं माळा इस प्रकार किया है<sup>५</sup>। इसमें यह स्पष्ट होता है कि वे बेस में फूल तथा कान गले बादि में मुन्दर-मुन्दर आभूषण धारण किया करती थीं। वे कभी-कभी चमचते मुन्दर मुपूर धैरों में पटना करती थीं<sup>६</sup> परन्तु इसमें यह न समझना चाहिए कि आभूषण व बहुत अधिक धारण करती थीं क्योंकि विज्ञानोपनी में 'अभ्याभूषणवृत्ति भीलापाकपरिग्रह अभिभारिषावे' <sup>७</sup> आया है।

१ अमि अंक ६ पृष्ठ १८

२ अमि अंक २ पृष्ठ २७

३ अमि० अंक ५, १

४ उत्तरमेघ ११

५ अमि० १५।१२

तपस्वियों की वेष्ट-भूषा—वर्णमय वस्त्रनिष्ठार सभी अनुपम गृहस्थायस्य के मुँहों की मोड़ने के पश्चात् जीवन के अन्तिम दिनों में विरक्त हो संन्यास धारण कर लेते थे। तपस्वी श्रुति भूमि सभी वस्त्र<sup>१</sup> धारण किया करते थे। कुमार धम्मस में पार्वती जब भी पंकरजी की प्राप्ति करने के लिए तपस्विनी बन-बन में गईं तब उन्होंने प्रातःकालीन सूर्य के समान काँच-काँच वस्त्रक कपेट किया था<sup>२</sup>। इसी प्रकार सैताजी ने भी राम हाथ परिचयक किए जाने पर वस्त्रक धारण कर लिया था<sup>३</sup>। स्वयं भी राम ने राज्याभिषेक के वस्त्र त्याग कर वस्त्रक वस्त्र धनदास जाने के लिए पहन लिए थे<sup>४</sup>। भी भरत ने भी राज्य को स्वीकार न कर कीर-वस्त्र धारण कर लिए थे<sup>५</sup>। रघुवंशी सभी राजा अन्त में वस्त्रक पहनते थे<sup>६</sup>।

तपस्वियों की वेष्ट-भूषा का बहुत स्पष्ट आभास अविज्ञानपाण्डुस्तम्भ न मिलता है। दुष्प्रसन्न आत्मन के निकट बिना किसी के बताए अनुमान कर लेते हैं कि यह उपोसन है। नदी-तालाबों पर वे नहाते हुये वस्त्रक वस्त्रों को धोते भी हमें क्योंकि उनकी टपकी हुई बूँदें मार्ग भर में गिरती हैं<sup>७</sup>। स्वयं अनुष्ठान भी वस्त्रक ही धारण करती है, इसका आभास दो स्थलों पर मिलता है प्रथम जब पाण्डुस्तका अपनी सखी अनसुमा से कहती है, 'सखि अनसुमे ! अति निन्दन वस्त्रकेन प्रियवदया नियंत्रास्मि । शिबिल्य तावदेतत्'।<sup>८</sup> स्वयं दुष्प्रसन्न तक कहता है—'काममनुष्ममस्या वपुषी वस्त्रकम् .....'<sup>९</sup> इसके पश्चात् भी दुष्प्रसन्न जब पाण्डुस्तका का बिध बनता है तब एक ऐसा भी वृक्ष बनाया है जिस पर वस्त्रक टँगे हुए थे<sup>१०</sup>। अतः तपस्वि-कन्याएँ तथा तपस्वी दोनों ही वस्त्रक वस्त्र धारण करते थे।

वस्त्रक के अतिरिक्त बटाएँ धारण करना कमर में धूँज की बनी त्रिगुणा मोड़ी को धारण करना हाथ में कटा-कमाला सेना जमड़ी विरेपता थी<sup>११</sup>। तपस्या करते समय न केवल पावती की ही ऐसी जगहों की अतिशु शिबरी भी पग बाँध मृगछाया कमर में बाँध बाँध कर पग भर बाधभर भर बैठ कर तपस्या कर रहे थे। उनके हाथों में कटाव की माता टँदी हुई थी<sup>१२</sup>। अतः वस्त्रक के

अतिरिक्त वे मूयचम आदि की भी कमर पर धारण कर सकते थे। इंगुली के तेल को वे सिर में डाला करते थे (अभि० अंक २ पृष्ठ १४)।

अग्नि आयात्रपारी होना उनके लिए आवश्यक था<sup>१</sup>। तपस्वी के समान ही ऋषि मुनि भी घरीर पर बन्धन हाथों में माळा और कन्धे पर यशोपवीत धारण किया करते थे<sup>२</sup>।

इनकी कन्धायें सीने-बाँरी के जामरों के स्थान पर पुष्पों के आभूषण पहनती थी। इनके आभूषण अविचलित कमन्दास के ही होते थे<sup>३</sup>। निरुध के फूल कानों में और कमन्दास की माया बले में पहनना<sup>४</sup> इसकी सूचना देता है कि ये सब सामारण स्थियों की तरह आभूषणप्रिय थीं। इसी प्रकार हाथों में कमन्दास का बन्ध धारण कर लिया करती थीं<sup>५</sup>।

वैरागी अपने बस्त्रों के स्थान पर कापाय बस्त्र धारण करते थे<sup>६</sup>।

राजा की वंश भूषा—अन्ध पुष्पों की तरह वे बुरसू अथवा धोम धारण<sup>७</sup> किया करते थे। उनके सिर पर राजमुकुट<sup>८</sup> धोमायमान रहता था। छत्र<sup>९</sup> और बैर<sup>१०</sup> इनके विशेष चिह्न थे। इनके घरों को रखने के लिए एक चौकी<sup>११</sup> रखी थी जो भद्रपीठ या हेमपीठ कहलाती थी। इसके अतिरिक्त राजरथ<sup>१२</sup> भी इनका चिह्न था। यदि राजा बरबार में सिंहासन पर न बैठ कहीं बाहर भी जा रहा हो या उत्सवित हा तब भी उनके साथ छत्र बैर, मुकुट अवश्य रहेगा। इनके अतिरिक्त उनके नमी आभूषण रत्नजटित सीने और मुक्ता के होंगे।

किरात की वंश-भूषा—कुमारगम्भज में वह भी केवल एक स्थान पर

१ कुमार० ४१३० २ कुमार० ११६ विजय० ३११६

३ अभि० ३१२४-विजयमरण ३१२९ ४ अभि० १११८

५ अभि ११७

६ इसे बागाये गृहीते। —माय०, अंक १ पृष्ठ १२०

७ रघु० १२१८ १७१२५, ७११८ १९

८ रघु० ४१८५ १११९ १३ १८१३८ ४१ १११३ २० १३१५९ १०१७५  
कमार० २१७९ विजय० ४१६७

९ रघु० २११३ १११९ ४१५ ८२, १४१११ १७१३३ १८१७७  
विजय० ४११३

१० रघु० १४१११, १७१२७ तानु० ३१४ विजय० ४११३ रघु०, १३१११

११ रघु०, ४१८४, १११३, १७१२८, १८१४१

१२ अभि०, ५१८



किरातों के विषय में कहा गया है कि वह कमर में मोर के पंख धारण करते थे<sup>१</sup> ।

द्रिष के राज्यों की वेश-भूषा—वीर शंकर भगवान् के चिह्न और अनुयायी छिर पर भयेद के फूलों की माला पहनते थे । छीर पर मोरपत्र धारण कर वैमस्तिक से छीर रखते थे<sup>२</sup> ।

वैवाहिक वेश-भूषा—कवि शृंगार-द्रिष है, इसमें कोई शंका नहीं । वैवाहिक-वेश-भूषा का घसने विस्तारपूर्वक वर्णन दिया है । कदाचित् विवाह का वेश श्रेष्ठ होता था क्योंकि वैवाहिक कर्म बहुततर वास्ती काल के फूलों से युक्त पुष्पी की तरह जोलापमान हुई थी<sup>३</sup> । रोपनी वस्त्र<sup>४</sup> अथवा हस्तचिह्न युक्त<sup>५</sup> विवाह का मुख्य वस्त्र था । इसकी अनुपस्थिति में जोड़ेकगर्भ<sup>६</sup> भी प्रयोग किया जा सकता था । इस समय जोड़ी अथवा जोड़ी वाली भी क्योंकि वस्त्र के नाम के साथ युग्म शब्द आया है<sup>७</sup> । अथयुग्म का भी प्रचार होगा । मातृशिका को अथयुग्मवती करके ही पारिषी के अन्तिमिष को रोंगा था<sup>८</sup> । वैवाहिक सजावट भी विशेष प्रकार की थी । हाथ में बिशाह कीचु अथवा ऊन का कंतन<sup>९</sup> मुक्त पर अन्तरादि में पत्र रचना केस में बहुत की माला बंधना अंजन अंगराग आकृता लाटारम माथे पर बिशाह का हस्तचिह्न और वैमस्तिक से बना तिलक सब वस्तु को शोभा को द्विगुणित कर देते थे<sup>१०</sup> । इन सब के अतिरिक्त पाप्य आभूषण इस समय कन्या धारण करती थी<sup>११</sup> । विवाह को वेश भूषा और शृंगार सब संविशेष ही था<sup>१२</sup> । नववधू लाल रंग का अंगक धारण करती थी (रक्षाचक्र—श्रुतु १।२१) ।

कन्या के लगन कर भी वैवाहिक शृंगार विवाह करता था । छीर पर

१ कुमार १।१५

२ कुमार ७।११

३ कुमार २।१७

४ कुमार १।५५

५ कुमार ७।२१

६ ७ मातृ अंक ५, पृ० ३५६

अथयुग्म—मातृ अंक ५, पृ० ३५६

अंगण मार कर<sup>१</sup> सुन्दर-सुन्दर आभूषण पहनकर<sup>२</sup> उसकी सुन्दरता  
नित उलझी थी। हंस आदि विगमें गोरोचन से बने हों ऐसा सुकूट इस-  
पहना जाता था<sup>३</sup>। पांजे पर हस्तक का सुन्दर लिङ्ग<sup>४</sup> और तिर पर  
उसको मानो यथाय में राजा बना देते थे। आभूषण और उसके आभूषण से  
हृत् जैव<sup>५</sup> उसके सेवोपबन्ध को प्रदीप्त कर देते थे। किसी विद्याल-  
पर<sup>६</sup> आभीन हो अंगभूषण के साथ घर व्यापक के द्वार पर विवाह  
नियं आया करता था।

विरहिणी और विरही की वेदामूपा—अपमानक काय होने  
कारण विरहिणी और विरही का चरित्र बहुत अचिह्न है। विरही विरह में समस्त  
भूमा छोड़ देती थी। मन्त्रि वस्त्र धारण<sup>७</sup> कर अतीत की याद में ही अपना  
समय व्यतीत किया करती थी<sup>८</sup>। उनके हाथ कम और लटकते रहते थे।  
वे एक बेनी ही मार करती थीं। पति ही विरहावस्था की समाप्ति पर उनके  
हाथ मुसमाता था। लल बहते रहते थे। जैसे पावनरहित तथा होंठों का  
रंजना छू जाता था। आभूषण को वे नहीं पहनती थीं। अधिकतर वे प्रस-  
पूना अथवा उपविष्ट करती रहती थीं। मल की पत्नी मालविका शकुन्तला सबकी  
ही रंजना इसी प्रकार कवि ने कीनी है।<sup>९</sup>

पुरा भी इसी प्रकार प्रिया का चित्र बनते रहते और बार करते थे।  
उनका शरीर कम ही जाता था। आभूषण उन स्थानों पर से बार-बार नीचे  
आ उतरते थे। वे स्वर्ण आभूषण पहनना छोड़ देते थे। राजकाज मन्त्री पर

१ कुमार० ७३३२

२ कुमार० ७३३४

३ कुमार ७३३२

४ कुमार०, ७३३३

५ कुमार० ७३३३

६ कुमार० ७३४२

७ कुमार० ७३३७

८ कुमार० ७३४०

९ वनने परिभूषणाना नियमसामयुगी कृतकवेदि ।

मन्त्रिनिष्कण्ठस्य मुद्रासीता मम दीप विरहजन्य विरहि ॥ —अभि० ७३२९

—मन्त्रिनिष्कण्ठस्य —मान० अंक १ पृ० २२६

—मन्त्रिनिष्कण्ठस्य —वत्सरमेव २६

१० वत्सरमेव २३-२७ ३० ३१ ३३ ३४ ३७ ३९

११ वनने परिभूषणाना नियमसामयुगी कृतकवेदि ।

मन्त्रिनिष्कण्ठस्य मुद्रासीता मम दीप विरहजन्य

छोड़ ने प्रिया की याद में ही बिबस व्यतीत करते थे<sup>१</sup>। पुकरवा तो सबागी के निरह में प्रमत्त का-या आचरण करने लगा था<sup>२</sup>।

**प्रती की वेष्ट-भूषा**—पावतो ने व्रत के समय आभूषण तथा रघमी वस्त्र का परिष्कार कर लिया था। नेत्रों में अंजन और हूँठा में कासारस मन्नामा छोड़ दिया था<sup>३</sup>। साधारण रीति से यदि गृहस्थों की स्विर्वा व्रत करती थी तो वे प्लेस रेघमी वस्त्र धारण करती थीं। शरीर पर मांगसिक आभूषण और नेत्र में कूबर्दिक घोभासमान रखा था<sup>४</sup>।

**यज्ञ के समय का वेश**—भृगुछाया कमर में पहनना तथा मेखला धारण करना आवश्यक था। यज्ञ के समय हाथ में वण्ड और मुद्रायुग से सिखा जाता था<sup>५</sup>।

**छात्र-वेश**—पवित्र वस्त्र के धम की पहन कर पिता से रघु न शिखा पहन की थी।<sup>६</sup> व्रत निष्कस यह निष्कसता था कि लेख्य भोग और विमान को स्थान कर सावगी अपनाता ही छात्रों का उद्देश्य था।

**स्तानीय वेश**—ज्ञान करते समय एक पृथक् ही वस्त्र धारण किया जाता था जिसे स्तानीय-वस्त्र कहते हैं। स्नान करने के पृथ ठस उद्यम आदि लगाया जाता था इसी कारण यह वस्त्र-विशेष धारण करना आवश्यक था<sup>७</sup>।

**राम्याभिषेक की वेष्ट-भूषा**—राम्याभिषेक के समय सीधों आदि के धम से स्नान करवाने के पदचान् कैश को पूल और मोतियों से गजाया जाता था। कस्तूरी की मुद्रम से सुकट अंबराग से मुख पर चिबकारी की जाती थी। शिर पर पद्यराज मणि आभूषण जाता आदि राजा धारण करता था और विवाह की तरह इस समय हंसचिह्न कुम्भ ओढ़ा होता था। छत्र चँबर धुनु पारसीठ उसकी राम्यसत्ता की प्रमाणित और राम्याभिषेक को पूर्ण कर होते थे<sup>८</sup>।

**प्रीप्पकाल का वेश**—प्रीप्पकाल में मोटे-भीने वस्त्र उतार कर तीने पतले वस्त्र धारण करना ही मनुष्यों की प्रिय था<sup>९</sup>। मित्रों रेघमी वस्त्र पहन स्नानी

पर बन्धन लगा जानाप्रकार के आमुपपन कारण कर सिर से केसों कर पतियों को मुख बैठी थी<sup>१</sup>। इस ऋतु में ऐसे पतके वस्त्र पहने से हवा में उड़ जायें<sup>२</sup>। रत्नबड़ी ओकनी प्रचार में थी<sup>३</sup>। मनुष्य इससे ऐसी ही प्रतीति होती है। अपने सामर्थ्यानुसार सब विनाश रहा करते थे।

**वर्षाकालीन वस्त्र**—स्त्रियाँ महीन श्वेत वस्त्र धारण कर, माता पहन केस को केसर केसकी क्यम्ब आदि से इस ऋतु में थी<sup>४</sup>। रचना स्वर्णवर्णित कुण्डल आदि आमुपपन पहन कर<sup>५</sup> बाले बन्धन का अवलोकन कर<sup>६</sup> मरिचा पीकर<sup>७</sup> घबनागार में पति के करती थीं।

**क्षरदृक्कालीन वस्त्र**—इस ऋतु में स्त्रियाँ अपनी पनी बुँधराती छटों में माछती के फूल बुँध कर, कानों में नीलमाला पहन बन्धन से मर्मवृत कर मोठिया के द्वार रचना से घोषित होकर पतियों को रिमाती है।

**हेमन्त वस्त्र**—घोर शीत के आबमन के कारण द्वार बन्धन कंगन आमुपपनों का पहनना इस ऋतु में छूटा है। नए रचमी वस्त्र और चोली भी अब वे नहीं पहनतीं। मुल को वे पत्र-रचना और केस को बाले से घोषित करती थीं<sup>८</sup>।

**शिशिरकालीन वस्त्र**—इसमें सीकीन-से-सीकीन भी मोटे-मोटे वस्त्र<sup>९</sup> कूर्पाक<sup>१०</sup> पहनती थीं। निचमों पर रचमी वस्त्र बाक<sup>११</sup> मरिचपान कर<sup>१२</sup> स्त्रियों पर गर्मों के लिए केसर का अवलोकन करती हैं<sup>१३</sup>। बन्धन का प्रयोग छूट जाता है<sup>१४</sup>।

**वसन्त समय का वस्त्र**—गुन पुष्पमाला और बन्धन का प्रयोग प्रारम्भ हो

१. मातु० ११४ ६ १२
२. रपु० १६१४३
३. मातु० २१२०
४. मातु० २११८
५. मातु० ३११ ६ ११ २०
६. मातु० २१२
७. मातु० २१८
८. मातु०, २११

९. रपु०, १६१४३
१०. मातु० २११८ २६ २१
११. मातु० २१२२

१२. मातु ३१२ ३ रपु० १६१४३
१३. मातु० २१८
१४. मातु०, २११

बाला है<sup>१</sup>। छात्र कुम्भ<sup>२</sup> कुम्भ के गग में रैवी चोली<sup>३</sup> कल और कैसी में कनिकार और वसोक के पुत्र<sup>४</sup> कनिकार रचना भारि<sup>५</sup> है उनका घटेर पुन सुन्दर हो उठता है। मुख पर पद्म-रचना बल-स्थल पर प्रियु कामीयक कस्तूरी और कैसर का वसोप लगायी है। कालामुद्र से मुग्धचित और महाभर से रंजि महीन बल बारन<sup>६</sup> करने से उनका सौन्दर्य बिक उठता है।

### आभूषण

मानाप्रकार के वस्त्रों की तरह स्त्री-मुख्य तरह-तरह के आभूषण पहनने के मौकीन थे। वे मानाप्रकार के आभरण<sup>७</sup> भूषण<sup>८</sup> तथा वस्त्र<sup>९</sup> से अपना शरीर अलंकृत किया करते थे। रघुवंश कुमारमन्त्र मेघनूत शत्रुसंगर ममिजाल माकुन्तम् विजयोपसीय मानविकानिमित्त प्रत्येक ग्रन्थ में अनदिनत प्रकार के आभरण तथा आभूषण आए हैं।

प्रकार—आभूषणों को पुष्प-पुष्पक न केसर यदि बर्ष म विमल कर दिया जाय तो क्या जा सकता है कि उन समय रत्नजटित आभूषण<sup>१०</sup> स्वर्णभूषण<sup>११</sup> मुक्ता के आभूषण<sup>१२</sup> तथा पुष्पाभरण<sup>१३</sup> धारण किए जाने थे।

मजियों—रत्न-जटित आभूषणों में भी कवि ने पुष्पक-यवन रत्नों के नाम

१ शत्रु० ११७

२ शत्रु० ११५

३ शत्रु ११५

४ शत्रु० ११६

५ शत्रु० ११७

६ शत्रु० ११४ १५

७ मान० ५१७ शत्रु २१२ उत्तरमेघ १४ ३५ कुमार० ११२१ ७१२  
रघु० १४१४ रघु० १४१४ ८६ विजय अंक ३ पु १९८

८ भूषण—रघु० १८१४, १९४५, उत्तरमेघ १२ शत्रु० ११२

९ वस्त्र—कुमार० ११४ ७१५ उत्तरमेघ १७ अमि० ११५

१० शत्रु० २१२ मजिबुद्धन—२१२० मजिबुद्धन—शत्रु ११२०

रिया है। वैद्य<sup>१</sup> मणि<sup>२</sup> इन्द्रनील<sup>३</sup> महानील<sup>४</sup> पद्मराम<sup>५</sup> मृगा<sup>६</sup> भरक<sup>७</sup> चन्द्रकान्त<sup>८</sup> सूर्यकान्त<sup>९</sup> मित्र मणि<sup>१०</sup> अर्जुन हीरा प्रत्येक मणि उस समय भी और इसे प्रयुक्त करने की रीति सबको मसी प्रकार ज्ञात थी। हमारे धर्मों में ब्राह्मण ब्रिजवे प्रकार की भी मणियाँ देखी जाती हैं उस समय भी सब थी। यहाँ तक कि नीलम के दो भेद, एक हल्के नीले रंग का और दूसरा गहरे नीले रंग का भी कवि ने इन्द्रनील और महानील में लिखा दिया है। सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त के आभूषण नहीं हैं परन्तु हम्यों शास्त्र भाषि में उनका उल्लेख कवि ने किया है।

स्त्री और पुरुष के आभूषणों में अन्तर—स्त्री और पुरुष समयम एक-से ही आभूषण पहनते थे। मंगल वस्त्र हार बंगूटी कुण्डल डोना क ही आभूषण है। पुरुष वस्त्र केवल बाएँ हाथ में पहनते थे। वे पके म माता भी पहनते थे। कर्मर के आभूषण रखना मेखला काँची और पैरों के नूपुर स्त्रियाँ ही धारण किया करती थीं। इसी प्रकार पुष्पाँ से स्त्रियाँ ही अपना घट्टर अलङ्कृत करती थीं पुरुष नहीं। पुरुषों का भी एक अलङ्कार बिन्दुष का लिखा मणि किरिट का मुकुट। सामान्य रूप से सभी पुरुष नहीं अकिन्तु केवल राजा ही इनको धारण किया करता था।

### सिर के आभूषण

निनामणि किरिट मणि जाम्बूनपट्ट आदि सिर के भूषण हैं परन्तु यह अवसाधारण के धारण को जन्तु नहीं। केवल राजा ही इन सबको धारण किया करते थे।

बूझामणि<sup>१०</sup>—नाधारण रूप से इसको मुकुट का ही वर्गीकृत मानते हैं परन्तु यह स्वयं मन्त्रित करता है कि नाधारण मुकुट से यह भिन्न रहा होगा। मुकुट में मणि ही या न हो परन्तु बूझामणि में बीच में एक बहुत बड़ी मणि का होता बहुत आवश्यक है। यह अन्य स्थलों से अधिक एक स्थल पर स्थित कवि ने

१. बमार० ७३१० उत्तरमेघ १५ मातु०, २१४

२. पृथ्वी ५० उत्तरमेघ १७ रघु० १३१४ १३१५

३. रघु० १८३२

४. रघु० १७२३ १८३२

५. बमार ११४४ पृथ्वी ३४ ६. पृथ्वी ३४ उत्तरमेघ १९

७. उत्तरमेघ ९ बमार० ८१६७ मातु० ३१२१

८. बमार ८१७५ मणि० २३७ ९. उत्तरमेघ १, रघु० १८३२

१०. रघु० १७२८ बमार० ९१८१ ७३१२

स्पष्ट किया है। संकरजी ने जब वैवाहिक-वेश धारण किया तब उनके मस्तक के बीच चमकता चन्द्रमा जगता चूड़ामणि बन गया<sup>१</sup>।

सिखामणि<sup>२</sup>—जिस प्रकार राजा चूड़ामणि धारण किया करते थे वही प्रकार सामन्त सिखामणि। सिखामणि किसी प्रकार का मुकुट नहीं प्रशस्त पनड़ी में लवने की कर्मेनी है, इसके बीच में मणि रहता होगा इसी कारण इसका नाम सिखामणि पड़ा।

किरीट<sup>३</sup>—चूड़ामणि तो छोट-छोटे राजा धारण करते हैं परन्तु बड़े सम्राट् किरीट। चूड़ामणि का जहाँ कहीं प्रसंग है विशेष जगमें कोई प्रभावशाली नहीं पर किरीट राजा ने धारण किया है या इन्द्रपती के स्वयंवर के राजा ने। अथ चूड़ामणि से किरीट का स्थान ऊँचा है।

मुकुट<sup>४</sup>—मुकुट किरीट से मुख्य में नीचे आता है। रत्न तो इनमें भी जड़े रह सकते हैं परन्तु चूड़ामणि की तरह बीच में एक बड़ा रत्न नहीं था वही इसमें और चूड़ामणि में मुख्य अन्तर है। मुकुट में ताम्र भाग चासुर आदि लगी हुन्ती। बाजकल के मुकुटों में भी ऐसी ही लपरेला देखी जाती है परन्तु इसकी तुलना में चूड़ामणि चारही से परिपूर्ण छोटा पर सुन्दर होगा।

मौलि<sup>५</sup>—इसका स्थान भी किरीट से नीचे लगता है क्योंकि रघु न जिस राजाओं की पराजित किया है उनके सिर के आभूषण का नाम मौलि आया है तत्पश्चात् राजा मुरगन के मुकुट और उनके धनुषों के मुकुट का वर्णनवाची है, तीसरी बार राम जब बनवास को गए हैं अर्थात् राजा होने के पूर्व तब उन्होंने मौलिमणि को छोड़ कर पटावट बाँधा है। देवता सिखरी की नमस्कार करते हैं इनके विराभूषण का नाम मौलि है। अतः सबसे उत्कृष्ट किरीट चूड़ामणि मुकुट तब मौलि आया। सिखामणि तो सामन्त ही धारण करते हैं। मौलि सबसे नीचा है पर मुकुट से ऊँचा<sup>६</sup>। इसे राजा बनने से पूर्व भी धारण किया था मन्ता था।

आम्पूनपट्ट<sup>७</sup>—वराहमिहिर के अनुसार पट्ट सोने के हीले थे और पाँच

प्रकार के बनाए जाते थे—राजपट्ट, महिषीपट्ट, युवराज-पट्ट, प्रकार पट्ट (जो राजा की विशेष कृपा का प्रतीक था)। संख्या में पाँच और तीन में तीन दिखाएँ, चार में एक लिखा होती थी। प्रचार पट्ट में कत्तनी नहीं लगाई जाती थी ... (बृहत्संहिता ४८।१४) <sup>१</sup>। अतः यह का सारे का पट्ट है जिसको पगड़ी के ऊपर बाँध लिया जाता होगा। राज-भिन्न है। मुकुट विरहित नाभि बाकार में बड़े होते होते जो बड़े हो जा सकते होते। बाऊक के निर पर नौच कोई मुकुट छादि नहीं का इसलिए यदि बाऊक ही राजा बने तो मुकुट के स्वाय पर उसकी सोने ही बाँध दिया जाता होगा। इतने बड़े राजा हैं ऐसा भी व्यक्त हो सकता निर सुना भी नहीं रहा।

### कर्णामुपण

स्त्री-पुरुष दोनों ही के कानों में डेर हावा का और दोनों ही कुछ-न-कुछ पहना करते थे। पुरुष केवल कुण्डल ही पहनते थे क्योंकि कर्णामरुओं में एक स्थान पर कुण्डल <sup>२</sup> और दूसरे स्थान पर कर्णामुपण <sup>३</sup> मध्य प्रयोग हुआ है, परन्तु स्त्रियाँ कर्णपूर, कुण्डल कमकफमल और पहनती थीं।

कर्णपूर <sup>४</sup>—दूसरे स्थानों में हम इसकी वर्णकूल बड़ सकते हैं। कर्णपूर से ही स्पष्ट होता है कि यह नामुपण कानों को ढक लेता हुआ अर्थात् मारा नहीं बनितु बड़ा छेद है उसका मारा प्रदेश ही। हममें पीछे पेंच क्या होगा जिससे पिरने न पाए और अपने स्थान से सरके भी नहीं।

कुण्डल—मणि <sup>५</sup> अथवा वाहन <sup>६</sup> दोनों ही के कुण्डल होते थे। इस तरह किसी और लड़क दोनों ही पहन सकते थे। यह पीछे-पीछे छन्दे की तरह होते थे जो उसके से मध्य हो जाते होते।

कमकफमल <sup>७</sup>—कणपूर और कमकफमल में लम्बा-बीजा अंतर नहीं है। बाकार में यह बोक न होकर कमल के आकार के अतः उभरे हैं। इसी विरोध बाव यह है कि ये निर लगते हैं। उत्तरार्ध ११ में निर जाने का प्रथम है। इतने यह निम्नप निकलता है कि हममें पीछे पेंच न होकर पीछा हावा होगा।

१ श्री कामुदेवगारय महाशाल 'हर-चरित' एक संस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ ६८

२ रघु० १।१६

३ रघु० ३।६३

४ रघु० ७।२७ बभार० ८।६९ श्या० २।२३

५ श्या० १।२० ६ श्या० ३।१



कालिदास का अभिप्राय कनककमल से गुनहले रंग के कमल से भी हो सकता है।  
 अवतार?—वहाँ कहीं भी अवतार का प्रयोग है वहाँ पुष्पों के ही अवतार  
 स्विनी कान से धारण करती है। केवल एक स्थान पर पावती के अवतार जाम्बून  
 के फले गए हैं<sup>१</sup>। पुष्पों को कानों में पिरोया ही जा सकता है। पूरुष नीच  
 सटकता ही रहेगा। अतः कनकपुर से वह इसका प्रथम अवतार हुआ। कनकपुर  
 कानों में टीक हो जाता होगा पर वह नीचे लटकता था। कुमारसम्भव का ७  
 में शिवजी के पीछे-पीछे माताएँ चलने लगीं तब रत्न के सटके से उनके कर्णवर्तन  
 हिलने लगे<sup>२</sup>। इससे जायकल के शुभके ही उस समय के अवतार होवे। ये ही  
 दिक सकते हैं और पुष्पों को यदि कान में पिरो भी लिया जाय तो इनका यही  
 आकार आया। सोसरी बात और एक है, कवि अवतार के सरकने का बचन  
 करता है अतः ये लटकते होवे और पीछे रत्न के स्थान पर कनककमल की तरह  
 काँटा लगा होया।

### कण्ठामूपय

कण्ठामूपय स्त्री तथा पुरुष दोनों ही धारण करते थे। इससे महत्वहीन बात  
 यह है कि कण्ठामूपय मुकुटधार ही थे बाह्ये प्रकारही हो हारपटि ही वा हार  
 सेतर। कवि हार का तात्पर्य मुकुटा के हार ही होता है<sup>३</sup>। इसको कवि स्वयं  
 ही स्पष्ट कर देता है। कवि की रामियों के हार जल-क्रीड़ा करते समय टूट जाते  
 हैं और व मुकुटा के समान जल-विम्बुओं की बौताकर समझती हैं कि टूटा नहीं है।  
 यही नहीं ये उत्तरमेघ में भी यही कहते हैं—

अन्धेहम्यामनिघयन संनिर्कोर्षकपात्रा उत्पर्वद्वप्रगतिगतवैदित्यध्वारैरिवापरे ।  
 मूषो मूष कटिनिविष्टा साधयन्ती कपीताशमोक्तव्यामयमितगतार्नकनेत्री करेव ॥<sup>४</sup>

मोचियों के हार ही सरसता से टूट सकते हैं। कण्ठामूपय हार आदि के  
 विषय में कवि एक बात बहुत अधिक बतलाता है कि ये हार  
 ने उनसे टकराते थे<sup>५</sup>। इससे यह निष्पन्न  
 यह छोटे-छोटे नहीं

## हार के प्रकार

( १ ) मुक्तावली<sup>१</sup>—मोतियों की एक लड़ी की माता ही इसका प्रमाण यह है कि बिजबूट के नीचे बहती हुई नंगा उसका मुक्तावली के समुदा लगती है<sup>२</sup> । एकावली का दूसरा आकार हो

( २ ) तारहार<sup>३</sup>—मस्तिनाय तारहार को स्थूल मुक्ताहार<sup>४</sup> पुण्यों का आभूषण है, यह कहा जा सकता है कि पुण्य बड़े-बड़े पहनते थे पर तिनका छोटे मोतियों की । बहिया मोती के हार पुण्यय हार कहलाते थे ( हपचरित वालुबेवहारम अथवा पृष्ठ १७८ ) ।

( ३ ) हार रोखर<sup>५</sup>—मुक्तावली की तरह ही हार-रोखर मोतियों है । अन्तर यह हो सकता है कि मुक्तावली हार-रोखर से सम्बाई में बड़ी हार-रोखर छोटी माता है, क्योंकि अन्तर मस्तक को कहते हैं और आकार की यह माता होनी इसीलिए इसका नाम हाररोखर पडा ।

( ४ ) हारयष्टि<sup>६</sup>—जहाँ मुक्तावली और हाररोखर एक लड़ की वहाँ हारयष्टि अनेक लड़ियों का हार है परन्तु इसके बीच में कन्धार की वस्त्र नहीं पहनते थे । दूसरे राज्यों में यह केवल मुक्तामा की ही लड़ियों को ऊपर जाकर एक में मिला जाती थी । प्राचीन रोम-ग्रीस में ( पृष्ठ ७२ ) १० ) बलियो की बीच मूपा में रिंगाया आभूषण यही हारयष्टि है ।

( ५ ) हार<sup>७</sup>—हाररोखर हारयष्टि तारहार निर्जीवहार सब हार के ही प्रकार है जिनका आकार का थोड़ा-थोड़ा भेद है । साधारण रूप से किसी भी प्रकार के हार को हार की संज्ञा दे दी गई है ।

( ६ ) सम्बहार<sup>८</sup>—हारों में कुछ छोटे जैसे हाररोखर होते होंगे और कुछ लम्बे जिन्हें कवि सम्बहार कहा है । साधारणतः कुछ स्त्रियों की अंगेला सम्बहार ही पहनते होंगे इसीलिए उनके हार को सम्बहार एक पृथक् नाम दे दिया गया है । स्त्रियों के ऐसे लम्बे हार को स्तनसम्बहार कहा गया है<sup>९</sup> ।

१ एपु० ११४८ विजय० ५१५ २ एपु० ११४८  
३ एपु० ५१५२ ४ भापु० ११६ ५ भापु० ११८ कुमार० ८१६८  
६ भापु० ११४२८ ११८ ११३ ७ ६१३ उत्तरमेघ, १०  
८ एपु० ११६०  
९ ८०

( ७ ) निर्बोत हार<sup>१</sup>—स्वैत बल को प्रकार का होता है, एक दुम्ब की तरह जबतक बुरा बल की तरह । मुक्ता के भी ये दो प्रकार होते हैं । निर्बोत हार उन मुक्तियों से बनता होता जो बल की तरह पारदर्शी हों क्योंकि जहाँ निर्बोत हार का प्रसंग है वहाँ जोर की बुरों को इन जोरियों के समान कहा गया है ।

( ८ ) इन्द्रनील मुक्त्यामयी<sup>२</sup>—जोतियों की मात्रा के बीच-बीच में रत्नों से बड़े पत्थर भी जा सकते हैं । यह उसका ही प्रकार है । इसमें बीच-बीच में इन्द्रनील है ।

( ९ ) कभी-कभी ८ की तरह ही मुक्त्यामयी मात्रा के बीच में एक बड़ी-सी इन्द्रनील मणि भी पिरो दी जाती थी जिसकी आकृति के पेशवट का रूप कह सकते हैं<sup>३</sup> ।

( १० ) मुक्ताकम्पा<sup>४</sup>—एकाग्रता के समान ही इसकी भी कल्पना होती । इसकी कोई विशेष कल्पना होती इसकी प्रतीति नहीं है । पर्वती के पीछे बने में ऊँचे-ऊँचे स्तनों पर मुक्ताकम्पा का ऐसा प्रसंग है । अब एकाग्रता का मुक्तावती के यह सम्बाध नि जाती छोटी होगी । सभी इसका आकार प्रीता की तरह बोल जा सकता है ।

( ११ ) मिष्क<sup>५</sup>—आप की बिगमारियों के साथ इसकी समता मिश्र आने से यह कहा जा सकता है कि सोने की यह मात्रा होती और छोटे-छोटे बाले जोड़िया के समान इसमें पुरे होंगे क्योंकि जोतियों की मात्रा की तरह यह सोने के जोड़िया की मात्रा होती ।

( १२ ) रत्नानुविद्धप्रालम्ब<sup>६</sup>—जिस प्रकार सोने की मात्रा बहनी जाती की उही प्रकार रत्नों की मात्रा भी । यह बहुत कुछ कल्पना सोने की मढ़ियां छोटी होती  
कल्प

यह कि हार के बीच में एक स्मॉकेट की तरह मणि रहती थी या बीच-बीच में कई। मोतियों के हार बहुत अधिक प्रचार में थे पर सोने के और रत्न-मिश्रित सोने के भी हार प्रचलित थे। हार सीधे तथा हल्के से और आलू की तरह भारी।

( १३ ) मुक्ताजाल<sup>१</sup>—अलकों में जो मुक्ताजाल का प्रयोग किया जाता था ( मुक्ताजालप्रपितमलकम् —पूबमेघ ६७ )। कभी-कभी अमिहारिका के केस की मुक्ताएँ माथ में बिन्दर जाती थीं। उत्तरमेघ ११ में इनके हो बिपर जाने का संकेत है।

### कराभूषण

अंगद, बल्य केयूर, कण्ठ और खंगूटी ये पाँच करभूषण हैं जो स्त्री और पुरुष दोनों ही समान रूप से पहनते थे। आकार में छोटा अक्षर था। पुरुष सादे धारण करते थे पर स्त्रियों के इन्हीं आभूषणों में पुष्करादि की कोई-न कोई विशेषता रहती थी।

( १ ) कण्ठ<sup>२</sup>—भुजाओं पर बाँधने का एक आभूषण है। स्त्री<sup>३</sup> और पुरुष दोनों ही इसे समान रूप से धारण करते थे। यह पीछे बाँध जाता था।

( २ ) केयूर<sup>४</sup>—अंगद की तरह यह भी मुखवन्ध है। अंगद से इसमें एक विशेषता है, इसमें नोक होती थी। रघुवंश में जन के द्वारा मारे गये घोड़ानों में एक के केयूर की नोक पिशा के तालू में चुभ गई थी<sup>५</sup>।

( ३ ) बल्य<sup>६</sup>—अंगद भुजवन्ध है, पर बल्य कड़ा था पहुँचियों पर पहना जाता था। अंगद और बल्य एक ही स्थान पर नहीं पहने जाते थे क्योंकि कवि ने अशुभहारा में एक माथ ही ( बल्यमाथ ) दोनों का प्रयोग किया है<sup>७</sup>। पूबमेघ में इसे बहु प्रकीर्णस्थित ही कहता है<sup>८</sup>। आकार में यह घोल कड़े की तरह होता है क्योंकि कहीं अश्वमात्र की बल्य की तरह लपेटना कहा है<sup>९</sup>, कहीं पित्रजी सों की बल्य की तरह लपेटे हुए है<sup>१०</sup>। पुरुष केवल बाएँ हाथ में बल्य पहनत थे—

१ मुक्ताजाल—स्तनपरिस्तरच्छिन्नमूत्र व हारी— उत्तरमेघ ११

२ रघु० १।१४ ५३ ११।६० ३ रघु० १६ ६०

४ रघु० १।६८ ७।५०, कुमार० ७।६९ स्त्रियाँ—रघु० ११।५१

५ रघु० ७।५०

६ अमि० १।११, १।६ कुमार० २।६४ २।६८ पूबमेघ ६४ रघु० १३।४३ १६।७३ पूबमेघ २ मात २।६ रघु० १६।७२

७ मातु० ४।३ १।७

८ पूबमेघ २

९ रघु० १३।४३

१० पूबमेघ, ६४ कुमार०, २।६८

आविष्कार के समय एलगाईन संस्कृति

प्रत्याशितविशेषमण्डनविधिविधिमयोपस्थितिः ।  
विप्रकाशनमेकमेव

विष्णुकाण्डनमेकमेव ब्रह्म स्थासोपरत्तावत् ॥ —ब्रमि० ६।१

(ख) काश्चन वल्लभः—वल्लभ का यह सबसे छोटा प्रकार है। यह भी अधिकतर में बारह करते हैं। लड़कियों का केवल दो स्थानों पर प्रसंग है।

(घ) कर्मान की तरह लोकदारः (लोकदार) — बावक के

(ख) कर्मों की तरह नोकरदार (ब्रह्मचर्य) — ब्राह्मण के कर्मों की तरह नोकरदार कुछ बड़ा बल भी सिखाया, पहली थी। कर्मों का अब कुछ लोग हीरा करते हैं।

(४) अंगूठी—अंगूठी

(४) अंगूठी—अंगूठी सामान्य होती थी। रत्नबन्दी<sup>५</sup> रत्नों से नाम बिछा हुआ हो<sup>६</sup> इस प्रकार की बचवा जिस पर तप<sup>७</sup> आदि किसी का चिह्न बना हो। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही अंगूठी पहनते थे।

(५) कटक—इसे भी तरह का एक आभूषण है। यह पुस्तों का है।  
 ललित कला से अंगूठ और केसर छोटे पट्टीनुमा होते हैं जो पीछे बंध जाते  
 होते परन्तु बलय और कटक कूड़ी की तरह ही पहने जाते हैं तथा हीले रहते  
 हैं क्योंकि माछविका का बलय प्रकोष्ठ पर आकर ठहर गया था।  
 कटि के आभूषण

कटि के व्यामूषण

कटि के व्याभूषण  
कमर के आभूषण में मेखला, रत्ना एवं काञ्ची तीन आभूषण हैं। यद्यपि इन तीनों के समान रत्न एवं मुक्ता आदि के कई प्रकार भी होते हैं।  
मेखला—रत्ना का वहाँ नहीं लगाया जाता है।  
रत्ना—रत्ना का वहाँ नहीं लगाया जाता है।

मत्स्यका—रखना का वहाँ नहीं नाम है वहाँ वह बजती है, ऐसा सर्वत्र कहा गया है, परन्तु रखना का वह गुण मेरुता में नहीं पाया जाता। वही-वही

कवि मेखला से रानियाँ राजा की बाँव बेटी थीं ऐसा भी कहता है<sup>१</sup>। अठ-  
पौडई में यह पतली होती होयी। इस बात का दूसरा प्रमाण यह है कि कवि  
एक स्थान पर कुमारमम्मन में कहता है कि गहाली हुई पावती के चारों ओर  
भूमती हुई मछलियाँ ऐसी प्रतीत होती थीं यानों उसने मेखला पारण की हो<sup>२</sup>।  
रघुबंध में भी गरी में ठैर्यो हंगों की पंक्तियाँ मेखला कही गई हैं<sup>३</sup>।

मेखला गारी सोने की होती थी (हूम-मेखला<sup>४</sup>) जबवा मयि-मेखला<sup>५</sup>  
जिसमें रत्न जड़े हों। इन दो प्रकारों के अतिरिक्त छिद्रित मेखला<sup>६</sup> भी थी  
जहाँ-जहाँ छवि उत्पन्न करने के लिए स्थान-स्थान पर बुधक भी काट दिए जाते  
थे। कभी-कभी स्त्रियाँ छाड़ी पर बस्तियों से बनी मखलाएँ पहनती थी<sup>७</sup>। कवि  
मेखला टूट जाती थी ऐसा भी कभी-कभी कहता है<sup>८</sup>। अठ मेखला मुक्तामयी  
भी होती होनी क्योंकि यही टूट सकती है, सोने और रत्न का नहीं।

(२) रझना<sup>९</sup>—रझना में अपिचर सज्ज बणित है<sup>१०</sup> अठ पुँषक तो  
अवश्य ही इसमें सजे रहते होंगे। मेखला से रझना का यह पड़ना अन्तर है।  
मेखला की तरह यह भी पतली होनी क्योंकि माळविकाग्निमित्र में इरावती  
अग्निमित्र को रझना से सजित करने का प्रयत्न करती थी<sup>११</sup>। मेखला की तरह  
रझना की रूपमा भी मछलियों की पंक्तियों<sup>१२</sup> हंग की पंक्तियों<sup>१३</sup> जबवा बिहाग-  
बलियों<sup>१४</sup> से दी है। अठ आकार-प्रकार में यह मीठका की ही तरह है। केवल  
बुँषक का अन्तर है। पुँषक है, इसका प्रथम प्रमाण यह कि सज्ज बणित है,  
दूसरा यह कि सूत्र में विरोध सा सकते हैं<sup>१५</sup> और सूत्र टूटने या छूटने पर यही

१ रघु० १९।१७ कुमार० ४।८ २ कुमार ८।२१

३ रघु० १९।४० ४ ऋगु० १।६

५ रघु० १२।४५ कुमार० १।१८ ऋगु० ९।४

६ रघु० १।१७

७ बा० मोतीबन्ध प्राचीन वैद्य-भूषा पृ० ७१

८ कुमार ८।८३ ८३ उत्तरमेघ ३८ रघु० १२।२५

९ कुमार० ५।१० ७।६१ राघु० ३।३ २० ६।२६ माळ० अंक ३ पृ०  
१११ विजय०, ४।५२ उत्तरमेघ १ रघु० ७।१० ८।३८ १२।८३  
१९।९५, १२।४१

१० रघु० ८।३८ १९।९५

११ ऋगु०, ३।३

१२ विजय० ४।५२

१३ माय० अंक ३ पृ० १११

१४ उत्तरमेघ ३

१५ कुमार० ७।६६ रघु० ७।१०

काङ्कित के ग्रन्थ उत्कालीन संस्कृति

‘प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वाप्यप्रकोट्यर्पितः ।  
विभक्तकाम्पनमेकमेव वस्य स्वाधोपरसावत् ॥ —अभि० १।१

(ख) काञ्चन वस्त्र<sup>१</sup>—वस्त्र का वह सबसे सौदा प्रकार है। यह ही वनिकाप में धारण करते हैं। छद्मियों का केवल दो स्थानों पर प्रत्यक्ष है<sup>२</sup>

(ग) कनक की तरह नौकरदार<sup>३</sup> ( १ तुल्यवत्पुनः ॥ २  
पूजने ११ )—बाजक<sup>४</sup> के कर्मों की तरह नौकरदार कुछ जड़ाज वस्त्र भी  
स्त्रियाँ पहनती थीं। कनक का वर्ण कस नील हीरा कहते हैं।

(घ) लिङ्गावलय<sup>५</sup>—धुपकसार करने को वाली बजाने पर मुकुटमणि  
कर डठें।

(ङ) अंगूठी—अंगूठी साधारण होती थी। रत्नमयी<sup>६</sup> रत्नों से नाम  
जिन्ना हुआ हो<sup>७</sup> इस प्रकार की अथवा जिस पर उप<sup>८</sup> बाहि किसी का चिह्न  
बना हो। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही अंगूठी पहनते थे।

(च) कटक<sup>९</sup>—कने की तरह का एक आभूषण है। यह पुरुषों का है।  
संक्षिप्त रूप से अंगर और केनूर छोटे पट्टीनुमा होते थे जो पीछे बंध जाते  
होते परन्तु वस्त्र और कटक बूटी की तरह ही पहने जाते थे तथा छोटे छूटे  
थे क्योंकि मातृशिका का वस्त्र प्रकोट पर आकर छहर गया था।

कटि के आभूषण

कमर के आभूषण म मेखला रचना एवं काञ्ची तीन आभूषण हैं वरपि  
इन तीनों के सोने रत्न एवं मुक्ता बाहि के कई प्रकार भी होते हैं।

मखला<sup>१०</sup>—रचना का जहाँ वही नाम है वहाँ वह बजती है, ऐसा वस्त्र  
बना गया है, परन्तु रचना का वह गुण मेखला में नहीं जाया जाता। वही-वही

इत बारण कर सकती थी<sup>१</sup> और दूसरा बिस्व जैसे में यदि जादि नहीं बड़ी या  
छोटी । व बहुत बड़े हो जायेंगे । इसमें सदैव राज्य वर्णित है<sup>२</sup> । अतः कहा जा  
सकता है कि इसमें बुद्धि अवश्य लगाए जाते होंगे । पिम्पितनपुर,<sup>३</sup> मणिमपुर<sup>४</sup>  
भास्वत ककनपुर<sup>५</sup> ( जयकले हुए और राज्य करने वाले मुन्दर-से ) ककनपुर<sup>६</sup>  
जादि पर्य कवि के धर्मों में आए हैं । संक्षेप में केवल सोने के और मणिवर्णित  
सोही प्रकार विरोध है ।

आभरण-मञ्जुषा<sup>७</sup>—मयस्त आभरणों को रखने के लिए एक पित्रो  
जपवा समुद्र भी होता था जो आभरण-मञ्जुषा कहलाता था । इसके लिए  
पुत्रा प्रवर्धित अथ समुद्रगर्भ था । जंगल में रहनेवाले पत्तों से भी समुद्रगर्भ  
बना केतौ, ये । अनुसूया ने पशुपति की विद्याई के अवसर के लिए एक बकुल भी  
माता, 'भारविन्द समुद्रगर्भ' में रण छोड़ी थी ।

पुष्पाभरण—जब तथा रत्नवर्णित आभूषणों की तरह सिन्धु पुष्प के  
आभूषणों से भी जपन शरीर अलंकृत किया करती थीं । अतः उनके अनुसार  
उनकी स्थापकार के पुष्प मिल भी जाते थे ।

केन्द्र—विश्व में व कुरुक्षेत्र<sup>८</sup> नवकरण नवकेसर और केतकी क फुला की  
माता कभी बारण करती<sup>९</sup> कभी मनुष्य की ( कुमार<sup>१०</sup> ३११४ ) । वर्षाश्रु<sup>११</sup>  
कभी केन्द्राय को पुष्पाभरण से मुरभीष्ट करती,<sup>१२</sup> कभी कुरुक्षेत्र और मातृ  
पूतों की माता से अलंकृत करती थी<sup>१३</sup> । पारश्वश्रु में धनी वाली लट्टों  
मातृ के पूत मूर्तों थी<sup>१४</sup> । सिंगिर तक में वै केन्द्र की कूर्मों से  
थी<sup>१५</sup> । वसन्तश्रु शृंगार के लिए बहुत उपपुत्र होने के कारण सिन्धु  
अतः, 'विशेष' जन्म की माता से वैरा सजाती<sup>१६</sup> कभी कुरुक्षेत्र के पूतों  
केन्द्राय, अलंकृत करती थी<sup>१७</sup> । कवि की समुन्दरी उबड़ी जुही और  
करण से वैरा की योगा बहती थी<sup>१८</sup> । अशोक और नवमस्तिष्का के पूत

१. मात० अंक ३ पृ०

२. कुमार० १११४-१५० १११२१ अतु० ८१ विजय० १११५  
मात० १११० अतु० ११२०

३. कुमार० १११४ विजय० १११० ४. अतु० ११२०

५. १५० १११२ ६. अतु० ११२०

७. मात० अंक ४ पृ० ११५ अं० ५ पृ० ११५

८. उत्तरमेघ २ ९. अतु० ११२१ १०. अतु० ११२

११. अतु० ११२५ १२. अतु० १११६ १३. अतु० १११

१४. ११२ १५. विजय०



कामिन्दस के ग्रन्थ, उत्तराखीन, संस्कृति

वितर सकते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि जिसे कुछ ही हों और कुछ प्रत्युत कुछ भी बचह-बचह खो होंगे। मछली हंस आदि की शक्य में बादि भी रहती होंगी और बुँचरु भी।

प्रकार में हेमरचना<sup>१</sup> जिसमें रत्नादि विलकुल न हो, जिसमें बुँचरुओं की संख्या अधिक हो और स्वनिष्ठरचना<sup>२</sup> जिसमें बड़े-बड़े बुँचरु ही हों हैं।

काञ्ची<sup>३</sup>—येतला और रचना की तरह यह कभी बाँधने के काम नहीं आई न ही मछलियाँ हंस बियह इसके प्रतीक हुए। अब यह पत्थरी पट्टी न होकर चौड़ी पट्टी-सी होती होगी। यह सोने की<sup>४</sup> अथवा काञ्चनमयी रत्नचित्रों से परिपूष की<sup>५</sup>। इस काञ्ची को शक्यमयी बनाने के लिए वैभरु का प्रयोग भी कर दिया जाता था। स्वनिष्ठरचनाकाञ्ची का कवि प्रसंग देता है<sup>६</sup>। काञ्च-कुछ पतला हो जाया होगा। मछिची जम्मा की बछ नुपा में कमर पर वह चौखूटी वस्त्रियों से बनी एक सतलड़ी करवनी पहने हैं—( प्राचीन वैद्य-नुपा पृष्ठ ७० चित्र ४६ )। पृष्ठ ७२ चित्र ४० पर भी ऐसी ही करवनी पहने एक स्त्री है, जिसमें बार लड़ियाँ हैं पर चारों भिन्न हैं। एक चौखूटी तन्नी की दूसरी मोठमिटी के पूलों के आकार की तीसरी तरबूजेदार मनकों की चौवी मोल मनकों की। इसमें मात्र निम्नत्र निजाता जा सकता है कि त्रियाँ एक ही समय काञ्ची रचना तक पहन लेती होंगी।

कवि के इन आभूषणों के विषय में एक बात महत्वपीत है। ये कुशल अथवा दौम के जैसे ऊपर पहने जाते हैं, नीचे ही उस समय नीच भी पहने जाते, वे<sup>७</sup>।

पैर का आभूषण

नूपुर<sup>८</sup>—दोनों में त्रियाँ नूपुर पारण कटती थीं। नूपुर का अर्थ विष्टा नहीं अणि पायल था। इनके पत्र में प्रमाण यह कि एक

इसे धारण कर सकती थी<sup>१</sup> और दूसरा बिछूए जैसे में मणि जाति नहीं बढ़ी जा सकती। व बहुत बढ़े हो जायेंगे। इसमें सर्वत्र शब्द वर्णित हैं<sup>२</sup>। अतः कहा जा सकता है कि इसमें पुंल्लिखित अवस्था लगाए जाते होंगे। विभिन्नतन्त्रपुर<sup>३</sup> मणिपुर<sup>४</sup> भास्वत कस्तनपुर<sup>५</sup> (चमकते हुए और धारण करने वाले गुण-र-से) कस्तनपुर<sup>६</sup> जाति धारण करने के प्रयोग में आए हैं। संक्षेप में केवल सोने के और मणिबद्धित सोहीप्रकार विरोध है।

व्यामरण-संख्या<sup>७</sup>—ममस्त व्यामरणों को रक्षने के लिए एक पिटाही व्यवस्था संयुक्त भी होता था जो व्यामरण-संख्या कहलाता था। इसके लिए दूसरा प्रचलित ग्रन्थ समुद्रगुप्त था। अंशक में रत्नवाले पत्तों से भी समुद्रगुप्त बना लेते थे। अनुसूया ने राजकुलका की विद्या के अनुसार के लिए एक बकुल की माता, 'नारिकेल समुद्रगुप्त' में रख छोड़ी थी।

पुष्पाभरण—स्वयं तथा रत्नजालि व्यामरणों को तरह स्त्रियों पुष्प के व्यामरणों से भी अपने शरीर अलंकृत किया करती थी। जलुओं के अनुसार इनको नमप्रकार के पुष्प मिल भी जाते थे।

केश—तिर में से कुरबक<sup>८</sup> मकरन्द मकरन्द और केशकी क फूलों की माता कभी धारण करती<sup>९</sup> कभी मयूक की (कुमार<sup>१०</sup> ७१४)। वर्षाश्रित में कभी केशपात्र को पुष्पाभरण से सुरमोहित करती<sup>११</sup> कभी बकुल और मातुली के फूलों की माता से अलंकृत करती थी<sup>१२</sup>। शरदृच्छा में कभी कभी केशों में मातुली के फूल सूँठते थी<sup>१३</sup>। विभिन्न तन्त्र में से केशों को फूलों से सजाती थी<sup>१४</sup>। चन्द्रमन्त्रानुश्रुति के लिए बहुत उपयुक्त होने के कारण विद्या इस जलु<sup>१५</sup> विद्यापत्र नामों की माता से केश सजाती<sup>१६</sup> कभी कुरबक के फूलों से केशपात्र अलंकृत करती थी<sup>१७</sup>। कवि की सवसुन्दरी उबरी पुरी और रक्त कन्द से केशों को सोया बजाती थी<sup>१८</sup>। अशोक और मकरन्दिका के फूल भी

१ मात० अंक ३ पृष्ठ

२ कुमार० ११३४ रघु० ११२३ जलु० ८१८ विजय ११२५ ४१३०  
मात० ११२७ मातु० ११२

३ कुमार० ११३४ विजय० ४१३० ४ मातु० ११२७

५ रघु० १११२२ ६ मातु० ११२०

७ मात० अंक ४ पृष्ठ १२५ अंक ५ पृष्ठ १२५

८ उत्तरमेघ २ ९ मातु० २१२१ १० मातु० २१२२

११ मातु० ११२५ १२ मातु० ११२६ १३ मातु० ११८

१४ मातु० ११३ १५ मातु० ११३ १६ विजय० ४१४१ ११

काष्ठिमात के धर्म तत्कालीन संस्कृति

२

केस-सौन्दर्य के लिए उत्तम थे ।<sup>१</sup> नीप-पुष्प से सीमन्त अलंकृत किया जाता था<sup>२</sup> ।

कर्म—केस रचना की तरह कानों में छिरीप<sup>३</sup> बर्षाकृर<sup>४</sup> तथा अन्य सुगन्धित पुष्पों के अवतंस पहने जाते थे<sup>५</sup> । बर्षाक्षतु में नवकर्मका का कमपूर<sup>६</sup> छरत् म कानों में नील कमल<sup>७</sup> बसुन्त में नवकर्मिकार के अवतंस<sup>८</sup> सिध्मा पहनती थी । छत्रुन्तला कमलनास के आयुष्य पहनती थी । कानों में छिरीप की दृष्टल द्रव्य लेती थी<sup>९</sup> । मातृविका बोह्य के समय आय की मन्त्रणी और बसोक्त के अवतंस पहने थी<sup>१०</sup> । मुकुमन्तय मन्त्रणी के भी अवतंस बर्षाक्षतु म पहने जाते थे<sup>११</sup> ।

कण्ठ—बसस्वत पर फूलों के हार पहने जाते थे<sup>१२</sup> । छत्रुन्तला घने में कमल के तन्तुओं की माता पहना करती थी<sup>१३</sup> ।

कर ( बलय )—छत्रुन्तला मुक्ताल का वस्त्र पहनती थी<sup>१४</sup> । अन्य किसी से कभी किसी पुष्प का वस्त्र पहना इनका कोई संकेत नहीं है ।

काञ्ची—काञ्ची भी कानों की पहनी जाती थी । केसरवामकाञ्ची हममें विरोध है<sup>१५</sup> ।

## शृंगार

केस-रचना—स्त्री और पुंस्य<sup>१६</sup> दोनों ही कन्धे-कन्धे बाल रगते थे । रघुबीर में राजा विभीष की कटें सताओं के समान लक्ष्म पर्यं थी<sup>१७</sup> । बाल तभी लक्ष्म तकते हैं जब लम्बे हों । बच्चों के भी काकपल होता था<sup>१८</sup> । अर्थात्

शृंगु० ६।६

उत्तरमेघ १ रघु० १६।६१

अमि० १।२८

शृंगु० २।२५

१ उत्तरमेघ १

४ रघु० १६।४९

५ शृंगु २।१८

उनके बाक इतने लम्बे होते थे कि वे सुन्दर छस्ते बनाते हुए इधर-उधर लटका करते थे। पुरुषों के बाक इतने लम्बे होते थे कि रामियाँ बर्बाद उनकी पत्नियाँ उनके बाक पकड़ कर रोक लेती थीं। यवन कोप दाढ़ी रखते थे<sup>१</sup>। युद्ध के समय में या किसी श्रिय व्यक्ति के वियोग-काल में भारतवासी भी स्मधु रखते थे<sup>२</sup>।

स्त्रियों के केश लम्बे होते थे<sup>३</sup>। लम्बे चुपड़ते<sup>४</sup> और काले बाल<sup>५</sup> सौम्य और बुद्धि से उत्तम माने जाते थे। जिनको वे लेक डालकर बिलने रखती थी। विरहावस्था में लेक के जमान के कारण ही उनके बाक लम्बे रहते थे और उलझते थे<sup>६</sup>।

स्त्रियाँ चोटियाँ भी करती थी और बूझ भी बनाती थीं। एकमेनी का बहुत अधिक प्रसंग है। विरहावस्था में बाक लम्बे नहीं रहते थे अपितु बँसा पति के सम्मुख प्रतिदिन लेक डालतीं जैसी आदि वारण करतीं पुरुषों से अलङ्कृत करतीं बँसा उनकी अनुपस्थिति में नहीं। अतः बाक उलझते रहते थे जो उनके पति ही बाँकर सुलझाते थे। एकबसी<sup>७</sup> छत्र से ऐसा मामला होता है कि जायकस की तरह न्यायिद सब भी दो चोटियाँ की जाती हों।

संस्कृत के अमरकोष में अलङ्क का स्वस्व अलङ्कारबुद्धिमुत्तमा<sup>८</sup> बताया गया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अलङ्कारबुद्धि बनाने में बूझ का प्रयोग किया जाता था। दूसरे घण्टों में कुंजुन कपूर आदि के अलङ्कार से बालों में मँबर पैदा किए जाते थे। कल्पितार्थ भी इसी का समर्थन करते हैं। रघुवंश में अर्पित केरल देव की स्त्रियों के अलङ्कारों के सम्बन्ध में बूझ का उल्लेख है—

नयसमुष्टिबिभूषणां लेन कैरलयोपिताम् ।

अलङ्केषु चमूरेषु चमूचप्रतिनिधीकृत ॥१०॥

रघुवंश के अहम चर्य में इन्धुमती के केशों का वर्णन करते हुए कवि ने अलङ्कारों का

१. रघु० ११।११

२. रघु० ४।६१

३. रघु० ११।७१ कूर्च—अग्नि० अंक १ पृ० ११६

४. शिरोरहं श्लोषितशर्माविधिः..... — गु० २।१८

५. रघु० ६।८१ 'अरावली' कुमार० ८।४५ कुलिकेश माल० ३।२२ कुटिलरेश

६. मातृ० ४।१६

७. स्पष्टाक्षिणामपमितनयनेनामहस्तारपन्ती

पञ्चामोगाकृतिरिदमामैकवेयी करेण। —उत्तरमेघ ३८ उत्तरमेघ ३०

८. रघु० १४।१२ शैली पूषमेघ १८ ११ उत्तरमेघ ४१

९. अग्नि० ७।२१ उत्तरमेघ ३० ३४ १०. रघु० ४।६४

वास्तविक स्वप्न बताया है<sup>१</sup>। इसमें अक्षरों का बलीभूत विशेषण स्पष्ट करता है कि छन्दोवार या बृंवरवार वाक्य उस समय की विशेष प्रकार की केषारचना थी। कटों को पूष कुन्तल या अक्षर के रूप में लाने से उनकी सम्बन्ध कम हो जाती होगी। कवि ने विरहियो यक्षपत्नी के कक्षों को सम्बोधित<sup>२</sup> कहा है। विरह में स्निग्ध परार्थ वीरवार के बिना दुःख-स्नान के कारण उसके अक्षर कपीलों पर लटक जाते थे अतः उसका पूष मुक्त नहीं दिखाई देता था<sup>३</sup>। इससे यह ध्वनि निकलती है कि विरह में केष-रचना (वाक्य को बृंवरवार) नहीं करती थी अतः वे लम्बे होकर कपीलों पर लटक जाते थे।

मल्लिनाथ ने अक्षर की व्याख्या स्वभाववक्राव्यवस्थानि तासाम् की है। इससे पुरुषरूप से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि अक्षरों में बक्रता जबवा वृत्ताव्यवस्था पा।

श्री बामुदेवसरण अग्रवाल इन वृत्तोंसे वाक्यों के बनाने के कई प्रकार बतल करते हैं।

( अ ) इसमें सीमन्त या माँग के दोनों ओर केवल बलीभूत अक्षरों को समानान्तर पंक्तिमाँ रखी जाती है। भारत-कला-यवन में इस केष-विन्यास के कई नमूने हैं।

( ब ) सीमन्त या केन्द्रबिंदु की एक आभूषण से सज्जित किया जाता है। इसका वर्तमान रूप सिरदार कहा जा सकता है। इस आभूषण के लिए सीमन्त स्नान कुछ निश्चित दिखाया जाता है और जोड़ा हुआ कर पूंवर प्रारम्भ किया जाता है। बामदेव न सिरदार के लिए हयवर्धन य 'बटुला सिक्क' शब्द का प्रयोग किया है।

( घ ) पूंवर की पहली पंक्ति छद्माट के ऊपर अक्षरवृत्त की तरह घूमती हुई सिर के प्रान्त भाग तक जाती है। यह देखन में गुली छवरी-सी लगती है।

( ङ ) बामुदेव भी इस प्रकार का पट्टिमाधार पूंवर करते हैं। माँग के दोनों ओर पहले पट्टियाँ निकली हैं, तत्परवान् पूंवर शुरू होकर दोनों ओर फैल जाते हैं<sup>४</sup>।

१ वृत्तुमात्राविताम्वलीभूतरक्षयन् भूङ्गरक्षस्तवाक्यान् ।

करबोद वर्योति वारतस्त्वपुतावन्नयोकि म यन ॥—रघु० ८।५३

यह सब अटक बर्बात् भूँवर के विभिन्न प्रकार है। अटक केन्द्र-रचना के अतिरिक्त वे अन्य प्रकार की केन्द्र-रचना भी अभिव्यक्त करते हैं। जो निम्न स्थिति है—

**कुटिल पटिया**—शीर्ष के दोनों ओर कमपटी तरह सहाराई हुई गुच्छ पटिया मिलती है। वे ही ओर पर ऊपर को मुड़ कर बुरा जाती है। इसमें म यह ओर की पहरातो पूछ-सी मान्य होती है। काकिरास न स्त्री-केतों को मोरों का बहमार<sup>१</sup> कहा है वहाँ उनका आरण्य इसी प्रकार के केन्द्र-विन्यास से है।

**बूझापास**—आधुनिक 'जुड़ा' शब्द इसी 'बूझा' शब्द का रूपान्तर है। इसमें शीर्ष के दोनों ओर बाहों की पटिया बनी रहती है। वे ही शिर के जोड़ बूड़े के रूप में शीर्ष दी जाती है।

**छत्तेदार केन्द्र-रचना**—इसमें शीर्ष के दोनों ओर बाह्र छत्ते के छत्ते की तरह क्षैप्यार-से जान पड़ते हैं। संस्कृत में इस रचना को क्षीप्यपटल या अनुपटल-विन्यास कहा जा सकता है। काकिरास ने पारसीकों के शरीरदार स्मशुछ निर्यो<sup>२</sup> की रचना क्षीप्यपटल से की है<sup>३</sup>।

**मोडि**—इसमें बाहों का बूझा बना कर साक्षात् से शीर्ष दिया जाता है। मोडि के भीतर भी बूझों की मात्रा बूँदी जाती थी। बनि न इसका उत्पत्त्य किया है<sup>४</sup>।

बेनी-बन्धन<sup>५</sup> केन्द्र-बन्धन<sup>६</sup> अटक-संयमन<sup>७</sup> केन्द्रपाप<sup>८</sup> आदि रम्यो<sup>९</sup> से एसा कथा है कि वे बूझा बनाती थी। एकुन्तला प्रथम अंक में बूझा गुच्छ जान से एकुन्तला की स्त्रो विचार जाती है जिन्हें वह बड़ी कटिनाई है। सम्हालती है<sup>१०</sup>। अठ बीनी का ही बूझा नहीं गुच्छे बाहों का बूझा बनाना जाता था<sup>११</sup> पर बेनी

१ पितृना बहमारोपु वेदान् । —उत्तरमय ४९

२ मत्स्यारबर्जितैस्तेषां शिरोभिः समधुसमहीम् ।

तस्मात् मरुपाभ्याम् स क्षीप्यपटलः ॥ —रघु० ४।६३

३ तैत्तिर्य मुक्तामुनीनां मोक्षिमन्तर्गत्यम् । —रघु १७।२३

नोट में विभिन्न केन्द्र-विन्यास प्रदर्शितों की सामुदेव्यारण अन्वय ने अपनी पुस्तक बना और संस्कृत में विस्तारपूर्वक बतियायी है।

४ रघु० १।१।४७ ५ अमि अंक ६ पृष्ठ ११५ ६ विजय० ३।६

७ पद्यु० ४।१५ ८।१३ उत्तरमेघ २ कुमार० ७।५७ ६

८ अमि० १।२८ ९ अतिविपलितकथने वेदपाठ शिवात्माः —रघु०, ८।१७

वचन शब्द से ऐसा लगता है कि चोटी का जो चूड़ा बनाया जाता होगा<sup>१</sup>

वे माँग निकालती थी<sup>२</sup>। माँग भरने का भी एक स्थान पर प्रसंग है। ब्रह्मचूरी का प्रयोग माँग भरने के अतिरिक्त कोई महत्त्व नहीं रखता<sup>३</sup>। वे माँग को चूड़ों से सजाती थी<sup>४</sup>। चूड़े को वे बहुधा पुष्पों से अलंकृत करती<sup>५</sup>। अथवा जैसे ही केशों को नामाग्रकार के पुष्पों से सुन्दर बनाती थी<sup>६</sup>। कपो-कपो मुक्तामाल से भी अलङ्कार की सुन्दरता बढ़ावा करती थी<sup>७</sup>।

केवल पुष्प रत्न मुक्ता ही केच-रीत्यर के लिए ही नहीं नामाग्रकार के चूष भी सुरक्षित करने के लिए प्रयुक्त किए जाते थे। वे बालों को कामे अपर<sup>८</sup> चूष<sup>९</sup> से सुशोभित किया करती थी। कस्तुरी का चूष<sup>१०</sup> भी कस्तुरिद् बालों को सुशोभित करने के लिए ही प्रयुक्त किया जाता था। बालक-चूर्ण<sup>११</sup> का भी कुमारसम्भव में प्रसंग आता है।

इन सब उपकरणों से सतीमाँति स्पष्ट हो जाता है कि केच-रचना<sup>१२</sup> का बहुत बड़ा महत्त्व था।

### मुख-सौन्दर्य

(१) पद्म-रचना—रत्नी<sup>१३</sup> और पुष्प<sup>१४</sup> दोनों ही मुख पर<sup>१५</sup> (और घरीर के अन्य भाग पर भी<sup>१६</sup>) पद्म-रचना किया करती थी। पद्म-रचना का संकेत कुमारसम्भव<sup>१७</sup> रघुवंश<sup>१८</sup> मातृविक्रान्तिमित्र<sup>१९</sup> आनुसंहार<sup>२०</sup> में रत्न-स्वयं पर

१ रघु० १०।४७ २ उत्तरमेघ २ ३ रघु० १६।६६

४ उत्तरमेघ २ ५ रघु० ७।६

६ कुमार० ५।१२ अ१४ ८।७२ विष्णु० ४।२२ ४६ ६१ उत्तरमेघ  
७ रघु० २।२१ १२ २५ १।१६ १।८ ५।५ ६ ११ रघु० १।६७

८ पृथ्वी ६७ रघु० १७।२१ ९ पृथ्वी १६ रघु० ७।५ ५।१२

१० कुमार अ१४ रघु० १।१२ रघु० १६।५ १७।२२

११ चरित्रचूष—रघु० ४।५०

जाया है। यह रचना गोरोचन और कुंकुम से की जाती थी। पायरी के छपर पर पत्र-रचना गोरोचन से की गई थी। रघुबंध में राजा अविधि के राम्या मिषक के अवसर पर मुक्त पर गोरोचन अञ्जन और अंगरग से पत्र-रचना की गई थी<sup>१</sup>। पत्र-रचना अञ्जन से भी होती थी<sup>२</sup>। बोड़े से धर्मों में कात्त रवेत और कात्त रंग पत्र-रचना के लिए प्रयुक्त किए जाते थे<sup>३</sup>।

(२) माथे पर तिलक—माथे पर तिलक की मूल-गोण्य के लिए विशेष महत्त्व रखा था। स्त्री और पुरुष दोनों ही तिलक का प्रयोग किया करते थे<sup>४</sup>। यह तिलक हरताल और मनःधिया का बनाया जाता था। महारव और पायरी दोनों के विषय के अवसर पर ऐसा ही तिलक लगाया था<sup>५</sup>। तिलक का मासविक्रान्तिमिष<sup>६</sup> और रघुबंध<sup>७</sup> में भी उल्लेख है। तिलक कदाचिद् स्त्रियों कात्त रंग का लगायी थी परन्तु भाग्यपाठ अञ्जन से भी या छोटी-छोटी स्त्रियों लगायी होती थी या बाहर की रक्षा क्योंकि कात्त माथे से बिना तिलक का पूज स्त्रियों के तिलक की समानता प्राप्त करता है, ऐसा कवि ने मासविक्रान्तिमिष में कहा है<sup>८</sup>। कुमारसम्भव में भी तिलक का पूज स्त्रियों के तिलक के समान है, ऐसा कहा गया है<sup>९</sup>।

(३) अञ्जन—गोण्य के लिए दोनों में अञ्जन का प्रयोग किया जाता था। यह अञ्जन कात्त होता था<sup>१०</sup> अर्थात् सुरमे के रंग का नहीं। कवि कात्त बारसों को मुटे अञ्जन के समान कहता है<sup>११</sup>। एक स्थान पर नीले आकाश को अञ्जन के समान कहा है<sup>१२</sup>। अतः कहा जा सकता है कि अञ्जन कुछ हल्के कात्त रंग का और कुछ गहरा कात्त रंग का होता होगा। विष्णु में<sup>१३</sup> या वरस्या

- |   |                              |
|---|------------------------------|
| १ कुमार० ७।१५   | २. रच०, १७।२४                |
| ३ कुमार० ३।३०   | ४ मात्त० ३।३                 |
| ५ कुमार ७।२३ ३३ रघु० १८।४४ (सुरम्य ने लगाया था) कुमार० ३।३० मात्त० ३।३, ४।६ |                              |
| ६ कुमार० ७।२३ ३३  | ७ मात्त० ३।५, ४।६            |
| ८ रच० १८।४४   | ९. मात्त० ३।३ १० कुमार० ३।३० |
| ११ रघु० ७।२७ ११।५९, १२।१० कुमार १।४७ ५।५१ ७।२० ५६                           |                              |
| ८३ उत्तरमेष ३७ गु० १।११ २।२   |                              |
| १२ कुमार० ७।२० ८२   | १३ भागु० २।२ ३।५             |
| १४ भागु० १।११   | १५ उत्तरमेष ३७               |



में<sup>१</sup> काव्यस जगाना बजित हो जाता था अतः यहाँ कभी हो जाती थी। यह जग्यन शतासीनों से जग्या जाता था। शतासीनों का बहुधा कवि प्रसंग होता है<sup>२</sup>।

(४) ओष्ठराग—ओष्ठ रंगने का भी अधिक जग्यन था। अमित्रान साकृत्तम् में राजा दुष्यन्त शकुन्तला के उन ओष्ठों का वचन करता है, जो रंगे न जाने के कारण पीले पड़ गए थे<sup>३</sup>। कुमारसम्भव में भी ओष्ठराग का प्रसंग है<sup>४</sup>। स्वयं पावती तपस्या करते समय यद्यपि ओष्ठ रंगना उसे चुकी थी पर उनके ओष्ठ तब भी लाल थे<sup>५</sup>। स्नान करते समय यह ओष्ठराग बल जाता था<sup>६</sup>। अतः ओष्ठ स्वाभाविक लाल न भी हों तब भी रंग कर लाल कर सिद्धिवादी थे। रघुवंश की तरह विक्रमोद्योग में भी ओष्ठराग की स्पष्ट प्रतीति है<sup>७</sup>। ओष्ठराग तपस्या करते समय<sup>८</sup> और निरुदासस्था में<sup>९</sup> शृंगार के अन्य उपकरणों की तरह छोड़ दिया जाता है। एक अन्य महत्वपूर्ण बात इस प्रसंग में यह है कि काव्यस की तरह ओष्ठराग कई रंग का नहीं होता था। केवल लाल रंग का ही था<sup>१०</sup>।

अलङ्कार—जिस प्रकार ओष्ठ पर ओष्ठराग प्रयुक्त किया जाता था वैसे ही शरणों पर अलङ्कार<sup>११</sup>। अलङ्कार के लिए कवि कभी राग-रस कभी पादराग कभी आसारस कभी आसक्तक कभी राग रेखा-विम्यास कभी शरणराग कभी शरण कभी निमित्तराग आदि शब्द कहता है। राग-रेखा-विम्यास शब्द नि

१ कुमार० ५१५१

२ कुमार० ११४७ रघु० ७१८ कुमार० ३१५२

३ अभि० ७१२३

४ कुमार० ११३ ५१११ ३४ ७११८

५ कुमार ५१३४

६ रघु० ११११०

७ विक्रम० ४११७

८ कुमार० ५१११ ३४

९ अभि० ७१२३

१० अभि ७१२३ कुमार ५१३८

११ विक्रम० ४११९—आरण्यपवित्रस्तनवीर। पर्वमेव ३९ पादराग।

भास० ११११ रागरेखा। अंक ३ पु० ३०३ रागरेखाविम्यास। अंक ३

प्रायः प्रतीत होता है कि आसता समान की भी कला थी<sup>१</sup>। मासविका के बरणों को बह्मकाविका ने छालकडक से बहुत सजाया था<sup>२</sup>। स्त्रियाँ तो इस कला में प्रवीण<sup>३</sup> हुआ ही करती थीं पर पुरुष भी इस कला में बग हुआ करते थे। मासविकानिमित्त में तो सबी का सरल हाम्य है कि मैंने इस कला को राजा से सीखा है<sup>४</sup> पर रघुवंश के अन्तिम राग में बामुक वनिवण अपने विनाशोपन में स्वयं रात्रियों को महाबल लगाने बैठ जाया करता था<sup>५</sup>। स्त्रियों की तरह पुरुष भी अपने महाबल लगाते थे पर बचपुरुषोप पर<sup>६</sup>।

### गृहार के अन्य उपकरण

अन्वय तिलक ओछराय और आसता के अतिरिक्त गृहार के किए नामा प्रचार के बबनेय उरीर चन्दन अंगराय पुष्प सुगन्धित इष्य इन छेक तथा सुगन्धित फूलों का प्रयोग किया जाता था।

पुष्प—फूलों का बहुत अधिक प्रयोग होता था। बामुपण बाले प्रसंग में बताया ही जा चुका है कि किस-किस प्रकार के पुष्प किस स्थान पर और किस रूप में धारण किए जाते थे। फूलों की रचना अवर्तन बल्य द्वार बेसी आदि सभी थी। पूर्वमेव २८ में पुष्पलाबी नाय की जाति का प्रसंग है जो फूलों को बेचती थी। इसी प्रकार मासविकानिमित्त में भी उद्यान-यात्रिका है, अतः फूलों का उस समय बहुत अधिक चन्दन या इगमें कोई मंग्य नहीं।

चन्दन<sup>७</sup>—सीतलता तथा सीन्दूर के लिए चन्दन का प्रयोग किया जाता था वैदिक हस्त<sup>८</sup> और पिरिय को छोड़कर सभी क्षत्रियों में स्त्रियाँ चन्दन का प्रयोग करती थी<sup>९</sup>। चन्दन को बम्पूरी को सुगन्धि में बनाकर सुगन्धित भी कर लिया जाता था<sup>१०</sup>। अथवा त्रिवेणु वालीय बम्पूरी को **बुडुम** में मिनाकर सुगन्धित

- १ मान० अंक ३ पु० १०३      २ मान० अंक ३ पु० १०३ १०४
- ३ मान० अंक ३ पु० १०३ १०४ बमार० ७३१६
- ४ मान० अंक ३ पु० ३ ३      ५ रघु० १६।२५ २६
- ६ रघु० १८।४१
- ७ विमुच्य सा हारमहानिचया विलोप्यट्टिप्रविमुच्यचन्दनम् ।—बुमार० ३।८  
—उत्ताप्रमरपुमशना स्मिपुहे टलाटिवा चन्दनमरालता ।—बुमार० ३।३३  
—विन्दनेगविन्दनचन्दनम् ।—बुमार ८।८३
- ८ महाहरचन्दनरागयोरेम्पुवारकुम्भेदुमिर्भेदचहरी । विनातिनीना स्तनगालिनी  
नामर्गश्रियम् ॥
- ९ भाग्य १।२४ ९८ भाग्य० ३।२० ९।३२
- १० चम्पनेनापराय च सुगन्धामिमुगंधिना—रघु० १७।२४

अवक्षेप भी बना किया जाता था<sup>१</sup>। काके अंगर में चन्दन मिलाकर भी अवक्षेप बनाए जाते थे<sup>२</sup>।

चन्दन के तीन प्रकार पाए जाते हैं—

हरिचन्दन—इसका प्रयोग स्त्री<sup>३</sup> तथा पुरुष<sup>४</sup> दोनों करते थे।

रक्तचन्दन<sup>५</sup>—इसका प्रयोग चोट पर किया जाता था।

सिद्धचन्दन<sup>६</sup>—सौन्दर्य के लिए प्रयोग किया जाता था उसी प्रकार उसे हरिचन्दन तथा साधारण चन्दन।

अंगाराग<sup>७</sup>—चन्दन की तरह शरीर पर अंगराग का भी प्रयोग किया जाता था। कभी-कभी इसको कस्तूरी में बसा कर सुगन्धित कर लेते थे<sup>८</sup>। जनसूमा ने सीता के शरीर पर इतना सुगन्धित अंगराग लगाया था कि फूलों से भीरे भी उड़-उड़ कर दूर ही जाने लगे थे<sup>९</sup>। सितांगराग<sup>१०</sup> और कासीयक अंगराग<sup>११</sup> भी परबामराग<sup>१२</sup> इसके प्रकार-विशेष हैं।

अन्य अवक्षेप—चन्दन तथा अंगराग एक प्रकार के अवक्षेप ही हैं। अनुसैन्य ग्रन्थ इंगित करता है कि अवक्षेपों के भिन्न-भिन्न प्रकार घाटीरिक्त सौन्दर्य के लिए प्रयुक्त किए जाते थे और चिरह में अनुसैन्य छोड़ दिया जाता था<sup>१३</sup>। अन्य अवक्षेपों में पुष्पागुध,<sup>१४</sup> कासागुध और चन्दन<sup>१५</sup> केसर का अवक्षेप<sup>१६</sup> प्रियंकु कासीयक कुङ्कुमसिक्त कस्तूरी और चन्दन मिश्रित अवक्षेप<sup>१७</sup> उपरीरानुक्षेप<sup>१८</sup> आते हैं।

गोरोचन—गोरोचन बनेलबन का पदार्थ है अथ कवि इन्द्रमती के ने उगी मुनन्दा के द्वारा ब्रह्मब्राता है कि तुम गोरोचन-भी गोरबन हो यदि स्वामवर्ध

१. तानु० १।१४

२. कमार० ५।१६

३. मात० अंक ४ पं० ३१७

४. रघु० १६।५८

५. रघु० १२।२७

६. पुरुष भी प्रयोग करते थे —दुर्गा ७।१२

७. तानु० २।१२

८. रघु० १।६ अधि०, ७२

९. तानु० १।७

१०. रघु० १७।२४

जैसे पाण्डव दैत्य के राजा थे विवाह कर लौगी तो उसनी ही सुन्दर लसोपी जैसे बारह के साथ बिजली<sup>१</sup> । यौरोचन का प्रयोग स्त्री और पुंस्व दोनों ही मुख पर पत्र-रचना के लिए करते थे । राजा अतिथि ने राज्याभिषेक के अवसर पर पत्र-रचना के लिए ही इसका प्रयोग किया था<sup>२</sup> । छत्र पावती के विवाहावसर पर उनके मुख पर पत्र-रचना इसी से की गई थी<sup>३</sup> । यौरोचन से कुपट्टे पर चित्र भी हंस आदि के बना लिए जाते थे<sup>४</sup> । यह शुभ माना जाता था ।

**हरिताल और मैम्बिसल**—भाषे पर सिलक लगाने के लिए विवाह के शुभ अवसर पर हरिताल और मैम्बिसल का प्रयोग किया जाता था<sup>५</sup> ।

**तेल**—महाने से पूर्व तेल मसा जाता था<sup>६</sup> । तेल मसवाने का आद्य स्वस्व-बुद्धि ही था । लघुसंहार म स्त्रियाँ हेमन्तशत्रु म तेल मसवाती थी ऐसा प्रवर्ण है<sup>७</sup> । घकुन्तला में भी महाने से पूर तेल मसवाने का बचन है<sup>८</sup> । विरोप प्रकारों के तेलों के नाम नहीं आए हैं । केवल ईगुदी तेल ( जिसका व्यवहार बनवासी करते थे ) का घकुन्तल में नाम है<sup>९</sup> ।

### सुगन्धित द्रव्य

सारे धरि पर ही सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग शत्रु माया में होता था । यहाँ तक कि स्नान करने के परचाल धरोवरों के बख में यही सुगन्धि बस जाती थी और वे महकते रहते थे<sup>१०</sup> । केवल वस्त्र कल सब ही सुगन्धित इन्हीं सुगन्धित द्रव्यों से किए जाते थे ।

( १ ) काला अगार<sup>११</sup>—केल, वस्त्र और कल काका कपड़ से सुगन्धित किए जाते थे ।

( २ ) घूप<sup>१२</sup>—काला अगार की तरह घूप का प्रयोग भी वस्त्र कल और केतों को सुगन्धित करने के लिए किया जाता था ।

१ रघु० ६।६५

२ रघु० १७।२४

३ कुमार० ७।१७

४ कुमार० ७।३२

५ पावती-कुमार० ७।२३ निध-कुमार० ७।३३

६ कुमार० ७।६

७ वायु० ४।१८

८ अमि ५।११

९ अमि० २ पृष्ठ ३४

१० पुरुषोत्तम ३७ रघु १६।२१ वायु० १।४

११ वैद्य- सु० ४।५ ६।१५ वरुण-वायु० ५।५

१२ बाल-पुरुषोत्तम १६ वायु० ४।५, कुमार० ७।१४ वरुण-वायु० ६।१५ वायु० ५।५

( १ ) कस्तूरी<sup>१</sup>—वस्तुओं को सुगन्धित करने के लिए ही इसका प्रयोग किया जाता था। सबसों को सुगन्धित करने के लिए इनको इसी सुगन्धि में बसा किया जाता था।

### सुगन्धित चूर्ण

सुगन्धित द्रव्यों की तरह गानाप्रकार के सुगन्धित चूर्णों का प्रयोग, किया जाता था। अत्यक्त जैसे मुख पर पाउडर का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार मुख केष्ठ और शरीर के अन्य भागों पर तरह-तरह में चूब लगाए जाते थे।

( १ ) लोघ्रप्रसन्नरज—लोघ्र का चूर्ण मुख को गौरव्य का करने के लिए प्रयुक्त किया जाता था। उत्तरमेघ इस बात की पुष्टि करता है<sup>२</sup>। कुमारसम्भव में भी लोघ्रचूर्ण का प्रयोग किया गया है। यह प्रयोग पहले स्नान से पूर शरीर पर है<sup>३</sup>। उत्तरचान् गासों पर अर्वात् स्नान करने के पश्चात् मुख पर इसका प्रयोग है<sup>४</sup>।

( २ ) अम्बुज रेणु<sup>५</sup>—शरीर पर यह प्रयुक्त किया जाता था। परम्पु सम्भावना इसकी भी है कि मुख पर भी अम्बुजरेणु इसका प्रयोग हुआ करता होगा।

( ३ ) केसर-चूर्ण<sup>६</sup>—रघुवंश में गीताराम चतुर्वेदी 'बभ्रुमुत्थितययातुलं का अनुवाद केसर-चूब करत है। इस कथनानुसार केसर-चूब का प्रयोग कंठ में किया जाता था। रेणिए, टीका मस्तिष्कात्—रघु० १२।२२।

( ४ ) केतक रज<sup>७</sup>—केतके के कूलों का, विराय, सुगन्धित चूब का एक प्रकार था जो शरीर पर सुगन्धि के लिए मला जाता था।

( ५ ) मुस्तचूर्ण<sup>८</sup>—जब सब चूर्णों के अतिरिक्त मुख वा कोई चूर्ण विशेष भी रहा होना जिसमें कई वस्तुओं का सम्मिश्रण कर दिया जाता होना। अतः इसको किसी पुन मादि की संज्ञा न देकर मुखचूब ही कहा गया।

( ६ ) कस्तूरी का चूर्ण<sup>९</sup>—बालों को सुगन्धित करने के लिए कस्तूरी का चूब लगाया जाता था।

( ७ ) केदरचूर्ण<sup>१०</sup>—कस्तूरी के चूब की तरह अन्य केदरचूब भी व जिनको कोई विशेष नाम न देकर केदरचूब कह दिया गया।

मंसेप में समस्त बूजों को तीन बरों में संश्लिष्ट किया जा सकता है। मुल बूज केचबूज तथा घरीर पर लगाने का बूज। मुलबूज में सोझ अम्बुज केस में कस्तूरी और घरीर पर केतकबूज और कमबूज जा सकता है।

मृगरोचन—श्री सीताराम जगुर्वेदी इसे मोरोचन कहते हैं। टीका में भी इसे गायेचन ही कहा गया है। इसी प्रकार सीप मिट्टी द्वारा किमलय केसर माक्षिका भी मृगार के लिए प्रयुक्त हुआ करती थी<sup>१</sup>।

वपण—वपण का प्रयोग अनेक स्थानों पर आया है। कुमारसम्भव<sup>२</sup> रघुवंश<sup>३</sup> सचन्दास<sup>४</sup> ज्ञानुमहार मंत्र में ही वपण छन्द का वपण और नाम है, अथ वपण होता है कि मृगार देवन क लिए इसकी उपयुक्तता सब समझते थे। सीने क चौपट पर वपण<sup>५</sup> कराचित् बानी लोगों को बन्तु थी। वपण की अनुपस्थिति में पहल में भी मुल-छवि वप भी जाती थी<sup>६</sup>।

प्रसाधन-कला—प्रसाधन-कला और प्रसाधन-विधि में कौशल छिपा था। यह कला प्रत्येक को नहीं जाती थी। अग्निज्ञानशाकुन्तलम् में लल्लिमा अपने चातुप से पद्मलला को मनाने की चेष्टा करते हैं<sup>७</sup>। इसी प्रकार पावती क बिबाह के अवसर पर प्रसाधिका उन्हें अंजन आदि लगाती हैं<sup>८</sup>। अविधि के राम्यात्रिपद पर प्रसाधिकाएँ उनका मृगार करती हैं<sup>९</sup>। मातृविक्रमविधि में भी बलसाधिका महाबल से मातृविका के चरण अति कौशल के साथ रेंगती है और उनसे पूछने पर कि उमने इस कला का किसम सीखा वह परिश्रम में बहती है—महापद्म से<sup>१०</sup>। इसी मात्रक क पंचम अंक में पंडिता कौण्ठिकी से कहा जाता है—मत्स्य प्रसाधनक बहसि तद्वय मातृविकाया घरीरे विराहनेवपमिति<sup>११</sup>। कमी-कमी मायक भी अपनी प्रेयसी का प्रसाधन किया करता था। अग्निचर्य भी कमी-कमी स्त्रियों क चरणों में महाबल छया दिया करता था। महादेव जी न भी पावती का पूजों से मृगार किया था<sup>१२</sup>।

- |                            |                            |
|----------------------------|----------------------------|
| १. अमि० अंश ४ पृष्ठ ९४     | २. कुमार० ७।२९ २६ ३६ ८।११  |
| ३. रघु० १।१२९ ३७ १६।२८ ३०  | ४. अमि० ७।३२               |
| ५. मातृ, ४।१४              | ६. रघु० १।७।२६             |
| ७. अमि०, अंक ५, पृष्ठ ९९   | ८. कुमार ७।३६              |
| ९. अमि०, अंक ५, पृष्ठ ९९   | १०. कुमार ७।२०             |
| ११. रघु० १।८।२९            | १२. मातृ० अंश ३ पृष्ठ ३०३  |
| १३. मातृ, अंक ५, पृष्ठ ३४१ | १४. रघु० १६।२६ कुमार० ८।२७ |

मर्मा अध्याय

# सामाजिक जीवन, नीति-रिवाज तथा आचार-व्यवहार

## पारिवारिक जीवन

सामान्य जीवन तथा गृहस्थ जीवन से वह पृथक् स्पष्ट हो चुका है कि पति-पत्नी बिना प्रचार अपने वस्तुओं और उत्तरदायित्व का वाचन करते हुए बरतार सुखी जीवन व्यतीत किया करते थे। परिवार में पति पत्नी और बच्चों के अतिरिक्त माई, बहिन चाचा लमुर, बहू मामा चाचा तथा भाई और पिता दोना और के सम्मानिता का वचन प्रमाणित करता है कि इन समय भी संयुक्त परिवार की प्रथा रही होगी।

मित्र—पारिवारिक सम्बन्धों के अतिरिक्त मित्र का भी पारिवारिक सम्बन्ध में उच्च स्थान था। इन दिनों 'छात्रपरीक्षा सत्य' का मुद्राचर प्रसिद्ध था। इसी को पारिवारिक ने बाल्यकाल के लक्ष्य हमें वापस बिना हो गए हैं। हम स्वयं में भी व्यक्त किया है। मित्र का स्थान गिरता उच्च था इसका प्रमाण रामदेव की मृत्यु के वचनानु रति के विचार करते हुए 'पूरा जानी रही मे प्रम काम में मते ही रिवाज कर है पर मुद्रा में समता प्रम जगत् राजा के मुक्त सम ही वचन का' से स्पष्ट है।

या । बही समस्त कार्यो को अपने प्राणों की बाजी लगा कर सम्पादित करता था । बुद्धि-बल से ही मित्र की इच्छापूर्ति अबका मित्रि नहीं बणिगु अटल स्नेह ही काय का मित्रि-दार तक पहुँचाता था । इन्हीं कारणों से मित्र का समाज में बहुत आदरपूर्ण और उच्च स्थान था । जनमूया और प्रियंवदा न अपनी मन्त्री शकुन्तला के लिए बरा-बरा किया इसका जितना भी बर्णन किया जाय सोझा ही है । दोहा के विष्णु में सहयोग विवाह में सम्मति ही नहीं सहानुता भी इन्हीं सागों की देन थी । दुर्जना को मराना प्रयत्न कर उसी को दार से मुक्त कराने का भी इन्ही लोगों का प्रयत्न था । राजा के भूल जान पर शकुन्तला से अगिष इनको ही बिन्ता थी कि कब राजा की इस विवाह की याद रिखाई जाय । समस्त काय सहमा हो मग्न हो बेलकर इनके रूप का पारवार न रहा यद्यपि सखी के बिछड़न का भी दुःख सोझा न था । इनकी परस्पर मित्रता और प्रेम की देखकर बुध्दय के मुख में भी ये शब्द निकल पड़े आन लोच एव-सी रूपबानी और एव-जो अवस्थाबानी है । आप साथों का यह सौहार्दमात्र मुने बड़ा प्यारा लगाता है<sup>१</sup> ।

मित्रता करने समय कबि बतावनी भी देता है कि मनुष्य को महा साध समझ कर जान करना चाहिए । अयोग्य व्यक्ति की मित्रता से बड़ा दुष्परिणाम भी होता है । बिना किसी के स्वभाव को भली प्रकार जान कभी मित्रता नहीं करनी चाहिए, नही तो यह मित्रता शत्रुता बन जाती है । अतः अच्छी तरह परीक्षा कर लेनी चाहिए<sup>२</sup> ।

पामिनि ने 'सात्तरदीन मरुतम् प्रयुक्त किया है<sup>३</sup> । वाचिदाम ने भी इसी रूप में सात्तरदीन का प्रयोग किया है<sup>४</sup> । मित्रता सात्तरदीन इनलिए बतलाती थी कि इसको स्थायता मात्र पर चम्पे से ही होती थी । अथर्ववेद महाभारत में भी इसी बात की पुष्टि है । महाभारत में 'पति-वन्धी का सात मंत्र पश्यर ही सात्तरदी मित्र बनाता है, एसा लिखा है<sup>५</sup> । वाचिदाम में भी इसी

१ अतो नमश्चोत्तरमपीयं भवतीना सौहार्दम् । —अभि० अंक १ पृ १७

२ अतः परीक्ष्य कतमं विशयाम्भर्तम् ॥

अज्ञातहृदयेनैव वैरि मण्डि शोद्धम् ॥ —अभि० ५।२४

३ सात्तरदीन सप्तम् —( ५ २ २२ )

४ प्रयुक्त सात्तरदिशमामना न यां परं मंत्रत्रितमहसि ।

यन गतां संमतात्रि नैवतं मनीषिणि सात्तरदीनमुच्यते ॥



कारिग्राम के धर्म उत्काशोन सैस्वनि

की प्रतिष्ठा है, वहाँ ब्रह्म इन्द्रमयी की मनी कह कर सम्बोधित करता २

भृत्यवर्ग—परिवार व समुष्टि के अनुसार भुख रखा करते थे काम अपने स्वामी की सेवा करना था। इन सबकों के साथ सदा दया और के साथ व्यवहार करना ही उत्तम समझा जाता था। कृष्ण ने एकुत्तना का के कर बाये समय उपदेश ही यही दिया था कि 'अपने परिवारा के उबार रहना' ३।

सेबकों का आदर अपने स्वामी के प्रति गणना रखा था। जिस काम का उनको भार दिया जाय उसको पूरी तरह से करना समझा जाता था। जिसकी रखा का भार सेबक को मिलता था उसको वह प्राण लेकर भी रखा करता था नहीं तो उनके मरने हो जाने पर स्वामी के सम्मुख उगड़ी क्या स्वामि-मन्त्रि ३ २ रखा दिखीय इसी कारण मन्त्रिनी की रखा के बरमे बाने धरोर का मास देन के लिए तैयार हो गए थे।

रखा के पास भुख को सम्बो रखा रखा करती थी। इनम कारण वैवातिक ४ सेवक ५ दौवारिक ६ प्रतिहार ७ द्वारपाल ८ कर्म पट्टन बाने ९

१ एहिनी लखि लखी मित्र मित्रपिण्या ललिते कलाविधौ । —रघु० ८।६०

२ भूविष्ट मन्त्र दक्षिणा परिव्रज भाग्यधनुस्तेकिनी । —अभि ४।१८

३ भवानपीठ परकलवति महाहिं यलस्तत्र देवशरी ।

स्थातु नियोगुर्न हि शक्यमये विनाश्य रक्षं स्वयमासतैन ॥ —रघु० २।५५

४ बच के सम्पाप व हमर उपाहरण दिए जा चुके हैं।

५ मंगलपट्ट भाग्यलक्षा मूला विदमरिगमाद्भाषा बीरमेतन् प्रविष्ट किं निगर्त

वर्षमाने भुषोति । —मात० अंक ५ पु० ३३६

(सेवक बड़कर मुलाया करते थे)

६ दौवारिक —(प्रपम्प)



बनते होंगे। अवश्य ही यह ईंटों से बनते होंगे। पाणिनि के समय में भी ईंट के मकान बनने लगे थे<sup>१</sup>। बानीर-ग्रह भी तत्कालीन समाज में प्रचलित थे<sup>२</sup> जो प्रायः लकी-सट पर बने होते थे।

इन गृहों में अपनी आवश्यकतानुसार अनेक कम होते थे अथवा एक ही बड़े मकान को कई भागों में विभक्त कर दिया जाता था जिसका अपने आवश्यकता-नुसार मनुष्य प्रयोग किया करते थे। शयनगृह, यज्ञशाला अग्निशाला स्नानागार महान्त सारमांशगृह आदि कई विभाग थे। राजाओं के महलों में भी इसी प्रकार का विभाजन था। उनका स्वागतालय पुष्क रहता था उस छुड़ात पुष्क। इनके अतिरिक्त क्षत्रु के अनुकूल विधामहायक कई भवन और भी रहते थे। समुद्रगृह मणिहृम्य भवन प्रवास-शयनगृह, मेघ-अतिथिगृह इसी प्रकार के भवन थे। राजाओं के पास विनोद के लिए भी पुष्क भवन थे। नाट्यशाला चित्रशाला संगीतशाला आदि इसी प्रकार के स्थान थे। इनके विषय में स्थापत्य विभाग बाके अध्याय में प्रकाश डाला जायगा।

फर्नीचर—बैठने की सभी वस्तुएँ आसन<sup>३</sup> कहलाती थी। गजद्वारागल सिंहासन बैरासन कनकासन इत्यादि बैठने की वस्तुओं के विभिन्न प्रकार हैं। मिहासन<sup>४</sup> राजा के ही बैठने के लिए होता था। यही सुवच का बना होता

—विद्युत्तर्भं कश्चित्कविता सेम्यचार्य सविचा-  
रापीत्राय प्रहृतमुरजा स्निग्धर्भमीरभोपम् ।  
अन्तर्तीर्षं मयिमयमुवस्तुंगमभ्रनिहासा-  
प्रासारस्तवा तुल्यिनुमकं यत्र तैर्मीविद्योरे ॥ —उत्तरमच १

१ India as known to Panini by V S Agarwala  
—P 135 (1953 Ed)

२ अत्रानुपेयं अत्रपानिमुत्तस्तरेनराजेन विनीकयत् ।  
एतस्त्वदुर्म्भननिपण्णमूर्ध्नी रमरापि बानीरगृहेण गुणः ॥ —वपु १३।३५  
—अग्निप्रियावज्रितगैवज्जानि रत्नानोपममयमनाजुवन्ति ।

अगन्तवानीरमुहाणि बुद्ध्या द्यूमानि द्यूये तरमुज्जतानि ॥ —रघ० १६।२१

३ एतदगमवाम्यताम्—विजय गृह १८२  
—महेन्द्रमचनं मच्छता अयवतीताप्यायेन रत्नमामनं प्रणिषा हत्

४—विजय० गृह १६२

था तथा इसमें तरह-तरह के रत्न जड़े रहते थे<sup>१</sup> । टी० ए० गोपीनाथ राव के अनुसार यह चार पायो का बना होता था । इसका नाम सिंहमन पडा ही इसलिए कि इसके चारों पाया पर चार छोटे-छोटे सिंह बन होते थे<sup>२</sup> ।

कनकासन<sup>३</sup> ( कनकासन नाच-सा भी हो सकता है जिसपर बर-बन्दा दोनों बट छके) रत्नबहासन<sup>४</sup> सोने के बरबा रत्न जड़े आसन हूतं थे । बेनामन बेत ब बने आसन थे । यह श्रुति-मुनियों के बैठने के लिए प्रयुक्त किए जाते थे । मन्त्रा के म्युरियम ॥ बेत बी कुरमी है, भव बेबासन इमी का कर है ।

हाथोराठ के मिहामम जो होने थ । गजरातापन<sup>५</sup> इसी प्रकार ब मिहामन की व्याख्या है ।

इन बड़-बड़ आसनों के अतिरिक्त चौकियाँ ( Stool ) भी होती थी । राजा ज्ञान करणों को इन्हीं चौकियाँ पर रखा करते थ । बहु पारसी<sup>६</sup> कहलाता

१ वेणिए, पिछले पृष्ठ की पादटिप्पणी नं० ४ पृष्ठ ७१८

—सैदा महाद्वैतनर्तस्वितानामुधारनेष्वयमूठा म मध्ये—रघु ११६

२ The Hindu Iconography Vol. I Pt I, Page 21

३ टी स्तनरैवयुगला च राजा पुरीमिमिरच कल्प प्रयक्तम् ।

कन्याकुमारी कनकाममस्वागरीश्वरागोपमन्त्रमूठा ॥ रघु० ७१२

—कनूतोपकारां कनूत्यवैरीं तावेत्य परवाकनकासनस्य ।

आवागती कौविकमेपमीयमाश्रितारोपमन्त्रमूठा ॥

—कूपार० ७१

४ पराध्वजवास्तिरचोपान्तमस्तिरिधानुरनकवासन ॥ ।

भुविष्ठमामीनुपममन्त्रमिभयूरकूट्रममिणा गृह्ण ॥ —रघु० ११४

५ तत्र कनकामनामीनानुत्ताननपरिग्रह ।

दन्तुबावेरकनान्वाचं प्राश्रितियुक्तेस्व ॥ —कमार० ११५३

६ तत्र कनकामनामर्त्यं यज्ञरत्नामर्त्यं दाधि ।

गालरत्नमन्त्रात्मन नरप्ययत्तान न ॥ —रघु० १७११

७ विज्ञानमहितं तत्र धेजे धनुकमामनम् ।

नूत्रामपिमिभुष्टापीरं गरोत्तिताम् ॥ —रघु० १७१८

—गारीठ—बी नु नरप्यमनामानं गान्तोरेत्यं मगापदेन ..

तिगगदस्तिष्ठति । —विजय० पृ० २४८

बा । सोने का बना होने के कारण हीमपीठ<sup>१</sup> तपनीयपीठ<sup>२</sup> भी सम्बोधित होता था । छोटी चौकी पीठिका कहलाती थी । पारसिज अपने सूजे चोट काए पैर को सोने की पीठिका पर ही रखे बैठी थी जब अग्निमित्र उसे देखने आया था<sup>३</sup> । मङ्गपीठ<sup>४</sup> भी इसी प्रकार की चौकी थी जिस पर बिठाकर ( राज्याभिषेक के अवसर पर ) राजा को तीर्थों के बच से नहलाया जाता था ।

सैदा प्रसंगों से अग्निमित्र होता है, बिछर पूज्यजनों जबवा राजकीयजनों के बैठने के लिए प्रस्तुत किया जाता था<sup>५</sup> ।

मंच<sup>६</sup> ( Raised Platform ) को हम जैटफ़ॉर्म कह सकते हैं । मंच पर बहने के लिए सीढ़ियाँ लगी रहती थीं इन पर सिंहासन रखे थे । तम्प<sup>७</sup> और

१ कामरूपेस्वरस्तस्य हेमपीठविदेवताम् रत्नपुण्योपहारेषण्णायामानव पादमा ।

—रघु ४।८४

—माकुञ्जिताश्वगुप्तिना ततोऽप्य किञ्चित्तमावजितनेत्रोत्तम ।

तिर्धन्विसंसर्पिण्यप्रमेय पादेन हीमं विद्विषेच पीठम् ॥

—रघु ५।१५

२ तस्माच्च किञ्चिदिवाचतीर्णविसंस्तुतन्ती तपनीयपीठम् ।

मान्मन्त्रको मूषक्य प्रसिद्धवन्दिरे श्रील्लिमिरम्य पारी ॥ —रघु० १८।४१

३ अनुचितनुपुर्णविह्वं नाहसि तपनीयपीठिकलम्बि ।

वरयं रत्नपरीतं कसमाचिणि मां च पीडयितुम् ॥ —माल ४।१

४ इति कुमार मङ्गपीठ उपवेशयति । —विष्णु ८० २५५

—तत्रैव हेमपुष्पेषु संप्रतैस्तीक्ष्णधारिणि ।

जातस्तु प्रहृतयो मन्त्रीपीठोपवर्णितम् ॥ —रघु १७।१०

५ नारद—आनुष्मानेति । राजा—अयं विहरीज्जगुङ्गणाम्—विष्णु ५ २५४

—परिवेनुमुगांशुवारया बुगपुर्त प्रथमागु विष्णुम् । —रघु ८।१८

—तत्रैव विहरीज्जगुङ्गणाम्—विष्णु ५ २५४

नवे कुङ्कुमे च मनीषनीर्णं प्रणयरीत्मवममन्त्रवजम् ॥

—कुमार० ७।७७

६ त तत्र मन्त्रेषु मनोमन्त्रान् गिरागनस्यानुपचारयामु ।

पयस्क परलम की तरह य जिन पर दायन किया जाता था। परलम को जब पड़े  
 तकिण से मुक्त कर सोन के सिण उपयुक्त कर लिया जाता था। तब यह धम्मा<sup>१</sup>  
 कहलाती थी। सिंहासन मंड पलंग आदि सभी उत्तरच्छद<sup>२</sup> जयवा धाम्तरण<sup>३</sup>  
 से ठके रहते ये अपना इनम यह बिछाई जाती थी। उत्तरच्छद से धम्मा की इक  
 दिया जाता था और कसों पीठ आदि को धाम्तरण से आच्छादित और सोमित  
 करते थे। ये रंग-बिरंगे भी होते थे<sup>४</sup> और हंस की तरह खेत भी<sup>५</sup>। अनापित्  
 धम्मा का आच्छादन सब और अन्य रंग-बिरंगे हुआ करने थे।

घटन—बठन मिट्टी<sup>६</sup> सोन<sup>७</sup> जयवा जय कीमती वस्तुओं के बनते थे

—अवतनपोदागसम्यपारं तावमिवावतनं प्रविज्जाम् ।

मविस्मयो वाधरवेस्तनूज प्रोवाध पुबद्धिबिमुल्लस्य ॥ —रघु० १६१६

१ अरिच्छद्म्यां परितो विधारिणा सुजग्ममस्तस्य निजेन तेजसा ।

निरीवरीणा सहुसा हतत्विपो बभूवुरास्तेष्वसमर्पिता इव ॥

—रघु० ३।१३

—तं कणमूपननिषीदितपीवरांमं सम्योत्तरच्छदविमं कृशागरागम् ।

—रघु० ३।६५

—यस्या बहत्पुमपराविनीतनिशः स्तम्बेरया मुसरणुल्लस्यपिस्त ।

—रघु० ३।७२

२ वैपिए, पारटिण्णी मं १ —रघु० ५।६३

—उत वदयान्तरग्यमं वज्रन्ताममं शुचि ।

मोत्तरच्छदमध्यास्त नेपय्यग्रह्याय स ॥ —रघु० १७।२१

—तन भिन्नत्रिपमात्तरच्छदं मध्यविशिष्टविमूत्रमयत्तम् ।

निमित्तेऽपि यमनं निपात्यये मोहितं वरणागमपाच्छितम् ॥

—बुभार० ८।८६

३ पराज्यवपस्तिरगोपगममायेन्निवात्स्नवरासुर्गं स । —रघु० ९।४

४ वैपिए, पारटिण्णी मं० ३

५ तं व हंमपत्रमोत्तरच्छदं जाल्मबीपुजिनं वाग्म्यतमम् । —बुभार० ८।८२

६ न मुम्यये बीठिग्यमम्याग्वावे निपायाभ्यमनपमीक ।

पुतप्रकातं यममा प्रजास प्ररुपत्रयामातिविमानियेय ॥ —रघु० ५।२

७ बभू पुरः पयगि देवरात्र पुनीतुमोत्तरी वज्रपञ्चम ।

या हेमपुग्ममननि मृतानां स्वग्न्य मातुः पयनां रमजा ॥ —रघु० २।३६

—रघुनाभगतं दाम्प्यमारधानं वरवत्तम् ।

बह्व्रवद्याशयस्य पुन्यतेनानि दुबहम् ॥ —रघु० १।५१

भिन पर मणि भी बड़ी रहती थी<sup>३</sup> । समूह व्यक्ति सोने आदि कीमती धातुओं के बत्तन प्रयोग करते हुये सामान्य बग मिट्टी के ।

साधारणतः बत्तन के लिए सामान्य शब्द पात्र<sup>४</sup> जाया है । सम्भवतः कौनो को तरह बीज में रहना कोने उठ हूय फैसे आकार का बत्तन ( पात्र ) होया क्योंकि बीर इसी प्रकार के बत्तन में रखी जा सकती है<sup>५</sup> ।

कुन्<sup>६</sup> कस्य<sup>७</sup> और घट<sup>८</sup> पानी रखने के पात्र थे । कुम्भ का मुख गीच का अथ पानी भरने में ऐसा राख होता था कि रखरख को भी हाथी

सोऽष्टाक्रममिमात्रनापितं कल्पयुक्तमनु विप्रति म्वयम् ।

त्वामिदं स्थितिमतीमुपागता मन्थमावनचनापिश्रिता ॥

—कुमार० ८।७५

देविए पिछले पृष्ठ की पादटिप्पणी नं ६ —रघु १।२ और नं० ७

—रघु० १०।५१

देविए, पिछले पृष्ठ की पादटिप्पणी नं ७ —रघु० १०।५१

देविए, पिछले पृष्ठ की पादटिप्पणी नं ७ —रघु २।१६

—तस्याधिकारपुरुष प्रपते प्रविष्टा प्राञ्जलवेदिबिनिषेपितपूजकुम्भाम्..... ।

—रघु ५।६१

—कुम्भपूरयनक पदुक्कचैदम्भचार त्रिनिरीक्रममि तस्या ।

तत्र न द्विरनुष्ठितशकी वाक्यपातिनमिषु विममज्ज ॥ —रघु० ६।७१

—हा तातेनि व्रन्ति तमावस्य विपञ्चस्तस्याम्निगम्येत्तमपुं प्रमथं स ।

अन्वयोर्तं प्रेरय मनुष्मन् मुनिपुं तापाश्च-वास्य इवासीत्त्रिनिरीपि ॥

—रघु० ९।७६

—तेनावतीय सुरणाश्रयिनाम्भवेन पूजान्वयः स जसकुम्भमिगम्यदेह ।

तस्मै द्विजगणैर्पायिमुं रत्नान्द्रिस्तामानमसारयौ वधपावभूय ॥

—रघु० ६।७६

—आव्रितापान्द्रुमलोच मनुष्येना स्तन्या बभूवु । —कुमार० ७।१

एव नूनं तद्यात्मयना मनाम्भ ( इति वसन्तमावजयति )

—अग्नि शंकर १ प० १५

के पानी पीने का अभ्यस हो गया<sup>१</sup> । यह और कुम्भ में आकार का भण्डर है । यह छोटा कुम्भ है जिसे स्थिर रखकर से ठठा सकती थी और बूतों को पानी बहि रिया करती थी<sup>२</sup> । उसपर कुम्भ रखना अभ्यस समझा जाता था<sup>३</sup> । कसबा भी पानी रखने का पात्र था । अथवा छोटे व्याले से जलमें मखिरा पी जाती थी । जात्रकस भी मखिरा पीने के अथवा विशेष प्रकार के ही होते हैं ।

किञ्चिदन्तर्गत के अथवा<sup>४</sup> पत्तों के पाने<sup>५</sup> भी प्रयुक्त किए जाते थे । अन्य आवश्यक सामग्रियों में बेजपट्टि<sup>६</sup> छाटा<sup>७</sup> माना प्रकार की वस्तुओं के रक्षण

—एषा स्वया पेषनमभ्ययाणि बटाम्बुर्नवचित्तवासवता । —रघु ११।३४

—गयोपटैरुभयमवास्तुनात्मनश्चयन्ती स्वचक्षुःशुक्ले ।

अर्गस्यं प्रकृतनयोपपत्त स्तनं च यत्रोत्तिमवाप्स्यसि स्वम् ॥ —रघु० १४।७८

१ बेजिए, पिछले पृष्ठ की पारटिप्पणी नं० ४ —रघु० १।७३

२ बेजिए, पिछले पृष्ठ की पारटिप्पणी नं० ६

३ बेजिए, पिछले पृष्ठ की पारटिप्पणी नं० ४ —रघु० १।६३

४ गिभीमुगोन्ठसगिरः कजात्पाञ्चरी गिरस्वैस्वगरीस्तरैः ।

रक्षगिति धोणितमद्यकुस्या रराज मत्पोरिज पानमूमि ॥

—रघु० ७।४६

५ मन्त्रमोमवदपाञ्चकमामूरिजम् अथुविजवतगुचाम् । ( गुचा )

—रघु० ११।२३

६ दुम्बा पत्र पत्रगु मदीयं पुत्रोपमृद्वति नमाश्रितेन । —रघु २।६५

७ आचार इत्यवहितेन मया दृष्टीता या बेजपट्टिरवरोधगृह्णतु यम् ।

—अमि० १।३

—मन्त्राद्विहारमतीत्य मन्त्री वामप्रकोष्ठवित्तहेमवैत्र ।

मुगार्तिर्नैवामुनिनश्चैव या चारसायेति मयाभ्यर्चनीम् ॥

—भुमा ३।४१

८. भोगमुच्यमानमवसापयति प्रविष्टा चित्तानि अत्यपगिणाम्नवृत्तिरेव ।

नानिधमात्रनवाय न च धमाय राज्यं स्वहृत्पदमरुद्विषयतामम् ॥

—अमि०, ५।६



के लिए मञ्जूषा<sup>१</sup> कारण्डक<sup>२</sup> तासवृत्त को पिटाही टोफरी<sup>३</sup> या पेटक<sup>४</sup> व ।  
ताड़ के पंखे<sup>५</sup> बाहि भी थे । कमल के पत्तों में भी पंखा छल किया जाता था<sup>६</sup> ।  
मालोक के लिए बीपकों का प्रयोग किया जाता था । य तल से बहते थे<sup>७</sup> ।  
समुद्रिणाही रत्नवटिख बीपक रखते थे<sup>८</sup> ।

वाहन ( सवारी )—नदियों को पार करने के लिए नौकाएँ<sup>९</sup> प्रयोग की

- १ पुत्रविजयनिमित्तन पारिवोपचान्त-पुराणामाभरणानां मञ्जूषाग्रस्मि संकृता ।  
—अभि० अंक १ पृ ३५५
- २ वलिकाकरण्डक गृहीत्वातामुर्धं प्रस्थितास्मि ।—अभि० अंक १ पृ० ११६
- ३ कुम्भोत्तरण्णमे तासवृत्ताधारे निक्षिप्य नीयमाना मया मत्तुरम्यन्तरविला  
मिनीमौलिरत्नयोगवी मणिरामिपधंकिता नृप्रेभाजिप्य ।—विक्रम पृ० २३६
- ४ पेटक—अग्निपुत्रमेतं कृत्वा पेटकं प्रयच्छव ।—विक्रम० अंक १ पृ० २४२
- ५ म्यामृतमविहसाने बुभुमस्तेषमाप्यसात् ।  
न वासि बामुस्तथा—तासवृत्ताभिलाषिकम् ॥—कृमार २।३५
- ६ किं क्षीतयै क्लममिनीविभिरात्रवानाम्भारव्यामि नकिनीरत्न तासवृत्तं ।  
—अभि ३।१६
- ७ निक्षीपवीणा नाना इतन्निनी बभूवुरात्मन्मगमरिणा इव ।—रघु० ३।१५  
—अप्यं तदोद्यम्य तदैव धीर्यं तदैव मैमनिकमुन्मत्तम् ।  
न कारव्यान्स्वादिभिरे कुमारं प्रवर्तितो बीप इव प्रसीतान् ॥  
—रघु ३।३७  
—भवति विरममस्तिष्ठन्निगुलीपहार स्वविरलपरिभोग्यैषदृश्या प्रसीता ।  
—रघु ३।३४  
—ननु तैलनिरेकविन्दुना मां बीपानिर्गतिं मेदिनीम् ।—रघु० ८।३८  
—निर्विड्यमिषममे—त वताममगोपिषान् ।  
आमीनाममनिराजं प्रसीपाधिरिबोरगि ॥—रघु १३।१
- ८ अविस्तुमानमिमुगमणि प्राप्य रत्नप्रणीतामृतीन्धानां भवति विहग्येत्ता

बाती थी। स्थल पर बोहे<sup>१</sup> हाथी<sup>२</sup> ऊँट<sup>३</sup> साँड़<sup>४</sup> रघ<sup>५</sup> लखर<sup>६</sup> आदि सवारियों से काय सम्पन्न होता था। युद्ध के समय बोहे और हाथी दोनों प्रयुक्त किए जाते थे। विवाह के समय बर हाथी पर चढ़ता था<sup>७</sup>। राजा भी हाथी पर बैठकर घूमने निकलता था<sup>८</sup>।

रघ में बोहे जुड़ते थे। हमम बैठकर युद्ध भी होता था और बंध भी यह एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए मुविवाजनक सवारी थी। बासठ के समय भी दुप्यन्त रघ पर बैठता था। स्त्रियों के योग्य छोटा रघ होता था जिसे कर्बोरय<sup>९</sup> कहा जाता था। अनुरसयान<sup>१०</sup> पालकी की तरह होता था जिसे चार आरमी कंधे पर उठाते थे।

### राजकीय जीवन

सामान्य जनता के जीवन पर दृष्टि डाला जा चुकी है। परन्तु बग-बिन्दप का जीवन और वर्तमान इन सबसे विभिन्न था। राजकीय जीवन के आरम्भ और सिद्धान्त सामान्य वर्ग में प्रचलित थे।

राजा के गुण—मिता की मृत्यु के पश्चात् उनका व्येष्ट पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता था चाहे वह बलवितता ही दुर्गन्धी क्यों न हो। फिर भी राजा में बहुत-से गुणों का होना आवश्यक था। कवि ने जय की अनेका व्यस्तितगत

१. गामान्य । सम्पूर्ण सत्ता में समस्त उपाहरण ।

२. आरोप्यबद्धधममुत्पत्तेराम्यवत्तु मलोत्प्लिखितो विमति ।—रघु ६।३२

४. मशान्ता वृष्टात मरिठा बलमुद्रा ।

भीमार्जुनमनुश्रुतमहोपास्यस्य विह्वलम् ॥—रघु ४।२२

५. लक्ष्य उपाहरण ।—रघु १।५४ ३।४७ ७।७० १।१० ११

६. लखर—अबोधबानीमतवादिताय प्रजे-वरं प्रीतिमता महति ।

—रघु ५।३२

७. राजास्त्रीप्राप्त्यु वरपुत्राय लक्ष्मणपुत्रवत्तत्तम् ।—रघु ७।१७

८. म पुरं पुरातनी कर्म-मनिमय्यता ब्रह्ममायवहरता नायेनैवगतीयता ।

—रघु १०।३२

९. लक्ष्मणानुदिनचार्यैषां कर्बोरयम्भा रघुवीरयम्भीम् ।

प्रमार्गकालादनदुष्टवत्तम् माधनमायो-कर्मणि प्रथमम् ॥—रघु १।४११

१०. मर्यादात् अनुरसयनकल्पान्य कस्या परिवारलोपि..... —रघु ९।१०

गुणों का अधिक महत्ता दो है<sup>१</sup> । इन गुणों में स्वस्व पुष्ट भांसज देह का होना अति आवश्यक था<sup>२</sup> । राजा विलीप इसके आशय थे । इस प्रकार के स्वात्म को प्राप्त कर ही राजा प्रजा की रक्षा करने में समर्थ होता था । 'जाने मोन रामा एकती त्यागे स्वाभावियय<sup>३</sup> राजा के लिए अनिवार्य थे । राजा ब्रज की सम्पूष सम्पत्ति ही सबके सेबाव नहीं थी बरन् गुण शक्ति और प्रतिभा भी<sup>४</sup> । राजा बहुरथ बहुत निरक्षर थे यहाँ तक कि जाने इसी गुण के कारण लक्ष्मी जी की कृपा-दृष्टि भी प्राप्त की थी । राजा अस्तिवि ने बाह्य धनुषों पर विजय प्राप्त करने के लिए अपनी इम्पियों पर विजय प्राप्त की थी<sup>५</sup> । उनका धर्म अर्थ काम के संतुलन को महत्ता देना<sup>६</sup> राजा का राजर्षि कहलाना<sup>७</sup> राजत्व को आश्रय<sup>८</sup> कहना राजा के उत्तम गुणों का प्रमाण है ।

इस सत्य राजत्व के लिए दूसरों को प्रमत्त रखने की शक्ति का होना अनिवार्य है । जिस प्रकार निष्ठाकर को चन्द्र इसलिए कहा जाता है कि बूमरो के

१ ब्रुमाश्मनं शिला परचातुदमारंघनी रवे ।

मोऽप्यीरय तेजसां वृत्ति समवेवाहितो गुणै । —रघु १७।१४

—इन्दोर्गवतयं पद्मे म्रुयस्य कुमुदेभ्यव ।

दुधास्तस्य विषतोर्षि मुषिगो मिमिरेष्ठतरम् ॥ —रघु० १७।७५

२ हेनिए, अध्याय वय-श्रुपा' —वाकिशम की मोन्वय प्रतिष्ठा ।

३ रघु० १।२२

४ बलभातबपोपछान्तये विदुषां मल्लनये बहुभुतम् ।

बभु तस्य विभीत बरवं मुजवताणि परप्रयोजना ॥ —रघु ८।११

५ उपपतोर्षि च मण्डप्यामितामनुरितान्यसिगाजराचरन् ।

भियमवेत्त न रणवचनान्मुरनमोऽनन्योमसमधुति ॥ —रघु० ६।१५

६ अनिरथा राजका बाह्या विप्रगृह्यते यत् ।

अथ मोऽप्यन्तगान्निरवाप्यदूषवमवर्णिपून् ॥ —रघु० १७।४५

७ न वयमवचामाभ्या ववाप न च तेन सी ।

नाप वामन कार्य वा मो-वेन वदुर्गान्तर ॥ —रघु० १७।५७

हृदय को शीतल करता है, सूर्य को तपन इसलिए कहा जाता है कि वह दूसरों को संतप्त करता है उसी प्रकार राजा भी दूसरों का प्रसन्न करने के कारण ही राजा कहलाता है<sup>१</sup>। दक्षिणी बाग के समान न अधिक शीत न अधिक उष्ण होना<sup>२</sup> प्रत्येक व्यक्ति में साथ ऐसा व्यवहार करना कि सब यही समझें कि हम पर राजा की कृपा है<sup>३</sup>। सागर के समान गहोर मयमयक और परोपकारी होना<sup>४</sup> साथ ही किसी के हृदय में बिरकिम अथवा भुका न उत्पन्न होने देना मग्न विनयशील और हँसी में भी कट अथवा कुर बचन न कहना<sup>५</sup> प्रत्येक परिस्थिति में उत्तर रहना<sup>६</sup> सत्यवादी व्यापप्रिय होना<sup>७</sup> प्रजा को मर्काई के लिए मृगया भुजा मरिरा आदि विचार से दूर रहना<sup>८</sup> धारुण दृष्टि से प्रजा का पालन करना राजा के गुणों का आशय है। कवि ने दुष्यन्त बिकीर्ण रघु, मग्न राम दशरथ अतिथि आदि सबको आशय रूप में ही बिबित किया है।

१ यथा प्रह्लादनाम्नश्च प्रतापात्तपो यथा ।

तथैव सोऽमृदम्बर्षो राजा प्रकृतिरजगत् ॥ —रघु० ४।१२

२ न हि सप्तस्य ओम्बस्य युक्तश्चतुर्था मन ।

आन्दे नातिशीताप्यो नमस्वानिब दक्षिण ॥ —रघु० ४।१

३ अहमंभ मतो महीपतैरिति सुखं प्रकृतिरक्षितम् ।

उद्विग्न निम्नमाजलेष्वमबन्स्य विमानमा क्वचिन् ॥ —रघु० ८।८

४ न च न परिचितो न चाग्ररज्यवद्विदुर्मुनेभि तत्रानि पादमम्य ।

मस्मिन्निबिग्नं प्रनिशयं न भवति न एव नवो नवोऽभ्यमन्थो ॥

—भास १।११

—शार नियुक्तपुण्याभिमतप्रज्ञा मिहामगान्तिरुचरण मङ्गापमम् ।

तेजाभिरस्य विनिर्वाततद्वृष्टिपानैर्वाक्पादुते पुनरिव प्रतिचारितोऽस्मि ॥

—भास १।१२

५ न वपसा प्रमथयपि आसने न वितया परिहामवपास्वलि ।

न च गपत्प्रजनेष्वपि तेन बागदद्या परपापग्रीरिता ॥ —रघु० १।८

६ येन येन विजय्यन्ते प्रजा म्निष्येन बंधुना ।

म स पागवृते तागा पुष्यन्त इति पप्यताम् ॥ —अभि० ६।२४

७ दणिष्, पादटिप्पणी नं० ५

—ममताया वमुद्रष्टिरिमज्जनेनियमनामना च नगदिर ।

अनुनयो वमगुणरज्यवर्गी सधरपात्ररपापमर् रथा ॥ —रघु १।६

८ न यवपाभिरनिन दुरोर् न च दानिप्रतिमाभर्यं मयु ।

नमन्पात्र न वा नवयोचना त्रियममा यनमानमपाहरत् ॥ —रघु० १।७

राजकीय दिनचर्या—राजा के दैनिक-कर्तव्य और समय-विभाजन के विषय में कवि ने बहुत-से स्थानों में उल्लेख किया है। कौटिल्य ने दिन को ८ भागों में विभक्त किया है। प्रत्येक समय का कृतव्य भी निर्धारित किया है। कवि स्वयं इस विभाजन को स्वीकार करता है<sup>१</sup>। प्रातः चर्मणिन म जाना<sup>२</sup> तीसरे पहर वहाँ से आना<sup>३</sup> राजा की इसी दिनचर्या का प्रमाण है। अतः राजा का जीवन नियन्त्रित नीरस और बड़ा था। राजा का कभी अपने काम से अचकाए म जाना अपने उत्तरदायित्व से मुक्त न होना इसी नीरसता की पुष्टि है<sup>४</sup>। राजा का कृतव्य अपने सुख को सिंघाञ्जलि दे घूमने को मजबूर करता था। राजा के तीन मुख्य कार्य—राष्ट्र रक्षा राष्ट्र-सिखा और राष्ट्र की आर्थिक उन्नति—ये। राजा का प्रजा का सम्बन्ध अर्थों म पिता कहेमना<sup>५</sup> इसी कृतव्य के कारण था। क्षत्रिय राज्य की व्युत्पत्ति ॥ 'पीडिता की रक्षा करें' यह हुई।

राजकीय कर्तव्य—राजकीय कृतव्यों म सबसे प्रमुख व्याप है। उनको स्वयं नियमों का पालन करना चाहिए और प्रजा के हित भी पालन करवाना

१ पठे काले त्वमपि कमसे देव विमान्तिमङ्गल । —विष्णु २।१

पठे माये मयः स्वरविहारो वा (कौटिल्य का अर्थशास्त्र अध्याय ११) के समानाश्रित है।

२ मद्रवचमारमारवमापमिपुनं ब्रूहि ।

चिरप्रबोधनात् न मन्त्रावितमस्माच्चिरवचमनिममध्यासितुम् ।

—अभि० अ० ९ पृष्ठ १ ७

३ दैगिण पादणिषाओ नं १

—प्रजा प्रजा स्वा इव सन्मयित्वा निवेदये शान्तमना चिरिन्तुम् ।

यूपानि मन्त्राय रविग्रन्थः शीर्षं रिवा स्वामिनि डिगेष्ट ॥

—अभि० १।१५

४ मानु गृह्यसूक्तपुराण एव नानिनिर्बं पञ्चबहः प्रयाति ।

रेव सदैवाग्निभूमिमारः पृष्ठाञ्जुलेरीरं पथ गत ॥ —अभि० १।८

दैगिण पादणिषाओ नं० १ —अभि १।१५

बाहिए<sup>१</sup> । ग्याय का पावन करते समय ईर्ष्या द्वेष पक्षपात भावि से परे होना चाहिए<sup>२</sup> । राजा का ग्याय-मभा में जहाँ और प्रतिद्वन्द्वी आदि के साथ बैठना चाहिए जिससे वह स्वयं नियम की उपयुक्तता पर अपना ध्यान दे सके<sup>३</sup> । कई निर्यापिका के रहने से पक्षपात का भय नहीं रहता<sup>४</sup> । अपनी अनुपस्थिति में मन्त्री से श्री ग्याय-मभा में बैठकर ग्याय करने का कह कह दिया करता था<sup>५</sup> । दण्ड अपराध के अनुसार ही दिया जाता था<sup>६</sup> । बोरी के बरसे दूरी<sup>७</sup> अर्थात् मृत्यु-दण्ड विद्वों में मोम गुणवामा आदि दण्ड लिए जाते थे<sup>८</sup> ।

संघात में शान्ति और सुख्यरत्ना रचना ही उसका प्रथम कृतव्य था ।

कर (Taxation)—कर भगान और वसूल करने का मुकर उद्देश्य यह था कि प्रत्येक मनुष्य अपनी कामदमी का एक बहुत छोटा अंश राजा को दे जिससे वह उनके लिए बहाराग्राहक काय कर सके । राज्य में जिस बात का अभाव रहता था उसकी पूर्ति इसी कर से होती थी<sup>१</sup> । अतः राज्यकोष का सदा भरा रहना ठीक था परन्तु सोम या स्वाधका नहीं अपितु प्रजा के महापताक<sup>२</sup> ।

१ ऐतानात्रमपि राजाशमनोत्तमः परम् ।

न व्यतीतु प्रजास्तस्य नियन्तुनविदुषम् ॥ —रघु० १।१७

२ इत्योऽपि मम्मथ गिष्टस्तत्पातस्य यथोपपत्तम् ।

राजरो दुष्टं त्रियोऽप्यासीन्मुक्तीयोग्यता ॥ —रघु० १।२८

३ न धमस्तपस्यः पदरन्विश्रायविना स्वयम् ।

दण्डा संशयभगान्कारहारानतन्त्रि ॥ —रघु० १।७।१

४ राजस्वस्याव्यवहारिनो निमराभ्युपगमा शरणः । —मात० अंक १ पृ० २७६

५ मनुष्यनारमायमा निगुनं बहिः । बिर प्रवीणनाम्न मम्मथितमस्मानिरय धर्मनितमम्भानिगुम् । पराग्रयवसिन् पीरवापमार्येण तत्पदमारीप्य दीयता मित्रि । —अभि० अंक १ पृ० १००

६ यदापराध दण्डाजाम्..... —रघु० १।१

७ एव नामानुग्रहो यच्छ्रुमान्करीर श्रुतिरग्य प्रतिप्यमित्रः ।

—अभि० अंक १ पृ० १००

८ तत्र भी स्वामी पत्ररत्ना राजागामनं प्रतीत्येतामुष्मा कुन्ते ।

गुणवतिमिश्रिष्यति धुनो मुनं वा द्रव्यमि । —अभि० अंक १ पृ० ९९

९ प्रजापामेय भूयस्य न ताम्पी बन्मिदहीम् ।

तत्रगुणमुत्पादमारते हि यत् रवि ॥ —रघु० १।१८

१० कायनाधपवीरत्वमिति तस्याधर्मग्रहः ।

अनुमर्षो हि भीमतरात्ररविमन्दते ॥ —रघु०, १।७।६

प्रजा से मामदानी का २ भाग कर के रूप में लिया जाता था । यह 'पञ्चदश वृत्ति' कहा जाता था<sup>१</sup> । उपस्थिबन्धन भी इस कर से मुक्त न थे<sup>२</sup> । मुनिबन्धन उन्मत्तवृत्ति से एकत्र भाग्य का छत्र बँध राजा के नाम पर नवी के किनारे बँध बैठता था राजा उसे भेजा नहीं था । अमित्रजलधायकृतक में दुष्यन्त ने कहा है कि 'उपस्थी कर नहीं देते अपनी उपस्था कर पठ्याँध देते हैं । इसके अतिरिक्त राजा सारों से भी अपना बहुत किया करता था । बन्ध-उपस्थि पर भी कर लगता था<sup>३</sup> बर्षादि ज्ञान की मधि पृथ्वी के जाल्य बन के हाथी सब ही राजा की मामदानी के उद्बन्ध स्थान थे । निस्सतान मनुष्य के मर जाने पर उसका बन्ध भी कोप में भिजा लिया जाता था<sup>४</sup> । नैषध और सार्वबाहू बारि राजा को बहुत कुछ भेंट करते थे<sup>५</sup> । विषय प्राप्त होने पर पयजित राजा हाथी घोड़े सेना और अन्य वस्तुएँ विजेता-पक्ष को देता था<sup>६</sup> ।

ज्ञासन्-प्रबन्ध—मारुतवप ने प्रत्येक प्रकार की राजनीतिक सत्ताओं का प्रयोज कर अन्त में यह निष्कर्ष निकाला कि राजा और मंत्रिमंडल के सहयोग से ज्ञासन्-प्रबन्ध उत्तम है । कवि की भी अपनी बड़ी सम्मति है । मंत्रिमंडल

१ यथास्वमात्ममैस्वच्छे वर्धेरपि पञ्चदशमाक । —रघु १७।१४

—औबस्थनिष्ठासि तयोपमोक्तुं पञ्चाधमुर्वा इव रसिताया ।

—रघु० २।१९

—पञ्चाधमुत्तेरपि वर्ध एव । —अधि०, ५।४

२ निवर्त्तते यैर्निर्गमामिषेको वेम्पो निवापात्रक्य स्तुबाम् ।

ताम्बुलपद्मधित्तैकठानि धिवाभि वस्तोर्बजसमि कश्चित् ॥ —रघु० ५।८

—नीवारपद्मागमस्याकमुपहृतिवृत्ति । राजा—भूक । उप-पद्मागमयज्य

इत्यपारण्यका हि न । —अभि० ५० १५

३ अमिनि मुण्दे रत्नं दोषं तस्यं वनीजान् ।

रिरेण वेतनं तस्मै रत्नालुचनेव नृ ॥ —रघु० १७।१५

४ समुन्मारापि सावबाहो धनमिनी नाम नीम्यमनै विपन्न । अनपत्यच

पित उपस्थी । राजदानी तस्यार्धतयव इत्येतावदमायेन सिधितम् ।

—अभि अंक ९ पृ १२१

का मृत्यु रूप से मिलाया मंत्रणा करना केवल निर्धियों का समय-समय पर प्रकाशन होता है राजा के दुःख घासन का प्रमाण है। न केवल रघुबीर अपितु मातृविकान्तिमित्र में भी राजा मंत्रियों के साथ सलाह करता दिखाया गया है<sup>१</sup>। राजा बाह्यनीति के सम्बन्ध में इसी मंत्रिपरिषद् की सम्मति जानने की चेष्टा करता है<sup>२</sup>। मंत्रिमण्डल राज्य के आवश्यक कार्यों पर विचार करता, या पर इसके साथ ही राजा की सम्मति भी मंत्रिमण्डल के निर्णय के साथ-साथ आवश्यक समझी जाती थी। जब मंत्रिपरिषद् के निर्णय को राजा भी स्वीकार कर लेता था तब वह काय किया जाता था<sup>३</sup>। निजय मंत्रिपरिषद् ही करता था पर राजा की सम्मति भी आवश्यक थी<sup>४</sup>।

राज्याभिषेक के अवसर पर भारी तैयारी करना<sup>५</sup> राजा की मृत्यु के पश्चात् नए राजा को विजना<sup>६</sup> जबवा अनुपस्थित होने पर वही बुझना<sup>७</sup> अमात्य-परिषद् का ही काम था। राजा के बाहर जैसे जान पर वह काम और सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद् पर ही आ जाता था। राजा रिखीय मंत्रियों पर,

१ तस्य संवृतमन्त्रस्य गृह्यकारिणितस्य च।

कलामुमेया प्रारम्भा संस्कारा प्राक्तना इव ॥ —रघु० १।२०

२ तत् प्रविष्टत्येकान्तस्मिन्परिजनो मंत्रिणा केन्द्रहस्तेनाभ्यास्यमानो राजा।

—मात० अंक १ पृ० २६७ देविए, मात० अंक १ पृ० २६८ भी।

३ देविए, मात० पृ० २६८

४ विजयती देव। देन अमात्यो विजापयति—अस्यानी देवस्य बुद्धिं मंत्रिपरिषदोऽप्येकदेव वयानम् कुरु —

द्विवाचिमक्तां प्रियमुद्बुद्धीं धुरं रघोरावाचि संपत्तिषु।

तौ स्वात्सवस्तौ नृपतेनिर्येते परस्परत्पद्महनिर्विकारी ॥

राजा—तेन हि मंत्रिपरिषद् बुद्धि—तेनाभ्या कीरतेषां केन्द्रतामत्रं विमतामिति। —मात०, अंक ३, पृ० ३३२

५ अमात्यो विजापयति—विश्रमगतमनुष्ठेयमनुष्ठियमभूत्। देवस्य तावद्विजयार्थं भोत्रुमिच्छामीति। ( राजा के निजय के बा० ) बंभुरी—एवममात्यवरिणदे निवेदयामि। —मात० अंक ३, पृ० ३३२

६ राजा—आप तावत्पद्महनिनामपरिषद् बुद्धि मंत्रिपरिषदावुपो राज्य-मित्रेक इति। —विजय, अंक ३, पृ० २५२

७ स्वयमाभिषेकस्य समीकमात्पादमाप्यवयं बुद्धयनुमेकम्।

बनापरोना प्रहृष्टोरेवैन सावत्तार्थं विविहन्वहार ॥ —रघु० १८।३६

८ अबन्तावा प्रहृष्टो मातृवगुनिशामिनम्।

भोतेपनायवामामुभरतं स्तम्भितावुमि ॥ —रघु० १९।१२



राज्य-भार छोड़ कर पुनः की इच्छा से बसिष्ठ के पास गए<sup>१</sup>। राजा दुष्यन्त के साथ भी यही हुआ। वे मन्त्रियों पर सब छोड़ इन्द्र से सङ्गमे बैठे गए<sup>२</sup>। पुरुरवा भी राज्य का काम मन्त्रियों पर छोड़ सबकी के साथ मन्त्रमात्र पर पर्वत-विहार के लिए जाता गया था<sup>३</sup>। राजा की उपस्थिति में भी यदि वह विज्ञान में रस कर राज्यकार्यों की ओर ध्यान न दे तो मन्त्रियों पर ही सम्पूर्ण उत्तरदायित्व जा जाता था। अग्निवज्र इसका उदाहरण है<sup>४</sup>। मातृविदामिभिः से यह यस्मीमांसी प्रमाणित हो जाता है कि मन्त्रिपरिषद् के कार्य करते समय राजा वहाँ नहीं रहता था। परिषद् अपना नियम अमात्य के द्वारा राजा को कहलगा देती थी। जब राजा और परिषद् का निर्णय एक हो जाता था तब कायस्थ में परिणति होती थी। अविज्ञानयाकुलता से अमात्य का नियम अमित्र की सम्पत्ति की राजबोध में मिथाना था पर राजा ने अपना नियम इसके विपरीत दिया था वही सचमात्र्य हुआ। अतः एना कहा जा सकता है कि नियम में प्रधान हाथ राजा का रहता था। वह अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति देने के लिए सदा स्वतन्त्र था वह भी आदेश के रूप में।

परराष्ट्र नीति—राजा सभी काशी संघीति और आन्वीष्टिकी<sup>५</sup> का जाता होता था। प्रभु-सक्ति<sup>६</sup> मन्त्र-सक्ति<sup>७</sup> और उत्साह-सक्ति<sup>८</sup> तीनों की सहायता से राजा राज्य-भार को सरलता से सहन करने में समर्थ होता था। नाम-राम

१. संतानार्थाय विषये स्वमुखादवतारिता ।

तेन पूजयतां पुत्रोऽसिबपु निषिद्धिये ॥ —रघु० १।१४

२. राजा—मनुष्यनादमारयपिधानं ब्रुहि—स्वभूमतिं केचन तावत्परिपाक्यन्तु प्रजा । अविम्यमिदमवस्मिन्कर्मनिष्पन्नं वतु । —अभि० ५।१२

३. उबरी किञ्च तं रतिशब्दार्थं राजयिमामाभ्येयु निषेधितगगपुर्द नृनेत्या गन्धमारनवर्गं विहर्तुं गता । —विक्रम० पृ. २१३

४. सार्वप्रकारमित्रिकं मुक्ताचितं वारधन स्वयमवगयामया ।

सर्विधेय सचिवव्यत वरं स्त्रीविचयनवर्मावनी-भवा ॥ —रघु० ११।४

५. विस्तृत वजन और उदाहरण के लिए देखिए, अध्याय चित्रा ।

६. अनपत्यमुपसक्तिमण्डरा वामेको नपतीनमस्तरा ।



पर फिर सगको बिठाला इसका प्रमाण बा<sup>१</sup> । कूटनीति को जानने पर भी इसका प्रयोग असंगत और निम्न समझा जाता बा<sup>२</sup> ।

**अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध—**अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करने के लिए परम्पुर्णों से परिचय ही नहीं अधिकार रखना आवश्यक था । अत्र इनका प्रयोग करता बा । परन्तु प्रधानता सन्धि को ही देता बा<sup>३</sup> । परराष्ट्रनीति के लिए इनका उपयोग आवश्यक था । युद्ध का उद्देश्य समित्तवादी राजाओं का बल कम करना और दुर्बलों की शक्ति बढ़ाना बा<sup>४</sup> । क्रीटिम्न का मत अतः राजा के लिए उपयोगी था । माकविकानिमित्त में मन्त्री का यह कथन कि नवा राजा जिसने प्रजा के बीच अभी पैर न रोये हो नए पीने की तरह खीझ ही उन्मुखित किया जा सकता है, परराष्ट्रनीति की सफलता का रहस्य बा<sup>५</sup> ।

इस राजकीय-व्यक्ति के साथ व्यापारिक-व्यक्ति भी यदि मिल जाय तो राजा सम्पूर्ण विषय को पराजित कर सकने में समर्थ बा ।

**मन्त्रियों के प्रकार—**अतः राजा की सहायता के लिए अनेक मन्त्री थे । बाह्यनीति का मन्त्री माकविकानिमित्त में आया है, जो युद्ध-सम्बन्धी सभी कर्मों को करता है । समान और ग्वाय मन्त्री जो राजकाय की देखरेख करता बा कई विभागों की कामदमी और व्यय का हिसाब-किताब रखा बा और ग्वाय करता बा । आमात्य विभुज इसी प्रकार का मन्त्री बा<sup>६</sup> । राज्यराय म

१. आपावपरम्प्रवता बन्मा इव ते रपुम् ।

कर्म संवधयामानुस्तलातप्रतिरोपिता ॥ —रपु० ४१३

२. कूटमुद्धविपिजेर्जि तमिमन्मगागयोचिनि ।

मेजेर्जिसारिकानुत्ति जयभीर्जीगागिनी ॥ —रपु० १७१६

३. दयवधमुगामुनानज यदुपामुक्त समीधय तत्कलम् । —रपु० ८१२१

४. दस्येव्येवामवघात्रा तस्य शक्तिमत नत ।

समोरव्यसहायोर्जि नाम्ना प्राचीं बवानत ॥ —रपु० १७१६

५. अचिराविष्टिराज्यं शत्रु प्रवृत्तिव्यक्तमूलतान् ।

नवनरीरगमिमिस्ततरिष मुक्ता समुद्रान् ॥ —माक० ११८

६. राजा—वैजवटी ब्रह्मनाशपायमार्गपिपुर्ण कृष्टि चिरयवोधनाम् तन्नाविज

पुरोहित का स्वाम भी बहुत महत्त्व का था। कम-अम्बन्धी कार्यों में यही सहाह देता था। चक्रवर्त्तता को न पहचान पाने पर दुष्यन्त के कम-संघट में पड़ने पर, इसी ने उचित मन्त्रणा भी थी।

इनके अतिरिक्त 'सेनापति'<sup>१</sup> और आजकल की तरह का 'कमन्डर' उस समय नागरिक स्वातन्त्र्य का समकक्ष थे। इसकी सहायता के लिए राजा के राजकोष कार्यों में सहयोग थे। वर्माध्यक्ष कम-सम्बन्धी कार्यों की देख-रेख के लिए नियुक्त किया जाता था। राजा दुष्यन्त ने चक्रवर्त्तता की सक्तियों को परिचय ही नहीं दिया था कि वे राजा की ओर से राज्य को बर्माध्यक्षों को देना-पाने के लिए नियुक्त किया गया है<sup>४</sup>। नगर की गान्धि और रक्षा के लिए राष्ट्रीय था<sup>५</sup>। कुगरसक भी होते थे। कुगरसक बीरसेन का नाम मारा है (भात० पृ० २६८)।

अन्य व्याप-विभाग सेना-विभाग पुलिस-विभाग सम्पत्ति-विभाग आदि आजकल की तरह ही विभाजन थे।

राजा की शिक्षा—राजन-अवस्था से राजा को विद्या दीव्य मघक और विद्वान् होना चाहिए, इनका आभास मिलता है। व्यक्तिगत जीवन का ज्ञान और सुख उसके लिए था बचपन पर उसमें अधिक समय न होना ही सिद्धान्त था। बत राजा की विद्या के ऊपर विशेष ध्यान दिया जाता था। इन्द्रनीति पञ्चनीति चरित्रविद्या आदि के साथ साथ इतिहास धर्म आदि का ज्ञान भी उनके लिए आवश्यक था<sup>६</sup>।

राजा के बिनोद—आखेट शोकाविरोध रानियों के नाम अकस्मिका संगीत नाटक नामा सेना इनके बिनोद थे<sup>७</sup>। बिक्रमी राजा मरिच

१ राजा—दशमेव बचन निमित्तमुत्तमस्य समुपयोग्यता सेनाविपति ।

—भात० अंक १ पृ० २६८

२ उक्त प्रविपति नागरिक स्वातन्त्र्य का दृष्टिकोण से समकक्ष था ।

—अभि० अंक ६ पृ० १७

३ हेमिए, पारमिष्वली अ० २

४ मरिच प० बीरसेन राजा बर्माध्यक्ष के नियुक्त को-अध्यक्ष विभाग विपति-बर्माध्यक्ष बर्माध्यक्ष विभाग विपति । —अभि० अंक १ पृ० १८

५ आप बति दिवसाभ्यासवीर्यविराजिता राष्ट्रियेय अट्टीनीयामूर्त्ति प्रेरितः ।

—अभि० पृ० १०४

६ हेमिए, विलुप्त परिचय के लिए अज्ञान 'विद्या'

७ हेमिए, इसी अध्याय में 'उन्मत्त और विनोद'

और स्त्रियों में अनुपस्थित रहते थे। मारुत राजा इन सब से दूर रहते थे<sup>१</sup>।

राजचिह्न—पीछे खेंबर आदि के बुलाए जाने से जातपत्र के पिर पर होने से और मुकुट आदि के धारण करने से व्यक्ति पहचाना जाता था कि वह राजा है। राजकीय चिह्नों में सिंहासन जातपत्र खेंबर मुकुट राजरत्न पौर करने की चौकी राख आदि मुख्य थे। इनका वयम यथाप्रसंग क्रिया आगता।

### स्वास्थ्य : रोग तथा चिकित्सा

आयुर्वेद का विकास अपनी पूर्णता पर पहुँच चुका था। मित्रहस्त वैद्य द्रुवतिष्ठि<sup>२</sup> का सम्बन्ध इसका अफाद्य प्रमाण है। अवश्य ही स्वास्थ्य की अवहेलना नहीं की जाती थी। समस्त धार्मिक कार्यों में शरीर की रक्षा करना सबसे प्रथम कर्तव्य है<sup>३</sup> यह उक्ति केवल कहम भर की बन्नी नहीं बरिनु स्वास्थ्य की ओर आम जनता की रुचि का प्रकाशन मात्र है। जब तक मनुष्य का शरीर स्वस्थ नहीं होता तब तक वह किसी कार्य में व्यस्त नहीं हो सकता यही मूल बात उस समय के प्रचलित विचारों शरीरमार्त धम धर्मसाधनम्<sup>४</sup> का आधार था।

स्वास्थ्य के सम्बन्ध में स्त्री और पुरुषों के स्वस्थ शरीर के विभिन्न दृष्टि कोण थे। पुरुष के शरीर में शक्ति शक्ति और कठोरता स्तुहमीय माना जाता था। लौड़ी छाती हाँड़ कंठ कर्ण गाल के बृक्ष की-नी सन्नी मुखाँ स्वास्थ्य की प्रतीति करा देती है। मंस्कारीस्तित्व शक्ति-शक्ति शरीर<sup>५</sup> अर्थात् दृष्टिदाहों का साधना करती-करते भी जो निम्मीक और शिथिल न हो शक्ति सदा तैजसे दमकता रहे पुरुष-सौन्दर्य का प्रतीक था। स्त्री के शरीर की शान्तिता को पुष्टता की ज्येता अधिक प्रथम दिया जाता था। शान्ति-शुद्धिमार देर

१ न मुगयाज्जिरतिर्न दुरोधनं न च पाणिप्रतिमाधरत्नं यथ।

तमुरवाय न वा नवपीथना त्रिपलवा मगमानमसादरम् ॥ —रघु १।३

२ द्रुवतिष्ठि शिष्टमानीयताम् —मात ४४ पु० ११६

३ शरीरमार्त शब्द धमसाधनम् —शुमार १।११

४ शरीरमार्त शब्द धमसाधनम् —शुमार १।११

उनका सबसे बड़ा शीश्या था। कोमलता के जितने प्रतीक हैं वे सब स्त्री-शीश्या के साथ हैं<sup>१</sup>। कामिदास के युग में स्त्री बिछास की सामग्री थी। सभी कन्दुक-खोला से बक जायो है<sup>२</sup> कैय के बिरे फूस भी उगड़े गटते हैं<sup>३</sup>। उनका पौरुष अपने पति को मेरुका बाम से ही बाँधने तक सीमित है<sup>४</sup>। सम्भव है, यह उच्च एवं पत्नी स्त्रियों के ही सम्बन्ध में चरितार्थ हो सामान्य सामारण बग की मारी का स्वास्थ्य अवश्य अच्छा होगा।

कवि ने पितृ पागुसय अवस्था बीमम्भजन<sup>५</sup> पांस<sup>६</sup> आदि का अपने घरों में संकेत किया है। अवश्य ही इन सबका ज्ञान पूषता को पहुँच चुका होगा। पितृ के शान्त में भोजन ही सामान्यक होता है। विदूषक की यह उक्ति निष्कारण नहीं अपितु सप्रयोजन है<sup>७</sup>। भावन को समय पर न करने से भी रोग हो जाने है<sup>८</sup>।

१ 'कामिदास की शीश्या-प्रतिष्ठा' में इसकी सम्बन्ध विवचना की जा चुकी है।

२ कर्म ययो कन्दुकमीलयापि या तया मुनीना चरितं व्याप्रास्यत।

—कुमार० ५।१६

३ महादृष्ट्या परिवर्तनभूते स्वकेतपुष्पैरपि वा स्व वृषते।

—कुमार०, ५।१२

४ रचनामाशय राजानं शाश्विनुमिच्छति। —मात० अंक १ पृ० १११

—अनुमीरिमलयावनजने भूषिर्भयमुटिलं च बीशितम्।

मेवतामिरमकञ्च बन्धनं बन्धपदप्रपिनीगवाय स॥ —रघु० १६।२७

५ भवति स्वरवास्य भोजनं पत्नितोषमनममम भवति।

—निकम० अंक १ पृ० १८६

६ मल कञ्जदृष्टारमामर्ष रक्तपातममायमं पत्नी।

यन तस्य मधुनिर्गमात्सगवित्तयोनिरमवन्नुननव॥ —रघु० १९।४६

इसमें 'मधुनिर्गमात्' से वैद्यक विमल के चले जाने का ही यात्र मर्ष बीजसम्पन्न की भी प्राप्ति है।

७ देविण् अध्याय आशार

८ देविण् पान्दित्यमी नं ५

९ अत्र भवति उचितव्यतिरिक्ते विहितव्या दोषमुदाहृत्य।

—मात०, अंक २ पृ० २८८

वही कवि ने वैद्य<sup>१</sup> चिकित्सक<sup>२</sup> मिषण्<sup>३</sup> आदि सधों का प्रयोग करके इस शास्त्र के बानने वालों से परिचित किया वही रोग के दो प्रकार हैं—मानसिक और शारीरिक। इस बात का भी व्यक्तीकरण किया। मानसिक रोग<sup>४</sup> मानसिक रोगों की ही संज्ञा है। काम-ताप भी मानसिक रोग ही है। काम-ताप और आतप-ताप (कू) में यद्यपि ऊपर देखने से बहुत समानता लम्बी है पर फिर भी बहुत भेद है। काम-ताप मानसिक है और आतप-ताप शारीरिक। कवि ने बड़ी सूक्ष्मता से दोनों के भेद को इंगित किया है। कू और काम-ताप दोनों में वैषम्य होती है परन्तु कू कम जाने पर युवतियों में सुन्दरता नहीं रह जाती<sup>५</sup>। यद्यपि काम-ताप में शोक भूला जाता है, मुँह सूख जाता है, स्तनों की कठोरता जाती रहती है, कमर और जो पतली हो जाती है कन्धे झुक जाते हैं, देह पीली पड़ जाती है परन्तु शोक से मुखमाई पतिवा जाती मावशी सदा के समान युवती और भी सुन्दर लम्बी है<sup>६</sup>।

१ मा अहस्याकामुकस्य महेन्द्रस्य वैद्यः सचिवः उपरीपमुत्सुकस्य च भवतोऽहं  
हावप्यभोगमती। —विज्ञम० अंक २ पृ १७५

—वरिष्ठ इवानुरो वैद्यनोपधं शीममानमिच्छति।

—मात० अंक २ पृ० २८७

—अधिरात्रा वैद्यविचक्षितिरसि —मात० अंक ४ पृ० १२०

२ अत्र भवत उचितवेलातिष्ठमे चिकित्सका रोगमुदाहरन्ति।

—मात० अंक २ पृ० २८८

३ कुमारमृत्वाकृतसैरनुष्ठिते विनमिश्रप्लेग्मममर्मणि —रघु ११२२

—दुष्टरोगमपि शत्रु मोक्षवर्त्मनवत्पु विरशामनायव ..

—रघु० ११४६

४ अनिशममि मकरैःशुभमती २३मावहृत्प्रमिषती

मे यदि मरिरासतनयतां तामधिष्ठस्य प्रहृष्टीति। —अभि ११४

—निताम्यवटिनां बर्जं जय न वेद मा यमनी..... —विज्ञम० ११११

५. यमप्राणः कामं यममिजनिवापप्रमग्यीन तु शीघ्रग्रीवं मुजवमरासं युवतिः।

आठप-साप में बड़ी-बचैसी हो जाती है। घरीर को छम्क २५५५  
उधोर का अगुलैय उस समय प्रयुक्त किया जाता था<sup>१</sup>। मोष जा जाने  
किन्ना<sup>२</sup> प्रपस्त की। मोष आए बंन को पूर्वत विभाम दिया जाता था  
पैर में मोष आई हो तो चौको पर पैर रखकर चुपचाप बैठ रहना ही  
समसा जाता था<sup>३</sup>। मोष आए स्थान पर रक्तचन्दन का लेप लाभकारी  
जाता था<sup>४</sup>। बच-विरोध के लिए हंगुनी ठीक योद्ध माना जाता था।<sup>५</sup>  
अर्थात् ब्रौंनों का बुतना आदि भी रोम थे। कण्डूयन<sup>६</sup> छत्र के प्रयोग  
आदि रक्षा रोम भी होते, इसका जामान होता है। इसी प्रकार  
छत्र से मच्छर डोंग आदि से उत्पन्न रोग भी जैसे—ब्वर<sup>७</sup> आदि भी  
नित होत।

गमावस्था—वर्ष तथा गर्मियों के सम्बन्ध में कभी-कभी बड़ी सूत्रम  
का आवास मिलता है।<sup>८</sup> यम को रोहण भी कहते थे<sup>९</sup>। वर्ष के रूने के

१. त्रिपर्वदे कस्मैश्चमृतीरनुमिषं मुषात्मन्वि च नमिनीपवाणि नीदन्ते (आकम्प  
किं वरीति? आठपकडुनाद्वचनवस्थत्वा दधुमत्ता तस्या ५७)

—अभि० अंक १ पृ० १

२. आठपाक्यस्तोत्रयमुद्देश। दौर्तक्रिया आस्या दब प्रपस्ता।

—मात० अंक ४ पृ० १२१

३. अनुचितनूपुर्विर्ह्यु माहवि तपनीप्रीडिकात्मवि।

वरुषं रवानापीठं वलमाविमि मां च पीदयितुम् ॥ —मात० ४१३

४. प्रवातयवने देवी विपत्त्या दस्तचलनवारिणा परित्रमहस्तागतेन वरमन  
प्रपवत्ता वचामिर्विनायकाना विष्टति। —मात० अंक ४ पृ० ११७

५. यत्न तथा दधुमिरोपमिगुनीनां ठीकं प्यरिष्यत मुने मुद्यमूचिविजे।

स्यामानमुष्टिपरिवर्धितको ब्रह्मति तीर्थं न पुनपुनक परबो मूपस्ते ॥

—अभि० ४१४

६. न ताम् अगिनु गितोऽभिमुते दीपयिषां तत्तत् । —विजय० अंक २ पृ० ११०

७. आस्थावद्विः वचसैस्तृपानां वचदूर्ध्वं दधिवारुषीच।

अप्यप्यर्षे स्वेरपने त तस्या सप्ताद् समारोपनत्रयरीन्नु ॥ —रघु०, २।५

८. देगिए पाटिलिषी न० ७

९. उन्ने मरवाच्यमुत्तता धुतयादिपुतकावत्तया।

वनमप्युत्तस्थिते ज्वरे पुनरप्लीवतया प्रवाप्तयाम् ॥ —रघु० ८।८४

१०. त्रिदाममिवाधुमुपमय सक्तने मुष्टिताया पीडकगर्भं वरी। —रघु० ३।१

मम को रोहू कों जाने के इसकी विवेचना की जा चुकी है।





‘कुमारमृत्यु’ थी । किस प्रकार गम पुष्ट ही सकता है और सुविधा एवं सगृह्यता से प्रसन्न होता है, इन सब बातों ने बिहान् भी उस समय थे<sup>१</sup> ।

राज्य-शासन का भी कवि ने उल्लेख किया है । अंग में मिरी किमी वस्तु को निराकृत्य<sup>२</sup> जपवा किसी अंग को काट बना<sup>३</sup> इसी धाम्त्र की विशेषता है ।

सप-विष को दूर करने के कई उपाय थे । या तो उम अंग को काट ही दिया जाता था या जला दिया जाता था या पाव में से लहू निकाल दिया जाता था<sup>४</sup> । हस्त्रिक-विष भी इनमें से था । मात्र और जीवण से मर बैठ जाता था<sup>५</sup> । अतः ‘उरदुग्ध-विधान’ अर्थात् पानी के घड़े के सहारे किमा ऐसी वस्तु से विष उतारा जाता था जिसमें नाममुडा जड़ो हुई हो<sup>६</sup> । मालविकाग्निमित्र म गौतम का विष सपमुडा वाली अंगुठी सेकर ही दूर किया जान का प्रयत्न किया गया था<sup>७</sup> ।

रोमों में छोटे-छोटे सामान्य रोवा व साब रात्रयदमा<sup>८</sup> क्लीब<sup>९</sup> आदि मर्य कर रोवा का भी उससेम कवि के ग्रन्थ में है । अनाप्य रोवों को बैठ छोड़ देता था<sup>१०</sup> । रोग फैलन न पावें अर्थात् छूत के रोम हपर-उपर फैल कर जनता

१ कुमारमृत्याकुचसैरनुष्ठिते प्रियग्निरुत्तराय गममर्षिभिः ।

पति प्रवीठ प्रसन्नमुग्धी प्रिया वरय जाने रिबमभिठाभिः ॥—रघु० १।१२

२ ममोर्षे हन्धे चास्म मनुष्येकधनुवर ।

ब्राह्ममत्वं प्रियाद्योक्तयस्मिन्पथीरयम् ॥ —रघु० १२।६७

३ त्वाज्यो दुष्ट प्रियाज्यामीरदुलीवारणगता । —रघु० १।२८

—उ० १।२९ बाहो वा शतेर्वा रक्तमाशनम् ।

एतानि दष्टमात्रागामाद्युष्या प्रतिपत्तय । —मातृ० ४।४

४ देगिए पारटिगमी नं० १ —मातृ० ४।४

५ राजा स्वतेजामिराह्वान्तर्भोगीव मन्त्रीपदिन्द्रबोय । —रघु० २।३२

६ उरदुग्धविधानेन सधमुद्रितं निमग्नं जलापितकम् । हरत्रिप्यत्तामिति ।

—मातृ० अंक ४ पृ० १२०

७ इत् मधमुद्रितमङ्गुलीयकं परचाग्मम हस्ते देहेनम् ।

—मातृ० अंक ४ पृ० १२१

८ तं प्रमत्तमग्निं न प्रसारत दीपुगत्रमिनुमम्यतादिवा ।

आमपन्नु रतिरागममवा वधगात्र इव चाग्निपान् ॥—रघु० १६।४८

९ ममगत्युत्पत्तिने उररे पुनरवधीवतया प्रसारताम् । —रघु ८।८४

१० अनाप्य इति वेदमात्रुर इव इयं मदाश भगवत्प्रभवया ।

—विजय अंक ३ पृ० २०७

के लिए हानिकारक न हों—चिकित्सक इस बात का ध्यान रखते थे ।<sup>१</sup>

रोग का उपचार करने के पूर्व उसके निदान के विषय में भी (Diagnosis) जानने की चेष्टा की जाती थी । अतः निदान-शास्त्र का भी उस समय निस्सन्देह अस्तित्व था<sup>२</sup> ।

यद्यपि कवि के ग्रन्थों में ओषधि<sup>३</sup> शब्द का प्रयोग हुआ है । हिमालय को ओषधिप्रस्थ इसीलिए कहा है कि वहाँ ओषधियाँ ( जड़ी-बूटी ) प्रचुर मात्रा में थी<sup>४</sup> ।

पाणिनि के ग्रन्थ में बवासीर हृद्‌रोग कुष्ठ मृज्ज गौरी अस्तिहार ( पेचिश ) वातिका ( वायुरोग ) वाक्पात्र ( छावन इसको मृत्पात्रिहार कहा है ) आदि रोग मिलते हैं । पर काम्यशास्त्र के ग्रन्थों में इनका उल्लेख नहीं है<sup>५</sup> । केवल कुम्भ का नाम दो स्थान पर आया है<sup>६</sup> ।

### चत्सव और विनोद

माघशर्ष में सदा से ही उत्सवों की श्रम रही है । वैसे ही मनुष्यों को चत्सव प्रिय होते हैं<sup>७</sup> । अपने हृदय के आह्वान और दर्शन को व्यक्त करने

१. तं मूहोत्पन्न एव संगता पश्चिमत्रनुविवा पुरोपसा ।

रोमपाश्विमतपश्चिम मंत्रिषा संभृते पिपिनि नृबमारपु ॥ —रघु० ११।५४

२. विक्रमं सन्तुपरमार्थतः अत्रात्माशारम्भ प्रतीकारस्य ।

—अभि० अंक ३ पृ० ४४

३. ॥ मासविश्रमानीतमहोषधिहृणध्ययः ।

संक्रान्तीषां कुम्भचक्र विमगाचामर्क शरीः ॥ —रघु० १२।७८

—अमीरप संक्षेपे चास्मै वनूप्येक्यनुपदः ।

ब्रह्ममर्त्यं शिवाद्योक्तस्यनिष्कण्ठोपधम् ॥ —रघु० १२।१७

—रात्रा स्वतैरोमिरहृतान्तर्मोषीय मन्त्रीपिपिनीय । —रघु० २।३२

४. तत्प्रपत्तोपधिप्रसन्नं सिद्धये हिमवत्पुत्रम् ।

महाशोषीप्रपात्रेऽस्त्वर्णम पुनरय न ॥ —भुवार् १।३३

५. Inds as known to Panini by V. S. Agarwala, Orop. W. Harin

का साधन उत्पन्न ही है, परन्तु भारतवासी प्रकृति के सौन्दर्य विस्मय के सौन्दर्य की कल्पना में विभोर होकर उत्पन्न प्रकृति से अनुप्राणित है। भारतीय संस्कृति में परमात्मा का प्रतीक कहा गया है। आत्मा भी अन्तःधारणात् आत्म में दृष्टी है। यह सत्त्वा आत्म प्रकृति क निरूपण नवीन स्वल्प उदीप्त हो जाता है। अतः प्रकृति परिवर्तन पर कर्मों को पूरता उत्तमों की जायोजना की जाती है। प्रकृति के आधार पर वाले उत्पन्न म विशेष उल्लेखनीय हो है—कौमुदी महोत्सव और

(ख) कौमुदी महोत्सव—आश्विन की पूर्णिमा को कौमुदी मनाया जाता था। आत्मापन ने इसके लिए कौमुदीनाम छन्द का किया है। आत्मापन के अनुसार यह दैव-व्यापी (माहिमानी) कीड़ा कौमुदी में इसके लिए कौमुदी छन्द अभी पिछले रिगों तक प्रचलित आश्विन के अर्धा में इन उत्सव का उत्सव नहीं मिलता।

(घ) वसन्तोत्सव—आश्विन के समय में यह उत्सव वसन्त मनाया जाता था परन्तु विनी दुष्ट के कारण यह उत्सव राक भी लिया जाता (अभि० अंक १ पृ० १०३)। कवि न वसन्तोत्सव "अवसन्त" अवसन्तार, छन्दों का प्रयोग इसी प्रयोग में किया है। वसन्तोत्सव कई रिगों तक

१. भाग्य व कुमुदप्रसूतिमये वसन्ता अवसन्तार
- मेघं वाति शकुन्तला वसिष्ठं सर्वैरनुजायताम् ॥ —अभि० ४१६
२. कामदूत १७४४२ मोक्ष के समय में इन उत्सव को 'कौमुदी प्रचार' कहते थे—शृंगारवाच ॥
३. हेतिए, पाटिपथी नं० १ १७४४२
४. अनात्मन देवेन प्रतिपिष्टे वसन्तोत्सवे त्वमाप्रवृत्तिवार्थं किमारमये ।

—अभि० अंक १ पृ० १०३  
—अभि० अंक १ पृ० १०३

—अनुवर्तमानवदोलमुनूर्यव पटवर्ति प्रियवर्तत्रिपुतापा ।  
अनपराधमरगुपरिहृते मुक्ततां अलतामवताम ॥ —रघ० १४६

५. अर्द्ध प्रपमावगारमुपगानि रक्तुरवकायुपायनं प्रेक्ष्य नववसन्तावगारम्य  
हेनेनेताया त्रिमुदितामुगम प्रापिनी मवान्-दृष्टाम्यापुनश्च होयाविरोध  
मुनविमुनिनि । —आल० अंक १ पृ० २९३

के लिए हानिकारक न हों—निकित्तक इस बात का ध्यान रखते थे।<sup>१</sup>

रोग का उपचार करने के पूर्व उसके निदान के विषय में भी (Diagnosis) जानने की चेष्टा की जाती थी। अतः निदान-सारक का भी उस समय निस्सन्देह अस्तित्व था<sup>२</sup>।

इसके लिए अरि के ग्रन्थों में ओपनि<sup>३</sup> शब्द का प्रयोग हुआ है। हिमात्म्य को ओपनिग्रन्थ इरीरिष्ट कहा है कि वहाँ ओपनिर्वा (जड़ी-बूटी) प्रचुर मात्रा में थी<sup>४</sup>।

पाणिनि के ग्रन्थ में बवासार, हृद्रोग, कुष्ठ, मृप्य, कांसी, अतिहार (पेचिस), वातिकी (बायुदाह), बाग्याय (बाधन इसको मूत्रातिहार कहता है) आदि रोग मिलते हैं। पर काकिलस के ग्रन्थों में इनका उल्लेख नहीं है<sup>५</sup>। केवल कुष्ठ का नाम दो स्थान पर आया है<sup>६</sup>।

### उत्सव और विनोद

भारतवर्ष में सदा से ही उत्सवों की धूम रही है। ऐसे भी मनुष्यों को उत्सव प्रिय होते हैं<sup>७</sup>। अपने हृन्म के आह्वान और उर्ध्व को व्यक्त करने

१. तं भुहोमन एव संगता पश्चिमश्रुतिरा नुरोपसा।

रोगान्तिमपश्चिम मीयिष संवते धिगिति नृवमारपु ॥ —रघु० ११।२४

२. विकारं वसुररमावत अत्रात्वात्तारम्भ प्रतीतारम्भ।

—अभि० अंक ३ पृ० ४४

३. भारतिगमानीतमहोपनिहृगम्य।

अंकास्त्रीया नुनरकके विमाराचार्यकं धरै ॥ —रघु० १२।७८

—अमोष संदपे चारु मनुष्यैकवधुधर।

अम्यवर्ष प्रियापौरुषस्यनिष्पन्नगीगमम् ॥ —रघु० १२।२७

—रात्रा स्वतंत्रोभिरवसुतामर्मावीध मनीरविरहसीय। —रघु० २।३२

४. तत्तमापौरुषिष्यं क्रिये द्विवत्तुम्।

महापौरुषातेऽभ्यर्णगम नुनरेव न ॥ —बुधार० १।३१

का शासन उत्सव ही है, परन्तु भारतवासी प्रकृति के सौन्दर्य विराट्मा के सौन्दर्य की कल्पना में निर्मोह होकर उत्सव मनाते उत्सव प्रकृति से अनुप्राणित हैं। भारतीय संस्कृति में परमात्मा का प्रतीक कहा गया है। आत्मा भी अवकारणात् मानव म बुकती है। यह सच्चा आत्म्य प्रकृति के नित्यप्रति नवीन स्वरूप में उद्गीष्ट हो जाता है। अतः प्रकृति परिवर्तन पर फूलों को फूलता उत्सवों की आयोजना की जाती थी। प्रकृति के आवार पर वाले उत्सवों में विशेष उल्लेखनीय दो हैं—कौमुदी महोत्सव और

(क) कौमुदी महोत्सव—आर्यभट्ट की पूजिमा को कौमुदी मनाया जाता था। वात्स्यायन ने इसके लिए 'कौमुदीनामर' छन्द का किया है। वात्स्यायन के अनुसार यह दैत्य-व्यापी (माहिमानी) झिझा बौन्दियों में इसके लिए कीजापर छन्द अथी पिछले दिनों तक प्रचलित कालिदास के समय में इस उत्सव का उल्लेख नहीं मिलता।

(ख) वसन्तोत्सव—कालिदास के समय में यह उत्सव ब्रूमणाम मनाया जाता था परन्तु किसी दुःख के कारण यह उत्सव रोक भी दिया जाता (अभि० अंक १ पृ० १०३)। कवि ने वसन्तोत्सव 'क्षयुत्सव' वसन्तावतार, छन्दों का प्रयोग इसी प्रसंग में किया है। वसन्तोत्सव कई दिनों तक मनाया

१ भाष्य व शुभमप्रसूतिप्रसंगे मस्या मवत्पुत्सव  
तेयं याति शुक्रुत्सवा पतिपथं सर्वैरनुजायताम् ॥ —अभि० ४६

२ काममूत्र ११४४२ भोज के समय में इस उत्सव को 'कौमुदी प्रचार' कर्ते थे—शुवात्प्रकाश।

१ हेतिए, पादलिङ्गमी न० १ ११४४२

४ अनात्मन देवेन प्रतिपिठ वसन्तोत्सवे त्वमाप्रकृतिप्रार्थयं कियारमये।

५ किं नु गतं तानुत्सवेऽपि निरत्नप्रार्थमिव राजकुलं कुन्ते।

—अभि० अंक १ पृ० १०३

—अनुवचनप्रसूतिप्रसंगे कटयति प्रियवच्छत्रिपूजना।

अनपराधनरज्जुपरिपट्टे भुवकटा अलतामवकाश ॥ —अ० ४६

६ अर्द्धे प्रयमावतारमुज्ज्वलानि रक्तगुरवाम्पुनार्यं प्रपन्नमवकाशम्  
हेतुनेताशया निगुपिकामुगतं शक्तिनी

मनुष्यविभूतिः। —माल० अंक १ पृ० २९३

जाता था और इसके अन्तर्गत कई एक प्रकार के उत्सव और छीड़ाएँ शामिल थीं जिनमें निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय हैं

(१) मदन-महोत्सव—इस उत्सव का संकेत अभिज्ञानधामुत्सवम् (अंक ९) में है। चेटियाँ आम की मंजरी लेकर कामदेव की पूजा करना चाहती हैं, करती भी हैं<sup>१</sup>। इससे यह प्रत्यक्ष होता है कि मदन-महोत्सव में कामदेव की आम की मंजरियों से पूजा की जाती थी। कामसूत्र में जिसे 'सुवसन्तक-उत्सव' कहा गया है, वह संभवतः मदनोत्सव ही है। यद्योचर ने सुवसन्तक को मनोत्सव ही माना है और इसे नृत्यवीरबाघ-प्रधान कीड़ा कहा है<sup>२</sup>।

(२) अशोक वाइह—वसन्तोत्सव का यह एक अंग था। काश्यास ने मातृविक्रान्तिम्ब में इसका विवरण उल्लेख किया है। यह उत्सव प्रायः अन्तपुर के प्रमदवन में मनाया जाता था। सुन्दर स्त्री के पैर-छाड़न से अशोक में फूल कम जाते हैं—यह एक मान्यता थी। उद्यानपालिका अशोक को न फूलों देकर रानी के पास जाया करती थी और कहती थी कि इसके फूलों का कोई उपाय करना चाहिए। प्रायः यह पराजित रानी किया करती थी। यही पराजित 'वीर' कहलाता था। रानी के अस्वस्थ होने पर यह वाप कोई भी सुन्दर स्त्री करती थी परन्तु उसे रानी का ही वापक पड़ना पड़ता था। कारिणी ने अस्वस्थ होने पर अपने पहलू का गूपुर मातृविका को दिया था। उस सुन्दरी को अन्य आभूषणों से सजाया जाता था। बरसों में बड़े बलात्कृत इंसानों से महारत कमाया जाता था। बहुल्लसतिष्ठा ने बालकत्रक इतना सुन्दर लगाया था कि मातृविका का पूछना ही पड़ा कि तुमने यह प्रमाणन-कला किससे सीखी? बलता स्मृति पैर को प्रायः मग्न की बाध से गुंतावा जाता था। सुन्दरी पहले अशोक के पता का अन्तर्गत रमती थी। छान्दोग्य जाएँ पैर से अशोक पर आगत करती थी<sup>३</sup>। यह बीड़ा बड़े घूमपाथ से मलाई जाती थी। प्रायः अन्तपुर की रानियाँ और राजा इसमें सम्मिलित रहते थे। जब मैं प्रथम-व्यापार के लिए एवान्त की अवधारणा की अठ-अन्य व्यक्तियों को नहीं रमा। इरावती देवयोग में आता है

और राजा भी मास्रविका को बेगने भर के लिए वहाँ जा पहुँचता है<sup>१</sup>। यह परिवर्तन कवि न प्राचीनक और अधिक ही किया है। पंचम अंक में तथावत् प्रतिहारी आकर राजा को सूचना देती है कि मेरे साथ चढ़कर उस फूले हुए अघोर को बैलकर मेरा उत्सव सफ़र कर लीजिए<sup>२</sup>। इससे निष्कप निष्कला है कि अघोर के फूलने पर उसे बैलने का भी उत्सव मनाया जाता था। सब एक साथ कुसुम-समृद्धि देखते थे<sup>३</sup>। बाह्यन को पसिना भी मिछती थी जिसे 'वसन्तोत्सवोपासन' कह्यो थे<sup>४</sup>।

(३) दोहा—वसन्तोत्सव के साथ ही कवि ने इसका उत्सव किया है। यह वसन्त ऋतु में ही काटिशर के समय होता था। राजा और रानी दोनों ही दोहोत्सव में भाग लेते थे<sup>५</sup>। राजाओं के दोहे प्रायः उनके परिवार हिलते होते। रानियाँ झूम झूमने में पट्ट होती थीं। परन्तु कभी कभी आत्मिय-मूल देने के लिए दोहे की रस्ती छोड़कर राजा के पक्ष में अपनी बाहुँ दाक देती थीं। राजा भी ऐसे अवसर का स्वागत करते थे<sup>६</sup>। राजाओं के झूले प्रायः एक स्थान विशेष में सदा पड़े ही रहते थे। इसे 'दोहागृह' कहते थे<sup>७</sup>।

(४) नाटक—मनोरंजन के लिए नाटक भी लेते आते थे। मास्रविका-

१ अर्धेन प्रथमावतारमुपमानि रक्तकुरवकाभ्युपापनं प्रेय्य नववसन्तावतार  
व्यपदेनेरावत्या निपुणिकाभुगेन प्रापितो मवान्—इच्छाम्यापुत्रेन सह  
दोहापिरोहसमनुमविगुमिति । अवताप्यस्य प्रतिज्ञातम् उत्सवमनमेव गच्छात् ।

—मास्र० अंक ३ पृ० २६३

२ दोहो विज्ञापयति—नगरीयाणावस्य कुसुमसहस्रानेन समारंभं स्रज-  
त्रियतामिति । —मास्र० अंक ३ पृ० ३४२

३ मास्र० अंक ३, पृ० ३४२ से ३४३ तक

४ वसन्तोत्सवोपासनकोसपेनामोपमेन कवितं स्वरतां मट्टिमीति ।

—मास्र० अंक ३ पृ० ३०१

५ वैशिष्ट्य पाण्डिण्याय मं० १

—मास्र० पूरा अंक ३ इसी के प्रयोग ने मरा है ।

६ ता स्वर्गमपिरोप्य दोहया प्रहृयन्निगिनासिद्धया ।

मुकुररज्जुनिविष्टं वनच्छान्ताच्छगपनमवाव बाहुमि ॥ —रघु० १६४४

—अनुभवमन्त्रोपमनुसर्षं पटुरनि त्रियकृष्टविपुलता ।

अनपराधमरज्जुपरिपहे मुकुरां वनछान्तावतावन ॥ —रघु० १६४५

७ ननु तस्यातो स्त्री दोहागृहं —मास्र० अंक ३ पृ० ३०१

यह दोहागृह प्रवेशन में होता था ।



निमित्त भाटक बसन्तीत्यव पर ही जनता के सामने सबसे पहले सेवा मया था<sup>१</sup>।

सामान्य वर्ग की स्त्रियाँ बसन्त में विशेष राग रंग मनाती थीं। सिर में चप्पे के फूलों का झुंड बनाकर, स्तनों पर मनीहर फूलों की माला पहनती थीं<sup>२</sup>। कुमुन्ध के फूलों से रंगी साज साड़ी स्तनों पर केसर के रंग में रंगी बोस्ती<sup>३</sup> कानों में कर्णिकार के पुष्प वर्षाक काली भुमराक्षी बच्चों में बसोक के फूल और नवमस्त्रिका की कलियाँ<sup>४</sup> बसन्तकालीन शृंगार थीं। शृंगार घर से अपने पतिवों के पास जाती थी तथा कामसुख को प्राप्त करती और करती थीं। बसन्तकाल की श्रेष्ठभूषा का विस्तृत वर्णन दिया जा चुका है<sup>५</sup>।

पुत्रजन्मोत्सव—पुत्र के जन्म पर आमोद-प्रमोद मनाया जाता था। मृत्यु और पीठ की भूम मच जाती थी। बारबमिठाई वृत्त करती थीं मंत्र-वाद्य बजते थे<sup>६</sup>। पञ्चा पुत्रजन्म के हृष में बन्धियों को कारागार से छोड़ दिया था<sup>७</sup>।

विवाहोत्सव—इसके विषय में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। विवाह से पूर्व नगर की बच्ची तरह सजावट की जाती थी। हस्तबन्ध के समान रंग-बिरंगे टीरण और जालियों से नगर सजाया जाता था<sup>८</sup>। घर और कच्चा

१. अग्निहोत्रोत्सव विद्वत्परिषदा वात्सिशमप्रविष्टबलुमाकबिकान्निमित्तं नाम नालकमस्मिन् बगन्तीत्यवै प्रयोक्तव्यमिति । —भास० अंक १ पृष्ठ २६१

२. ईपत्तपारै कृतजीत्यहर्म्म मुबानितं वाद सागरव चण्ड ।  
कुबन्ति नामोऽपि बसन्तकाले स्तनं नगरं कुमुद्वेगनोहरै ॥ —भागु १।१

३. कुमुम्भरापारविर्तुर्दुर्भर्तिष्ठम्बविम्बानि विलानिभीनाम् ।  
तन्मन्दुके कुमुमरागपीरर्त्तक्रियन्ते स्तनमण्डलानि ॥ —भागु० १।१

४. कर्षेव पोष्य नवकलिवारं कर्षेय नीसिञ्जनेष्वयोरम् ।  
पुणं च पश्य नवकलिवारा प्रपानि वानि प्रमशजनाम् ॥  
—भागु० १।१

५. दैगिए, अध्याय 'वैसङ्गा'

६. नुनयवा बगल्लयनिम्बना प्रमोन्मयी मर बारपोरिनाम् ।  
न वेबल नदमनि बागपीपने पवि व्यज्जम्भन् विवैगमायपि ॥

के राजपक्ष पर बतलने समय सिपाई उनको देखने के लिए १।  
 परती थीं। सामुझ्ठा इतनी गहरी छाती थी कि किसी का बूझा-  
 वा परन्तु उसे बाँधने की मुय ही नहीं छाती थी। कैम  
 मिझ्की पर पहुँच जाती थी। बालों के डीसे पड़ जाने से इनमें  
 नीचे गिरते जाते थे<sup>२</sup>। कोई यदि महात्तर लगाया छाती होती थी  
 से वेर सींच कर नीले पैरों से ही सरोखे की मोर दीड़ जाती थी।  
 जरोखे ठक ठाक पैरा को जाप-ही-जाप पड़ जाती थी<sup>३</sup>। हरि कोई  
 में बंधन मया छाती होती थी तो एक ही आँख से ज्यो-ज्यो बिना  
 जमाए देपने को बघोर दीड़ पड़ती थी<sup>४</sup>। सीपी-बन्धन यदि हड़बडी में  
 जाता था तो कपड़ों को हाव से धावे-धावे ही सरोखों पर लड़ी ५।  
 और उसके हाव के आभूषणों की बमक भाँति तक पहुँच जाती थी<sup>६</sup>।  
 कोई बँदी भविषा की रचना गुँम छाती होती थी और एक छोर का  
 के बँधूठ में बाँध रखा होता था तो बायीं निरी होने पर भी वह बर  
 को देखने के लिए भावती थी और वहाँ पहुँचते-गहुँचते भविषा ७  
 उपर निकल कर बिहार जाती थी केवल छोरा वेर में बैया रह  
 ता<sup>८</sup>। बर-कन्या बबका बर हल प्रकार सरोखों पर बँटी सिखी

१. ततस्तदानीकस्तत्पराणां बीरेषु चापीकरवास्तवान् ।  
 बभूवुरित्थं पुरस्तु-रीणां त्वस्तान्मभामाणि विनेष्टितानि ॥ —रघु० ७।५
२. आनोकमार्गे मनुष्या वनस्या कयाचिदुड्ढेष्णवान्प्रमत्तम् ।  
 बन्धु न संभावित एव तावत्करीष ष्ठीमपि च केगागात् ॥  
 —रघु० ७।६ कुमार० ७।५७
३. प्रमादिक्रान्तिवयमपान्माहित्य वाचिद्वन्द्वयमेव ।  
 उन्मुहसीमापतिशालवाग्नात्तत्तकीरा बरवीं ततान् ॥  
 —रघु० ७।७ कुमार० ७।५८
४. विजोचनं वशिष्ठमंत्रमेव संमान्य तद्विचारावनेषा ।  
 तथैव दत्तात्रयमनिक्रम ययो दत्तात्रयमारा बभूवी ॥  
 —रघु० ७।८ कुमार० ७।५९
५. आगन्तव्यमितिदुष्टिरन्या प्रचानधिलो न बबन्ध बीवोम् ।  
 वाचिद्विष्टापरचप्रमेव हलनेन तन्माचवन्मम्य दाम् ॥  
 —रघु० ७।९ कुमार० ७।६०
६. बर्षोचिता तत्परमुक्तियाया परे परे दुर्निमित्ते दलन्ती ।  
 बन्धाचिदानीं दत्तात्रयं तत्तानींमुष्टदुष्टप्रतिमुष्टये ॥

हारा देसे जाते हुए राज-भवन में पहुँचते थे वहाँ विवाह-संस्कार होता था । ( यदि स्वयंवर प्रथा है तो वर-कन्या दोनों ही स्वयंवर में ही राज-भवन जा-जाते थे । यदि बाराह जाई है तो वर और उसके साथी ही राज-भवन में जाते थे कन्या राज-भवन में होती ही थी ) । विवाह के बाद धन पर अत्यंत धीमें डाकड़र<sup>१</sup> मनीरेजल के लिए माटक भी छोड़ा जाता था<sup>२</sup> ।

राज्याभिषेक का उत्सव—राज्याभिषेक के लिए बार धर्मों पर आभित नया विमान ( मंडप ) बनवाया जाता था<sup>३</sup> । मंडपीठ पर बैठे राजा की समस्त तीर्थों का वर लेकर हेमकुम्भी से डाकड़र नहलाना जाता था<sup>४</sup> । बायें और दूध बुझकर आदि मंगल-वाचों की सुमधुर ध्वनि भूँजती रहती थी<sup>५</sup> । दूध की के मंडुर और बड़ की छान तथा मधुक के पुष्प से राजकुल के बड़ राजा की मीराजना ( बाखी ) करते थे<sup>६</sup> । जयदेव के धर्मों का उच्चारण करते हुए ब्राह्मण पुरोहित की आगे कर राजा की नहलाते थे<sup>७</sup> । बाट और बारण राजा की प्रसंता में गीत गाते थे<sup>८</sup> । अभिषेक के परचासु स्नातकों को दान दिया जाता था<sup>९</sup> वे भी राजा

१. तौ स्नातकैरनुमता न राजा पुरैभिधिरथ कमज प्रयुक्तम् ।  
कन्याकुमारो कनकासनस्यावाग्रागितायेनचमन्मभूताम् ॥ —रघु० ७।२८
  २. तौ संपिपु व्यधितवृत्तिमेव रत्नान्तरेण प्रतिबद्धरागम् ।  
अरन्धतान्तरमां मुह्यत प्रयागमाघं ललितामहारम् ॥ —कुमार० ७।६१
  ३. तौ तस्य वस्यमात्रामुरविषेकाय मिलिषि ।  
विमानं नवमुद्रि चनुस्तम्भप्रतिष्ठितम् ॥ —रघु० १७।६
  ४. सर्वत्र हेमकुम्भेण संनृतीस्तीक्ष्णवादिभिः ।  
अतस्तु प्रकथो मंडपीठोपवेतितम् ॥ —रघु० १७।१०
  ५. मंडपिच स्निग्धगन्धीरं तूर्णैरुहमपुष्करैः ।  
अन्धमीयन कन्यां तस्याधिष्ठितमोदति ॥ —रघु० १७।११
  ६. दूर्वापिचांशुरप्यध्वगजिल्लगुटीतराम् ।  
मतिवृद्धे प्रयुक्तान्ता वेदे मीराजनाविपीम् ॥ —रघु० १७।१२
- अभिषेक पुरोहित की, मधुक के पुष्प करते हैं सीताराम अनुदेरी  
होना करते हैं ।
७. पुरोहितयोपस्यं विष्णं श्रीवैष्णविः ।

को बायीप देते थे<sup>१</sup>। राज्याभिषेक की प्रसन्नता में राजा बन्धियों को जेल से मुक्त कर देता था। मृत्युदण्ड माफ हो जाता था बोसा होने वाले पशुओं के कंधे पर से जुए उतार दिए जाते थे। गाय का बूच बछड़ों के लिए छोड़ दिया जाता था<sup>२</sup>। पित्रियों से ब्रौह्म-यज्ञो छोड़ दिए जाते थे<sup>३</sup>। इसके पश्चात् राजा का राजसी श्रृंगार होता था। हस्तौरी के सिंहासन पर, जिस पर उत्तररत्न बिछा रहता था<sup>४</sup> राजा को बिठा कर, प्रभावक हाथों को मज्जी तरह धोकर सुमन्वित इष्यों के पृष्ठ से केन्द्रान्त घुमाते थे<sup>५</sup>। फूक और मीठियों की मत्पा केन्द्र-संस्कार कर, निर पर पद्मरागमणि बाँध देते थे<sup>६</sup>। विवाह में जिस प्रकार बर को सजसा जाता था उसी प्रकार राजा का भी श्रृंगार होता था। बल्लूरी और चन्दन का अंमराग लगाकर गोरोचन से राजा के मुख पर पत्र रचना की जाती थी<sup>७</sup>। हंसानिष्ठ कुङ्कुम पहन कर और इस प्रकार फूनों और आभूषणों से अलंकृत होकर राजा बर की तरह हो मुन्दर लगता था<sup>८</sup>। बर की तरह यह मणि-वस्त्र में अपना प्रतिबिम्ब देखता था<sup>९</sup>। परिवारिकार्थ अथ-अवकार

१. ते प्रीतममस्तस्मै यामार्गिपमुदैरयन् ।  
सा तस्य कमनिवृत्तदूरं पश्चान्कृता फलं ॥ —रघु० १७।१८
२. बन्धच्छेदं च ब्रह्मनाम वधाहोमवधायकम् ।  
धुर्याणां च बुरो मोक्षमदोहं चाग्निहो गवाम् ॥ —रघु० १७।१९
३. ब्रौह्मन्त्रविमोक्षस्य पञ्चरत्ना धुवायकः ।  
सम्यमोक्षास्तथावेष्टाचक्ष्ममत्तयो-मयम् ॥ —रघु० १७।२०
४. तदा चक्ष्माश्चरम्यस्तं गजदन्तासन्नं युधि ।  
सोत्तरच्छत्रमप्यास्तं गैरम्यग्रहबाधं च ॥ —रघु० १७।२१
५. तं पूरादानवेष्टान्त्रं सोमनिजिक्रयणम् ।  
आभ्युपगमनैस्तैस्तैश्चरिषु प्रसाधका ॥ —रघु० १७।२२
६. तैश्च धुल्लानुषोन्नतं योक्तिमन्तपतस्रजम् ।  
प्रत्यु पद्मरागैश्च प्रभाजगन्धजोभिना ॥ —रघु० १७।२३
७. चन्दनेनामरागं च ममनामिमुगण्णिना ।  
समागम्य उत्तररत्नं चर्म विम्यस्तरोचनम् ॥ —रघु० १७।२४
८. आमुष्ठावरणं समी हंसचिह्नद्वयसूत्रम् ।  
आशीर्वाद्यप्येष्टयं च साम्यपोषपूर ॥ —रघु० १७।२५
९. वैरम्यरिपिकाया तस्या-र्जं हिरण्यमे ।  
विराजयिष्ये मये मेरी वल्लभोदित ॥ —रघु० १७।२६

करती हुई बरह रही थी हुई राजा को समा-मण्डप में लाती थी<sup>१</sup> । समा में बिठान बना रहता था<sup>२</sup> । इसके बीच में सिंहासन रखा रहता था इसे मंजका यवन<sup>३</sup> भी कहा जाता था । धर के पास मन्थीठ रखा जाता था इस पर अग्य राजा धिर रात कर प्रणाम करते थे<sup>४</sup> । राजा हाथों पर बैठ कर घूमने निकलता था<sup>५</sup> । क्षिरया मरौल पर बठ कर राजा की बैठती थी<sup>६</sup> ।

राजा के बाहर से आने के बाद उत्सव—जपने बैठ में गया हुआ राजा जब बहुत दिन बाद नीटता था तब प्रजा मातर और स्वायत्त के मित्र मंड ऊंचे कर देती थी<sup>७</sup> । जिस पर राज्य का उत्तरदायित्व राजा की अनुपस्थिति में रहता था वह सेना लेकर आगे स्वायत्त करने जाता था<sup>८</sup> । नगर के बाहर किसी उत्सव को अस्मन्त कर उसमें वह निधामाथ ठहराया जाता था<sup>९</sup> । यहीं सब जाति-वन्धु उससे भेंट करने आते थे<sup>१०</sup> । उत्पत्त्या वह सबके साथ नगर में प्रवेश करता था । नगर को पहले ही बल्लनहार आदि में मन्त्रीमन्त्रि लत्रा दिया जाता था<sup>११</sup> । राजा के नगर में प्रवेश करते समय उस पर स्वेत भवनों के मरौलों से

- १ त राजकुलव्यवसायिभिः पाववर्तिभिः ।  
ययाकुलीरितलोक मुपमा नवमां समा ॥ —रघु १७।२७
- २ बिठानवहितं तत्र भेजे धितुकमानमम् ।  
बुधामभिनिष्कृतपावपीठ महीप्रिताम् ॥ —रघु० १७।२८
- ३ यद्युमे तेन वाग्यमर्थ मंजकायवनं महत्.....—रघु० १७।२९
- ४ दैमिष्ट, पारद्विपक्षी, नं० १ —रघु० १७।३०
- ५ स पुरं पुष्टुतधी बलानुमनिमन्त्रात् ।  
ब्रह्मापरवहार या नायेनैरावतीवसा ॥ —रघु० १७।३२
- ६ त प्रीतिविद्यर्धनेरन्वयु वीरमर्षितः ।  
धरत्प्रमन्त्रैर्मर्षितभिर्ब्रह्मार्थ इव प्रुबन् ॥ —रघु १७।३४
- ७ पुरंदरधीः पुरमुत्पन्नाई प्रविशत वीरैरमिन्यतमानः ।  
भुव भुवमेष्टममानसारे भूय स भूमेष्टमामर्षत्र ॥ —रघु० २०।७४
- ८ धके हनुमन्तविग्रप्रवृत्ति प्रत्युद्गता या भरतः नगीम् । —रघु० १३।९४
- ९ भोजाथ प्रकटिदुरमरेष यत्था काकुलपः स्त्रिमिनत्रदेन पुनःपुनः ।

मोहों<sup>१</sup> बरमाई जाती थीं। शरीरों पर म्बिरी बैठी रहती थीं वे राजमहिषी को प्रणाम करती थी<sup>२</sup>। चारों ओर मयंक-बाध बजते रहते थे<sup>३</sup>। राजा के सिर पर छत्र लगा रहता था और बान-बान बैर बूझते जाते थे<sup>४</sup>। इस प्रकार प्रजाजनो के द्वारा सम्मान होता हुआ राजा अपने महक में प्रवेश करता था।

गृह-प्रवेश-उत्सव—एक मकान के बनने पर पहले विविध प्रकार का पूजन होता था। पशुपहार<sup>५</sup> अर्थात् पानवरों को बलि दी जाती थी।

पानभूमि-रचना<sup>६</sup>—यह भी एक प्रकार का उत्सव था। इसमें सब एक साथ मिल-जुल कर धराव पीते थे। जायकम भी इसका प्रचलन है, इसे 'कैक-टेक पार्टी' कहते हैं।

धार्मिक उत्सव—( अ ) पुकूठ<sup>७</sup>—यह उत्सव इन्द्र के प्रति भेदा और आदर प्रकट करने के लिए मनाया जाता था। भोगवस्तु-रत्न के कथनानुसार यह भारी के मुख्यतः में अष्टमी से द्वादशी तक अर्थात् पाँच दिन मनाया जाता था<sup>८</sup>। राजा बृत्ति के लिए इसकी पूजा करता था। मत्स्यनाथ हमने

१ देखिए, पिछने पृष्ठ को पारटिप्पणी नं० ११

—मरुप्रमुखाश्च मरुसकामं समस्तमारामिबर्तमानम् ।

अवाकित्वात्मकता प्रमृताचारकादित्वा पौरुषा ॥ —रघु० २।१०

२ स्वपूजनानुष्ठितवाचसा कर्षीरपस्थां रघुवारपत्नीम् ।

प्रसादवातापनदुःखमे सावत्तनापौञ्जलिभिः प्रचेमु ॥ रघु १।४१३

३ देखिए, पिछने पृष्ठ की पारटिप्पणी नं० ११ —रघु० १।४१०

४ सौमित्रिया साक्षरजन मग्गमापुत्तवाक्यवज्जो रयस्य ।

पुतावना भरतेन सातानुवायनंवात इव प्रवदः ॥ —रघु० १।४११

५ वन सपरि सरगुरहारा पुर पराप्नप्रतिमा गृह्णता ।

उपोवित्रैर्वाप्नुविशालविद्भिनिबलपामास रघुप्रवीर ॥ —रघु० १।११६

६ ताम्बूलानां दमेस्तत्र रचितान्जलभूमय ।

नारिकेलामर्ष पोषां तात्रर्षश्च पशुपय ॥ —रघु० ४।४२

—विभीमुक्तोक्तजिरः फलाहृषा कर्ने पिरम्प्रवज्जनात्तरव ।

रपनिधिं सोनिमपशुत्वा रणत्र मयोरित्वा पानभूमि ॥

—रघु० ७।४१

—आपानान्तकवर्षवर्षिणी पानभूमिरचना त्रिपामय । —रघु० ११।११

७ पुगूतपत्रम्येन तस्योभजनरहकप ।

नराप्नपानरहितयो ननगु नयना प्रजा ॥ —रघु० ४।३

८ Ind. in Kāśī By—Sn B S Upadhyaya Page 328

विषय में कहते हैं—‘एवं च कूर्यते यात्रामित्रदेवीर्बुधितिर । पत्रम् कामधर्मी  
स्यात्तस्य राज्ये न संशयः’<sup>१</sup> । कावे का कहना है कि—इसमें एक सम्भा गाढ़  
रिया जाता था इसके ऊपर शब्द सभसा जाता था । इसके आकार के विषय  
हि के सम्भा मत देते हैं— गजाकारं चतुस्तंभं पुरन्दारे प्रतिष्ठितम् । पीठं कुबन्ति  
चारि पुरतस्तमहोत्थम्<sup>२</sup> । मस्तिनाय का कहना है— चतुरार्यं पञ्चाकारं  
पत्रन्दारे प्रतिष्ठितम् । बाहुं सक्तम्बजं नाम पौरलोकपुगावहम्<sup>३</sup> ।

( ब ) प्रभासी-पति की कुशाख्या के लिए पत्नी पति के लौटने की तिथि  
एक दिन दिनकर कतन ही फूल से सेती थी और प्रतिदिन एक-एक कर उन्हें  
असय रख देती थी । इससे बचना कर सेती थी कि कितन दिन व्यतीत हो चुके  
और कितने सेप रहे<sup>४</sup> । श्री भगवत्सरण के मतानुसार यह कामकालि उत्पन्न था ।

( छ ) तिथि-विशेष पर कया-यमुना के संवत्सर स्नान होता था<sup>५</sup> ।  
अममल-निवारण के निमित्त सोमतीर्थ<sup>६</sup> आदि स्थानों पर जाया जाता था । यहाँ  
स्नान करने ॥ पुष्प को प्राप्ति पायीं वा क्षय हो जाता है, ऐसा विद्वान्ता था ।  
तीर्थ-स्नाना में जाना कामिक कल्प था । वहाँ स्नान करने से समस्त पाप धुल  
जाते हैं, ऐसी धारणा प्रचलित थी । जल सोब नदी के किनारे ही बनाए जाते  
थे । धातुस्तक का चौबीतीर्थ ( पूर्व से दक्षिणताराव्यन्तरे चौबीतीर्थसंज्ञितं बन्द  
मानाया प्रभष्टमपुत्रीयकम्—पृ० ६० ) कल्प का धातुस्तक के यह की धान्ति  
के लिए सोमतीर्थ जाना ( भवि० पृ० ६ ) ऐसे ही स्थल थे ।

१ मस्तिनाय की टीका —पृ० ५१३

२ Inds in Kairtos By Bhagwat Sharan —Page 328

३ मस्तिनाय की टीका —पृ० ५१३

४ आलोके से निपटति बुध ता बलिप्याकृता वा.....—उत्तरमेघ २५

—देवाम्बाहर्गिष्वर्हिवसस्थापितस्यावधेर्वा  
विम्यस्तम्ली ग्रहि यपनया हेतुसीरत्तपुनी ।

मन्त्रं वा ह्यपनिहितारम्भमास्वारयन्ती

प्रामदीते रक्ताचिर्ह्यंगनानां विगोरा ॥ —उत्तरमेघ २७

## विनोद

अलङ्कारिका—श्रीधर्मश्रुतु में गृहशीर्षिका<sup>१</sup> दीर्घिका<sup>२</sup> वषट्वा नदी<sup>३</sup> में प्रायः जलशेड़ा से मनोरंजन किया जाता था। राजियों के स्नान करने से उनके शरीर पर समा अंशराग नदी के जल में धुल जाता था। नदी की बारा रंग बिरंगी होकर बहती हो सुन्दर लगती थी जैसे बारम्बा से भरी सज्ज्या<sup>४</sup>। राजियों के स्नानों पर समा चन्दन समुद्रा को जल-शेड़ा से जल में मिल कर बहने छपता था जब समुद्रा का रंग ऐसा प्रतीत होता था मानो वही पर उनका गंगाजी की सहुरों से संयम हो गया हो<sup>५</sup>। बलबिहार से दुवतियों के सुमन्वित शरीर का स्पष्ट पाकर जल भी मर्हकन लगता था<sup>६</sup>। जल की उठती हुई सहुरें सुन्दरियों की आँखों के बंजन को छोकर मन्थान के समय की साँझी उनकी आँखों में भर जाती थी<sup>७</sup>। बानों से मिरम के बमरजल विस्तक कर नदी में ठहरने लगते थे जिनको बैठकर मछलियों को छेबार का भ्रम हा जाता था<sup>८</sup>। वे मुरंय

- १ शुशुभिर स्मित चाक्षुरजनना स्थिय ह्य तदपघिनिमयेतताः ।  
विचचतापरसा गृहशीर्षिका मरुत्कारकछाछविहंयमा ॥—रघु० ११३०
- २ यौवनोन्नतविलासिनीस्तनलोमकोलन्यसादय दीर्घिका ।  
बुधमोहनबृहत्तरम्भुमि स व्यामाहृत विगाडमम्भय ॥—रघु० १११८  
—जलद्वयान्तं यत्प्रमदाकटाग्रम् ईश्वरीरम्भनिमम्भयच्छत् ।  
बम्भैरितानी महिषैस्तर्भं गृण्यहृत क्षीरति दीर्घिकागाम् ॥  
—रघु० ११११
- ३ अशोर्मिसोलोमन्त्राग्रहंस रोपोल्लापुणवह तरव्या ।  
विहृतुमिच्छा वनिताशयस्य तस्याम्भसि श्रीधर्मपुने बभूव ॥—रघु० १११४
- ४ पद्मावरोचं घटतो मरीचैर्विषाडमालो मल्लिहागरावै ।  
संय्योदय छात्र इवैव वर्षे पुन्यत्यनेकं तरयूयवाहः ॥—रघु० १११८
- ५ यस्यावरोचस्तनवन्दनार्ता प्रताप्तनाडारिचिन्तारकाते ।  
वलिन्दवम्भा मयुरां नतापि रंवागिर्ललनजलेव वाति ॥—रघु० ११४८
- ६ बृताचारं शुक्लपरजोपमिभियम्यवरा  
स्तोमशीरानिरतमुचतिस्नानतिर्जयमरिद्धः ।—दृक्पेप १७
- ७ विलुप्तमन्त पुरमुखरीचा यरंजनं मौन्दुष्टाभिरिद्धः ।  
तद्बलजोबिमदरागघोषां विलोचननु प्रतिमुक्तमाशाम् ॥—रघु० १११५
- ८ मयी पिरीयग्रमकावर्तता प्रार्थयितो वारिचिह्नारिपोनाम् ।  
परिष्का रीतमि निम्नवाया रीवाभ्योताउन्मन्ति बीवात् ॥  
—रघु० ११११



बजाने के समान बपटो है-देकर जल को ताड़ित करती थी<sup>१</sup> जबवा बस-ताड़ना से मूर्ख के समान ध्वनि निकलती थी । कभी एक-दूसरे के मुख पर पानी डालती थी<sup>२</sup> और छोने की पिचकारियों से रंग लोड़ा करती थी<sup>३</sup> । जल-झीड़ा का एक रूप पृथ मोहन-मूहों में गुरछात्मक भी था<sup>४</sup> ।

मन्दिरा-यान—यह भी विनोद के साधनों में एक था । उत्पत्ति के अवसर पर मन्दिरा-यान किया जाता था<sup>५</sup> ।

मृगया—यह विनोद भी था और व्यसन भी । कवि ने इसकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि हमसे क्यों बट जाती है, तोड़ छेँ जाती है, धीरे-धीरे हलका और कुर्बाना हो जाता है, पशुओं के मुख पर दीपते हुए श्लेष और मय का ज्ञान हो जाता है । चलते हुए लड़कों पर बाण चमकने में हाथ मय आते हैं । इसको मिथ्या ही व्यसन कहते हैं, इसकी तुलना का विनाश और कहीं मिल सकता है<sup>६</sup> ? यही नहीं दुष्यन्त न विषय में सोचता हुआ सेनापति अपने मन में कहता है, कि मनुष्य जगदा को बुरा बताते हैं परन्तु स्वामी को तो इतने बड़ा लाभ हुआ है, क्योंकि पहाड़ों में हमने बाँके हाथी के समान इनके बलवान् धीरे के जाने का भाव निरन्तर मनुष्य की छोटी को धींचने से ऐसा कहा हो गया है कि उस पर न तो घृण का ही प्रभाव पड़ता है और न पसीना ही झूटता है । बहुत दौड़-बूप से

१. वीरस्वकीर्तिमिस्तस्यै- प्रसिम्बकेर्धमिनन्तमानम् ।  
 आशयु संमुख्यति रक्तमात्रा भीतानुर्ध्व वारिभूयसायम् ॥—२पु० १९।९४  
 —आत्मकर्मिणं यत्प्रमहाकरार्थम् रंगधारध्वनिमन्त्रगच्छन् ।  
 बर्धिरिवासी महिरेस्तरश्म- गृमाहर्ष कोटनि वीपिकायाम् ॥

—२पु० १९।११

२. एता करोतीदृशवारिचारः सर्वात्मनीमित्रमेतु सिक्ता ।  
 बन्धुताप्रेरकस्त्वनृप-पूर्वाद्यान्वारितराग्रमन्ति ॥—२पु० १९।९९
३. बर्गोदई बाचनमृगमुक्तीस्त्वमापराध- प्रमयागमिषम् ।  
 तवागत मार्गितगतं बयानं तवागुनिष्यन्द् इवादिशम् ॥ —२पु० १९।१००
४. पौषभोजनविभक्तानिमोक्षनशोभसौम्यमन्त्राश्च वीपिका ।  
 गृहमादनगृहान्तरम्बुजि न व्ययानं विषादमन्त्रम् ॥ —२पु० १९।९

यद्यपि ये बुद्धिहीन हैं। पर पुष्टों के पक्के होने के कारण इनका बुद्धिमान नहीं रहित हो जाता है<sup>१</sup>। अतः मृत्यु से गरीब हुए होता था।

मृत्यु के समय का रीति पहले ही बताया जा चुका है<sup>२</sup>। हाथ में अनुप  
निर और गले में अंगुली कूटों की माला पहने पक्की सेविकाएँ<sup>३</sup> राजा के साथ  
रहती थी। इनके अतिरिक्त स्वर्ण<sup>४</sup> चातुरिक<sup>५</sup> और बनवाही<sup>६</sup> मृत्यु करते  
समय राजा की सहायता करते थे। चिकारी वस्तु निकाल दूढ़ते थे चातुरिक  
आल आदि हाककर धिक्कार फैलाने से और बनवाही वन के माँस पशुओं आदि  
से परिचित थे वे चिकार दूढ़कर राजा की सूचना दिया करते थे। चिकार  
करने योग्य पशु हरिण पक्षी मूखर अंगुली धिया बाहुमिहा मिह मादि थे<sup>७</sup>।

मृत्यु के समय क्लेश-ही-क्लेश मनुष्य को प्राप्त होता था। सड़े हुए पत्तों  
से युक्त मत्तियों का कमीचा और कड़वा पानी पीना पड़ता था। बर-बर  
तोड़े की सीधों पर भुना मांस खाने को मिलता था। बौद्ध-बौद्ध गरीब के  
बोड़ हीने पड़ जाते थे<sup>८</sup>।

घृतश्रीका<sup>९</sup>—विनो के माथों में से घृतश्रीका भी एक थी परन्तु इनका  
विस्तृत उल्लेख चित्र प्रचार यह जैसा जाता था कवि के शब्दों में नहीं मिलता।

१. अनवरतमनुगमिषात्मनःपूष रतिरिचममिष्यु स्वेदयेचमिष्यु ।  
अचिन्तयति पार्श्वं व्यापतत्वात्मनःपूर्य पिरिचर इव नाग प्रापमार्तं विमर्ति ॥

—अभि० २।४

२. देखिए, अध्याय 'वध-भूषा'।

३. एव वानासन हस्ताभिः प्रवर्तनीभिः वनपुष्पाणां चारिणीभिः परिवृत इव एव-  
मच्छति त्रिमयस्य । —अभि० अंक २ पृ० १७

४. स्वर्ण चातुरिकः प्रवसात्सिचतं व्यपमत्तानस्यस्य विवेचनम् ।

स्मिरतुर्मममूमिनिपातकमृषयामयवयोचितं वनम् ॥ —रघु० १।१३

५. तैव हि निवृत्तयः पूषमप्राप्त्यनयाहिणः । —अभि० अंक २ पृ० ११

६. देखिए, अध्याय 'पान-पान'।

७. पत्रमकरवपापाणि कटुनि पिरिरी अकानि बीदन्ते । अनियमं च घृत्यमांस  
भुविष्ठ आहारी भुज्यते । नुरमानुषाकमकृष्टतमं च राजारति निवर्तनं रतिष्ठ  
नाम्ति । —अभि० अंक २, पृ० २७

८. वृद्धागतामृतेन वचिन्करेण रीत्याप्यरतात्मनः ।

रत्नापुत्रीकममवानुविदन्नुरायोवायः तमीलमत्तान् ॥ —रघु०, १।१८

—न मृत्युपानिर्गतं दुरोदरं न च अतिरिक्तमाभरणं नपु ।

उमुत्थाप न वा मयोरुता त्रिपुमा दत्तमानमराहन् ॥ —रघु० १।१७

छोक-नृत्य और संगीत—संकीर्ण नृत्य आदि सदा से ही विनोद का अपिधान माना जाता रहा है। संकीर्ण में चित्त को रमामै की दक्षिण सदा से ही मानी जाती रही है<sup>१</sup>। रसिक व्यक्तियों की गोच में बाका या बीषा सदा पड़ी ही रहती थी<sup>२</sup>। विरहिणी स्त्रियाँ संकीर्ण से ही रसि बहुकाया करती थी<sup>३</sup>। स्त्री और पुरुष दोनों ही संगीत के सम को समझाने वाले थे। अन्निमित्त स्वयं तबका और मर्दय आदि बजाने में प्रवीण थे। नर्तकियों के नृत्य करते समय वह तबले से साथ देता था। ऐसा करते समय उनके गले की मात्मा हिलती रहती थी<sup>४</sup>। संकीर्णरात्म<sup>५</sup> और प्रेयामूह<sup>६</sup> इस बात को प्रमाणित करते हैं कि संगीत नाटक उस समय के विनोद-साधन थे। नृत्य-समारोह भी विनोद का अच्छा साधन था। कवि की यह दक्षिण—‘देखो समुहों के स्वापी का कैसा सुन्दर नृत्य हो रहा है। अतः मैं पड़ी मेघों की परछाईं ही उनका घरीर है। पुरषिया पवन ॥ उठती कहरें नृत्य के लिए सठ हुए उनके हाव हैं। घंटा और हंस आदि पड़ी उनके पैर के कुंजक और धामूपम हैं। हापी और मगर के मुख उनके बीले बदन हैं, नीले-कमल उनकी माछाएँ हैं। तीर से टकपटी स्मरें ताज के रही हैं वह सब ‘लोकनृत्य की ही अमिष्यंजना करता है’<sup>७</sup>। मानविका और इरावती का नृत्य एक व्यक्ति का नृत्य है, अतः अनेक और सामूहिक दोनों प्रकार के नृत्य थे।

१. अहो रामनिविष्टचित्तवृत्तिरन्निमित्त इव सवती रमः ।
- उत्तारिम पातरागेन हारिषा प्रमथं हृतः ।—अभि० अंक १ पृ ३
२. अकर्मजपरिवर्तनोचिते तस्य निम्ननुरागुभ्यतामुये ।
- बन्धनी च हृदयममस्वना बन्धुबागनि च बाधलोचना ॥ —रघु १९।१३
३. उत्सने वा नक्तिमसने लीम्य निक्षिप्य बीषा
- मरुगोनाकं विरचितवदं मेघमुद्रागुफाया ।
- संकीर्णाय नयननक्तिं सारपिरया कर्षयिन्
- भूयोमुप स्वपमि कृतां मूर्च्छनां विमरन्ती ॥ —उत्तरमेघ २९
४. स स्वयं प्रहृतुञ्जट इती लोकमात्यवसयो हरममः ।
- नृगशीर्षमिवातिनक्षिणीं चार्वरतिषु मुरप्यन्ययन् ॥ —रघु० १९।१४
५. आ वपस्य संगीतगालान्तरेऽपानं देहि । —अभि०, अंक ३, पृ० ७८
६. तेन हि हारति कर्षो प्रघाट्ये संगीतरचनां बत्सा तनमवती कुलं प्रपद्यन् ।

चित्रकला—विनोद-साधनों में सर्वोत्तम और मूल्य की तरह चित्रकला का भी प्रचार था। स्त्री और पुरुष दोनों ही इस कला में निपुण थे। विरही पुरुष और विरहिणी स्त्रियाँ विनोद के लिए चित्र खींचा करती थीं<sup>१</sup>। चित्रगाथा<sup>२</sup> धार से स्पष्ट होता है कि शोक से भी चित्रकार चित्र खींचा करते थे।

कथा-आख्यायिका—कथाओं द्वारा प्राचीन काल से ही विनोद किया जाता था। राम के वृत्तजन कथाएँ सुनाया करते थे और अतिथियों का मन बहलाना करते थे<sup>३</sup>। राजपरिवार में अत्यन्त व्यक्ति के मन-बहलाव के लिए भी कथाएँ सुनाने की प्रथा थी। पारिषी का मनोरञ्जन परित्राजिका कथा सुना कर किया करती थी<sup>४</sup>।

झोड़ापझा,<sup>५</sup> झीड़ा-गैल और उद्यान—गुरु सारिका मयूर आदि

१ मत्स्यपुराण विरहस्तु वा भावमयं चित्रांती —उत्तरमेव २१

—एषा राजर्षीनिपुणता। ज्ञान उक्त्यमपरो मे वतत इति।

—आदि० अंक ६ पृ० ११४

—अथवा उन्नतवत्त्वा उक्त्या प्रतिकृति चित्ररूपक आभिव्यक्त्यलोक्यन्तिष्ठतु।

—विक्रम० अंक २ पृ० १७८

२ चित्रराज्ञी यदा देवी यदा प्रत्यप्रवचराणां चित्रलेखायाचामस्यालोक्यन्तीतिष्ठति।

—मात० अंक १ पृ० २६४

३ प्राप्तावर्तितुं यनकयालोचिन्नामयडा-

न्यूर्वाहिरित्यनुमत्तं पुष्टि आगिष्ठाना विद्यालाम्।—पूरुमेव ३२

—प्रद्योतस्य त्रिपुष्टिहरे बन्धराजोऽन्ये  
हैव तान्त्रमुपवनममूहव तन्वीव राज्ञः।

अनोद्भूताः किल नलपिरि। स्तब्धममृताष्टयं स्वर्ग-

नित्यागन्तुरममनि अनी यत्रवन्पुनमित्रः ॥—पूरुमव ३५

( बुद्ध लोच इस श्लोक की प्रशिक्ष मागते हैं )।

४ प्रवातयाम देवी निगन्मा रक्तचन्दनधारिणा परिजनहस्तगतैः चरणैः मग  
धया वधामिर्विनादमाना विह्वलि।—मात० अंक ४ पृ० ३१७

५ झोडापझी—झोडापझिमात्र्यम्य वञ्जरम्भा मवात्तः।—रघु० १०।२०  
कनूतर और मरु—

—यत्रकटापायु हुंता युक्तुलितयता दीपिवारधिलीनाम्,  
सौधाम्यदपठानाशुक्तिपरिचरुडिगिराजानि ।

विन्दुभारान्तरिणम् बरिगरिणि शिणी भान्तिमशारियम्

मर्वरगैः नमदीस्यमिव मृगदुर्भीन्दते मयमन्ति ॥—मान० २।१२

ठाता—

—अथपरि च विरं नम्रव्यवबोधप्रयुक्ता

यनुवरति शुभम्ने यञ्जुवापञ्जरसवः।—रघु०, ६।७४

मैत्राण्डियों से पूछ कर 'क्या तुम अपने जिस पति की प्यारी हो उसे भी कमो  
मरण करती हो' ? या हाथों से तात्पियाँ बजा-बजाकर मोर जादि को नचाकर<sup>२</sup>  
बैरहिणी स्त्रियाँ अपना मनोरञ्जन किया करते थीं । कीड़ा-पीत<sup>३</sup> प्रमदवन<sup>४</sup>  
हीर उद्यान विनौर के प्रमुख केन्द्र थे । प्रमदवन में दुष्यन्त<sup>५</sup> पुकरवा<sup>६</sup> और  
प्रमिन्निभ<sup>७</sup> बिहोहीष्ट मन को बहलाने का प्रयास किया करते हैं । उद्यान-यात्राएँ  
ही हुआ करती थीं । वात्स्यायन के कामसूत्र में भी उद्यान-यात्रा का वर्णन है ।

स्त्रियाँ की कीड़ा

( अ ) कन्दुक-कीड़ा—वाक्चिकाओं की कन्दुक-कोड़ा का कवि ने बार-बार  
उल्लेख किया है—

१. पुच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्चरस्या  
वन्धिर्गुण स्मरति रक्तिके त्वं हि तस्य शिरेषि । —उत्तरमेघ २५
२. ताले पिञ्जावस्यमुमगैर्नर्तितं वात्स्याये  
मामध्याले नियमविगमे शोचनच्छः सुहृद्व । —उत्तरमेघ १६
३. तस्याम्पौरे रचितपिच्छरः पेशलेरिन्नीलैः  
प्रिदापीकः कनककश्लीवेष्टमप्रेक्षणीयः । —उत्तरमेघ १७  
—उत्तरमेघ २१ विक्रम० पृ० १८८
४. जयतु जयतु देव । महाराज प्रयवेतिताः प्रमदवनमुमयः यथायाममध्यास्ता  
विनोदवानानि महाराजः । —अभि० अंक १ पृ० १०७  
—विश्वनाथते नन्धुमुकुन्दस्य चरणमस्ति । तद्भुवान्प्रमदवनमायमादेशमनु ॥  
—विक्रम० अंक २ पृ० १७३
५. राजा—अनेमं शिबलमेवमुचितव्यापारविमुक्तं चेतसा का न गतुं वागवापि ।  
दिद्रूपक-राजप्रमदवनमेव गच्छावः । —मात० अंक ३ पृ० २६३
६. रैतिष्ट, पादलिप्ययी नं० ४ —अभि० अंक १ पृ० १७
७. रैतिष्ट, पादलिप्ययी नं० ४ —विक्रम० अंक १ पृ० १७३
८. रैतिष्ट, पादलिप्ययी नं० ४ —मात० अंक ३ पृ० २६३
९. वात्समियात्रोपिष्टवन्मुदयमानोवतः वात्समिपुत्रमुदयः ।  
महाराजराजैर्नर्तितव्यापारितामस्तः श्रीवामरत्नं त्वदीयम् ॥ —अपु० १९८३



कालिदास के प्रथम उत्कलासीन संस्कृति

श्रीकालिदासों से पूछ कर 'क्या तुम जानते किम पति' ।  
स्मरण करती हो' या हाथों से छातियाँ बजा-बजा'   
बिच्छिन्नी निगयी अपना मनोरञ्जन किया करती थी  
और उसान विनोद के प्रभुत वेग से । प्रमदवन ।  
अग्निमिव\* बिच्छोरीष्ट मन को बहलाने का प्रयत्न ।  
थी हुआ करती थी । वात्स्यायन के कामसूत्र में भी ८  
कन्याओं की क्रीड़ा

( अ ) कन्तुक-क्रीड़ा—कालिदासों की कन्तुक  
उल्लेख किया है—

१. पुच्छन्ती वा मपुत्रवचनां सारिकां पञ्चरत्ना  
कञ्चिदुल्लु स्मरति रमिके त्वं हि तस्य प्रियेति ।
२. तावे जिह्वावन्मयमुपवर्तितं कावसा मे  
यामध्याते नियमविगमे नीलकण्ठः सुहृद्व ।—
३. तस्याम्लीरे रचितधियरा पौरुषेतिस्त्रीमै  
क्रीडायेनः कनकन सीवेहनप्रेषणीय ।—

४. जयन्तु जयन्तु देव । महाराज प्रत्यवेगिता  
विनोदवानानि महाराज ।—अभि० ।  
—विचिन्नागने काम्यदुल्लुपस्य सारणा

राजा—अथेवं दिवसोपमृचिन गा  
विदुषः-तन्त्रवचनमेव गुरुणा

१. हेतिष्ट, पारिण्यदी नं० ४—
२. हेतिष्ट, पारिण्यदी नं० ४
३. हेतिष्ट पारिण्यदी नं० ४

कूट लोड़ना<sup>१</sup> माछा बनाना<sup>२</sup> पुण्यश्रम्या रचना<sup>३</sup> फूलों से अपने को अलंकृत करना<sup>४</sup> स्त्रियों के विनोद के ही साधन नहीं। उनकी परिष्कृत शक्ति के भी परिचायक थे। शकुन्तला की सलियाँ मनसूया और प्रियंवदा<sup>५</sup> और इरावती की शायी<sup>६</sup> सभी फूल चुनने की शौकीन थीं। ऋतुसंहार में इस बात का स्पष्ट और विस्तृत बर्णन है कि किस प्रकार स्त्रियाँ प्रत्येक ऋतु में उस ऋतु में फूलों से अपने पुण्यो से अपना श्रृंगार किया करती थीं।

रघुवंश में एक घर 'सोसागा'<sup>७</sup> मिलता है। अवश्य ही यह एक ऐसा स्थान होगा जहाँ उज्ज-उज्ज के लख लहने का प्रबन्ध रहता होगा।

पड़ों का विवाह—मुवती स्त्रियों की यह भी एक श्रद्धा थी। किसी वृक्ष का किसी लता से विवाह कर वे अति प्रसन्न हुमा करती थीं। इन्दुमती ने आम और प्रियंगुलता का विवाह टोक दिया था पर सम्पादित करने के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई थी<sup>८</sup>। अविज्ञानवाङ्मय में भी वनज्योत्स्ना और सद्धार के विवाह का प्रसंग है<sup>९</sup>।

१ ततः प्रविशतः कुमुदायचर्यं नाटयन्त्यौ सक्रौः । —अभि० अंक ४, पृ० ५७

—एषा कुमुदायचर्यमप्यहस्ता सक्रान्ते  
परिचारिका चन्द्रिका संनिवृष्टमागच्छति ।

—मास० अंक ४, पृ० १२४

२ तत्र निरक्षिताभुचारिभिर्बुधैरपवितां सर्वं वया ।

अनमाप्य बिलाममेतानां किमिदं किमरर्थं नृप्यते ॥ —रघु० ८६४

३ क्लृप्तपुण्यश्रम्यास्तनापुनानय दूतिरुत्तमागदयन् । —रघु० १६१२१

—एषा मे मनोरथप्रियतमा सकुमुदाम्बरं शिस्तारद्वयमपिचयन्ता सगीष्वा-  
न्म्वारयन्ते ॥ —अभि० अंक १ पृ० ४१

४ हेतिगु, मध्याय 'वैशम्पा'।

५ हेतिगु, वाचस्पत्यो मं० १ —अभि० अंक ४, पृ० १७

६ हेतिगु, पाण्डित्यो मं० १ —मास अंक ४ पृ० १२४

७ पुराणाराधितनरदया भगवतः काम्यनामो सीतायारेष्वरमत पुननग्रनाम्यन्तरे ॥

—रघु० ८६५

८ विषमं परिवर्तितं त्वया मरुवाराः प्रसिन्धी च नमिमी ।

अरिषाय विराट्प्रमद्विषयाममयोन्मयत इत्यगाग्रनम् ॥ —रघु० ८६९

९ एतां शकुन्ते इने हर्यंहरबधूः बाल्यवहारस्य त्वया बनानामधया वन  
ज्योत्स्ना नरपानिवा । एतां विष्मयामि ? —अभि० अंक १ पृ० १४









मनुष्यों का भी प्रसंग है। अतः जब खीर पकतीय भागों में इन  
मेवना भी मनुष्य का पैना था।

इन का सबसे बड़ा धन गन्ध था। श्री बामुदेवसरण जो ग २ पिन  
प्रकार पालो-योमो गई ह्यनियों के द्वारा जो पणिका कफतातो भी  
बला था। इसका उप्लेग 'ह्यनगिठि एक अय्यमन में किया है।  
आ अट्रिक राडा स्वर्ग नए-नए हायियों को एक कर मझाट की सेवा  
उठे थे। हायियों के सिग बिठेगकप मे सुपिठित बन थे जो नायबन २  
इमका अधिचारी ह्यम्यच्छा ( नायबनाय्यन ) कहलाता था। राडा के  
इममें अपनी हावी रणाए जाते थे। नायबन को मुविना के सिग कई  
बटि निया जाता था। प्रत्येक बीबी पर एक अधिचारी होता था जो  
बोबितात कहलाता था। नायबन में किसी नए अय्य के रोग जान की  
तुल्य दबीर में यह अधिचारी सेवा करता था। वाकिनास के अय्यों में  
जिन प्रकार हायियों का इकट्ठा किया करता था इसका उप्लेग है।  
करी बरहसा उन समय भी हायों। अतः यह सब अधिचारी भी उक्त ५  
नियमक हावे।

बयिज १ माव २ सादबरा ३ ओछो ४ आदि अय्यों के व्यवहृत इन से  
मान किया जाता है कि व्यवहार करना भी व्यवहार था। पूरवेय न हाट  
बचन किया गया है। अतः ही मनुष्यों के बचन के लिए दुकानदार भी होय  
थी रापायुमुद मुचबी का मत है कि साहित्य में सभी गण्ड उन व्यक्तियों के  
लिए प्रबल हुआ है या बाहे एक भाति के ही अथवा नहीं पर एक व्यवसाय के  
अवयव हों। प्रत्येक कारबार अथवा बीपल का एक संवटन हो जाता था। ओयो

१ बामुदेवसरण अवशान ह्यनगिठि एक अय्यमन १० १२८

२ मय्यायम वेवटरीविनास तं इनपय्यं अनिर्ग वन्ति। —माव०, १।१७

३ बापीयिज अकसीय बनेअपबनयिज

सादी स्वीर एवहीदेपु बरबेअतिवाजिज। —रपु० १७।६४

—४ इमी उवागठभापुकी मया सादबराहाय मय्यम्यभारीकपा दवि  
सार्थ विदिपायानिजमयविष्टः। —माव० अंक ३, पं १४८

५ अनुदय्यवारी सापबारी दनदिबो नाम औप्यलने विरम्य।

—अत्रि० अंक ६ १० १२१

६ देव इमानीयव गावेअय्य बाहिना दुगिता विज तनुगवना आनाय्य मय्यने।

—अत्रि० अंक ६ पं १२१

में एक ही पेशी के व्यक्तियों का संगठन होता था पर कई प्रकार के व्यापारियों का संगठन थोड़े बहलाता था ।<sup>१</sup> इस थोड़े का मुखिया सायबाहू कहलाता था जो उसका प्रत्येक प्रकार से माग-निर्देशन किया करता था ।<sup>२</sup>

शैक्षिक व्यवसायों में शिक्षक पुरोहित ज्योतिषी बंध मूर्ख निवासने वाले आदि बग के व्यक्ति आते हैं । मातृविकान्मिषिण म गन्धर्वान और हरिषण वेदन सेकर इरावती और मातृविका का मुख्यका भी शिक्षा दिया करते थे । राजा की सेवा और सहायताय सरकारी मौद्रिकों भी होते थीं । पुरोहित ज्योतिषी और मौद्रिक राजा की सहायता ही थे । सेनापति कुर्गराज नगर रक्षण आदि सब वेदनमोही ही थे ।

बन्ना जोषिका का साधन हो बली थी । मातृविकान्मिषिण म जो हिनयां चन्द्ररबार म लार्ई जाती है । राजा पूछता है— तुम सोच रिया बन्ना में बल हो ? वे उत्तर देता है— गंभीर म<sup>३</sup> । अतः स्पष्ट ही संघोष जोषिका का मायन हो बल था । बन्ना गन्धो आदि का प्रथम प्रमाणित करता है कि मन्त्रिकान्मिषिण और वेदप्राप्ति भी एक तरह से बन्नीरिका थी । प्रमाणन-कल्ल<sup>४</sup> गंगा जलने को बन्ना और संवाहन ( पेर बराने की कला ) भी पेशे के रूप में समाज म प्रचलित थीं । संवाहन-बन्ना बहुत बन्नी मानी जाती थी । कुप्यन्त ने चहुन्तवा को बीनों से डेबा करनी वाली थी<sup>५</sup> ।

१ Age of Imperial Unity of India Page 601-602

२ "Different merchants with their carts loaded with their goods and their men made up a company under a common captain called as thirava who gave them directions as to how to bring cattle etc etc

—Age of Imperial Unity of India Page 602.

३ 'बन्ना बन्नापान्मिषिणीने मन्नापी ? बन्नी गंभीर मन्नापरे रब ।

—मान सं ४ पृ १४९

४ मातृविकान्मिषिणीने मन्नापरे रब —पृ० १७१२२

उच्च शिक्षा तथा प्रबल अटालिकाएँ हाट भाड़ के बगाने वालों<sup>१</sup> मुबारक रात से मर्च निकालने वालों के अविरक्त हीनद्विष के भी समुदाय में इनमें मुख्य<sup>२</sup> बीबर<sup>३</sup> घाराब बेचने वाले<sup>४</sup> मांग बेचने वाले<sup>५</sup> मछली<sup>६</sup> वाले<sup>७</sup> गाय पकाने वाले<sup>८</sup> आदि व्यवसाय माने हैं। उद्योग में बेल और की रसा के लिए मासिने रहते भी<sup>९</sup>। यह सब माण्य आदि भी मूर्खता होंगे

यापार-मार्ग—अभिमानाङ्गुल में समुद्रग्राहरी जनमित्र का न भाया है अथ व्यापार गनी और समुद्रां डाय भी हाडा था तथा स्वयं-याप । भी । स्वयं-मार्ग समुद्र की अनेका अधिक उत्तम था । रथ ने विभिन्नय में राजाओं को अतिशय के स्मि, यद्यपि वह समुद्र-मार्ग में भी था सड़ता था स्वयं-मार्ग सध समझा<sup>१</sup> । रथ की दिग्विजय से स्पष्ट हुआ है कि सम्पूर्ण भारत-वर्ष स्वयं-मार्गों में भरा था । यही नहीं बरब फारस आदि देश भी स्वयं-मार्ग द्वारा भारत से सम्बन्ध थे । मेघदूत में मीर की यात्रा भी इसी बाट की पुष्टि करती है । भी राजाहुमूद सूबे में कई मार्गों का विवरण दिया है । प्रथम भावस्ती से राजगृह तक का था । बीच में १० इकल के स्थान ( Halts ) थे । बंगाली भी एक विद्यामान्य था । पन्ना में रंगा की पार करना पड़ता था । दूसरा मार्ग भावस्ती से दक्षिण-पश्चिम को जात जाता था । तीसरा भावस्ती से बिष की ओर जाता था । राजधानी व रंगिमान को पार करता था । चौथवा प्राङ्ग दृक् रोड था जो राजगृह से बनारस जावेन धारस्ती राजा हुआ लतागिला और सीमाग्रान्त तक जाता था । यह दर और पश्चिमो पश्चिमा का भारत से जाता था । मध्यप्रदेश में भी राजमार्ग ( Royal road ) का बयान दिया है जो उत्तर पश्चिम सीमाग्रान्त से पालिबुध तक था । इसका अविरक्त सबके मतानुसार घारा देव हड़कों के पास से पुरा हुआ था । जगह जगह नील के पत्थर ( १८१३

१ छां पिपित्तंवा प्रमुना निपवत्रास्त्रयागतां सम्मत्तसाधनत्वात् ।

पुरं नवीचक्रणां विमर्गमेवा निशपत्परिडाभिबोर्धम् ॥ —२५०, १९१८

२ ३ ४ ५ ६ बेगिण्, अन्नाय 'वर्ग-अवस्था' ।

७ रथान् यथा निपूणिताहम्ना आनुजानां पुत्तिज्जनाय ।

यंवा निरासह्यनोविगम्यतां संवामिष मयमव ॥ —२५० १५१२

८ विषास्त मयमवमनोवाग्जानाति विष

पुपाजानां मयमवमनोवाग्जानाति विषाग्जानाति ।

यंवा निरासह्यनोविगम्यतां संवामिष मयमव

पुपाजानां मयमवमनोवाग्जानाति विषाग्जानाति ॥ —दृष्टये २८

९ पाप्माणास्त्वतां जनुं प्रमत्तं स्वतत्तमना । —२५० ३१६०

stones) भी ये जिनसे कायसा पटा बसता था<sup>१</sup>। कालिदास के ग्रन्थों में महापथ<sup>२</sup> राजपथ<sup>३</sup> नाम मिलते हैं। बाजार की छड़क आपणमार्ग<sup>४</sup> बहुसादी थी। सम्भवतः ऊपर बणित मानों में से यह महापथ राजपथ आदि हों।

आयात-निर्यात की वस्तुएँ—पश्चिम के घोड़े रघु के निम्बित्रय में बणित हैं<sup>५</sup>। नवि न बनायु बोड़ा का नाम मिया है<sup>६</sup> कंबोज के भी घात प्रसिद्ध हाने। रघु को राजा न भेंट में पाठे ही दिए थे<sup>७</sup>। अठ आपात वस्तुओं में घोड़े रघुमी वस्त्र इत्र मृग आदि का नाम अवधउदरण ने दिया है<sup>८</sup>। राजाकुमुद मुकुरी में भी इन्हीं वस्तुओं के (सिवाय घोड़े के) नाम दिए हैं। निर्यात वस्तुओं में जड़ी-बूटियाँ मातो हीरा नीलम पद्मन जामवरा की छाल नील छीप मृती कपड़ा चला बाँरी आदि राजाघनु मुकुरी के मताम्मार हैं<sup>९</sup>।

मुद्राएँ, तौल और पैमान (Cons Weights and measures)—आपार की इस समझ से जिसमें हे जिसमें हे किसी गिफ्टे का बिगड़ द्वारा क्रय-विक्रय होता था होता स्पष्ट है। अविज्ञानदागुम्भ म मन्त्री का वचन कि 'यस को दण्डना में ही नाप नि म्पतोत ही गया'<sup>१०</sup> भी प्रमाणित करता है कि गिफ्टे अपना मुद्रा का प्रचार हो चुका था। कोय वारि के द्वारा मुद्रागिना के लिए हठ

१ Age of Imperial Unity of India Page 606.

२ संतानवारीणमहापथ तक्षीनागार्ग कलिदासुमाकम्।

मानागवराजवन्त्रीरणावा ध्यानान्तरं स्वम दवावमाने ॥ —कुमार० ७।३

३ अज्ञानं राजपथं न पण्यविषाह्यमाना सरयु न नीतिः।

—रघु० १।१३०

४ प्रवेणयर्मीरमज्जमेनमागुम्भरोगीयमादगुम्भम्। —कुमार० ७।१५

५ संशामानमन्त्राव वायवायव्यवपाने।

सादवकिनविजेयप्रतिपारे वस्त्रम् ॥ —रघु ४९७

६ दीर्घेन्द्रो निवमिना पश्यंहेतु निशं रिगव वनम्रात बना देया।

—रघु०, १।२१

७ तैरो दामवद्विहर्तुना इतिनरायः।

पुत्रा विरिण दामवोमेका होपेहाव ॥ —रघु० ७।१३

करन पर गुरु ने अतिरिक्त हाथ १४ विद्याओं के लिए १४ सिमी दूदा के बराबर य १४ करोड़ माँगना कोई जय नहीं। न-कोई निष्का उस समय था। कामिनाम न निष्क का छत्र ही स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है। प्रथम कुमारसम्भव य से 'विष्णु के लिए चक्र पर हूम ( देवतागण ) काम लयाएँ हैं' से के यसे से जब दकराता है तब प्रथम से निवारी विनगारिया है यतों जय रागस के यसे से निष्क की माता पहना ही गई हो होता है कि निष्क सोम का मोल सिक्का था। सामाजिकान्मित्र मुख्यपरिमाण ३ दान में लिया जाता था। श्री राधाभट्ट मुन्शी 'मुख्य सोम का निष्का था जिसकी लौक ८० रती थी'। यदि पर विरवान किया जाय तो १०० मुख्य के बराबर एक निष्क का तुला और मानव १ पीना छत्रा का प्रयोग किया है। जब बाद छत्रा आदि का प्रयोग होता था और केन-केन क लिए आदि निष्के भी थे।

१. निबन्धसंज्ञाप्रकाशकाव्यमविश्लेषिता गुरुनाम्मुक्त ।  
विस्तृत विधानरिपेक्षया मे कापीरक्षता दन बाहरेति ॥ —रघु०
२. जयाना यत्र चामा ३ प्रतिवर्षाविशेषिता ।  
हरिश्चन्द्र लौकस्य कष्टे निष्कमिवारिष्ठम् ॥ —बुधार्० २।४२
३. मात० अ० ३, ५ ३३३
४. Age of Imperial Unity of Ind. Page 607
५. प्रथमविश्वयुद्धविशेष गुरुमन्त्रानुसन्धम् ।  
नमगा निम्नेपुना तुलापरिशासेन जमागोत्तम् ॥ —रघु० ८।१  
—नं कृतकप्रपादनीविम कोमलादमगरादन्धम् ।  
मेदिने जलविशारदागणार्थकप्रमुखापिष्टम् ॥ —रघु० १  
—तस्य पात्रुषन्नाप्यनुपदा सावन्धपमना कृतवता ।  
राशमन्तरिहानिप्रपी कामदानदवसदना तुलाम् ॥ —रघु०, १८।५  
—अपि एकाविकृतारिमेष्टं प्रबाल्यासादनुबन्ध ईरवाम् ।  
विशेषितानुवसदनेन से तुल दाराहीति लब्धवता ॥  
—बुधार्० ५।१
६. अन्धकारना निधि देवनामा शिवाजी नाम नयापिराम ।  
पर्यारी लौकिया जगत् स्थित नयिपदा इव अन्धम् ॥  
—बुधार्०



stones) जो वे जिनसे कामका पत्ता चलता था<sup>१</sup>। कालिशान के प्रयोगों में महापथ<sup>२</sup> राजपथ<sup>३</sup> नाम मिलते हैं। बाजार की सड़क व्याणमार्ग<sup>४</sup> कहलाती थी। मध्यवर्त ऊपर वर्णित भागों में से यह महापथ राजपथ आदि हैं।

आयात-निर्यात की वस्तुएँ—पश्चिम के घोड़ रघु के दिग्विजय में बगिठ हैं<sup>१</sup> । बहि में बनायु घोड़ों का नाम लिया है<sup>२</sup> कंबोज के भी पाँचें प्रगिष्ठ हैं<sup>३</sup> । रघु की राजा ने भेंग में पाँच ही दिए थे<sup>४</sup> । जब आयात वस्तुओं में बोरे रेखमी वस्त्र इन भूंग आदि का नाम भयवत्तघरव ने दिया है<sup>५</sup> । राधातुम्ब मुकुरी में भी इन्हीं वस्तुओं के (विषय पाँच के) नाम दिए हैं । निर्वर्तित वस्तुओं में कड़ी-बन्धियों कीतो होगी नीलम चन्दन जानवरों की पाक नील चीप मूठी कपडा घामा जोड़ी आदि राधातुम्ब मुकुरी के वस्तुनाम हैं<sup>६</sup> ।

मुद्रार्ण, वील और पैमान (Cons Weights and measures)—आपार  
की इस गमछि से निम्नग्रह विगो गिफ्टे का विगठ द्वारा अत्य-विशय हीटा  
या होता स्पष्ट है। अमिमानछातुमल व मणी का कथन कि 'पन को गमना  
में हो मारा दिन अतीत हो गया' भी प्रमाणित करता है कि गिफ्टे अथवा  
मरा का प्रचार हो सका था। कोण्डावि के द्वारा दुष्टप्रिया के लिए हट

- Agas of Imperial Unity of India Page 606

- २ संतानराजचमहारच तच्छीनाशरी वक्ष्यते इति मान्यम् ।

भागोऽग्रतः संपिबन्धोऽनायासात् स्थानान्तरं स्वयं द्वावभावे ॥ — इति ७३

३. इत्यतः सत्यं न तस्यभियोग्यमाना गरुड न जीवि ।

—अप. १५१०

- ४ प्रवेगसम्बोद्धमद्वयैनामप्यसौर्गागमापप्यम् । —तुमार० ७।१५

- ५ संवत्सरात्मकमन्त्राय वाचस्पतये नमः ।

सायं ४ दिनादिनेयप्रतिपदे ॥ ४१२ ॥

- १ शीघ्रं यमो नियमिता पञ्चहोत्रं निशा विराज वनराज वना-देवता ।

—एष०, ३१३३

- ७ टीको लक्षणम्-हाराणि इति पद्यम् ।

पञ्च विंशः सप्तमोऽध्यायः श्रीकृष्णसखम् ॥ —सू०, ५१४०

करने पर, गुरु ने झोपित हाकर १४ बिद्याओं के लिए १ किमी मुद्रा के बराबर में १४ करोड़ माँगता कोई बच नहीं म-कोई निकला उस समय था। बालिशाम न निष्क का दाख दो स्वामी पर प्रयुक्त हुआ है। प्रथम कुमारम्मब से बिष्णु के त्रिम चक्र पर हम (देवतागण) काम लगाए बैठ के गले से जव टकराता है तब उनमें से निकली बिनगारिमी है यानों उस राक्षस के गले में निष्क की माठा पहना दी गई हाता है कि निष्क सोन का योक्त सिखा था। मालिका न। सुवचपरिमाण ३ बाल में लिया जाता था। श्री रायामुद्र मुद्राओं 'सुवच' सोने का निकला था त्रिमकी तीस ८० रसी थी। यदि पर विद्वान किया जाय तो १०० सुवच के बराबर एक निष्क गुलाबी और मानदण्ड दोनों धातु का प्रयाय किया है। अग बाट लपटू आदि का प्रयोग होता था और देन-देन के लिए आदि निकले मो से।

१ निबन्धगंजालरपायकायमचिन्तयित्वा गुरुवारमुक्तः ।  
विद्यस्य विद्यापरिमित्यया ये कोटीस्वतरो दण्डादरेति ॥ —र०

२ जयाया यव चाम्पाक प्रतिपत्नीत्विताचिया ।  
हरिचरणेण तेनास्य दृष्टे निष्कमिवानितम् ॥ —कुमार० २१४६

३ मात अंक १ पृ० ११६

४ Age of Imperial Unity of India Page 607

५ प्रथमरिपतुकाविव कुम्भप्रदण्डनभूतनभरम् ।  
नमसा निप्रनेमुना गुणामुत्तिष्ठोप नमामोह तम् ॥ —र० ८१५

—तं वृत्तप्रणयनोऽनुवीचिन वीमकारयनपरायनम् ।  
भेजिरे नवविवाचयतास्तर्कगुमाचिरोत्तम् ॥ —र० ११५

—तस्य धातुबन्धान्धमूत्रका सावसम्भयदना मुद्रुत्तना ।  
रात्रदन्मनरिहाजिगदनी कामदानकदबस्मया मुद्रुत्तना ॥ —र०, १८५०

—अपि त्वशावित्तवारिर्मूर्धं प्रवातमासान्मुद्रुत्त वीरवन्द ।  
विरोजितावतवराटलेन तै मुद्रुत्त दवापेत्तु इम्बाहटा ॥

—र० ११४

६ अम्यत्तरयो रिति देवतामा हिमाननी नाम अ-दिपम् ।  
दर्शनी लोचनिषी बगाय मित्र नदिन इव अ-दिपम् ॥

धन का एकत्रीकरण—धन की अनेक प्रकार ॥ एकत्र किया जाता था । जमीन में दा बरी के निगारे तबि के बतल में पाड़ दिया जाता था<sup>१</sup> । मित्र के पास नाम रूप में भी रखा दिया जाता था<sup>२</sup> ।

### सामाजिक रीति रिवाज, आचार तथा व्यवहार ( Social customs manners & decorum )

प्रणाम करने का विधि—गुरुना को प्रणाम करने का उपाय से ही जानता है । स्त्री और पुरुष दोनों के प्रणाम करने का एक ही रीति सामान्य होता है । माँ पिता गुरु अथवा आचार्य के चरण तत्पर अथवा चरणों पर गिर रहा कर प्रणाम किया जाता था । राजा शिबीर और गुरुशिष्या ने यह विधि को चरण दूर प्रणाम किया था<sup>३</sup> । रघु के वन जाते समय अश्व ने उनका चरणों में अपना गिर रखा था<sup>४</sup> । राम का वरगुण को प्रणाम<sup>५</sup> वन से लौटकर माताओं को प्रणाम<sup>६</sup> चरण को चरो चरण दूर ही विधि थी अथवा गिर झुकाकर ही प्रणाम कर दिया जाता था ।

पुरुष की तरह स्त्रियाँ भी प्रणाम करती थी । कभी-कभी अपना नाम लेकर भी प्रणाम दिया जाता था । वन में लौटकर मोता ने 'मैं ही पति को वन्दे' कहकर अपनी गुरुना मोता हूँ कहकर माताओं को प्रणाम किया था<sup>७</sup> । उग्रवी के पुरुष आचल न भी 'उग्रवी का पुत्र आचल जाहो प्रणाम करता है' कह कर

१ Agn of Imperial Unity of India Page 600

२ हेमिन्, पालिकावी नं० १

अथो हि कस्या परकीर एव तावत् नन्दय परिपहीन् ।

आशी नमार्थ विदर प्रणाम प्रत्यतिष्ठत्स हस्तारामा ॥

—अथि०, १।२२

—गुणकरीन् विमरयसा तथा हवेर्नी निधन हर्षार्ति ह्वय ॥

—गुमार० १।२१

३ दशोवदन्तु पाण्डरावा राजी च बाणपी ।

गो पुगुगानी च प्रीया प्रनिनकाय ॥ —रघ० १।१७

४ तमश्चन्द्रमाप्यात्मनं निराल



परिवारिका अपने स्वामी को 'अयतु अयतु भर्ता' 'अयतु हेतो भर्ता' 'विरजता विजतां देव' ३ कह कर प्रणाम करती थीं। स्वामिनी के लिए 'अयतु भट्टिनी' ४ 'अयतु अयतु भयु दारिके' ५ उक्त प्रयोग किए जाते थे।

स्त्रियाँ पति को 'अयतु अयतु आदपुत्र' ६ कह कर प्रणाम करती थीं।

आम्नोपाद् वेने की अपाली—ब्रह्मणा और प० के अनुसार आशीर्वाद का रूप भी ब्रह्म आता था। राजा के लक्ष्मी को प्रणाम करने पर वे राजा को आशीर्वाद देते थे 'वज्रवर्तिन पुत्र आप्सहि' ७। राजा 'प्रतिपहीतम्' ८ कह कर नम्रता कृत्रिम कृपा पा। स्त्रियों को 'पति के मन्त्र प्रेम को शान्त करो पति को प्यारी बनो वीर पुत्र को माता बनो आदि आशीर्वाद दिए जाते थे। ९ बच्चों को 'विरज्योवो हो' १० ऐसा आशीर्वाद दिया जाता था। तुम्हारा बन्धन हो तुम फूटो फूटो ११ भी बच्चों के लिए ही प्रयुक्त किया जाता था। माँ बच्चे को आशीर्वाद देती थी कि 'पिता को सेवा करने वाले बनो।' १२

बिना देते समय 'तुम्हारा माय बन्धान्वाही हो' १३ ऐसा कहा जाता था।

१ मात० अंक ४ पृ० २२० १२५ १२७ १४२ १३७ (पञ्चमीक)

अभि० अंक ६ प० ११९

२. मात० अंक ४ प० १२१ ३ मात०, अंक ५ पृष्ठ १४० १४४ १३२

४ मात० अंक ५ प० १३७ १४६ ५ मात० अंक ५ पृ० १४६

६ मात० अंक ५ पृ० १४४ अंक ४ प० ११८, अभि० अंक ७ पृ० १४६

७ सत्वा वज्रवर्तिन पुत्रमाप्सहि। —अभि० अंक १ पृ० ९

—आम दत्त पुरीवर्ते युक्तवर्तिनिरं तव।

पुत्रमेवमुपोषेत वज्रवर्तिनमाप्सहि॥ —अभि० १।१२

८. अभि० अंक १ पृ० ९ ९ शक्ति, अप्याय 'ब्रह्म्य जेवन'

१० बीजा समुन्धाय अमार वाक्यं प्रोतास्मिन्ने लीम्य विराज्य जेवन।—पृ० १४१९

११ स्वर्णि बभूवो। बभूवो भवान्। —विरज्य० अंक ५ पृ० २४७

—माप्मानेधि। —विरज्य० अंक ५, पृ० २५४

—स्वस्ति भवते। —विरज्य०, अंक ५ प० ११६

विरज्य० अंक ५, पृ० १४८

बरबर शान्ति है और बड़ी से भी गले मिल कर बिदा की जाती  
मिसले पर प्रसन्नता ॥ कष्ट में सहा कर बूढ़ आश्रितन कर  
जाता था<sup>१</sup> ।

अतिथि-पूजा—अतिथि शेषता के समान मरके लिए पूज्य होता था।  
भारत और सुविधानों का बहुत ध्यान रखा जाता था। रघु की  
इसका आरम्भ है। अतिथि को कभी-कभी कन्या भी समर्पित कर देने थे।  
ने आगमन पर प्रियवन्त कहती हैं—यदि तात आज आश्रम में होने ला  
अतिथि को अपने बिलय प्रिय बन्धु ( दानुन्तला ) है देने<sup>२</sup> । पावनी का  
बेठ में आते छिब का सत्कार-इति सामाजिक आचार की दृष्टि है।  
क द्वार पर पधारने पर द्विमास्य में पुत्रस्य-भ्रम के मन्त्र फल का प्राप्त कि  
ऐसी उक्ति हो न बड़ी बरन् अतिथ्य-मरवार के लिए अपनी कन्या और  
दोनों को समर्पित किया<sup>३</sup> ।

अतिथि के स्वागत करने की विधि—जिनके यहाँ अतिथि  
उसे अतिथेय<sup>४</sup> कहते थे। कभी-कभी अतिथि द्वार पर आकर अपने  
घोषणा में आया है कहकर कहते थे<sup>५</sup> । अतिथि के आन का आमान पान  
अप्य<sup>६</sup> आदि उसकी समर्पित किया जाता था। बरग घाने के लिए बल

१ बल्ले परिप्लवन्त मो मयोजनरूप । —अभि० ५ ७६

२ शोभिनिषा लभन् संसृज्ज न जनमन्वाप्य नम्रानिरमं मयमातिथिय ।  
मदुग्गहिन्नहुरणवन्नवरान विदग्गन्निवासं मुज्जमन्धमर सपेत्त ॥  
—रघु०, १११७

३ सखी—हका दानुन्तले ! यययाय तात धनिहिउो मवेन् ।

दानुन्तला—ता कि मवेन् ?

सखी—इयं श्रीरत्नमयस्वनाप्यतिविधियेनं कृताप करिप्यति ।

—अभि अंक १ पं १६

४ एते वयममी द्वारा वम्येयं वृत्तजीविनम् ।

वृत्त वेगाव व वानमन्वाप्या वाप्यवन्नुप ॥ —कृष्ण० ११६३

५ न ममये बोउहिरम्यमन्वाप्याव निषागाम्यमनपगोत्त ।

अतत्रकाव मरुता प्रकाव प्रदुग्गगामातिथिमातिथय ॥ —रघु ११२

६ अपमर् भो । —अभि अंक ८ पं ५८

७ अप्यमप्यमिति वाग्निं सर्व मातृवेद्य मग्नाप्यो यउ ॥ —रघु०, १११९९.

रघु० १११९९ कृष्ण ११५०

‘पत्नीरक्षम्’<sup>१</sup> कहलाया था बठने की आसन<sup>२</sup> तथा फल<sup>३</sup> आदि भेंट किया जाता था। सम्माननीय अतिथियों की मधुपर्क भेंट किया जाता था। बामार का सम्मान केकड़ा बकना सम्माननीय अतिथि के तुल्य ही होता था<sup>४</sup>। मधुपर्क में दाह्य दूर्वा आसन आदि रहते थे।

अतिथि का विशेष सम्मान प्रीति-वचनों से किया जाता था। उसके और उसके सम्बन्ध अन्य व्यक्तियों का कुछस पूछना उसके जाने का आग्रह जानना तथा उसके आशय की पूर्ति के लिए उन मन मन से प्रयत्न करना अतिथेय का काम था। सामाजिक आचार का सबसे बड़ा अंग सीमा मधुर बकना से उत्कार करना था। राजा दुष्यन्त का परिचय और जाने का उत्तर अनसूया बड़ी चतुर्पाई और सम्यता शिष्यता और सत्य संस्कृतिपूष सुष्ठु रीति से जानने का प्रयत्न करती है<sup>५</sup>। रघु ने कौत्स का उत्कार भी बहुत बारपूष वचनों से किया तथा उनके गुरु भावि को कुछस पूछते हुए उनके जाने का अनिग्रह बहुत नम्रता से पूछा। राजा हिमाश्रय ने भी सत्यार्थियों का उत्कार करते हुए नम्रता से अपनी समस्त सेवास्यो को अर्पित कर जाने का अनिग्रह जानने का प्रयत्न किया<sup>६</sup>।

अन्य रीति-रिवाज—विवाह सम्बन्धी सभी रीति-रिवाज बड़े नाई कप पहले विवाह होता नगर की सबावट उसका कुछ पड़ावों तक पहुँचाने जाना आदि परम्परागत वचन किया जा चुका है। मरु के समय के भी सभी आचारों पर दृष्टि डाली जा चुकी है। राज्याजिपक अग्नोरस्य आदि पर बन्धियों को मुक्त करना आजकल की नहीं बल्कि नहीं अस्तित्व तक भी प्रचलित थी।

१ ह्यका राकन्तले मञ्जोदरम् फलमिधममधुपर्कः । इत्थं पत्नीरक्षं यदिव्यति ॥

—अनि १ १७

२ तत्रववासनासीनाम्नतासनपरिग्रह

इत्युवाचधर्मराजं प्राजलिर्नृपदेववरः ॥ —कृमार ६।५३

३ अन्विष्यती नं १

किमी से भेंट घाभी हाथ यहीं को जाता था<sup>१</sup> । कप<sup>२</sup> या पूर<sup>३</sup> को भेंट को जानी थी । भेंट में स्त्रियाँ भी अर्पित की जाती थी<sup>४</sup> । राम-श्राद्ध उक्त समय थी । पर क माघ भी कुछ भेंट में भेजा जाता था<sup>५</sup> ।

यह करते समय गैरिफा के साथ उनकी स्त्रियाँ भी रहती थीं।<sup>१</sup> यह करते समय नाम केरु ब्रह्म करते थे<sup>२</sup>। यह म हाथों को ब्रह्मते था<sup>३</sup>।

प्रविष्ट वस्तुओं को लालि वर्णित में डालकर कर ली जाती थी।

## नेमिपटना

भारतवर्ष में वैदिकता सदा उज्ज्वल-उज्ज्वल और मील-सुजीव रूप  
है। सम्पूर्ण कामिधर्म की कतिनों में भी यही बात बरिताप है।  
भारतवर्ष का विश्व है तो इसी और धीरे धीरे विश्व का रूप स्वयम् ।

- १ मग्निः क्षमकस्यापानमसि क्षरितुवाणिनाम्माहगाश्चननं तत्र प्रवृत्ता देवी  
तद्विद्योऽप्यन्येन साक्षरिमुचिष्यामीति ॥ — पादः ३ अङ्कः १ पं. ७१

- २ देविए, पारटिप्यर्नी नं० १

- ३ विदुषव- देवीं इदमानीयाचारकुण्डपङ्कजसारदान्प्रयच्छन्तं । भोर्नमः ।

—मासः, धर ५ व

- ४ कंचको—विद्यया देव । इह आमात्या विद्यापति—विद्वान् ।  
इति शिवजीविक मातृश्रियात्मन्नु मरीर इति पृथ न प्रवर्तिन ।  
देवापत्यनयस्य मन्त्र । तदासा देवा दानुमहर्षिनि ।

—मान्० अं० १

६. अयं शेषः नानाग्रे पुष्पविषयः नारायणोत्तराश्विनमासे

—मा०० अ०० ५

१. मुक्तिप्राप्त्यानुसंधानार्थं श्रद्धापूर्वकमुपायं दातव्यम् ।

रामानुजियामिस्तुयां संनिर्गतं सुयत्नं वरार ॥ ५५

- ७ मरुत्सु सूर्येणविभाष्यता मा नो रसगि स्य कृष्णे रसगाम् ।

बाधालीये परमरम्य नामात्रिं चारणन वारु ॥ —

—मध्यमं मावद/पादुषयम् मागं रजम्या-मोगाशोप । —२१०

- ८ तत्त्वान्तर्गतं नृत्तरावस्थां वक्ष्ये शरीरिणि धनमाप्नुयात् । —रघु०

८. कथयो—अद्भिः प्रकाशितानि यदि वाम्ये प्रतीयन्ते ।

राजा—ईसक लख भैंसपुसक कथा कहैं प्रजापति ।

—सुभा



के चरित्र के विस्तृत प्रतिकूल अभिवर्णन है। एक ने एक परमोष्ठ के आराध का निर्वाह किया दूसरे ने अनेक प्रेमिकाओं यहाँ तक कि बाँधियों को भी अपनी कामुकता की प्यास के कारण न छोड़ा। जीवन में पर्याप्त विष्णुभक्तता या कुकी की। आर्य सिद्धान्त में अवश्य से परमपरायणिक भगवत् में इनका कोई स्थान नहीं था।

दुष्यन्त राम विलीप रघु आदि सब आराध और उच्च नैतिकता के प्रतीक थे। दूसरे की स्त्री को बुरी दृष्टि से न देखना बड़े भाई के पास गई हुई स्त्री का पूज्य सम्पत्ति<sup>१</sup> बड़े भाई के विवाह से पहले विवाह न करना<sup>२</sup> प्रथा के लिए अपना सबकुछ त्याग (राम का वीर-त्याग) अग्रपथ हो जाने पर अपना अग्रपथ स्वीकार करके हुए उत्तर-उत्तर वृत्तान्त सुनाना<sup>३</sup> नैतिकता की उच्च सीमा थी। परिहास के ब्याज से कभी-कभी उत्तर छिपाया जाता था। दुष्यन्त ने विदूषक से कहा था कि उस उत्तर-उत्तर की बात केवल परिहास है, यथावत नहीं<sup>४</sup> परन्तु आराध यही था कि परिहास में भाँझूट न बोका जाय<sup>५</sup>।

सम्भावितता की तरह आत्मसंयम उच्च आराध था। रघुवंशी राजा इस बात के छात्री हैं जो सदा परस्त्री-विमुक्त रहे<sup>६</sup>। कुश ने अयोध्या की रक्षणी की ओर जाँच उठाकर भी न देखा। दुष्यन्त ने भी इसी आराध का निर्वाह किया<sup>७</sup>।

१ अयेष्टाभिपयनमपूके तेनाप्यभिमन्विता ।

सामशानाधमामुयो नदीबीजयकृतमाह ॥ —रघु० १२।३३

२. अ हि प्रथममे तस्मिन्मकतधीपरिहृते,

परिनेतारमारमार्ग मेने स्वीकरमाद्रुब । —रघु० १२।१६

३. उत्तरीरितश्च तममुद्युतसत्यतेज पिबो तकासम्बसन्नुद्योर्मिनाय ।

ताभ्यां तवानतमुपेत्य तमेकमुपमत्तानत स्वचरितं नृपति घसंत ॥ —रघु २।७७

४. परिहासविश्वस्पर्त तत्र परमार्थेन न मृह्यतां वच । —अभि० २।१८

५. न अपचा प्रथमवपि वासव न भित्ता परिहासकपात्त्वपि

न च सप्तमवनेपि तेव वागपत्त्या परपासलीगिता । —रघु० २।८

बिना स्वामी से पूछे उसको वस्तु का भोग करना पाप समझा जाता था।  
निम्नीय ने बसिष्ठ से बिना पूछे उसकी माय का रूप भी नहीं लिया<sup>१</sup>।

राम-सोता का प्रेम दुष्यन्त-राकुन्तला का प्रेम त्रिव-पावती का प्रेम आशु-  
कन में ही व्यक्त किया गया है। यह वह प्रेम था जो मिलनप्रति जीवन का  
ऊँचा उठाठा का और उठा गहरा था। कवि ने राम को समस्त आदर्शों  
उच्च धूमि समझा है। उच्च समुद्र जीवन के काप को जसाह से  
है। वह जीवन की त्यागधूमि मानता है। मानवता की परिचाय—यौवन  
उच्च संस्कृति का प्राप्त करना युवावस्था में जीवन के मुँहों के साथ  
आदर्श और कलाओं की पुष्टि युवावस्था में त्याग और तपस्या तथा योग  
पथ पर त्याग करना है<sup>२</sup>।

व्यक्तियों का पर्याचरण करना<sup>३</sup> आद्यम और वर्णानुसार  
करना राजा का प्रका के वर्णचम-प्राण में सहयोग देना<sup>४</sup> प्रतिकूल करने  
को बंद देना<sup>५</sup> आदि नैतिकता की परवाह्या व्यक्त करते हैं।

- १ ब्रह्मत्व होमायकबेत्तु होमयुपरनुज्ञापविगम्य यावः ।  
औपग्न्यविक्रयामि तवोत्तमोक्तं पृथ्वाधुमूर्ध्ना इव रणितामा ॥ —रघु०
- २ 'Trust manhood is that which is consecrated to the  
culture in youth and devoted to the loftiest duties and  
of life in manhood and a full of the spirit of  
renunciation in old age and is capable of giving of his  
by Yuga —Kālidās, by Rama Swami Shastri, P 212,  
—ऐरावेभ्यस्त विद्यानां दीक्षने विपर्ययिष्याम्..... —रघु० ।
- ३ रेपामागमवि युक्ताशामनोहरमन परम् ।  
न भ्यजेत् प्रजास्तस्य निर्वर्तुर्निवर्तय ॥ —रघु० १११०
- ४ तदा यथावद्विहाप्यराय तस्य स्वपावेन विपरिंताय ।  
वर्णधर्माणां मुरवे न वर्णा विपणनं प्रस्तुतमाचक्षते ॥ —रघु०,  
देविण, विस्तृत वनन के लिए, अप्याय वन-व्यवस्था और  
—नृपस्य वर्णधर्मशासनं यत् एव धर्मो मनुना प्रणीतः —  
—जगत्प्रथमवानवर्णधर्माणां रजिता प्रागेव मुक्तामनो न —  
—वदि० अक

- ५ तस्मिन्निहास्त्रिवायानां तमगाहम् ।  
घोरन्तेन परिमिता निदना तस्यमा ॥ —रघु० १४४१

चिष्टाचार और आचार-विचार में उस समय के व्यक्ति राज़ थे । मनुष्य नहीं मधुर या वो अवसर पर अपने भास्विक से प्रायना कर काम निकाज होता था<sup>१</sup> । दरबारी आचार की ललक कवि के शब्दों में अनेक स्थानों पर पाई जाती है । शिवजी के विवाह के लिए प्रस्थान करने पर शट सूर्य ने विश्वकर्मा के हाथ का बलसा हुआ नवा लज शिव जी के सिर पर लगा दिया । ब्रह्मा और विष्णु ने आकर जय-जयकार को । इन्द्र आदि लोकपालों ने बखन की इच्छा से नन्दी को संकेत किया और नन्दी के द्वारा छे बाएं जाने पर उन्होंने शिवजी को प्रणाम किया । शिव ने भी ब्रह्मा की ओर सिर हिलाकर, विष्णु जी से कुछक नेमक पूछकर, इन्द्र की ओर मुस्कटाकर और जय्य देवताओं को नेमक देखकर आरर प्रवर्धित किया<sup>२</sup> । बाकी में भी इसी प्रकार की मधुर चिष्टदा पाई जाती थी । स्वर्ग लौटने की इच्छुक उवड़ी लकी के द्वारा निगम करती है—महाराज की आज्ञा हो तो आपकी कौत्ति को अपनी प्रिय लकी के समान स्वर्ग के जाऊँ<sup>३</sup> । इसी प्रकार जन्मूया की बुध्दत्त के प्रति उक्ति में 'महाराज के मधुर भावसे मैं मुझे धैर्य हुआ है इसलिये मैं आपसे पूछने का साहस करती हूँ कि आपने किस राजर्षि का बंध अलंकृत किया है ? किन देववासियों को आपने अपनी विरह्म्यता से पीड़ित किया है तथा किसलिये आपने अपने अत्यन्त कोमल शरीर को तपोवन का लोभ पशुचावा है<sup>४</sup> ।

१. तस्यानुमेने जगवाग्निमभ्युद्यारमारमन्वापि सायकानाम् ।

काकप्रमुत्ता जगु कार्यविद्भिर्निश्चापना सपु पु सिद्धिमेति ॥—कुमार० ७।६३

२. उपायदे तस्य सहस्ररश्मिस्तपट्टा नर्भ निर्मितमातपन्नम् —कुमार ७।४९

—समभ्यमन्त्रप्रवर्गो निजाता धीवत्तल्लय्या पुत्पल्ल साधत् ।

अमेति वाचा महिमल्लमस्य संभजन्ती हविषेव भक्तिम् ॥

—कुमार० ७।४९

—तं लोकपाला पुच्छुतमुक्या दीक्ष्यभोत्तर्गभिनीतवेवा ।

• दृष्टिप्रवर्तने कृतर्गविर्गतास्तद्विष्टा प्राबल्य प्रणेयु ॥—कुमार० ७।४५

—अमेन मूर्ध्ने अतपन्नयोनि वाचा हरि भूतहर्ष स्मितेन ।

राशिचर्य अर्थात् एक ही समय कई स्त्रियों के साथ प्रेम निवाहना कर्म के नायकों का कुलशत था<sup>१</sup>। ऐसे भी व्यक्ति थे जिनपर स्त्रियों के कष्ट-बाल कोई प्रभाव नहीं पड़ता था<sup>२</sup>। परन्तु इस प्रकार के रवापी तपस्वी कम ही थे रावे-अहारावे प्रायः अपनी राशियों से संतोष कष्ट थे परन्तु कुछ ऐसे थे जो अकस्मात् पड़ने पर दूसी लौकरीणी किसी को भी न छोड़ते थे<sup>३</sup>। और अन्तिमिष दोनों ही एक समिक थे। लौकरीणीयाँ राशियों के घर से निकल अवसर पर भी काँपती रहती थीं<sup>४</sup>। एक के परवान् दूसरी दूसरी के परवान् छोटी बरते जाया कामुकता का ही कारण था। अन्तिमिष का वेग पड़ में हुआ था अतः वह अवश्य ही काफी अवस्था का होना। साप्ताहिक उनके बहुत छोटी थी। कृप्यन्त और लघुन्तमा में भी यही भेद था। अतः काम ही पुरुषों का गुण था। पत्नी और प्रेमिकाओं के घर में महादर लगाना<sup>५</sup> या पत्नियों की योगा देना<sup>६</sup> जोरो पकड़े जाने पर लछ-लछ के बहाने दत्तके स्त्रिय मापारण बात थी। पुनः उन्मत्त हो जाने पर स्त्रियों को बंद कर पुनः उन्मत्ता करने लगत था (मा बद्धा या राश पतिहृत्स्वितोति—पु० २४४)। कालिदास ने वज्र-प्रायनाओं को अपने घरों में लूट करने

१. राशिचर्यं नाम विम्बोऽपि नायकानां कुलशतम् ।

तन्मे दीर्घाणि ये प्रायास्ते लक्ष्म्यानिर्बधना ॥ —मात०, ४११४

२. पुत्र म वमांशुरावबुद्धिचरणमूरी साधमृषिमपोता ।

ममाधिप्रीतेन द्वितीयनीतिर्वचन्यते यौवनवृत्तव्यम् ॥ —रघु० ।

३. कल्पद्रुमप्रधानात्मप्राप्तात्मन्य बुद्धिपुत्रपागद्वयन ।

अग्रन्तुःश्रिज्जनापिनार्त्तं मोदरीयममवेपथुतरम् ॥ —रघु० १६

—मत्स्य का उपवाचः पत्निरिज न मत्स्यं बन्धनार्त्तं न प्रापते ।

—मात०

४. दीर्घा, शान्तिनी म० ३

५. न स्वर्ग चरणरागमादये योगिना न च तथा समाहित ।

लोभ्यमाननयनं दृष्ट्वापुर्नैतच्छागुपारैर्निर्ततिमि ॥ —रघु०

६. निवृत्त्यमर्षिण्य पारस्तु श्रियतं तमवतरितं त्रिया ।

रिपुर्ह्यष्ट पत्नारत्नवद्वयमवेति रघुः कुचपटौ ॥ —रघु०

७. अतिरमणीयं वृत्त्या । गुणानि न यः शान्तिरप्य वचिर्चर्य ।

वया त्वं विरजनीनि पदावधिराग्या विनीतिम् ।

—मात० अंक

कालिदास के प्रथम ऐतरेय ब्रह्मसूत्र

रिज्ञाया है<sup>१</sup>। यह समस्त कृतियां सादी है कि सचाई ईमानदारी  
 पहलू महान् पुण्यो में ही वा। आम जनता का जीवन इन सबसे रहित  
 साधारण जनता की दृष्टि में नैतिकता क्या वस्तु की? यह उन मुहावरों के  
 व्यक्त होते हैं जो कवि के प्रयोगों में सचन बिखरे हुए हैं—‘आपकी आँखों की  
 तो वा गई पर मधुमक्खी भी पास बैठी है, इसलिये सावधानी से कार्य न  
 एया’<sup>२</sup>। विद्वत्पक्ष की अतिमिश्र से यह उक्ति उसके (पदा) चरित्र की  
 व्यक्त करती है—‘हाथी जब कमखिनी को देख लेता है तब उसे बल में छिने  
 नहिंयत नही घूमते हैं’<sup>३</sup> अतिमिश्र का इरादगी के वा जाने का भय  
 पर भी कहना उसको बूढ़ता का परिचायक है। इरादगी की सखी का  
 चरित्र की आय की कौशल होने और काम किया पीछियों ने<sup>४</sup> पत्नी से  
 अतिमिश्र ने पकड़े जाने का सादी है। परन्तु पकड़े जाने पर भी विद्वत्पक्ष का  
 सुझाना कि कुछ तो बात बनाइए जोरी करके हुए पकड़ा जाया और भी यह  
 कह देता है कि मैं जोरी करने के लिए तैयार होके ही क्या रहा वा मैं देखना  
 चाहता वा कि मुझे थोड़ा ठोड़ने की जिज्ञा भली प्रकार आई कि नहीं?<sup>५</sup> इसी  
 प्रकार कहीं नका पुष्पी पर पानी बरसाने के लिए देव मेढकों की टर-टर की बात  
 बोले ही बोहते हैं<sup>६</sup>। आदि प्रमाणित करते हैं कि आम जनता का बड़ी हाक वा।  
 नैतिकता का स्तर बहुत निर चुका वा। अतिमिश्र मुड़ी तरह वा इसकी अति  
 व्यञ्जना इससे होती है (स सत्यपरिभोगेन नजदागमुपनिना कावेरी सरिता  
 पत्न्यु संकलीनामिवाकरोरु—रघु ४४५)। इस प्रकार का एक उदाहरण यह  
 भी है—जब मछली मछल के हाथ से निकल कर पानी में भाग जाती

१. देखिए, अध्याय ‘गृहस्थ जीवन और परिचित २ कालिदास के समय में  
 काम-भावना।  
 २. उपस्थित नयनमधु अतिमिश्रमासिक’ वा। तबप्रमत्त इतनी परम।  
 ३. न हि कमखिनी बूढ़ता

है तब वह भी निराश हुआ करेगी है—'आ मुझे पुण्य हो हीना ।

राजा के अकर्म जानि एक बार बसन्त-प्राप्तन का भी दुःखान्त रखते  
भोर हुमरी भोर मिलाही भाति किम प्रकार घूम सिये हैं घूम सिए रीमों को  
पो हसने हैं हमरा भी उपाहरण प्रस्तुत करते हैं । उम समय भूट  
बोरी बादि लूब हाठी थी । योग के अराम में योंमो की मजा थी है  
अर्ली थी मा पिछो से मुक्का लिया जाता था ( अमि० अंक १ ) ।

दूरियों की तरह स्त्रिया के भी होना पड़ जाता है ।  
एक बार पतिव्रता भोर लली कारिया के दुःखान्त हैं दूसरी  
भोर स्त्रिया की शमूकता भी चिचित का वर्त है । अमि० अंक ५

१ मिमिहस्ते मत्स्ये गमापिते निदिन्वा पीचरो ममति यच्छ चर्मो मे मविप्य  
तीति । —चिन्म० अंक १ पृ० २०१

२ भट्टारक—इष्टाय युष्माकं सुमनो मृत्यं भवतु ।  
वानुद्-एतावद्युम्यत । इवास्त—पीचर महत्तरसत् प्रियवयस्क इहानी मे  
नवृत्त । वाग्मगीमागिकमरमाक श्रवमनीहूरमिप्यते । लछोईकापयमेव  
यच्छाम । —अमि० अंक १ पृ० १०१

३ अमि अंक १ 'कुमीरक' राज्य का प्रयोग पृ० ६७ मात अंक ३  
पृ ११० कुमीरवन क्षमिप्यते विप्रितोऽस्कोति । —चिन्म० पृ० १८६  
—मृगीपट्टरिपयमुमान्तराधमागिप्रिप्यमिपिगिबककापारि ।  
कोरकगमिबिनरतिरोपरागमागिराडुप्यममाधिरपुन्नीकम् ॥

—मात २११०

४ अति रोचनं तेऽयं मयागामरणमगिछो मोलागुवपरिप्योऽमिमारिकादिता ।  
—अमि० अंक १ पृ० १६८

—उदितबादिनमायभूमन प्रपामि रापारमिमारिका तिवप ।  
—मात २११०

—यनीपिप्रकाशेन चर्चं वदितमञ्जरा ।  
अनदिप्रामिमियागो कुरितममिमारिका ॥ —दुमार० ११११

—निद्यामु मायवाङ्मयपुष्टान् म मञ्जरोऽमृमिमारिकाकाम ।  
—रप०, १११२

—मृगीपट्टरिपयेति तमिमागामायपीचिनो ।  
मेमेमिमारिकागति जयभोरीरपायिनी ॥ —रप० १७१६६

## अभिशाप के राज्य टाकाछोन संस्कृति

वेध्या<sup>१</sup> बारायणा<sup>२</sup> नतकी<sup>३</sup> आदि का गुला बचन स्थियों को परिचय देता है। राजा का गुला बचन पीना रात्रि में आभी रति कि सत्पुष्ट हो जाने पर उन्हें छोड़ न दे<sup>४</sup> पति के बीजे का पाकर इसे करवनी से बांध देना<sup>५</sup> पड़ाइ को गुलाओं में पम्प रि के साथ जीवन का उपयोग<sup>६</sup> लुह-झि करवनी अमेरी रात्रि में प्रेमी से बाणा<sup>७</sup> आदि स्त्रियों को विहास-प्रियता की अभिव्यक्ति है। परकीया का प्रसंग इसी अनैतिकता का जोरक है<sup>८</sup>।

१. यं पम्पस्त्रीरतिपरिमलोत्प्रापिभिनमिरामा-

मुहामानि प्रमयति क्षिप्तम्बेधमिषीकमानि ॥ —पूर्वमेव २७

—वेध्यास्तपतो नक्षपदसुखाम्प्राप्यवर्षादिभिरु-

नामोक्ष्यन्ते त्वयि भवुकरभेदिषीर्वाभ्युत्पलान् ॥ —पूर्वमेव ३६

२. प्रनिज्जबैदुर्बनिमैस्तुकाकुरी सभाचिता प्रोत्पितकम्बकीरने ।

विभाति धुक्केसररत्नमृपिता करणनेव क्षितिरिन्द्रवीरके ॥ —अनु २।१६

—सुक्ष्मका यमसदुर्गमिस्वभा अवीरनूतैः सङ्घारकोपितान् ।

—रघु० ३।१६

—अस्मिन्माही क्षमति वाणिनीया निज्वा विहारापयने पद्यमम् ।

वातोऽपि नाशंसयस्युक्तानि को नम्बयेराहुराव हस्तम् ॥

—रघु ३।७५

३. स त्वर्षं गृहपुष्कर कुटी जीसमन्वयवकरी हरग्नः ।

नतकीरमिगवातिर्बिषी पाशवर्षिषु वृत्त्यलम्बयत् ॥ —रघु० १९।१४

—जीत्यमेव नृद्विषीपरिग्रहाभर्तकीभ्यक्तानाम् सत्रपु ।

उत्तरे एव स कम्बिबरादिपद्मनूकीसरत्नसम्बन्धिनः ॥ —रघु० १९।१६

४. तस्य साधककृत्यर्तव्यं काम्यवातुषु नवैषु धावित ।

धनमाधिवपराधं चकिरे तामिमुक्तविपदा

प्रेमी प्रेमिकार्थों के मिलन के संकेत-सूह होते थे ।<sup>१</sup> करवाने में सहायक हाथी ची<sup>२</sup> । भाषाश्रित और अन्विष्ट बलिष्ठा ने कराया था । रामो जारिणी मरीच के कुम्भ के महाराज से कहती है कि लीजिए, भावपुत्र अयोध के ऐसा बना दिया है जहाँ और बलियों में मिल सकते हैं<sup>३</sup> । वृत्तिपति एक-दूसरे के पास से जाते ची<sup>४</sup> । वे ही बिज से जाकर<sup>५</sup> । वे ही सहायिका ची<sup>६</sup> और वे ही मंडा छोड़ने जाते ची<sup>७</sup> ।

प्रेम के सम्बन्ध में न केवल कवि ने प्रेम-वर्णों का परिचय व्यापार की छोटी-छोटी बात बताना भी न मुका ।<sup>८</sup> परिचय पहनती ची<sup>९</sup> । प्रेमी और प्रेमिका दोनों ही मिलने के<sup>१०</sup> वे । मिलने में विघ्न पड़ने पर संयुक्त बाध बढ़ जाता था<sup>११</sup> । प्रेमिका

१. देखिए, अध्याय 'विवाह' परिशिष्ट २ काविराम के समय में ५।

२. तीन वृत्तिविधि विपदुपा पृष्ठ १०४ अन्तराध्याय ।

सुभक्त प्रियजनस्य कातरं विप्रसन्नपरिचयिनी बध ॥ —रघु० ८

३. भावपुत्र । एष तेजसामिस्त्राजोऽननहावम्याजोऽ संकेतसूहं वन्दितं  
—भाष० अंक १ ५

४. तां प्रत्यभिप्रेक्ष्य मनोरथानां महीगदीनां प्रणयप्रसूतः ।

प्रसन्नगोमा इव पारपला भ्रुवारभेदा विविधा बभूव ॥ —रघु०

५. प्रतिवृत्तिरचनाम्यो वृत्तिगर्भिताम्य गमपितृतराणां सुदुर्गतामवाम् ।

अविबिबिदुरभाष्यैराहूतास्तस्य पून प्रथमवर्गवृत्तिं श्रीमन्तो राजनम्या

—रघु० १८

६. भाषाश्रितान्तरं प्रस्तुतेन प्रयागान्तरं हस्तप्रस्तरेण ।

बाधयेत्तं स्पर्शिता स्वे निरते स्थानं प्राप्ता वामिनां दूयपीता ॥

—भाष० ११६

७. संवसाय निधि गृहकारिण्यं वारवृत्तिरहितं पुराणता ।

वर्षाधिपतिं वृत्ततमोऽनं वामुपेति वरुणस्तर्पयता ॥ —रघु० १६१३

८. ह्या विचित्रेण अति रोचते तेनं नानाप्रकारमवृत्तिं नीलाश्वपरिपहो-  
मिमादिवासेन । —विजय०, अंक १, पृष्ठ १६८

९. नदा एव प्रवाही विनम्रिणां नरकान्तरादेव ।

विजयप्रयागस्युपे वनमिच्छां रात्रयुगी मयति ॥ —विजय ११८





बाह्य करना पति के गुण के सिद्ध सबन्ध त्याग को प्रस्तुत के बाव सती होने की आकाशा रखना स्त्रियों के च है<sup>१</sup>। पति की सेवा कर रही अपने पति को बच में कर महानोक्ता पुष्पी के समान जो<sup>२</sup>।

—

- 
- १ वैदिक, ब्रह्मण्य 'गृह्यसूत्र'। इसकी विवाह विवेचना की जा चको है।  
 २ महामारमययौ- मनुस्मृतिकोशो ।  
 पारिषदीमूनपारिष्पीर्षव भर्ता धरन्वतम् ॥ —भाग० १।१५

दसवाँ अध्याय

## ललितकला

भारत के प्रतिभा-सम्पन्न कलाकारों ने अपनी सांख्यिक सुकुमार और उत्प्रेरक भावनाओं को कागज वस्तु प्रस्तर आदि के माध्यम से साकार करने केवल अपनी कला एवं प्रतिभा का ही परिचय दिया अपितु यह भी प्रमाणित कर दिया कि अन्तर्भावनाओं के विकास एवं स्वयं के लिए अमुक प्रकार का ही उत्कृष्ट उपयुक्त हो ऐसा सर्वथा सत्य नहीं।

कला की उत्कृष्ट भावना एवं आन्तरिक उदात्त प्रेरणा किसी भी उपकरण द्वारा अभिव्यक्त की जा सकती है। पार्ष्विक प्रयोगों में कला ही धीमे धीमे एवं सजीवता की सृष्टि करती है। दूसरे शब्दों में धीमे-धीमे अथवा मानवों की सजीव साकार और मौखिक अभिव्यक्ति हो कला है।

अतः कला अक्षय्य है। कालित्य-प्रमाण होने के कारण ही कवि इतनी संज्ञा हुई। स्वयं कालिदास ने सभी प्रकार की कलाओं को कविताकला कहा है<sup>१</sup>। अवश्य ही कवि का आशय इस शब्द से काव्य संगीत मूल्य अभिव्यक्ति कलाओं से होगा। याल्लिका के मूल्य के सम्बन्ध में भी कविता शब्द का उपयोग किया गया है<sup>२</sup>। कविता की तरह सिल्पा शब्द भी इसी आशय के लिए कवि ने प्रयोग किया है<sup>३</sup>।

विद्वानों की सहसम्पत्ति के अनुसार काव्य संगीत, -  
मूर्तिकला वस्तुकला आदि कला

संज्ञित कलाएँ पाँच मानो जाती हैं—काव्य संगीत और वास्तुकला । इनमें काव्यकला सर्वोत्तम समझी सबसे निकट । इनका इसी क्रम में आगे बचन क्रिया ।

**काव्यकला**—किसी गुण या कौशल के कारण जब उपयागिता और मौख्य आ जाता है तब वह वस्तु संज्ञितकला साहित्य के कारण ही उपयोगी कला से श्रेष्ठ संज्ञित कलाओं में काव्यकला सर्वोत्तम ।

येचरूत-ना सुन्दर काव्य 'अमुक्तला-सा लक्ष्मि' ।  
एक प्रमाण है कि जिस समय काफ़िश न अपने काव्य एवं की उस समय की समता में इनके प्रति द्रष्टे परिप्लव रचित विरचित करने के लिए ही कवि न इन वर्णों का प्रयोग किया है पन के भेद मात्र को छोड़कर वास्तविक महत्त्व और मुक्त को प्रत्येक के गुण को ग्रहण करना चाहिए ।

कवि के समस्त काव्य एवं नाटक काव्यकला के चरम आदर्श है का अन्य में प्रयोजनका का नवित रचना वास्तविकता का एक अन्य प्रलय को व्यक्त करना वैतात्त्विकों का अन्यत्र राजा की स्तुति के परिचायक है कि जनता की प्रवृत्ति वाग्म्यमूला थी ।

**नाट्यकला**—काव्य नाटक रम्य और नाट्यार्थ जनममुरार से ठीका नहीं है । कवि द्वारा रचित नाटक नाट्यकला विरचित भवता की ही व्यक्त नहीं करते अपितु सम्भावना के रूप का चित्रण हीनता या इसकी भी अभिव्यक्ति करते हैं ।

विवाह-संस्कार की समाप्ति पर आज्ञा एक उत्सव को प्रकट निरा नाटक होता जाता था । अथवा नाटक के ही श्रुत हावभाव और के हाथ कृष्ण अभिनय किया जाता था । इनमें राग रस वृत्ति गुण सामान्यतया रहता था । इसी प्रकार वस्तुतोत्पन्न पर भी

१. पुष्पमिन्दो न सायु सख न चापि वाग्म्यं नवमिन्दोत्पद्यम् ।  
सम्पत् पठेन्नाम्यतरद्वयस्ये मूत्र पराशयमेवमुक्ति ॥ —माध० १।२  
२. ती नक्षिण्योऽत्रावृत्तिमेव रमाश्रयेण प्रतिबद्धरागम् ।  
नाट्यनामज्जरमा मूल प्रयोगमार्थं निर्माणरागम् ॥ —सुन्दर० ७।११

वाणिज्य के अर्थ तरकारीय संस्कृति

गन्ना जाता था। मायबिकानिमित्त बगमतीरमव गर ही गन्ना गया था।  
इसी प्रकार भरतमुनि-प्रणीत नाटक में उषसी मीनका भारि का करना प्रभाव है कि समय-समय पर नाटक गले जाने थे। नाटक बनता केवल मन्त्रार्थन की बगुन था। नाटक और युद्धों की दृष्टि से इसका ज्ञान इला बिडायी की प्रथमा प्राप्त करना<sup>२</sup> इसकी ग्राह्यिक उपादेयता को समझ करना है।

नाट्यकला गवयसु कमा मानी जानी थी। आचार्य मन्त्रारम का कथन में था मयो अपनी-अपनी बिद्या पर अभिमान करते हैं पर हमारा नाट्यकला पर अभिमान बिद्या नहीं है। नाटक का ईशा है कि मनुष्य पुषक-पुषक बिद्या एवं कला में निरुत्थ होने थे पर नाट्यकला का बिद्या बाहर था। नाटक युद्धों के मर्ता को सुन्दर समने बाधा यज्ञ है। यही एक एसा उत्सव है जिनमें सब मनुष्यों को बाधे व किन्ती भी रुचि क हों आनन्द प्राप्त होता है<sup>३</sup>। आदि वास्तव्यमिमा नाट्यकला की मर्यादा को प्रकाशित करती है।

साम्य युद्ध में बिद्या मोगता विद्याला राजा-गनी का सम्मान प्राप्त करना नाट्यकला क प्रति बिद्या बाहरभाव व्यक्त करता है। आचार्य मन्त्रारम और हर्षसु दोनों का राजा को प्रासिक बनाने को प्रसुत हुआ राजा का दग कला में निष्ठाव होता बताया है। राज्य द्वारा सन्निधकलाओं विभेगकर नाट्यकला को कितना संरक्षण प्राप्त था यह मन्त्रारम के कथन देने नाट्यकला की सिद्धा बने साम्य युद्ध में ली है, देने निष्ठावकला के व्यावहारिक पात्र भी दिए और कथन में देव और देवी का कृपादान भी रहा<sup>४</sup> में परिपुष्ट हो जाता है<sup>५</sup>।

स्त्री और युद्ध दोनों ही गमान रूप में दग कला के सम्बन्ध थे। आचार्य प्रथम राजा में ही निष्ठा करने के लिए कहते हैं। प्रथम अवलन ही राजा उद्य

१. अभिहितोर्गम विडलारिपरा वाणिज्यमन्त्रिकवस्तुमासबिकानिमित्त  
नाटकमन्त्रिमन्त्र बगमतीरम प्रयोक्तव्यमिति ।  
२. वा पारितोषादिना

कर्म के सिद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों रूपों से वर्गिक कलाओं को सोचने में निम्नों का विशेष हाथ था । ७-४  
 कौटिली इस कला की पूज्य अज्ञात थी । आर्या कौटिली ने  
 सूत्र्य कला से पूज्य परिचित प्रतिभाषित हाती है । उनमें  
 कि नाट्यशास्त्र को जोष तो निम्नाने से होती है<sup>१</sup> । सन्ध्या  
 है जो अपने छिपों का जो कला हो अज्ञात है<sup>२</sup> । नाट्यकला  
 ज्ञान नहीं अस्ति अविद्यमान है<sup>३</sup> । अतः हाथ भाग अज्ञा-  
 त । नाट्य की अधिव्यक्ति जितनी अज्ञात उच्छ होती थी ७  
 उत्तम माना जाती थी ।

नाटक की सफलता और समाज के साथ सम्बन्ध  
 राज्य के नाथ का विद्यमानों द्वारा प्रार्थना का पात्र ही नहीं  
 समझा जाता था<sup>४</sup> । सिद्धांत से अधिक हमारा व्यावहारिक  
 ज्ञान था । कालिदास के समय में नाट्यकला का हमारा विकास ही  
 हमारे व्यावहारिक रूप को महत्ता दी जाती थी । यदि मैं जान-५

१ अतः अतः किम अतः च समुत्पत्त्ययोरिवास्तव्यमिति ७-५॥  
 वास्तव्ये प्रयोगे च विद्यमानु । देव एव नो विद्यमान प्रसिद्ध ।

—भास संक १

२ देव प्रकाशप्रकाशं हि नाट्यशास्त्रम् । —भास संक १ पृ० २०४

३ निम्नाना विद्या अस्ति अविद्यमानमज्ञातं मंत्रान्तरात्म्य विद्यमानम् ।  
 यस्यामय साधु न विद्यमाना यदि प्रसिद्धाविद्यमान एव ॥

—भास संक १

४ देव प्रयोगप्रकाशं हि नाट्यशास्त्रम् । विद्यमान वास्तव्यद्वारेण ॥

—भास संक १ पृ० २

५ आर्यानां विद्यमाना न साधु मय्ये प्रयोगप्रकाशम् ।

अतः अतः विद्यमाना विद्यमानमज्ञातमज्ञातं अतः ॥ —अभि० ११२

—अतः नाट्यशास्त्रम् । पुनः —

आर्या विद्यमाना न साधु मय्ये प्रयोगप्रकाशम् ।

व्यापारो न विद्यमानु य वास्तव्यविद्यमानम् ॥ —भास संक २१६

अथ प्रयुक्त किया है<sup>१</sup> और एक स्थान पर 'प्रयोगप्रधानं हि नाट्यशास्त्रम्' कहकर अपनी सम्मति पृथक् व्यक्त कर दी है। इससे इतना अवश्य स्पष्ट है। नाटक का स्वयं और उसकी संकल्पना का कारण 'प्रयोग' ही था।

नाटक का स्वयं में सत्त्व रज तम तीनों गुण तथा अनेक प्रकार के चरित्र होने के कारण उत्काशीन समाज के साथ इसका बाहु सम्बन्ध रहता था। समाज में भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति के अनुष्ठा रहते हैं अथ नाटक की इसी विविधता के कारण प्रत्येक को सबि एवं प्रवृत्ति इसमें परितोष प्राप्त करती थी<sup>२</sup>।

नाट्यकला का विकास—नाटक के सभी अंग तथा इसके अनेक पारिभाषिक शब्दों का कवि ने प्रयोग किया है। इस दृष्टि से नाटक में पाँचों छन्दों में किसीकी आरम्भ की जाती है और भारतीय कृति अंगुष्ठ आदि रस अस्मिता वसन्तादि राग तथा अनुप्रास विशेष और संस्कृत शाब्द भाषाओं सबका निष्ठान महत्त्व का स्वयं काव्यशास्त्र इन सबको कितना खेद देता है यह कुमारसम्भव में उनके हाथ मल्लोक्ति व्यक्त कर दिया गया है<sup>३</sup>।

अथ मुनि-प्रणीत नाटक अथ एतेषु से परिपूर्ण था। इन्द्रादि देवता-जय और लोकपाठ इसके अन्तर्गत अतिशय की देखने के। इन्द्रादि देवता

१ देखिए पिछले पृ० की पादटिप्पणी नं० ४ ६

—बहु प्रयोगात्मन्तर, प्रसन्न । —भा० अंक २ पृ० २८५

—देव मदीमपिधानी प्रयोगमन्त्रात्मन्तरु क्रियता प्रसन्न ।

—भा० अंक २ पृ० २८७

—उपिधानी अन्तर्गत प्रयोगाधित्वगतपाराधयाम । —अभि० अंक १ पृ० १

—व्यक्तमिधं प्रयोगमन्त्रात्मन्तरुमिज्ञानसाधुमन्त्र

नावापुननाटक प्रयोगेऽभिहितव्यवस्थिति । —अभि० अंक १ पृ० ५

२ देखिए पिछले पृ० की पादटिप्पणी नं० २

३ वैष्णोद्वयस्य लोकचरितं नामासौ दृश्यते

अथ्यं विमलवैभवस्य

संज्ञात्मिक नहीं अपितु व्यावहारिक भी था। कवि का पुराने कवियों के बहुत से नामक देग है। आत्र म ५१ । विजयोपदीय नामक एक नया मोटक रिलताता अभिनेताओं को जाकर समझा दो कि अपना अभिनय बड़ी भी इसी बात की पुष्टि करता है कि नाटक गमे जाते थे।

संज्ञात्मिक पद्य में सन्धिमाँ रग वृत्ति राग तथा विरोध स्थान है। भाषा विठनी महत्त्वपूर्ण है यह बहुधा व्यक्त करता है। कुछ संस्कारवती भाषा का कवि धन देता रंग—नाटक में सम्पूर्ण नाट्यपद्ध के लिए कवि ने रंग दिया है<sup>१</sup>। इसमें रंगमंच अभिनता वराकथन ममी का जाते<sup>२</sup>।

प्रेक्षागृह—वह स्थान जहाँ नाटक गम्य जाता था माल प्रदर्शन होता था प्रत्यापद्ध कहलाता था<sup>३</sup>।

नपथ्य—वह स्थान जहाँ पात्रों की सजावर अभिनय के जाता था नपथ्य कहलाता था। आत्रमल इसके लिए दोन व्य रिया जाता है। अभिनेतागणकुम्भ में मूत्रधार का कथन—'आ हो कथा हा तो यहाँ बली आओ' इसका स्पष्ट प्रमाण है<sup>४</sup>। जब तक मूत्र प्रारम्भ नहीं हुआ मातृविवा विरस्करिणी के १७

परिपदवा पूर्वों कबीनां बहुरमयवण्या । अत्रमय्या १५ ।  
नवन मीनेनापम्याग्य । तदुक्तना पात्रकय स्वतु पात्रव्यक्ति ५१

स्वरमम्भारवत्यामी पुत्राम्भामय सीत्रया ।  
मूत्रकीर्तिव मूय राम मनिगन्धित ॥ —रघ० १५।७६

—प्रमामहत्वा गितारव वीपन्निमागयेव विचिन्त्य माय ।  
मंस्कारकायव मिरा ममीगी तत्र म पुनरव विमृष्टिरव ॥

—कुमार० १  
जो रान्निविहवित्तवित्तरान्निगत इव नवगा रंग ।—अनि० अंक १

तेन नि डारवि वगो प्रेक्षापद्धे मदीतरवता वरा तत्रमयता पूर्ण मयदयम  
—आत्र अंक १ पृ० २

मूत्रधार ( नपथ्यामिजगमवलेक्य )—आत्रे म-  
रितामवरावम्यताय । —अमि० अंक १ पृ० ३



सम्यक् प्रवर्तन किया है<sup>१</sup> और एक स्थान पर 'प्रयोगप्रयोगं हि माटपञ्चसम्भम्  
कृत्वा अपनी सम्पत्तिं पूषत व्यक्त कर भी है। इससे इतना अवश्य स्पष्ट है।  
मात्रक का स्वस्व और उसकी सफलता का आधार 'प्रयोग' ही था।

मात्रक का स्वस्व में सत्त्व राज तम तीनों गुण तथा अनेक प्रकार के चिन्तन  
होने के कारण उत्कृष्टतम समाज के साथ इसका बाढ़ सम्बन्ध रहता था। समाज  
में शिष्ट-श्रेष्ठ प्रवृत्ति के अनुसृत रहते हैं। अतः मात्रक की इसी निश्चिन्ता के कारण  
प्रत्येक की कृति एवं प्रवृत्ति इसमें परिशील प्राप्त करती थी<sup>२</sup>।

मात्रकता का विकास—मात्रक के सभी अंग तथा इसके अनेक परि  
मापिक धर्मों का कवि ने प्रयोग किया है। इस दृष्टि से मात्रक में पाँचों उन्मिर्षी  
कैसिकी बारभटी छात्रही और भारती वृत्ति मृगार कावि रह ललित  
वसन्तादि रूप तथा मधुराव विरोध और संस्कृत प्राकृत भाषाओं का कविता  
महत्त्व का स्वयं काव्यशास्त्र इन सबको कितना श्रेय देते थे यह कुमारसम्भव ने  
उनके द्वारा मनीषाति व्यक्त कर दिया था है<sup>३</sup>।

महत् मुनि-प्रयोग मात्रक अष्ट रसों से परिपूर्ण था। इन्द्रादि देवता-नय और  
लोकपाठ इसके अन्तर्गत अविनाश को देखने के इच्छुक थे<sup>४</sup>। अतः मात्रक केवल

१ देखिए, पिछले पृ० की वाचस्पिणी पं० ४ ५

—अहो प्रयोगाव्यन्तर प्रवृत्तः । —मात्र० अंक २ पृ० २८५

—देव मनीषमिहावी प्रयोगमवलोकावितुं क्रियता प्रवृत्तः ।

—मात्र० अंक २ पृ० २८७

—उत्तरिणी अन्तर्गत प्रयोगमाभिलषीममाराधयामः । —अभि अंक १ पृ० ५

—मात्रार्थमिहा प्रवृत्तमवलोकावितुमभिज्ञानसाधुनात्

नामापूर्वमात्रकं प्रयोगैर्प्रतिष्ठितमिति । —अभि० अंक १ पृ० ५

२ देखिए, पिछले पृ० की वाचस्पिणी पं० २

३ वैशुम्भोद्भवमथ लोकचरितं नागारतं दुष्यते

मात्रकं भिन्नवर्णमस्य

४ निम्न

सिद्धांतिक नहीं अपितु व्यावहारिक भी था। कवि का पुराने कवियों के बहुत से नाटक देखे हैं आज में इनको विष्णुमोक्षपीय नामक एक नया प्रोटक लिखना। अभिनताओं को जाकर समझा दो कि अपना अभिनय बड़ो मोझी बात की पुष्टि करता है कि नाटक गले जाते थे।

सिद्धांतिक पद्य में सन्धियाँ रस कृति राम तथा में विशेष स्थान है। भाग्य चित्तनी महारथनीस है यह बहुधा कवि व्यक्त करता है। मरु संस्कारवती भाग्य का कवि ध्येय होता है<sup>१</sup> रस—नाटक में सम्पूर्ण नाट्यग्रह के लिए कवि ने रस दिया है<sup>२</sup>। इयम रसमय अभिनता बराबरम समी आ जाते हैं प्रेक्षागृह—यह स्थान जहाँ नाटक गला जाता था प्रदर्शन होता था प्रेक्षागृह कहलाता था<sup>३</sup>।

नपथ्य—यह स्थान जहाँ पात्रों को सजाकर अभिनय के। पाठा था नेपथ्य कहलाता था। आजकल हमें पिए घोन हम किया जाता है। अभिज्ञानसाकुन्तल में सूत्रधार का वचन—<sup>४</sup> हो कहा हो तो यहाँ जमी आओ इका स्पष्ट प्रमाण है<sup>५</sup>। अब तक मूल प्रारम्भ नहीं हुआ भातविका ठिरस्वरिणी के

१ परिगरेषा पूर्वेषां कवीनां बृहत्प्रवक्तव्या । अहमत्वात् ।  
नवन मोक्षेनोपसमाप्ये । तनुजन्ता पात्रवत् स्वेन पाण्डुरहि

२ स्वस्मन्कारकपाशो पुत्राम्नामथ सीतया ।  
मृगशीर्षविष मूय रसं मुनिगन्धर्विष ॥ —रघु० १५।७६

—प्रभासग्या जितायेव क्षीपस्त्रिमाग्येव विनिर्धाय माय ।  
संस्कारकायेव विरा मगोनी तना म पुनरथ विभूतिरथ ॥

३ जगो रागनिबिडचित्तमिरानिगित इव नवनो रंग ।—अभि० अंक १ पृ

४ तेन हि कायि वर्गो प्रेक्षागृहे तंगीतरचनां करवा तत्रमगता दूर्त प्रपयतम्  
—कमार० १

५ सूत्रधारः ( नपथ्याभिज्ञानमन्त्रकेन )—आजें दाँ १५ २  
इतितावदभिज्ञानमाय । —अभि० अंक १ पृ ३

भी और राजा उसे देखने को इत्ता मपीर था, कि बाहूता था पराँ हय्य १  
नेपथ्य का बीच कम म प्रयोग परिभाषिका कथन से भी पुष्ट होता है २ ।

तिरस्करिणी—परदे के लिए कबि ने तिरस्करिणी राज्य का प्रयोग ३  
है ३ मठ परदे का व्यवहार होता अवश्य था । भी अवश्यपर ४  
'नेपथ्य परिवर्ता' से संबंधित संकेत मिलते हैं । 'संस्तु' से उनका अनुमान है कि  
परदा लपेटा जाता था । और एक से अधिक परदों का लपेटा था ५ । वेत भी  
कबि के पदों के वाक्यांशों से इसकी पुष्टि होती है । 'सुत' प्रविष्टि वाचनस्थो  
राजा ६ का सम्भाव्य यही हुआ कि आसन पर बैठे हुआ राजा प्रवेश करता है ।  
इसमें विरोधाभास है । आसन पर आसीन राजा प्रवेश नहीं कर सकता । अतः  
विहंगमन पर राजा को बैठकर परदा हटा दिया जाता होगा । भी काने का भी  
ऐसा ही अनुमान है ७ अतः पदों का अस्तित्व स्वीकार करना आवश्यक  
हो जाता है ।

एक प्रसंग और है—परदे बनेक से अवश्य एक । इसके सम्बन्ध में श्री काने  
और भी अवश्यपर उपाध्याय का मत है कि बनेक से ८ । परन्तु बनेक से  
इसका कोई स्पष्ट ज्ञात नहीं है । काठियास के कुछ नाटक इतने सन्ने हैं कि  
एक रात में समस्त नाटक नहीं दिखाया जा सकता । हाँ सभी नाटक इतने सन्ने  
नहीं हैं कि जिसको एक रात में न दिखाया जा सके । माकनिकानिमित्त तो बहुत  
ही छोटा है । यत रूप जिसकी में अनिजानवाक्यता का भी अनिजान एक बार में  
( एक रात से भी कम में ) किया जा चुका है । फिर भी राजा के प्रत्येक कार्य  
करने का समय निश्चित था ऐसा स्पष्ट किया जा चुका है । अतः सम्पूर्ण नाटक  
के स्वयं पर एक एक ही प्रतिरिक्त दिखाया जाता होगा ऐसी ही सम्भावना है ।  
काठियास के सम्पूर्ण नाटकों में बीच में कहीं पटाक्षेप ( ड्राप सीन ) नहीं है ।

१. नेपथ्य परिभाषावमणधुरचनसमुच्चय वचना ।

संस्तु मपीरता व्यवस्थितमिध से ९

इसके अतिरिक्त एक अंग में धातुकल की तरह कई दूसरे अंग सम्मिलित हैं और प्रत्येक अंक के परचालन इति निष्कास्यता का प्रयोग है । अतः एक पन्ने से भी काम चला सकता है ।

**शैलमञ्जीष परिधान ( Stage Dresses )**—मिल-मिल मिश्र-मिल परिधान से । कौटिली का कथन 'यै निर्वाण कश्ती ह' कि कानो सिद्ध सूत्रम परिधान मे प्रवेश करें 'मित्रस मीटव ममोर्माति प्रकासित हो सके' <sup>१</sup> प्रमाणित करता है कि परिपल मृत्यु का प्रदर्शन करने वाले को निया जाता होगा । ७ ने एक स्थान पर अभिचारिका-परिधान को स्पष्ट किया है कि धारण करती है और सरीर पर एक-सो आभूषण होते हैं <sup>२</sup> । प्रकट का चरण उत्पन्न हो अथवा चमक पैदा हो वह तब न परिवर्तित कर देनी है । आनंदा शल बाधे पदचालने न पावे इससे मिए वय चरण करता होता है । इसी प्रकार मण्डोदक वेष्ट <sup>३</sup> का संकेत है । दूसरी मण्डोदक मामिनी विरहिणी लपटिनी वृत्तनिष्ठा आदि विविध वेशभूषा पर प्रकाश डाला जा चुका है <sup>४</sup> । कंचुकी अपने वेश से जाता था और मुनि वस्त्रम से । इस प्रकार मनुका पयक-युवक परिधान

**रंगमञ्च का सज्जारी ( Stage Preparation )**—इसमें से वस्तुओं का आशोक्तन नहीं किया जाता था । केवल अभिनय ही करके आदि के द्वारा भाव की प्रतीति करा दी जाती थी । पात्रों के विभिन्न वाय-व्यापार आदि वेशभूषाओं द्वारा प्रदर्शित किए जाते थे । यथावत् <sup>५</sup> स्थान पर कवि ने गणपति और मातृपति <sup>६</sup> पात्रों का प्रयोग किया है जो हम का पौरव है ।

१. निमेषादिदारे शीघ्रि । सर्वोदलोच्छासिभ्यस्तने विपत्रनेपथ्ययोः । १४  
प्रवृत्ताग्र्यु । —आप्त० अंक १ पृ० २३९

२. इत्य चिह्नगतं कति रोचते तेजं यवत्तममग्न्यमूर्तिना भीष्ममुकर्णितार्जुन्यं  
सर्विनामयः । —आप्त० अंक १ पृ० १२८

३. आत्मन्मु यवत्ता युवपाययम् । —अभि० अंक २ पृ० १२

४. हेमिए अन्धार 'वेष्टाव्या' । सर्वही वेशभूषा पर सर्वान्तर प्रकाश डाला जा चुका है ।

५. इति धारमपायं नाग्यति । —अभि० अंक १ पृ० ७  
—इति मृगो रत्नगं रिक्तार्जुन । —अभि० अंक १ पृ० ८

कालिदास के ग्रन्थ तत्कालीन संस्कृति

**भूमिका**—सदमी की भूमिका में जबही का नाम और वाक्यों को में मेमका का आना 'भूमिका शब्द की अभिव्यक्ति कर देता है'। जो अभिनय करता था उनके लिए वह उसकी भूमिका में आया ऐसा कहा जा। अतः भूमिका पारिभाषिक शब्द है।

**अभिनय**—इससे माओ को बहुत महत्ता दी जाती थी। 'मावाकि छरीरिणी'² माओ की साकारता की प्रतीति करवाते हैं। की प्रशंसा करते समय परिभाषिका भी यही कहती हैं—'अंगरक्षतिदिवचनं सूचितं सम्यक्'³।

**आंगिक** सात्विक एवं बाह्यिक दोनों प्रकार के अभिनय थे⁴ अथवा दोनों अभिनय के अंग थे। मूल्य के साथ ही कवि अभिनय को लेता है। इस पर मूलकला का बचन करते समय प्रकाश डाला जाएगा।

**संगीत**—नाटक में स्थान-स्थान पर संगीत का भी आयोजन किया जाता था। एक स्थान पर पञ्चामाभिनय⁵ का कवि ने निर्देश किया है। कदाचित् इससे जीव वाद्य सात्विक बाह्यिक आंगिक पाँच वस्तुओं से कवि का आशय है। माकमिका का अर्मिहा-कृत अनुप्रासी का कविक इसकी पुष्टि करता है⁶। जीव से

—इति कुसतेचनं कम्पयति । —अभि० अंक १ पृ० १२

—तर्वा संगन्तर्वा आकाशोत्पत्तं लब्धवति । —विक्रम अंक १ पृ० १५४

१ सदमीभूमिकायां वर्तमानोवधी वाक्याभूमिकायां वर्तमानया मेमक्या पृष्ठ । —विक्रम अंक १ पृ० १९२

२ अभावभिनमावाचीं परस्परवर्षयिणी ।

—विक्रम अंक १ पृ० १९२

३ त्वां हृदमुद्यती सायाभूमावाकिव छरीरिणी ॥ —मास १।१०

४ अंगसत्त्वचनार्थं गिब स्त्रीषु मूल्यमुपमाय वसाम् ।  
स प्रयापनिपुर्णं प्र

सारा वातावरण दान्त एवं निस्तम्भ हो जाता था और सम्पूर्ण रंग चित्रकल्पित हो जाता था<sup>१</sup> ।

हास्य—नाटक नीरस न कबो इसलिए संकीर्त ने साय-साय हास्य का भी आयोगन किया जाता था । विदूषक का यही महत्त्व था । इसके अतिरिक्त भी प्रथममुषविकार- हास्ययामाग गूढम्<sup>२</sup> पावती को हँसाने के लिए मनो ने तरह तरह के मुँह बनाए थे । अथ मुग्धमुग्धा क द्वारा हँसाना हास्य का संचार करना नाटक का आवश्यक अंग था ।

रिहर्सल—नाट्यभिनय के पूर्व उसका अभ्यास ( रिहर्सल ) होता था । इस दिन मोगलिक उद्यानवास बाग़ान भोज किया जाता था<sup>३</sup> ऐसा मालविका-ग्निमित्र क द्वारा स्पष्ट हो जाता है ।

रंगमाला के प्रथम उद्यान के अवसर पर बाग़ान-भोज एक निश्चित सामाजिक प्रथा का संकेत करता है । विदूषक की उक्ति 'जब पहले-पहल अपनी मिठाई हर्द बिछा लागों क आग बिछाई जाती है तो सबसे पहले बाग़ान की पूजा करनी चाहिए' और इसका दूसरा वाक्य 'महाशय्य यह प्रथम नरप्य-दशन नहीं है अभ्यास तुम्हारे जैसे दक्षिण पर जीन बाने बाग़ान का हम अच्छी तरह पूजा करते उसमें सामाजिक प्रथा के होने का प्रतीक है'<sup>४</sup> ।

कवि क समय न अनेक प्रकार के नाटकों का चलन था । स्वयं कवि ने दो नाटक और एक नाटक लिखा है । इसी प्रकार कवि ने छलिक<sup>५</sup> छल का प्रयोग किया है । अनुमान है कि यह कोई प्राकृत नाटक होगा । छलिक का प्रयोग कविन माना जाता था—छलिकं दुष्प्रयोगमुदाहरणम्<sup>६</sup> ।

१. मरुो रणनिविह्वित्तुत्तिरतिगित इव मवती रंगः ।

—अभि० अंक १ पृ० ५

२. कुमार० ७।१५

३. प्रथमोदगाहाने प्रथमं बाग़ानरस पूजा वतव्या ।

—मात० अंक २ पृ० २८५

४. महाशय्य ' न गन्तु प्रथमं नरप्यदशनमिदम् । अभ्यास कथं त्वा दक्षिणोयं नाचयिष्याम । —मात० अंक २ पृ० २८६

५. देव दक्षिणाय- कविभ्यमभ्या अनुपरासि ।

तस्यान्तु छलिकप्रदीपमेवमना धानुमति देव । —मात० अंक २ पृ० २८१

६. मात० अंक १ पृ० २७८

## संगीत-कला

प्राचीन भारतीय शास्त्रिकों का कहना है कि सप्तम एवं संगीत एक ही के दो रूप हैं। संगीत एवं व्याकरण के उत्पन्न माहेस्वर सूत्र है। पाँच से अन्वर्तित व्याकरण के पाँच मुख्य स्वर अ इ ए ओ ऊ हैं। इनमें मिथित रूप है ए और ओ। दो अमिथित पाँच हुए रूप हैं ऐ और औ। तीन स्वरों (अ इ उ) के बीच रूप भी है। इस प्रकार स्वर ७ हो जाते हैं।

संगीत के सात स्वरों में भी पाँच स्वर प्रधान और दो मीष हैं। प्रधान स्वरों के नाम मध्यम गान्धार चपम पद्म एवं वेध है। मीष स्वर पंचम एवं निषाद है। कोई-कोई वेध और निषाद को मीष मानते हैं। दोष पाँच प्रधान हैं। इन सात स्वरों के अतिरिक्त दो और मिथित स्वर हैं, उनके नाम 'काकसी' और 'अन्तरस्वर' हैं। संगीत में उक्त मिथित स्वरों का नाम साधारण अर्थात् मीष का स्वर है। तीन मध्य स्वरों के एक-एक विच्छेद रूप है। इन तरह यहाँ भी स्वरों की संख्या बारह हो जाती है।

काव्यशास्त्र ने नाट्यकला के समान ही संगीतकला को महत्व दिया है। कविकल्प में जो स्वान संगीतकला को मिला वह मूर्तिकला वस्तुकला को नहीं। कवि ने कविता शब्द का उपयोग इस कला की अभिव्यक्ति के लिए अविकल्पित किया है। हनुमती कविकलाओं में मन्त्र की शिष्या की। अतः यहाँ संगीत और विषयकला ही ही कवि का आशय है। इसी प्रकार का संगीत के प्रति अभिव्यक्ति का एक उदाहरण मातृनिगलनिगल में भी मिलता है।

संगीतकला का नाट्यकला से कितना सम्बन्ध है, वह कभी विद्याया का बुका है। नाट्य में नाट्य बिना संगीत के अधूरा ही है। संगीत के तीन धेर हैं—गीत, वाद्य और नृत्य।

गीत—आश्रय की तरह गीत के -

वे । कवि ने अनेक स्थानों पर 'गीत' शब्द का प्रयोग किया है जिससे ऐसा आभासित होता है कि प्रत्येक प्रकार के गीत गीत कहलाते थे । कवि के दृष्टों में गीत कितने भी आए हैं वे अधिकांश में प्राकृत गीत हैं<sup>१</sup> । गीत की तरह कवि ने संगीत<sup>२</sup> शब्द का प्रयोग किया है परन्तु गीत और संगीत में अन्तर है ।

१. काये किमप्यरस्या परितर धनिप्रमाणहेतोषोत्तरावरणोपमस्ति ।

—अभि० पृ० ४

—उवाचि चोतरायेव हरिणा प्रमथं हृत । —अभि० पृ० १

—हस्ता चिन्तितं मया गीतवत्सु । —अभि० अंक १ पृ० ४६

—कस्तबिचन्द्राया गाते स्वरसंयोगं ध्रुवते ।

अहा रागवरिबाहिनी योनि । —अभि० अंक ५ पृ० ७६

—आराधे सुरमगोष्ठिजे गमन्यास्ति काय कल्पपुराणं प्रकीर्ता ।

—विजय० ११३

—यत्र तु तव निराश कामिनीभि समेनो निगि मुनमित्रमाने हृत्परष्ठे मुग्धन ।

—आनु० ११२८

—ना दूरसेनापिगतिं मुपयन्नुदिरय काटान्तरगतोदरीतिम् । —रघु १७४

२. ईमीतिबुविमार्दं भमरैर्ह मुडमाररकेमरुगिगार्दं ।

औरमर्मेति बभ्रमापा पनराओ निरीममुमुमार्दं ॥ —अभि० ११४

—तुल्य य जाये हिमत्रं भम उग कामो निवारि रतिमि ।

चिन्मिष तवह बलीमं तुह कृतमथोरणा भगार्दं ॥ —अभि० ११४

—दुल्हा विभो मे तस्मि भव नित्रम विरामं

अग्रे ओगयो मे पतिरुह वि विनामओ ।

ऐगी मा विरिदुह कत उग उचमदग्गा

पाह मं परागीचं तुई परिममम मतिधम् ॥ —मात० २१४

—गामिभ संभाविआ बर अर्त्तं तुए अचुमिआ

तः अमुरसहन अह नाम महु उगरि ।

कि मे कल्पि पाणिआमममिगममि गीनि

गंरुगगगग वि अचरुहृआ मरीण ॥ —विजय० २११२

३. तगरभ्यता समीतम् । —मात० अंक १ पृ० २६१

—प्रसागुं संगीतरचनां कथा तत्रमरुतो

हां प्रेयस गमन संगीतकेभ्यश्चर हः । —मा० ५० २७८

—मागदिदे, इव परत । यत्रा से ननेप्रमृवादिरी रोचने ।

—मात०, अंक ५, पृ० १४९



बीठ में केवल कण्ठ-संगीत है, परन्तु संगीत में बीठ के साथ वातावरण के रङ्गने का अनुमान है, ( पूवमेव १ ) । यह कवि के प्राकृतगीतों से स्पष्ट हो जाता है । मातृबिम्बा के बीठ में नृत्य का भी योग था<sup>१</sup> । यद्यपि पत्नी बीणा बजा-बजाकर पति के गुणों के गीत गाती थी<sup>२</sup> । आज भी दक्षिण-भारत में महाराष्ट्र की तरह बीणा बजाकर गीत गाने का रिवाज है । वैसे भी कण्ठ-संगीत में पीछे-पीछे छारंगी और तान्त्र्य आजकल भी बचाया जाता है । उस समय भी गीत के साथ कोई-न-कोई वाद्य बजाया जाता था । लोकगीत के वाद्यों में बंधी अपरिहार्य बात पड़ती है क्योंकि कवि ने अरव्य प्रदेशों के गीतों के साथ बंधबाध का बहाना किया है<sup>३</sup> । वस्तुतः बंधी आज भी पहाड़ी देशों में अधिक प्रचलित है । प्राचीन काल में इन प्रदेशों का यह मुख्य वाद्य था यह कामिबाध के उद्धारण से स्पष्ट है । इससे बात और भी महत्वपूर्ण है । वे बंधी वाद्य को 'तान' के रूप में प्रयोग करते थे और यह माना जा रहा कि 'तान' का सच्चा रूप बंध वाद्य में ही साम्य है<sup>४</sup> । इसीलिए भरत ने तान को बंधी की ध्वनि में तानना

- १ अवेरन्तमिहितवचनै सुक्लिप्तं सम्ममन  
पावम्बासो कममनुगतस्तम्भयत्नं रसेषु ।  
साक्षाद्योनिर्मुहुरभिगवस्तद्विकल्पानुबृत्तो  
बाधो नाहं नुवति विपयसागबन्धः स एव ॥ —मातृ० २।८
- २ एतन्ने वा मन्त्रिनवसने सीम्य निक्षिप्य बीजा  
मन्त्रोवाहं विरचितपदं यैवमुत्पल्लुकाया । —उत्तरमेव २९
- ३ सक्तीवर्मास्तपूनरन्दी कूजगिरापावित्तर्बद्धहृत्स्वम् ।  
धुमान् कुंजेषु यद्य स्वमुज्ज्वलीवमार्गं गगनैवतामि ॥ —रघु २।१२  
—धम्बाकन्ते मज्जुरमनिकैः कीचका पूयमाणा  
संसक्तानिक्लिप्तपुरजिह्वयो गीयते क्लिप्तगीमि ।  
निह्नीरस्ते मुरज इव नेत्कन्दरेषु द्यनि स्यान्  
संनोताप्यो ननु पणुपतेस्त्वज्जगती समय ॥ —पूवमेव ९  
—४ पूरयन् कीचकरज्जमायान् बदीमुक्षीत्वेन समीरजेन ।



है। कवि ने मूर्च्छना छन्द का प्रयोग भी स्वार्थों पर किया है। कुमारसम्भव तथा मेघदूत<sup>२</sup> में।

साछ—गले बसाने में लम्बे हुए स्वरों के और जोड़ों के समय की गिनती को साछ कहते हैं। साछ ठाकी बजा के बताया जाता है, इसी कारण इसको साछ की संज्ञा दी गई है। मेघदूत में यद्यपि पत्नी बुँबलवार कहे वस्तु हावों से दामिनी बचा-बचाकर मोर को मचाया करती थी<sup>३</sup>। इसमें साछ छन्द का प्रयोग कवि ने किया है और यस्मिन्नाद्य से ठाकी' का अर्थ करतलवादी किया है, जिससे साछ के वास्तविक अर्थ की स्पष्ट प्रतीति होती है।

छन्द—एक भाषा से दूसरी दूसरी से तैछरी तीसरी से चौथी भाषा तक कहने में जो बराबर-बराबर समय लम्बता है उसी को छन्द कहते हैं। छन्द तीन है। पहली छन्द की पंक्ति मध्य रहती है। दूसरी छन्द की पंक्ति पहली से दूनी रहती है, तीसरी की दूसरी से दूनी रहती है। मातृकाभिनिमित्त म मातृका के मूल करते समय 'अयं' का उपमान कवि ने किया है<sup>४</sup>।

तान—तान ध्वज का अर्थ तानना या विस्तार करना है। तान स्वरों के पद समूह को कहते हैं जिनसे तान का विस्तार किया जाता है। स्वयं कवि तान का यही अर्थ देता है। प्राचीन काल में बंसी के बाद की तान के अर्थ में प्रयुक्त करते थे यह पीछे कहा जा चुका है।

उपमान<sup>५</sup>—नीच माने के पूर स्वयंभाव द्वारा तान का आवाहन करके तान का अर्थ स्पष्ट करते हैं। यही उपमान कहलाता है। इसमें तान की आवश्यकता नहीं रहती पर स्वर ज्ञान अवश्य अच्छा होना चाहिए।

१ स स्वदुष्पठं बुधस्तबोवितं भातर्जुमकमलाकरं समम् ।

मूर्च्छनारिपहीतकैचिकै किम्बरिपति गीतमयकः । —कुमार० ८।८२

२ तन्वीमर्था गवनसधिलैः सारपिरवा कर्षीच

पुम्पुो धृप स्वयमभिक्षुतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥ —तत्तरदेय २६

३ ठाकी' विभावलयतुर्गगतिरा कान्ताया ने

यामध्याते "

**वर्णपरिचय**—बण सगीत का पारिनायिक ।  
स्वरों की जा बाल मिश्रणों हैं, उगे बण कहते हैं । यह  
स्वापी बण—दसम एक ही स्वर बाग-बाग पाया जाता  
रे रे रे आगेरी बण—मम स्वरों को मोच म ऊपर  
भेते म र ग म र ग म प अत्राही बण—इसमें स्वरा का  
बाधा जाता है भेते र की य प नी य प म मबाग बण  
तीनों प्रकार का मिथग हा जाता है ।

परिचय का अर्थ अम्पाम है जिग भावनात 'रियात्र' २७  
परिचय का अर्थ स्वरा का अम्पाम है । बरि म प्र न म क  
परिचय का उपयोग दिया है २ ।

**मायूरी और मार्जना**—मर्ग के विशेष विशेष प्रकार  
लिए मायरी और मार्जना शब्दों का प्रयोग होता है । थोड़ी  
भी इनका विशेष-विशेष प्रकार क बजान को गति क लिए बरि न  
एसा मानने है ।

**पादन्याम**—नृत्य करत समय विशेष प्रकार के पग धरम  
कहा जाता है ।

**द्विपदिका**—एक विशेष प्रकार की मुद्रा है एसा की  
कहना है नाथ में यह एक छ्वा का पा नाम है ।

१ बलविमुद्धाया गीत स्वरमंगल धूपने । जाने तनमवती ।  
परिचर करीतीति ।—अभि० अंक १ पृ० ७६

२ देगिए, पारिणिपी २ ।

—अभितान्तरिचमुमिरोटगा मन्त्रमागर्तिजाम्परा ।  
अमरदासगारागा मग बागिना बरिदायदिजामति ॥—रत्न

१ बीमनगनितविट्टिमिमपूरेरूपोरमुग्नितय  
निर्गन्मिपतिमपमबरोपा मायरी मन्त्रनि मागना मनीमि ॥  
पुररत्न ।

४ अंपरत्ननिजिउपने मुचिन गम्पय  
पागनामी लममन्त्रगम्पय रगु ।—मा २।८  
५ अंगुरे निजिउपने निगे अयनीर—रिगम० अंक ४ पृ २२२

६ पारिणिपी २ १४ के लिए बरि म क-Ke dha and Mar by G N  
Molander—Annals of Bundelkha Peshch Institute Vol V

सासा<sup>१</sup>—नृत्य करते समय बाहुओं की एक विशेष मुद्रा का नाम है। बाहुओं को लहराकर माननाओं को अभिव्यक्त किया जाता है।

सत्य<sup>२</sup>—स्वयं मल्लीनाथ के सत्य को बोधा खूँटी कहा है। अतः पारिभाषिक रूप में हो कवि ने इसको लिया है।

राग—राग शब्द का कवि ने अनेक स्थानों में प्रयोग किया है<sup>३</sup>। अनुमान अवश्य किया जाता है कि भूँके उसने अल्प पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है और उनसे इनका संगीत-सम्बन्धि ज्ञान व्यक्त होता है। अतः अवश्य ही राग का आसन्न संगीत शब्द राग से ही होना।

मरुत मुनि के अनुसार मरुत कैथिक हिरोठ दीपक धुराव और मेघ—१ विशेष राग है। कवि ने इसमें से कैथिक का विशेष रूप से निर्देश किया है<sup>४</sup>।

कैथिक—कैथिक राग बहुत सुन्दर राग माना जाता है। इसका उल्लेख रामायण में भी है जहाँ कैथिक राग में निष्पाठ<sup>५</sup> के लिए कैथिकाबाध सद्य का व्यवहार किया गया है। मंगल कथिक सम्भवतः अत्यन्त प्राचीन कैथिक रागों में से माना जाता था परन्तु श्री के. सी. रामचन्द्रन के अनुसार यह कैथिक राग त्रिजना व्यवहार शिष्ट को बगाने के लिए किया गया था 'बीबी डंग का बा'।

सारंग—सारंग का अर्थ है हिरण और इसमें सारंग राग की भी प्रतिध्वनि होती है। अमिमानाचार्यविरचित के नटी के बाने के पञ्चानु सूत्रकार कहता है

१. तात्त्वापोनिम् बुधमिनयस्तत्रिणस्तानुबुद्धौ।

भाषा भाई नृपति विषयाज्ञागवन्धः स एव ॥ —भाषा० २।८

नोट देखिए केव—Kakdes and Musc by G. N. Majumdar—Annals of Bhandarkar Research Institute Vol VIII

२. प्रतिपादयितव्यवस्तुकीमयवत्त्वामय सत्त्वविक्रमात्।

स निनाय निशान्तवत्तम परितुष्टो वितर्ककर्मनान् ॥ —रघु० ८।४१

—वस्तुकोपधे तु सत्यं तन्नीजानवद्वन्द्वकः सत्ताकाविशेषः ॥—टीका मन्त्रिनाथ

३. अहो रामनिमिष्टविश्ववृत्तिरामिलित इव सर्वतो रवः।

—अभि० अंक १ पृ० ५

—उवाचि मीतपानेय हारिषा प्रबन्धं हृतः। —अभि० अंक १ पृ० ४

—सी सन्निधौ स्थितवृत्तिर्येव रघुनन्दरेषु प्रनिबद्धरागम्। —कुमार० ७।२१



कालिदास के ग्रन्थ उत्कलसीन संस्कृति

बास विशेष रूप से बधनीय है—वहाँ कहीं भी नीत गाने का प्रसंग है वहाँ स्त्रियाँ ही गली हुई दिखाई गई हैं यद्यपि संगीताचार्य पुण्य ही होते थे ।

वाद्य-संगीत—प्राचीन वाद्यविद् लोगों ने वाद्ययन्त्रों को चार भागों में विभक्त किया है (१) तन्त्रीगत (२) मान्ड तथा जवनड (३) सुपिर तथा रत्नयक्त और (४) वन अर्थात् वायुनिर्मित । तन्त्रीगत में समस्त तारों के बाध आते हैं उदाहरणार्थ बीजा । जवनड में मुरख पट्ट, पुष्कर आदि का नाम है । रत्नयक्त बास बंधी आदि को सुपिर कहा जाता है । करतल आदि वायुमय वाद्यों को वनवाद्य कहते हैं ।

अथवा शब्द के अनुसार वाद्ययन्त्रों के चार भेद किए जा सकते हैं तुष्क नीतानुय नूतानुय और द्रव्यानुय<sup>१</sup> । इनमें से कवि ने नीतानुय शब्द का प्रयोग किया है और इसका इसी अर्थ में प्रयोग हुआ है<sup>२</sup> ।

तन्त्रीगत वाद्य—तन्त्रीगत वाद्ययन्त्र का साधारण नाम बीजा है । सामान्य में तन्त्रीय प्रकार की बीजाओं का उल्लेख है । 'अथवा बीजा किमती मनुकिमती विपन्नी बल्लको ज्येष्ठा चिना बीपवती यथा धनि कुम्बिका कूर्वी सारंगो परिवारिनी विषाखी शतवन्त्री नकुक्षीष्टी बौदुम्बरी पिनाकी निशंक शुष्कल यथावारणहस्त इव मधुसूयन्त्री स्वरमनमल और शोच ।

कवि ने साधारणतः बीजा शब्द प्रयुक्त किया है<sup>३</sup> परन्तु 'संगीत

१ पुनरुक्तुमिदं वाद्यं बहवे रूपानुसारतः ।  
छन्दः नीतानुयं नूतानुयमग्न्यद् द्रव्यानुयम् ॥

चतुर्थेतिमत्त वाद्यं तत्र शुष्कं यदुच्यते ।  
यदिना नीतनूत्याम्ना तद्गोष्ठीरुच्यते वन ॥ —संयुक्तसंगीत

२ शोभेषु सम्मूकति रत्नमस्ता नीतानुयं वारिमूर्धन्यायम् । —रघु०  
विगतौकनविशैतवीधरम् ।  
सार ॥ —रघु०

के बीजा के प्रकारों के अनुसार समेकित की गयी हैं और ५१ उल्लेख किया है। एक स्थान पर 'तंत्री' का भी प्रयोग है।

इनमें सबसे ही चोड़ा-बहुत भेद रहता होगा। कवि न और बय्यरी कहा है वही वे इसी विषय प्रकार की बीजा हैं। मन्त्रिमात्र परिवर्तनों की बीजा ही कहते हैं। इसमें परिवर्तित बीजा। बीजा तुल्यकी। विरचितानु तंत्रीमि उत्तरी

अश्विमेधन हार्य (Asvamedha Har) — बी के बी० मन्त्रानुसार प्राचीन भारत बीम और बीम में एक विशेष प्रकार की की जाती थी जिसे वे 'अश्विमेधन हार्य' कहते हैं। इस बीजा के पृथक् माटाई के होने से और वे उच्चरित पर पृथक्-पृथक् होते थे। वायु के चर्म से उनका प्रवाह के अनुसार इनमें उल्लेख होते थे और इनके विषय से विद्वत् संवीर की उत्पत्ति इसका उद्धारण आज मान के निम्नलिखित स्तोक से होने है—

रथद्रिस्तपदृष्टया बभूवत्त पृथग्विधिन्यनिर्मितम् स्वरं ।

स्वर्गोपबद्धामविनोत्तमूक्त्यामवशमाभा मन्त्री मृदुमृदु ॥

कवि कानिराम न भी इसी 'अश्विमेधन हार्य' का रचन में भारत में संकेत दिया है। वायु के चर्म में तारों के चर्मन द्वारा उल्लेख संकेत का मुनकर इन्दुमती ने सारा के लिए बीजाँ बन कर ली थी। मन्त्रीतन्त्रान्त्र के अनुसार राग तीन वायों में बाँट जाते थे। पद्म और बय्यम। काधार वायु केरम देवताओं द्वारा ही प्रयुक्त जाना या निम्नर चर्मन द्वारा। इनके मन्त्रानुसार 'अश्विमेधन हार्य' इसी काम में रखी थी जो मनुष्या द्वारा न बनाई जाकर, वायु के चर्मन से बनती थी।

१ अश्विमेधन हार्य नरामवशमाद्य करविन्वयान् ।

न निवार निवृत्तवत्तम परिपक्वाचित्तमवशमाद्य ॥ — अनु० ८१४१

—मन्त्रोपबद्धामविनोत्तमूक्त्यामवशमाभा मन्त्री मृदुमृदु ॥ वायु०

२ अमरी मुमुक्षुमात्रादिभिः कविबीजाँ परिपक्वादिभिः यनः ।

रसत बभूवत्तमैरमं मन्त्री कानिमिश्रितानिचरम् ॥ — अनु० ८१११

३ मुनिविपरीत बभूवत्त दीपनं तन्त्री निमीचत्तमवशमादिभिः । — अनु०

४ Kāśī and Māyā by K. V. Ram Chandra

Journal of U P Historical Society Vol XXI Pts 1 2 (194



बीजा सदा मोह में रहकर बजाई जाती थी ऐसा कई स्थानों पर संकेत मिलता है<sup>१</sup>। स्वयं कवि बीजा बजाना जानता होना सम्भव है मनुष्य की मृत्त शरीर की बज न उसी प्रकार अपनी मोह में रह किया जैसे बीजा मिलाने के लिए मोह में रह सी जायो है यह उपमा उसे कभी न भूलती। इसी प्रकार बीजा के तारों के भीष जाने से उसकी ध्वनि में शोष उत्पन्न हो जाता है यह वह जानता होना इसीलिए 'यत्न-पत्नी अपने माँमुँजों से भीसे बीजा के तारो दो पोंछ केती थी ऐसा उसन कहा है<sup>२</sup>।

सुपिर अर्थात् रत्नसुक्त बाण—इन बाणा में ध्वज मृग तथा बंदी के समस्त प्रकार आते हैं। कवि ने सुपिरबाणों में बेबु<sup>३</sup> कीचक<sup>४</sup> गज<sup>५</sup>

१ उत्तंगे वा मस्मिन्मने सौम्य निखिप्य बीजाम् । —उत्तरमेघ २६

—बैजुना दशनगीष्टावरा बीजया मक्षपदाक्षितोरव ।

शिर्यकाञ्च उभयेन बेजितास्तं विशिष्टानयना व्यकोभयम् ॥—रघु १६।१५

देखिए पिछले पृ को पाश्चात्त्यी नं १ —रघु ८।४१

—संक्षमं कपरिबलनीयते तस्य निम्नरुद्धम्यतामुने ।

वस्तुकी च हृदयगतमना बन्धुभावनि च बामलोचना ॥—रघु १६।१६

२ तंभीमार्त्ता मयलसत्किर्तिं शारयित्वा कचधिन्

मुनो मृग स्ववमपि कृतां मूच्छता बिस्मरन्ती । —उत्तरमेघ २६

३ बैजुना दशनगीष्टावरा बीजया मक्षपदाक्षितोरव । —रघु १६।१५

४ मकीचकर्मस्वपूगरन्ती कुजिह्वितापाशितवशाङ्कयम् ।

मुषाश्च कुंजेषु मध स्वमुष्णवेद्यगोपधानं वनदेवताभिः ॥ —रघु २।१२

—य पूरयन् कीचकरन्ध्रमायाभरीमुल्लोभ्येन सवीरयेन ।

उद्यमस्तथाभिज्जति किमराणां तानप्रवापित्वपिबोदयन्मुम् ॥

—कुमार १।८

—राज्यायन्ते मयुरमनिलं कीचका पूर्वमाणा... —पूर्वमेघ ६०

५ पुरोपकंठीयवनाधयाणां कम्पापिनामुदतनुग्रहेती ।

प्रप्राप्तर्षं परितो विनस्तास्तुयस्वने मूच्छति मयकावे ॥ —रघु १।६

—ततः शिवापातस्यैवरोठे निवेद्य दम्पो बलवत् कुमार. —रघु ७।६१

“यस्वनाभिज्जता निवृत्तास्तं तानराघु ददृशु स्वयोवा ।

तूने' को सिखा है। इनका संकेत ही उसके प्रत्यक्ष में विषय में विस्तारपूर्वक बहान आगे सिखा जायगा।

संयुक्त मानसिक बाध है। निवादादि मानसिक अवयव  
इसका उपयोग किया जाता था। तुरंत भी मानसिक बाध है।  
इसे मजबूती में मानते हैं<sup>२</sup> पर जिन के धर्मों में इसका  
सुदूर के समय इसका प्रयोग किया जाता था।

एओलियन फ्लूट (Aeolian Flute) — एओलियन  
 मो. है. की. रामचन्द्र एओलियन पट्ट की कल्पना करते हैं।  
 पवन के प्रवाह से आन ही बजने लगती है, ऐसा समझा दिखाना है।

५. पुरयन् कोषद्वयप्रधानाभरतमुपगत्येन ममीरणेन,  
उद्गाम्यतामिच्छति विभ्रताया तानप्रदायिष्यतिपामनु ॥

दीनार के मतानुसार हमारे दो बच्चे हो सकते हैं या छह बच्चे। बच्चा छह मास का गुप्त संनिधित या बच्चा छह मास के भीतर के है। यदि संनिधित हमारा बच्चा छेदे हुए रहते हैं कि यह संनिधित के अनुसार इतर-इतर जानादि छेदे है और यह बच्चा के बच्चा से बच्चा होता है। इसकी वृत्ति के अनुसार बच्चा से बच्चा है—

म कीर्त्तमास्तुपुत्ररश्मौ कृत्स्नस्यगान्तिरुपपत्त्यम् ।

सुश्राव कुंभेणु यथा स्वमुष्णैर्दुग्धोपमानं क्षयरेचनाभिः ॥ —२५०

१. सुगन्धवा मन्त्रस्तुतिस्तथा प्रमोन्वृत्ति नक्षत्राणिनाम् ।  
 न केवलं सपत्नि मातृपीतामै नपि व्यग्र मन्त्र निबोद्धावपि ॥-२५०  
 इति ए निष्ठे पृ० श्री वारुणिकी अ० ५ - २५०/११५

—इमांमेन सपति सविहृष्टी मन्त्रसन्निपात्रिपावनपः ।

प्राप्ताद्व्यापकस्य बोधिः प्रसाधमस्य च ननु ॥ - २५०

—गुह्यप्रमाणानां तृतीयां सग्यं पुनिन ।

आरम्भ प्रथम चतुर्वेदग्रन्थयो विधि ॥ — १४० ॥ १०१

—सिद्धयुक्तनिर्वाहसूत्रान्तर्गतो विन्यासः

ज्योतिष-संज्ञा-सूत्र-संग्रह-संस्कृत-भाषा-—पृष्ठ-१५८०

—नमोऽस्मादिज्जमपरणी- वाटमानं नम्यन्तु

निम्नरूपं कृत्वा विविधकारं भवति कथं ॥ — निम्न ४१३३

२ 'इतिहास' इन कार्यालय पृ० २२७

जब दिस्मिय बग में प्रविष्ट हुए तब उन्होंने बमदेवताओं को उच्च स्तर से अपना यद्य पाले हुए तथा एम्बालिमम फ्लूट ( कीचक ) को उनके संगीत का अनुकरण करते हुए सुना ।

यही यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि उत्पीयमान या उद्वाह्यमान का अर्थ बड़ी मात्रा में ग्राम में गाया है, जिसका देवतागण ही प्रयोग करते थे जबकि जिसका देवतागण के स्निग्ध, वंशक उपयोग करते थे ।

एतन्नायन्ते मधुरमनिसः कीचका पृथमाणा  
स्रक्तामिम्बिपुरविषयो यीयते किम्परीभिः ।  
निर्ह्रावस्ते मुरज इव चोत्कर्षीषु ध्वनि स्यात्  
संगीतायै ननु पशुपतेस्तत्र सावी समञ्जः ॥—पुत्रमेघ ९

इन सभी श्लोकों में कीचक वंशों की तरह हो विषय ध्वनि करते हैं यह कवि द्वारा प्रदर्शित किया गया है । अन्तर यही है बसो मनुष्य द्वारा बजाई जाती है और कीचक वाद्य द्वारा स्वतः ध्वनि उत्पन्न करते हैं । अपेक्षा इसमें कि यह कहा जाय कि वायु बीसों में प्रविष्ट होकर सुन्दर ध्वनि उत्पन्न करती है, यह अधिक अच्छा है कि इसको एम्बालिमम फ्लूट की उच्चा दी जाय । डाक्टर कन्स्ट के मतानुसार यह एक विशेष प्रकार की छम्बाई का बीस है जिसे एक ऊँच पेड़ पर रख दिया जाता है । इसकी पीठों पर छत्र कर दिए जाते हैं । हवा के चलने पर इनसे ऐसी सुन्दर और तेज ध्वनि उत्पन्न होती है कि वह बहुत दूर से भी सुनी जा सकती है । भारद्वाजी गतावली की कविता अनुन-विवाह में इसका प्रयोग है । जाया म आत्र भी यह एम्बालिमम फ्लूट है और इसका नाम सुन्दरों है ।

यद्द्वारा उत्पन्न की दीपवती जब जो जाने के पश्चात् बीसों के जलमृत् में पड़ी थी तब उग एम्बालिमम हाथ और बीसों ने मिलकर ऐसा सुन्दर संगीत उत्पन्न किया था कि उसे सुनकर उत्काल ही रात्रा में उने प्रसन्न कर लिया । उनको यह बीना वाद्य ही बज रही थी और बीसों से ध्वनि जाय ही निकल रही थी । कारण वेबल वायु का चलना था ? ।

अथनद्वाद्य—इसमें चर्मबद्ध वाद्य जाते हैं । कवि ने इस वर्ग के

अथगत मुरज १ पुच्छर २ मूर्धन ३ दुग्धुभि ४ पट्ट ५ मरस ६

१ दद्यापत्नी मयुरमनिर्घी कीचका पूयमाणा  
ममकताभिन्निपुरविमयो गीयते किनरीनि ।  
मिहिरितो मुरज इव चार्धदशपु द्यनि स्यात्  
नयोताको ननु पणुपतेमत्र भावो ममस ॥ —दुर्धमप  
—येयविलम्बितमपि रत्नरमणि मा मुञ्चवाधरामोऽयम् ।  
अथतरु मिहिरिष्य द्यनि स्वमनोरमस्येव ॥  
—शिवरामकृतमेवाना वाग्रम्ये यत्र वरमनाम् ।  
अनुपजितमरिगा वरणीमुरजमपना ॥ —कुमार०

—विद्यत्तमं कल्पितानिता सेन्द्रचार्य सचिवा  
संकीर्ताय प्रहृतमुरजा रिमप्य दम्भीरभोगम् । —उत्तरमेप  
—यस्यां यथा गितमपिमयाग्येय ह्यम्यस्थानि  
२ योतिःछायाद्युमर्यविताग्युत्तमस्तोसहाया ।

३ भावेनन्ते मयु र्यित्तमं कल्पवृक्षप्रभृतं ।  
त्वद्दमोरप्यनिग एनर्द पुच्छरेष्वाहनप ॥ —उत्तरमेप ५  
—म स्यस्य प्रहृतपुच्छर वती भोक्तृमास्त्यवलयो हरम्भन ।  
नतकोर्यमिनवातिर्षिपमो वासवविग पुच्छमग्नयम् ॥ —रत्न०  
—वीमूतस्तनितविर्षिर्षिमयवीर्यपीरैरनुत्तितम्ब पुच्छरम् ॥  
निर्गतिर्युगलितमध्यमरवगात्पा मारुपी मययनि भाजना मनामि ॥  
—मात

४ नप्य मय्यवनि—माव० अं० १ व २७६  
—नस्यानमस्तित्तमोपमात्र प्रमत्तमगोत्रमगपाय । —रत्न० ११।८०  
—आरक्षमिर्ष मय्यमराष्ट्राष्टम दंगपीरयानिमन्त्रवच्छत् ।  
बम्येरितानी मयिपेस्तदम शृगाहतं क्रोशति कीर्षिबानाम् ॥  
—रत्न० १५।१

—धावग मय्यवनि रक्षमाणा मोतानर्ग वारिपुण्यवायम् । —रत्न० १५।१५  
—वाकिनीनरवरस्य वामिनस्तस्य व मयु मय्यवनि ॥ —रत्न० १५।१५  
५ पुत्रजमय्यवनि तूराणि तस्य पुत्रिण  
आरम्भं प्रपद्य चरुद्विदुग्धुमया दिवि ॥ —रत्न० १०।३६  
६ उरगि म यत्रवयवना ३ पण्डित्यनिभिन्नीतनिद्र । —रत्न० १।३१  
मगोरगमोपमगु वरम्यदिल्लमाहो—निन्त्रमन्त्र । —सातु० १।१  
—वगाहवायवनि रत्नमरणा मुरेणार्ध द्यनतद्विदुग्धुम् । —रत्न० १।१५

मुरख पुष्कर एवं मूर्खम में क्या मेव है, इसका संकेत कवि के शब्दों में नहीं है। मात्स्यिकान्निमिष के प्रथम अंक में नेपथ्ये मूर्खमध्वनि इसके बाद है—  
 पुष्करस्य मायूरी भवयति माजना मनासि” (स्कंध २१) इस पर उपा  
 कहता है, ‘दैवमिहान्निमिषमपि स्वरयति मां भुज्ज्वाद्यप्योऽग्रम् । अतः स्पष्ट  
 ही या तो कवि के समय तक आठे-आठे मेव कल्प हो गया या मा मेव इतना  
 मूर्खम या कि कवि उससे अवगत न था।

पुष्कर का वर्ण बान्, अरु मेव और वात्त विशेष है। प्रारम्भिक पुष्कर  
 सब मां (Pit Deltas) होते थे। कवि ने ‘मार्जना’ शब्द का प्रयोग  
 (मात्स्यिकान्निमिष प्रथम अंक स्कंध २१ में) किया है, जिससे उसे पृथक्-  
 पृथक् ग्राम में मिलाने का आशय है। एक टीकाकार के अनुसार ‘मायूरी’  
 को मयूरों को बादल की ध्वनि के समुच्च कभी कभी का बायाँ भाग ‘स’ से  
 बामाँ न से और ऊपर का म से मिलता था। मुख्य स्वर ‘म’ वा जो  
 मात्स्यिका के प्रेम-श्रवण के निष्कृष्ट अनुकूल था। इसीलिए ‘मध्यमस्वरोत्पा  
 मायूरी’ शब्दों का प्रयोग कवि ने किया है। तीन स्वरों से यह मिलता जाता  
 है। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि इसके तीन मुख होते थे। इन पर  
 बान्, अरु और मेव का प्रभाव पड़ता था। कवि को इसकी आभास मेव से  
 बहुत निकली हुई लगती थी”।

संकेत में ‘जल’ का भी विशेष महत्व है। अस्तव्य में अरु की क्या  
 महत्ता है यह संगीतकोशियों से लिया नहीं है। काव्यशास्त्र ने जिस प्रकार  
 पुष्कर पर अरु और मेव का प्रभाव दिखाया है उसी प्रकार रघुवंश के १५ वें  
 अंश में प्रमदाओं का जल-विज्ञा करते समय हाथों के ध्वजों से मूर्खम की-सी  
 ध्वनि करना दिखाया है।

वीरस्वतीवर्हिमरुक्माले प्रमिष्येदेरनिर्गमामान् ।

वीरपु संमुखमिति रक्तमाता पीतामृगं वारिपर्वगवाधम् ॥ —रघु ११/५४

इसके विषय में बाल्मीकि कुम्हार का कहना है कि जल में जबका अरु के ऊपर हाथों  
 को धकेल दिया पड़े डंग हैं विभिन्न प्रकार द्वारा समयकल प्रहार करना ‘चित्रकन’  
 कहलाता है। मूर्खवाध के बजाने का एक विशेष डंग भी चित्रकन कहलाया। इस  
 प्रकार अरु को वर्ण का एक प्रकार ही चित्रकन कहलाने लगा”।

पुष्कर शर का जब एक विशय पड़ी थी है ।  
 द्विकपी के ध्वनि के मधुर शरी है । त्रिकपी की  
 मन्त्रमय शरीर विशय गया है । पयिक प्रायः हनीं को ध्वनि  
 की करपनी की त्रिकपी को आवाज गमन बैठने प ।  
 मुरा को ध्वनि के सामने शान के वारण शीतदाय में हनीं  
 म्रिया के मुरा में शान बना बना वा । वाजपयी ध्वनि  
 की त्रिकपी उल्लेख वास्तविक के आधार पर वास्तविक न  
 की ध्वनिों का एक उल्लेख मिलता है त्रिकमें उल्लेखित शान  
 कन्द और त्रिकपी को ध्वनि मुक्त है । कानिनाम ने पचाप्पर  
 म इन विनिमय शान का समारम्भ ध्वनि किया है जो शान मुरंग  
 म्रियाओं का मुरंगित करती थे वरन् त्रिक उद्यम का  
 पाठा वा । वे माना अनन्तपथवीप से प्रवाहित होती प ।

धनवाशः—इन्द्र अन्वय केवळ ध्वनि का नाम वास्तविक के  
 मिलता है ।

### मृत्प, संगल अधशा नृत्पकला

मृत्पकला में मृत्प के तीन भेद होते माने हैं—मृत्प ( वाग्म्य ) मृत्प (   
 और वाग्म्य । मृत्प में मात्र नहीं होती मृत्प में मात्र होने है । मृत्प में ,

The chelon has also given its name to a certain way of d  
 playing than the chelon afterwards became the name  
 one of the drum form themselves

—Kedra & Mac by K V Ram Chandra Journal

U P Historical Society Vol XXII Pt 1 & ( 1949

१ तन्मन्त्रेर्वातिनी वाग्म्ये पंचायता नाम विवाहसिद्धिः ।

आमन्त्रि पञ्चकन विद्वांस्येवात्मनःपयिबन्धुः ॥ —रघु० ११।३८

—गुरा म वन्धुगुरात्मनःपयिबन्धुः ॥ पञ्चमन्त्रेर्वातिनी ।

मन्त्रिधोक्त विमानेन पंचायता पौरुषकर्मणः ॥ —रघु० ११।३८

—मन्त्रिधोक्त विमानेन पंचायता पौरुषकर्मणः ॥

विद्वांस्येवात्मनःपयिबन्धुः ॥

—रघु० ११।३८

२ रघो रघोऽन्वयिना विरते विमानेऽन्वयिना ॥

मन्त्रिधोक्त विमानेन पंचायता पौरुषकर्मणः ॥ —रघु० ११।३८

भोज है, कठोरता है, नृत्य में सुकुमारता और स्त्रीत्व । माटय में भाव रस और व्यभिचार का समन्वय है ।

स्वयं कवि ने नृत्य और नृत्य दोनों का उपयोग किया है और दोनों को स्पष्ट भी किया है कि महादेवजी ने किस प्रकार उमा से विवाह कर अपने शरीर में माटय के तापस्व और अस्थि को भाग कर लिए हैं<sup>१</sup> । अतः वे नृत्य के दो भेद तापस्व और अस्थि स्वीकार अवश्य करते हैं ।

यद्यपि नृत्य और नृत्य दोनों का कवि ने उपयोग किया परन्तु ऐसा सामान्य सिद्ध होता है कि अस्तुत् उम्होने नृत्य और नृत्य का भेद नहीं माना है । मयूर के नृत्य के लिए नृत्य और नृत्य दोनों दोनों का प्रयोग किया गया है<sup>२</sup> । इसी प्रकार माकविका के नृत्य में भाव के साथ-साथ रस का भी उल्लेख है, पर आपने उसे 'नृत्य' कहा है<sup>३</sup> ।

यदि एक ओर वे भी महादेव जी के तापस्व नृत्य का बर्णन करते हैं<sup>४</sup> तो दूसरी ओर वे वारवोपितों के नृत्य का विषय उल्लेख करते हैं<sup>५</sup> । यह सर्वस्व

१ देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं कर्तुं चाक्षुषं  
स्तेनेरमुमाकृतम्यतिकरे स्वामे विप्रवर्तं शिवा ।  
त्रैमुष्मोद्भूतमत्र लोकचरितं नानारतं वृष्यते  
मष्टयं भिन्नरुचेरमस्य बहुभाष्येकं समाराधकम् ॥ —मास० ११४

२ पुरोपकंठेयवलाभवाणी कक्षापिनामुद्धतनृत्यहेली ।  
प्रध्मातसंघे परितो दिग्गतास्तुयस्वने मूच्छति मयसार्धे ॥ —रघु ११९  
—उद्गमिष्ठवर्मकवका मृग्य पग्विष्यकृतगतता मयूरा । —अभि ४११२

३ बार्म सन्निवृत्तिवितवकर्म न्यस्य हस्तं त्रितम्बे  
कृत्वा स्वामाविपमपुशं सस्तमुद्धतं त्रितीयम् ।  
पादापुष्टास्तुच्छिद्रुगुमे कृष्टिमे पातितार्धं  
मुत्तारम्या निवृत्तमवितरं काशमुग्धापताबम् ॥ —मास २१९

पुनश्चमोत्सव पर भी नृत्य किया करती थीं और वैसे  
के लिए थीं ।

नृत्य के प्रकार—ऐसा प्रतीत होता है कि कवि के  
का बड़ा चतन था । स्त्रियाँ हाथ में चामर लेकर तरह-तरह  
हाथ नृत्य करती थीं । इसी प्रकार बाहुओं को छायाओं की  
कर नृत्य करमा भी नृत्य का विशेष प्रकार है इसमें  
रहता था । नृत्य का एक प्रकार 'छलिक' भी है, जिसे  
नृत्य के साथ संगीत का भी सम्बन्ध रहता था ।  
हाथ मात्र गीत रम सब ही थे । इसी प्रकार रघुवंश में उन्होंने

१ गुणप्रवा मन्मत्तुयनिस्वमा प्रमो-नुर्यं सह वारयोगिताम् ....

२ स स्वयं प्रहृतपुष्करः कृतलोत्तमास्यवलयो हरमन ।  
नतकोरभिगवात्रिसंघिनी पाववर्तिषु मुखमन्त्रयन् ॥

—चादनायत्रियमे व तन्मुरं स्ने-भिगवतिर्लङ् परिधमात् ।  
प्रमदता-मानिल विबल्लस्यग्रीवमराकटेश्वरो ॥—रघु०

—मन्मत्तवचनामयं मित्र स्त्रीषु नृत्यमुत्पाद्य दद्यात् ।  
न प्रयोजयिष्ये प्रयोजयिष्ये संजपय सद् मित्रमनिषी ॥—रघु०

३ पारुष्यामै कश्चित्तरचनास्तवलोत्तमावपुर्न  
रन्मच्छापावचित्तवलिभि-चामरै कलास्तद्वन्ता ।  
बे-पारत्वतो मगप-मुगाग्राप्यकथाविनि

मामो-दस्ये त्वयि यमुकरमणिशोभाकिटागम् ॥—पूवमेव ११  
धुतिमुगप्रमरस्वमगीतय कुमुमकोमल-स्तरको वपु ।

४ उरवनास्तलजा वचनाहृतं विमर्दय सत्तरीति पाविमि ॥—रघु० ५  
—मुकन्तिप्रविष्टिप्रकारं नृत्यति वन्मन्त्र ।—चित्रम० ४११२

—उर्वारिकावनाग्नवत्सो-नैर्द्वन्द्ववाहु मेपावैरनृत्यति सप्तभिन्नव्यनिधिनाप-  
—चित्रम०

—मगैरन्तनिगिन्वचन धुचित् मन्मथय  
पारुष्यामो लयमनुगमस्तन्मन्त्रय रमेतु ।  
सागावोनिर्मुदुर्भिमन्मन्त्रि-पानुपुत्तो

पारा भारं नृत्यति विरपाटागवन् न तव ॥—मान० २१८  
हेति, पा-गिन्मो म० ४—मान० २१८



गीत प्रदर्शित किया है<sup>१</sup>। मूल्य सिद्धांतों के माध्यमात् कहलाते थे<sup>२</sup>। 'सासक शब्द का प्रयोग भी कवि ने मूल्य-विशेषक के लिए किया है<sup>३</sup>।

मूल्य और अभिनय—बैसा पहले कहा जा चुका है कि मूल्य का तीसरा प्रकार माध्यम है जिससे मूल्य और मूल्य दोनों का समन्वय है या दूसरे शब्दों में भाव रस और अभिनय तीनों का समन्वय माध्यम या। अभिनय के द्वारा चित्त वृत्ति का साधारणीकरण मातृशिक्षा के मूल्य की विशेषता थी<sup>४</sup>। मातृशिक्षा ने अभिनय के द्वारा अपने हृदय के अनुराग को व्यक्त किया था। अभिनय के तबों को कवि मूल्य के साथ ही लेता है। वागिक वाचिक आदि अभिनय का मूल्य से बना सम्बन्ध है यह रसबोध में कवि ने सभी प्रकार व्यक्त किया है<sup>५</sup>। मातृशिक्षा के—

अनभिमतमनुरक्तं विद्धि नायेति येने बचनमभिनयनया स्वागतिर्द्वैतपूर्वम् ।

प्रथममतिमनुष्टुभा भारिणीसन्निकर्पाद्भूमिः शुक्रमारप्राप्तनाभ्यान्मुक्त ॥

श्लोक में 'बचनमभिनयनया' से वाचिक अभिनय स्वागतिर्द्वैत म वाचिक तथा व्यक्त प्रथम सात्विक अभिनय में आता है। भक्तिमात्र 'सर्व अन्तःकरण' कहकर स्पष्ट करते हैं<sup>६</sup>। मातृशिक्षा के पंचांगमभिनय से गीत वाद्य और मूल्य ये हो तीन वागिक सात्विक तथा वाचिक अभिनय से कवि का आशय होगा। मातृशिक्षा का छलिक मूल्य भी इसी की पुष्टि करता है।

निस्सन्देह कवि संगीतज्ञ या। संगीत-सम्बन्धी छोटी-छोटी बातों को प्रदर्शित करना इसकी पुष्टि करता है। वेसुरे स्वर की ताड़न समान कहना<sup>७</sup> रस के पूर्व

१ देखिए पिछले पृष्ठ की पादटिप्पणी नं० ४—रघु० २१३५

२ सम्पूर्ण मातृशिक्षाभिनिम में मूल्य-विशेषक के लिए माध्यमात् शब्द आया है।

३ नवमलकचर्ममाच्छेपतामादवागं शुक्रमारप्राप्तनाभ्यान्मुक्तं ।  
अनितरभिरागन्धं केवकीनां रज्ज्विनि परिहरति नमस्त्वान्द्रोपिषाणां मर्तामि ॥

—अनु० २१२०

४ अनभिमतमनुरक्तं विद्धि नायेति येने बचनमभिनयनया स्वागतिर्द्वैतपूर्वम् ।  
प्रथममतिमनुष्टुभा भारिणीसन्निकर्पाद्भूमिः शुक्रमारप्राप्तनाभ्यान्मुक्त ॥

—मातृ २१५

५. अथमत्त्वबचनभावं मित्र रचीपु मूल्यमुपचाय वक्ष्यम् ।

वर्ग परिचय<sup>१</sup> स्वराकार<sup>२</sup> तत्परात् गीत गाना<sup>३</sup> संगीत के साथ ही ताल के लिए मुरज पुष्कर बजवा मूर्ख का होना पीछे अनुकरण करना<sup>४</sup> उसके संगीत-गम्भीरता का जोर से सागपूर या चारंगी बाने के साथ-साथ बजती रहती पद्यालय ताल के लिए प्रयुक्त होता है।

कवि ने सचच संगीत का कामगुन के रूप में लिया है<sup>५</sup>। राज-रत्न संगीत में डूबा रहता था। वह कामी राजा बननों में निर-रात पड़ा रहता था जिसमें बराबर मूर्ख बजते प्रतिदिन ऐसे एक-दो-एक बड़कर उत्सव होते थे कि उनके जाने उत्सव पीछा पड़ जाता था<sup>६</sup>। इन्दुमती ने ब्रज से ही ली ली ली<sup>७</sup>। अतः राजमदन में संगीत प्रतिदिन होता था। नामी राजा मयात में इतना रवि रखने लगा था कि वह रानो की हो गया था<sup>८</sup>। अन्तर्गत को निर्गमिक बनाना<sup>९</sup> इसकी पुष्टि

१. जान तबमबती हंसपरिचा बजपरिचय कपोतीति । —अभि० अंक २

२. उरमान कराव अनुपदवस्तु पायति । —माक० अंक २

४. पीछे बताया जा चुका है। दैगिष्ट बाव रज—मूर्ख बोधक

५. मूर्खगोत्र मदनस्य दीनं मुनी निगोबेनुमबन्धि कामिन ।  
—म बालगीवाचकीगीतमिसरनेविबोध्यते मुण्ड इवाय मन्मथ ।

—अंमवजपरिचयमोचिने तस्य निम्नुरदगुपतामुने ।

बालगी व हृदयमस्वना बालुवागति व बामनोचना ॥ —रघु० १

—बमुना दजगीद्विपद्यत बीगना बगराशितोरव ।  
निम्नवाय उमयेन बेरिउमन् विरिजमपना व्यतामयन् ॥

—अंमवजपरिचयमोचिने तस्य निम्नुरदगुपतामुने ।

१. बामोमीमदुवरस्य कामिनस्यस्य बममु मयवनाम्नि ।  
मृद्विमन्मपिद्विपद्यत पूबमुपबमपोरुपुपुपु ॥ —रघु० १८५

७. मूर्खी सचिच सती मिथः निगिध्या ललिते बलाविपी । —रघु १८

८. परि राजहारेपीपयगाननिपुपतायुपुपुपु तउ लोभनं यवन् ।  
—माक० अंक १ पृ० २३

९. अमवज तिल मय व अनुपदवस्तुपोरिवागति अमवजनिर्म मां व  
घान्न प्रपीये व विमदनु । दैव तव ली दिव्यत प्रमिद ॥

—माक० अंक १ पृ० २०१

संगीतज्ञ था। अधिपति भी नृत्य का आचार्य था और वह नर्तकिया की संदीप्त सम्मन्धी अनुष्ठितों को ठीक कर देता था। बिनस उनके सिखाए लयित हो जाते हैं<sup>१</sup>।

संदीप्त और नृत्य का इतना अधिक प्रचार था कि संगीतध्वनि से नगर सदा प्रतिध्वनि रहते थे। अकलापुरी मुरम के सदृश वाद्य-यंत्रों से सदा गूँबती रहती थी<sup>२</sup>। नृत्यकला की शिक्षा बारगोठियाओं के अतिरिक्त कुड्येन कम्पाएँ भी देती थी। मातृशिक्षा और रानी द्वारा की दोनों नृत्यकला में बख़्शी थी। 'संदीप्त-शाला'<sup>३</sup> संगीत के प्रति लोगों की भावना का प्रमाण है। संदीप्तशाला की तरह मातृशिक्षा भी थी वहाँ नृत्य आदि दिया जाता था। मातृशिक्षा का नृत्य ऐसी ही मातृशाला में हुआ था।

### चित्रकला

चित्रकला का आचार कपड़ा कामज सफ़ाई आदि कोई भी वस्तु हो सकती है, जिसपर चित्रकार तृप्तिका अथवा सेलनी से मिल-मिलन प्रकार की वस्तुओं और जीवधारियों की आकृति अंकित कर सके। अपनी तृप्तिका अपना बनाकर द्वारा समस्त चरित्र पर स्फूर्तता स्पष्टता पूरी निकटता प्रदर्शित करता ही उसको प्रतिभा एवं कलानैपुण्य है। चित्रकार अपनी चित्रकला के द्वारा मानसिक चित्र का ब्रह्म करता है। किसी कला वस्तु अपना व्यक्ति को चित्रित करने के लिए उसके बाह्य अंशों के साथ समीक्षा करना भी उनके लिए बांछनीय है। अतः मानसिक भावों की समीक्षा चित्र ही उसकी सफलता का मानदण्ड है।

काव्यकला की तरह चित्रकला भी आन्तरिक अभिव्यक्ति का सुन्दर माध्यम है। काव्यकला को मिलने काव्य मात्र ही संगीत प्रिय है। यही ही चित्रकला। उस समय के समाज में भा इय कला के प्रति कितनी रूचि और सम्मान मान

१. स. स्वर्ण ग्रन्थपुष्कर. 'कृती कोस्यमात्मबल्यो हरमन' ।

नगरीरमिगमसिलमिनी. 'पाम्पवर्तिपु मुदयलज्जवत् ॥' —रघु० ११।१४

२. विद्युत्कला अमिषवनिता. 'सैत्राचार्य सविना

या यह कवि के श्रमों से स्वतः निरूपित हो जाता है। नि. ५।  
चित्रकला<sup>१</sup> दोनों हाथ धनता की अभिरुचि तथा चित्रप्रियता ।  
करते हैं। इसी चित्रकला की तरह मयभूति ने उत्तररामचरित  
में कीमती शब्द का प्रयोग किया है, जहाँ दीवारों पर  
किए गए थे।

कवि ने चित्र<sup>२</sup> तथा प्रतिरुचि<sup>३</sup> दो शब्दों का चित्रकला के  
किया है। जिस पर एकदर चित्र लीला जाता था वह चित्रकला<sup>४</sup>  
था। यह एक छक्की का चौकोर तबला था।

'चित्रलेखा' और 'चित्ररंग' शब्दों से व्यक्त होता है कि पहले  
कपड़े का रंग बदल रंग भरे जाते थे। रंगों के सिद्ध गीले रंगों का  
या (Water Colour) क्योंकि अब राजा चित्रकला में प्रसिद्ध हुआ  
चित्र प्रत्यक्षदर्शमुक्त गीले थे। वे चित्र सुगन्ध के सिद्ध लटकने लगे  
जो या तो वे कला पर बनाए जाते हुये या कागज पर।

१ चित्रकला गता देवो यथा प्रत्यक्षचित्राणां निरुचिः । —भाष० पृ० २६४

२ लघोपकाशार्चिर्मिथिवार्चनान्तरा सद्यमु चित्ररन्तु । —अनु० १४१

३ भासादिप्रयामुपपत्तामपश्यन् वृष चित्राणितां गुमरिमा बहुमन्त्रमान ।

—अभि०

—द्वयं चित्रमत्रा भट्टिनी । —अभि० पृ० ११९

—न जगो देव्या वाचगनविषय दृष्टः । —भाष० अं० १ पृ० २६३

—नन्वेव चित्रगती भला । —भाष० अं० ४ पृ० ३२५

४ त्वे मे प्रतिरुचि निरुचिः । —भाष० अं० ८ पृ० ३२०

—तत्र न चित्रकलायता स्वास्त्यिनिगता लभमस्या गङ्गादेवताया  
भावयति । —अभि० पृ० १०८

—अथवा लभमपराजयस्या प्रतिरुचिचित्ररन्तु भाषितारण्योदयप्रित्तु  
—विश्व पृ० १।

५. देवता चारित्र्यदी मे ४ —अभि० पृ० १ /

—तत्र मे चित्रकलायता चित्ररन्तुभासागपार ४ । —अभि० पृ० १-

—भाष मातुल अतमावन्त चित्ररन्तुय । —अभि० पृ० ११५

देवता, चारित्र्यदी मे ४ —विश्व० पृ० १०८ अथवा लभमपरा

६. देवता चारित्र्यदी मे १ —भाष० पृ० २६४ चित्रकलायता

ठिकक मंत्रों ( पृ० ७१ १७६ ) में सबसे प्रथम मित्तिचित्र छन्द आया है। कवि काश्मिर न भी मित्तिचित्रों का प्रसंग दिया है। वर की सीधों को तरह-तरह के चित्रों से अलंकृत दिखाया है। सप्तम चित्रवस्तु<sup>१</sup> 'सचिवा-प्रासादा'<sup>२</sup> में वहाँ सुन्दर चित्रों की ऐच्छित्ता से मुक्त सीधों के प्रतीक प्रासाद में से के सम्मुख जूम जाते हैं वहाँ द्वार पर स्थित छंद पद्य आदि के चित्र<sup>३</sup> कलाप्रियता और सीधों दोनों की अभिव्यक्ति करते हैं।

एक प्रसंग मेघदूत में भी चित्रों का आवा है, कि मेघ वायु के छोंकों के साथ वहाँ के घरों के छतरी छप्पों में घुसकर चित्रों की अपने बल-बलों से चित्रों को नम कर देते हैं<sup>४</sup>। इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि ये मित्तिचित्र ये वा वृक्ष। व्यक्ति इतने कलाप्रिय थे कि वर के तोरख पर इन्द्रजगुप कमल छंद आदि के चित्र बनाते थे<sup>५</sup>। ऐसे मित्तिचित्र भी थे जिनमें केचित्कालों के चित्रण थे जिनमें हाथी कमल के ताल में उतरते दिखाए गए थे और इतिवृत्त उन्हें छंद से कमल की छंदल छोड़कर दे रही थी<sup>६</sup>। जगन्ना के चित्रों की तरह

१ समोववाप्रार्थितमित्रिवार्थनासेदुपो सप्तम चित्रवस्तु।

प्राप्तादि दुःखान्मपि दृष्टकेषु चित्रितवमानानि मुखाप्यमूवन् ॥

—रघु० १४१२

२ विद्युत्तन्त्रं अलितवनिता सेनबापं सचिवा-

संवीतस्य प्रहृतमुरजा स्निग्धगंभीरबोपम्।

अन्तस्तोमं मणिमयमुवस्तुपमप्रतिष्ठाया-

प्रासादास्त्वा तुल्यवितुमर्लं यत्र तैस्तैविद्येने । —उत्तरमेघ १

३ एभि सद्य ह्यपनिहितैश्चक्षुर्नैकअमेवा

दारोपन्ते विवितवपुषी संक्षपद्मी च दृष्ट्वा । —उत्तरमेघ २०

४ मेना नीता सप्तममतिता पतिपानाप्रभूमि

रासेक्याना नवजलकनैर्दोषमुत्पाद्य सद्य ।

संक्षतपुष्टा इव कलमुचरत्वावृष्टा जासमार्गे

च मोदगारानुभूतिनिपुणा जगता निपतमि ॥ —उत्तरमेघ ८

कामिधाम ने भी जिला पर मीरक आदि धातुमा स यसापत्नी का चित्र बनाना कहा है<sup>१</sup> ।

चित्रकला के उपयोग—चूँकि पीले एवं सूर्ये धाना प्रकार के चित्रा<sup>२</sup> हैं इसलिए तूतिका<sup>३</sup> तथा बतिका<sup>४</sup> ( Blue & Colour Pencils ) कबि ने कहा किन्ही इसी विभिन्नता का रिसाने के लिए प्रयुक्त किए हैं । यह भी इसी प्रकार की बतिका का कोई प्रकार प्रतीत होती है, जिससे स्फुरेगा बनाई जाती थी । कुछ तूतिका की तरह ही बघ था । यी<sup>५</sup> तूतिका की मोघरी नोक बायी बल्लम रहते हैं और कुछ की बघ ।<sup>६</sup> से दो बानें प्रतीत होती है प्रथम यह कि कुछ के दो प्रकार से लम्बे और दूसरे कुछ मात्रात्म के बघ की तरह वाला की कोई वस्तु यी जिसमें रंग जाता था । जिस बल्लम में चित्रकला के लिए आरम्भिक वस्तुओं सङ्गोत् ७ वत् 'वर्तिकावरण' <sup>७</sup> कहलाता था ।

चित्र की कपरगा बनाने के लिए कानो वैश्विक प्रयुक्त होती धातुराम की चित्र की कपरगा के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं<sup>८</sup> । मिति अनुसार धातुराम में अधिक तथा अन्य धातु हैं<sup>९</sup> । चित्रकार पहले चित्र

- १ कामाक्षिचर प्रथमकुपिता धातुरामे विभाषा  
मात्मान से कपरवर्तित वास्तविकतामि वत्तम् ।  
अपेक्षावत्तमदुर्गतिनिवृत्तिप्राप्त्यते मे  
प्रवृत्तमिच्छति न मत्त मयम मी वत्तन्त ॥ —उत्तरमेव ४७
- २ उद्योपित्तं तूतिकाय चित्रं मूर्तागुप्तिभिर्मिशरितम् ।  
अथ चित्राधनुरग्यामि अनुविमर्शं नययोजनम् ॥ —कुमार० १६३
- ३ गच्छ वर्तिका तावत्तनय । —अभि० अ० ६ प० ११६
- ४ तथा दुर्गति मुनय गतिनी स्फुरत्प्रभासवत्तन नवान ।  
विदुर्गुप्तिनयमेव तावदुत्तिमदा रत्नशतारत्नम् ॥ —कुमार ११०  
—तस्या तावताञ्जनविमित्तव वास्तुभू बोरायननेगयाता ।
- ५ ता बोरा बोराधनुराग्रमग स्फुरागोप्यमं युमाय ॥ —कुमार० ११४
- ६ तथाहं पद्मासि पुरित्तमनन चित्रकला<sup>७</sup> अम्बकानां तावताता वत्तमे  
—अभि० ६ प० १११
- ७ वर्तिकावरणं मूर्तीवत्तमयं प्रपिपात्रम् । —अभि० ६ प० ११६
- ८ देवता वास्तविकी म० ४ —तस्या तावताञ्जनविमित्तव .....
- ९ देवता वास्तविकी म० १ —कामाक्षिचर प्रथमकुपिता.....
- १० धातुरामादि स्फुरादि वास्तविक स्फुरादि वर्तिकाव । —उत्तरमेव ४७

स्मृत्त रेखाएँ खींचते थे जो रेखा' कहलाती थी। यह स्मरेखा कवि की सम्मति में साध बाक से जिसे 'मैरिक' कहते थे खींची जाती थी। काकी पेन्सिल भी रेखा के लिए प्रयुक्त हो जाती थी।

वर्ण—चित्र में रंग की बड़ी उपनोयिता थी। साध पीछा बूट बाहि रंगों का सम्मिश्रण चित्र को अनुपम सौन्दर्य प्रदान करता था<sup>१</sup>। रंगों का छेक-मरा जाला ही सौन्दर्य की वृद्धि में सहायक था<sup>२</sup>।

चित्र के प्रकार

( १ ) सामूहिक चित्र—मातृविकान्तिचित्र प्रथम जक म उनी के साथ वास्तिवों में मातृविका का चित्र था<sup>३</sup>। इसी प्रकार सङ्कुलता क चित्र में उसके साथ उसकी दोनों सखियाँ भी थी<sup>४</sup>।

( २ ) व्यक्तिगत चित्र—यद्य का पत्नी का चित्र बनाता<sup>५</sup> पत्नी का पती का चित्र बनाता<sup>६</sup> पुत्रका को उधरी का चित्र बनाने के लिए विदूषक का कहना<sup>७</sup> पार्वतीजी का संकरजी का चित्र बनाता<sup>८</sup> पूजा-गृह म बछरव का चित्र

- १ इतितामुक्तस्य सुखमिति रेखाप्रति प्रथम दृष्टेयम् । —मातृविकान्ति २।८  
—उभापि तस्या सावर्ण्य रेखाया किञ्चनवन्तिष्ठम् । —अभि० १।१४
- २ रक्तपीतलपित्ता पयोमुखा काटय कृटिककसिमात्पम् ।  
इदमसि त्वमिति संव्यधानया वर्तिकाभिरिव सायुमण्डिता ॥—कुमार ८।४४
- ३ जमीस्तिष्ठ दृक्किम्पेव चित्रं मूर्त्तिसुभिजिन्मिभारविन्म ।  
बभूव तस्यास्त्वनुरक्तोमि अपुविमर्कं गवयीवमेव ॥—कुमार १।१९
- ४ उभाचारान्तरमेकात्मनोविद्धेन अर्वा विभगताया रेखा परिबतमध्यगता-  
मात्मनवारिका दृष्ट्वा वैभी पृष्ठम् । —मातृ पृ० २६४
- ५ भो इतानी सिमस्तजमवरयो वृण्मते । सर्वादिष यशमीया । कथमाय तव  
पवती सङ्कुलता । —अभि० पृ० ११४
- ६ त्वामाक्षिक्म प्रणयवृषिता वातुरासै धिताना  
मात्मानं ते चरणपतितं पावदिच्छामि कर्तुम् । —उत्तरमेव ४०
- ७ मन्तापुर्यं विरक्तनु वा मातृविकान्ति ॥ —उत्तरमेव २६

चित्रयत्नक आसिद्ध्यावसोऽप्यस्तिष्ठन् ।

होना प्रदर्शित करता है<sup>१</sup> बिजनेस व्यक्ति का बिज भी बनाया जाता है।

( ३ ) यस्तुचित्र—उत्तरमेघ में द्वार पर तीन पक्ष का बिज होना प्रचार एव स्थान पर दामी का विष्णुपक्ष के लिए आलेख्य बनकर इस<sup>२</sup> का प्रमाणित करना कि इन सबके बिज भी बनाए जाते होंगे मुदा म नाप<sup>३</sup> बड़ा होना<sup>४</sup> आदि वस्तुचित्र के सबोध उदाहरण है ।

बिज की मनीबता के लिए पण्डितमि की महत्ता हो जाती थी । ५ वस्तुचित्र के बिज में मास्मिरी बड़ी हंसा के जोड़े मयूर, हरिण आदि वस्तुएं बनाता है । यहाँ तक कि पैरों पर बज्ज टाँगता भी नहीं ६ वस्तुचित्र के स्तनों के बीच वस्तुचित्र और काना में मिरम के बनाता है<sup>७</sup> ।

स्मरणशक्ति से चित्र स्त्रीचित्रा ( Memory Drawing )— १ को देखकर बिज बनान को कवि न स्थान न देकर स्मरणशक्ति से को महत्ता दी है । व्यक्ति अपनी भावनाओं के अनुसार वस्तुचित्र कर उसके उचित परिचयन को उत्प्रेषित कर सकता था । विष्णु भक्तमार्ग में हमारा प्रभाव है कि बिज के कारण स्वामी इनमें शोध हो गा हावे बर ( पश्यन्ती ) मर का विष्णु से पुर्बक गरीर विहित करती है । ५ स्मृति के द्वारा वस्तुचित्र का बिज बनाता है । वन का पानी का

१ वाग्यायमानो बस्मिन्निहोत्तमालेख्यलेख्य निगुविबेधः । —रघु० १

२ अहो आलेख्यवानर इव बिमलि मय्यपनिमृज ॥५५॥ वि०  
—विष्णु०

३ गति देखा इह विभिन्नवासाशनीय ॥ ५ ॥  
निष्पाप्यतो त्वीतामने पतितामि । —वा० अंक १ प० २

४ वाप्यायमानो बस्मिन्निहोत्तमालेख्यलेख्य निगुविबेधः  
वाग्यायमानो निगुविबेधः गरीगुरो पायना ।  
वाग्यायमानो निगुविबेधः गरीगुरो पायना ।  
गुणे वृत्तमालय वाग्यायमानो वग्यायमानो वग्यायमानो ॥ —अभि० १

—गुणे वृत्तमालय वाग्यायमानो वग्यायमानो वग्यायमानो ॥  
न वा वग्यायमानो वग्यायमानो वग्यायमानो ॥

५. वाग्यायमानो वग्यायमानो वग्यायमानो ॥ —उत्तरमेघ



चित्र बनाना पावती का संकर का चित्र बनाना पुष्करवा का उबरी का चित्रांकन करना इसके प्रमाण हैं ।

सम्पत्तता—कवि ने चित्र के लिए प्रतिष्ठिति सन्दर्भ का प्रयोग बहुत किया है । वस्तु चित्र वही अद्वितीय सुन्दर वा जो विसृष्ट ऐसा की कि वही व्यक्ति हो । मातृविकाग्रिमिष में राजा अग्निमित्र का चित्र इतना सजीव था कि मातृविका राजा की प्रेयस्कृष्ट इरावती की ओर देखते हुए देखकर ग्राह्य थे मुँह फेर लेती है<sup>१</sup> । उत्पलवात् स्वयं आपने मन की इस अवस्था पर बुझी होती है<sup>२</sup> । शकुन्तला के चित्र की भी यही विशेषता थी । शकुन्तला का कथन ऐसा राजर्षि निपुणता जाने संक्षेपमा में पठत इति विश्वास रिक्तता है कि उसे अवश्य ही ऐसा लगा होगा कि शकुन्तला शय्यात् होकर सम्मुख लगी है<sup>३</sup> । भवभूति ने भी 'बीषिका' में सम्पूर्ण रामायण के चित्र इतने सुन्दर दिखाए हैं कि सीता देखते देखते इतनी रम्य हो गई कि उन्हें बताना पड़ा याद रिलाना पड़ा कि यह चित्र है सत्य नहीं ( अथि चित्रमेतन् ) ।

चित्र की सफरता के लिए तीन बातों का होना आवश्यक है—

( १ ) रंग ( Colour ) ( २ ) भाव ( Expression ) ( ३ ) आकृति ( Drawing ) । कवि ने इन तीनों की उपयुक्तता और समन्वय पर अपने विचार व्यक्त किए हैं । प्रत्यक्षचक्षुराग मातृविका के चित्र पर बुद्धि बाते ही राजा ने प्रियाता की कि यह कीन है । शकुन्तला के मुख का भाव इतना सजीव एवं स्वाभाविक था कि स्वयं विदूषक की बहुत आश्चर्य हुआ था कि वह क्यूँ उठा 'इतके जीव-जीव आपने इतने सुन्दर बना दिए हैं कि इसके मन के भाव ठीक-ठीक उठर आए हैं'<sup>४</sup> । चित्र रंग चुकने के पश्चात् आलेख्यगत अथवा चित्रार्थि<sup>५</sup> कल्पता था । संस्कृत-साहित्य में 'चित्र' शब्द का बहुसंख्यकों में प्रयोग किया है ।

१ शकुन्तला — (आगमवर्त) चित्रगतमर्त्त परमार्थत मन्त्रव्यावृत्ति ।

—मात्र० प० १२९

२ मातृविका— ( आगमवर्त ) कर्त्त चित्रगती भर्त्ता मयामुपित ।

—मात्र० पृ १२०

हर्ष न भी नामानन्द में मिल<sup>१</sup> बाबु का इसा मय में उपयोग किया है (५ नाम कं, लिख्यते) ।

बिच बनाम वाले विशेष निपुण व्यक्ति बिबाबाय<sup>२</sup> कहलाते थे । साधारणतः यह कला सामान्य रूप में मध्यम प्रचलित थी । पावतो मन्थपत्तो पुकरवा दुप्यन्त सब इस कला में निडहस्त थे । अपने हाथ से बनाए बिना अधिक महत्ता थी । कवि ने इसके लिए स्वह्मोन्मिदित<sup>३</sup> शब्द प्रयुक्त है । इस कला का इतना अधिक प्रचार हो गया था कि अरथ्यकामिनो कपारों भी इसमें पूरा परिचित थी । गङ्गुल्लनी की उल्लिखों में<sup>४</sup> आमदुष्टों से शृंगार बिचकला के अनुभव पर ही किया था<sup>५</sup> ।

बिनाबन बिनाबाय होता था । बिट्ट की दीप अवधि बालन क अवका मय कहलाने के लिए इस कला का अध्ययन किया जाता था । कवि इनको दोषाभ्यास की समता देता है । राजनीति अध्याय बार बार में दिल्ली के लिए यह आवश्यक कहा गया है कि मूर्ति-निर्माण<sup>६</sup> उने प्रतिपाद्य मूर्ति के ध्यान में लीन होकर बैठा चाहिए और जब

१ अरवेयं शारिका देव्या आमुष्मा आम्बिगिता कि बागपति ।

—माल० अंक १ प०

—भी अगर बिचम त्रिगिन्त्यम् ? —अभि० पृ० ११६

—यो यं प्रदेश मध्या मेऽभिचरन्तं समाजिगुतामी मवेत् ।

—अभि

—तत्र मे बिचकलागता स्वाम्बिगिता तत्रमवका शकन्ताना मानयति । अभि० पृ० १०८

—इति अरथोन्मिदितम् मृगया उन्मिदितम् अरथगतः ।

—कुमार

—मम्मादुष्ट विरहम् या आरगम् लिखती । —उत्तरमय २६

—आमानित्य प्रणयकतिता बाबुबाय विबाबाय । —उत्तरमय

—अथवा तत्रमवका उच्यते प्रतिबन्ति बिचकला

—विचम०

२ बिचकला गता देवी दत्ता प्रणयकमगता ।

तिष्ठति —माल० पृ० ११४

३ देविए, पारटिदनी न० १ —तत्र मे बिचकलागता.....

—अभि० पृ० १०८ इति

४ बिचकलाविचदेगीपु से आभरन्तिविचोद पुत्र । —अभि० अंक

ध्यानावस्थित हो जाय तभी उसे बनाता प्रारम्भ करना चाहिए। मूर्ति का कोई षोप कलाकार की विचित्र समाविष्ट होता है। कवि ने भी मासविका मिमिक्ष में 'विचित्र समावि' शब्द का प्रयोग किया है। मासविका के चित्र को देखने के पश्चात् जब राजा ने वास्तविक रूप से मासविका को देखा तब चित्र उसके सम्मुख खड़ा लगा तब उसे लगा कि चित्रकार की समावि में विचित्रता थी जिसके कारण उसके शरीर का आलम्ब पूरा व्यक्त नहीं हो पाया।

### मूर्तिकला

मूर्तिकला के सम्बन्ध में कवि के ग्रन्थों में बहुत कम है, परन्तु मास के संग्रहालय में उत्कालीन मूर्तियों से उस समय की मूर्तिकला का बहुत-कुछ अनुमान किया जा सकता है।

एक स्थान पर कवि का कथन 'गोपहर की उत्कट उष्णता के कारण नीचे में जलछाए मोर अपने अङ्गों पर बैठे हुए पत्थर में लुबे हुए-से मातृम पड़ते हैं' स्पष्ट करता है कि उस समय पत्थर पर खींच कर मूर्तिमा बनाई जाती होगी। इसी प्रकार का एक तर्क और भी प्राप्त होता है। अथर्वशास्त्र में भी अङ्गों पर चित्रों की मूर्तिमा बनी हुई थी परन्तु जब नगरी जलाई हो गई तब चाप इन मूर्तिमा को जिनका रंग उतर गया था जलम का गुण समझ कर छिपते छपते थे। उनकी छाड़ो केवल ही इन चित्रों के स्तम्भों का आभरण बन गई थी<sup>१</sup>। मथुरा स्मृतिधर्म में इन दोनों प्रकारों के उदाहरण हैं। ऐतिहासिक स्तम्भों पर उत्कीर्ण 'कुपाय पशियों की मूर्तिमा संग्रहालय के एक पूरे विभाग में भरो हुई है। अथर्व ही कवि ने मथुरा के ऐतिहासिक स्तम्भों की इन पशियों की मूर्तियों को देखकर कल्पना की होगी। इसी प्रकार एषुबन्ध की उत्कीर्ण मूर्तिमा सम्भवतः राजमहल के ऐतिहासिक स्तम्भ ने। कवि ने रंगा तथा मधुना की चामर वाहिनी मूर्तियों का उल्लेख किया है<sup>२</sup>। वैद्यनाथों की चामरवाहिनी के रूप में

१ विजयनाथमय्या काव्यविन्यासार्थिक में हृदयम्।

इन दोनों मरी-देवियों की मूर्तियों का आरम्भ कुवाण-काण के उत्तरार्ध ७ गुणकाण के आरम्भ में हुआ था । मयुरा म्युत्रियम में एसी मूर्तियाँ पाई गई हैं ।

कवि ने एसी में देव-प्रतिमाओं का अभाव नहीं है<sup>१</sup> । इन में ब्रह्मा का उल्लेख स्पष्ट और कुमारसम्भव में है<sup>२</sup> । विष्णु का एक पर वसन करते हुए कहते हैं कि वे तोप-छाया पर बैठे हैं । तोप की छे उनका गरीर और कमर उठा है । उनके पाम कमर पर लटकी हुई हैं जिसकी कमर में ऐसी वस्त्र पड़ा है और जो विष्णु जो के को अपनी पाद में केन्द्र रहता रही है<sup>३</sup> । जब तक कवि ने इस प्रकार का विषय या मूर्ति न देखी हो वह इतना समीप वसन नहीं कर । कवि ने वसन करते समय स्वयं विषय छन्द प्रभाव किया है, जिसका मूर्ति है । इसी समय में उन्होंने एक स्थान पर उनका चित्त ध्यान ब्रह्म और तत्त्वज्ञान वसन किया है पद्य नहीं<sup>४</sup> । गण्ड उन्ना बाह्य है<sup>५</sup> । और स्थान पर वे ब्रह्मस्वरूप पर कोस्तुम मणि धारण किए हुए हैं और सामी हाथ में कमल का पंखा धिग हुए हैं ऐसा उल्लेख करत है<sup>६</sup> ।

१ तत्र तार्प्यं कपयुपास्यं पुरः पराशरप्रतिमायुताया । —रघु० १५१९  
—अथाध्यादेवताभैर्न प्रत्युत्थापयताभिता ।

अनुरघुरनुष्मेयं मानिष्ये प्रतिमागर्भे ॥ —रघु० १०१६  
—प्रमन्त्रकुरारयं तं रिमन्तुर्गीर्धिमभिरिणम् ।

मूर्तिमन्त्रमभ्यस्यन्त विचक्षणमनुजीविन ॥ —रघु० १७११

२ तम्योदये चतुर्भुजं पौनःपुन्यचरितेश्वरा ।  
चिरनरन्मभस्वर्गिर्निगम उच्छर्जनिका इव ॥ —रघु० १०१७३  
—जब एवमय पाजारं छे मयें सर्वेतीमुगम् ।

बागीर्ण बागिररगर्भिः प्रचिरनानततिपरे ॥ —बृहत् २१३

३ भोगिमागनागीर्ण बहुभुजं रिचौरग ।  
छन्दगामंरलोडविमगिणातिउविहम् ॥ —रघु० १०१७  
—धिय पदुमनिपन्नाया सीमाग्रगितियेगले ।

बकि निगिण्णवरपमास्तीगकरपन्ने ॥ —रघु० १०१८

४ गुर्णं ददुगुप्यमानं धर्मा रच्येत्तु बावने ।  
पन्नानिमरागाङ्गवज्जगतिमूर्तिभिः ॥ —रघु० १०१९०

५ ऐमरगदभाधानं गलने च विजगत्ता ।  
छन्दसे रम मुगर्णेन वेगाहृदयोमुषा ॥ —रघु० ११६१

६ विमराग बोमुग्यमानं रचनाग्रविलिखिणम् ।  
चमुग्यदन्तं कम्पा च चमुग्यमनमनसा ॥ —रघु० १०१६२

संग्रहात्म्यों में शेष-सम्या वाली तथा दूसरी लड़ी दोनों मूर्तियाँ मिलती हैं। त्रिमूर्ति<sup>१</sup> जिसे कवि ब्रह्मा विष्णु महेश कहा है भूमिधाम की सामान्य वस्तु है। एक और मास्कम मूर्ति का संकेत एक स्थान पर हमको प्राप्त होता है। 'घोटे हुए राज्यों के बीच में अब ऐसे छाते ने मानो कमलों के बीच में बज्रपा की प्रतिमा का'<sup>२</sup>।

मुष्मांतियों का संकेत भी 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में मिलता है। भरत का मिट्टी के मोर से खेचना<sup>३</sup> बताता है कि उस समय मिट्टी के पिछौले बनाने जाते और रेंगे जाते थे। यबुरा-संग्रहात्म्य में एक पक्षमय मयूर प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार 'आकषपिशाचमुक्ति'<sup>४</sup> भी भरत के चक्रवर्ती होने का प्रमाण है, पुष्ट काक की विशेष वस्तु है। कमलमय भूमिधाम में बुद्ध की मूर्ति में यही विशेषता अंकित है।

असाक्षात्संकेत—आत्सर्ग्य कला से सम्बद्ध ऐसे अप्रत्यक्ष प्रमाण भी हैं जिन्हें तत्कालीन कलागैरपुष्प का सम्यक परिचय मिलता है। जहाँ कवि प्रत्यक्ष रूप से किसी विशेष प्रतिमा का संकेत नहीं करते वह अप्रत्यक्ष रीति से उसका पुनः चित्रण कर स्पष्टतया प्रकट अवश्य कर देते हैं। ऐसे अर्थरूप संकेत उनके शब्दों में हैं जिनकी अनुकृति अथवा प्रतिकृति भारतीय-संग्रहात्म्यों में देखी जा सकती है।

(१) प्रभा मण्डल—काशियास ने प्रभा मण्डल<sup>५</sup> छया मण्डल<sup>६</sup> तथा

१ नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राप्तमुष्टे केवलकालमे ।

गुणधयविभावाय परमाग्नेरमुपेक्ष्यते ॥ —कुमार २।४

२ पञ्चस्वनामिन्नतया निबुत्तास्तं चान्तराशु दधुपुं स्वयोवा ।

निगोष्ठितानामिष पंकजाली मध्ये स्फुरत्तं प्रतिमाद्यसाकम् ॥—रघु ७।१४

३ (प्रविश्य मुष्ममुहस्ता) तबहमग । सनुत्तलमवर्ष्य प्रेक्षसव ।

—अभि० पृ० १३८

४ प्रथोम्यवस्तुप्रणयप्रसारितो विभासि आकषपिशाचमुक्तिं कर ।—अभि, ७।१९

५ एवमुक्तं तथा साम्या रणप्रतयोयवायुष ।

ज्याति प्रभामण्डलमद्यो ॥—रघु० १५।८९



काश्मिर के ग्रन्थ तत्कालीन संस्कृति

है। बाहर की तीन बीमारों के द्वारों पर ( रज्जिका विम्ब ) जहाँ बनेन्द्रमोक्ष श्रेयस्वापी विष्णु और गर-नाथमण दिखाए गए हैं। वहाँ संलक्ष्मीर पद्म का भी उत्कीर्ण रूप में सम्यक् प्रदर्शन है<sup>१</sup>। तत्कालीन मथुरा के अनेक स्तंभों में पद्मस्था-युक्त संलक्ष्मी पद्म देखने को मिलते हैं। कुपाय काष्ठ की कला में यह सामान्य रूप से प्रचारित नहीं था यद्यपि कहीं-कहीं संलक्ष्मी पद्म है पर हारोपाय पर नहीं है तथा पद्मस्था का भी चिह्न कहीं प्राप्त नहीं है। जबस्य ही कवि ने तत्कालीन अति प्रचलित चित्रों को ही देखकर ही अपने काव्य में उनको स्थान दिया है।

( ५ ) कपालामरणा काशी<sup>२</sup> का उल्लेख कवि के युग की सामान्य जाहति है। इसी प्रकार सप्तमातृका<sup>३</sup> बीकास को उठाए राजन<sup>४</sup> सब युक्त कला के उदाहरण हैं। एकोरा में वाक्की की विशेष नाकयक जाहति देनी जा सकती है और मथुरा संग्रहालय में दूसरे दुस्य (बीकास को उठाए राजन का) सुन्दर ममूना है<sup>५</sup>।

( ६ ) इसी प्रकार किले कमल पर कहीं<sup>६</sup> कमलसिंह हाथ में धारण किए हैं

१ V S Agarwala Gupta Art ( 1947 ) P. XII & XIII

२ तातां पु पद्मस्थाकनकप्रभावा काशी कपालामरणा वकासे।

—कुमार ७।

—ताताका चक्रपातकपुष्पका काश्मिर निबिडा वकाकिनी।

—रघु ११

३ तावद्वयस्यापि कुबेरपौत्रे तत्पुत्रपानिग्रहनामुपपत्तम्।

प्रसाधनं मातृनिष्ठमृतामिम्बस्तं पुरस्तात्पुष्पासनस्य ॥—कुमार ७।

—तं मातृपौ देवमनुजवत्स्य स्वबाहुनसोमवकावर्तता।—कुमार ७।

४ यत्पा चोर्वं वयमुक्तमुजोन्मृतासितप्रसवसौ

बीकासस्य निरघनमितावपवसाविधि स्या ॥—पूर्वमेव १२

५ Mathura Art Museum No. 2577 V S Agarwala Images in Mathura J. I. S. O. A. 1937 p. 127 pl. xv (

या कमल-नाम के गाव झोड़ा करती<sup>१</sup> लक्ष्मी को कवि के ग्रन्थों में वनित  
मधुरा<sup>२</sup> और अन्य स्थानों के मंथालयों में देखी जा सकती है। श्रीमदारविन्द<sup>३</sup> के  
रचित भी मिलती है। कवि द्वारा गिर-यावली वा वणन युवाण काव्य की बहुत  
मूर्तियों में मूल है। जोटो लोत्तने और गुंथन के दुस्व<sup>४</sup> भी मधुरा के  
देगे जा सकते हैं<sup>५</sup>। मधुरा के एक रचित स्तंभ पर शृंगार-गेतिरा<sup>६</sup> लिख  
धिका की गुग्गर मूर्ति खुदी हुई है<sup>७</sup>। इसी प्रकार कवि के ग्रन्थों में पाए  
हाथ से ये पारना-उछालना<sup>८</sup> युक्ती बारह<sup>९</sup> हाथ बंढ किया<sup>१०</sup> ॥

१ मुयन्निनिदवायविकृदनुत्तं विम्बापरात्तनचरं दिरेष्टम् ।

प्रतिशब्दं रात्रमलोत्तदृष्टिर्मेवाराविम्बेन निवारयन्ती ॥ —कुमार० ११

—श्रीमदारविन्दकावि वणनवाग पावती । —कुमार० १।८४

२ Exhibit No. 2345

३ रत्नामिरन्त-परिवयवधि श्रीमदारविन्दं भ्रमयाञ्चकार ॥ —रघु० १।१

४ भूयो भूय कठिनविषमा छावन्तो कणाल

शामोत्तम्यामयितनयेनैकमेव करेय । —उत्तरमेघ ३०

—स्वारागप्रसरवमं रञ्जनस्तदुत्तमम्

प्रत्यारेपारिणि व वधुना विमर्षं भ्रुविभगम ॥ —उत्तरमेघ १७

—या वृत्तानि त्वयनि वृषि धाम्यता प्रीतिनाता

मग्नस्तिरपैष्यनिनिदवायवियमोत्तोत्तुवानि । —उत्तरमेघ ४१

५ Exhibit No. 186

६ प्रमापिचान्निममवगन्माधिय वाचिद्वरापमव । —रघु० ७।१०

७ Exhibit No. (J) 369 M. Museum

८ तस्यापिचरपुटो भनई प्ररिहा प्रागारवेरिचिनिवेरिदुमकुम्माव

—रघु

Exhibit No. 62 M. Museum

९ वराभिषागविषुवदुपेयमालाव वापानिचमुत्तमेव । —रघु० १

Exhibit No. 361 M. Museum

१० वधुनापगतरीतिगारा वोगना वरागविहती रच । —रघु० १

Exhibit No. 62 M. Museum

११ ल्यापुगारगनीच वदी वावत्रकोटिपिठहेमवेव । —कुमार०

Exhibit No. G 1 Page. 14 68 M. Museum

१२ रीतिए, पारंग्यनो नं० ११



बारि की समानता मयुरा संघहास्य की वस्तुओं में प्राप्त है। यहाँ तक कि कवि के किन्नर<sup>१</sup> और अश्वमुखी<sup>२</sup> तक के प्रतिरूप मयुरा में सुरक्षित जाह्नवियों में है<sup>३</sup>। पुष्पकाशोस प्रतिमाओं में कासियास द्वारा वर्णित कुबेर वरुण इन्द्र का भी बहुत साक्ष्य है। रजुबंध के तपोवन के हरिणों से भरे द्वार बाके उटव<sup>४</sup> भी मयुरा की एक मूर्तिमेखका में उत्कीर्ण है, जहाँ एक मुनि का उटव हरिण एक बेदी एक कमण्डल और तपोवन के अग्न पराणों का पूज चित्रण है<sup>५</sup>।

(७) कामदेव और यक्ष—कवि ने पुष्प वन्य और र्वक बाव लिए कामदेव का बीसा वर्णन किया है<sup>६</sup> बिल्कुल ऐसी ही मृम्मयी मूर्ति मयुरा संघहास्य में है<sup>७</sup>। यहाँ पुष्प कुशल और प्रारम्भिक गुप्प कला में यक्ष की बहुत-सी मूर्तियाँ हैं यहाँ तक कि विशेष कर्म का सातक यक्ष-मन्त्रवाच तक बत पड़ा था। कासियास भी इस प्रभाव से असुरों न यह तक और उन्होंने प्रबन्ध-मटीक यक्ष को अपने मेखवुत का नायक बनाया। यक्ष का वर्चस्व अग्नय भी उनके रत्न में उपलब्ध है<sup>८</sup>। मयुरा संघहास्य में यक्ष की अनगिनत मूर्तियाँ हैं<sup>९</sup>।

(८) शिव और बुद्ध—कुमारसम्मन तीसरी शता में समाधिस्थित शिव का बजन पड़कर ऐसा विश्वास हो जाता है कि उन्होंने बुद्ध और बानिस्तर की

१ उद्युमास्त्यतामिच्छति किन्नराणां तालप्रदाकिन्धमिषीपगन्तुम् ।—कुमार ११८

२ न दुबहुषीषिपमोवराती मिश्रति मन्वा गतिमस्वमुख्य ।—कुमार० १११

३ Exhibit No F L M Museum

४ वनास्तप्युपावृत्ते नमिन्कुशलमाहरे ।

पूजाममवृष्यामिप्रत्युद्यातीस्तपस्विनि ॥ —रघु १४६

—बाकीचमुपिपत्नीनामुटवशररोपिनि ।

अपपरिच गोदारमावयोषीतिमुने ॥ —रघु १४६

५ Exhibit No १ 4 M. Museum

६ इसके अर्थक्य प्रसंग है। बंशिए, कुमार० १४६ २१५४ ७१२

—रघु० १३६ ११५५

७ Exhibit No 1448

८ वन्द्या से बसतिरमना नाम यत्तेरवराणा

बायोत्तानस्तिनहृदीपद्वन्द्विका बीजहर्मा ।—पूजमेव ७

प्रतिमाओं का सम्बन्ध व्यवस्थित किया है। इनका अधिक सादृश्य किसी कारखाने का ही नहीं लगता। जिस का चौरागल मुखा व समाधिस्थ बैठने दोनों रूपों का कुछ जाने का मुखा रहता दोनों हस्तिका को कमल को तरह अपने अंक में रखता जिस के बाल का एक मोठ डारा होता जीर्णों का कुछ मुखा और मुखा होना जितना स्थिर होपिका को प्रतिमावित होना सम्पूर्ण विश्व गीतम को बुद्धावस्था का चित्रण है। संवहालयों में बिछोड़कर मसुरा व छोटी बड़ और बाधिका की प्रतिमाएँ हैं यह पूरा विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि कवि ने इन प्रतिमाओं के पर ही जिस की समाधि का चित्र गढ़ा है।

(६) चतुस्तम्भ—एसा आभासित होता है कि चार स्तम्भों पर छोटा-सा ध्वज जिस पर एक या कदा-कदा गुप्त बला की विराट बम्बु कवि ने हमरी चतुस्तम्भ प्रतिमा चित्रण<sup>१</sup> कहा है। इसी बम्बु का मट्ट ने और स्पष्ट कहा है 'नविमल' कहकर इसका परिमाण स्पष्ट 'नविमल' चतुस्तम्भ का आकार की अभिव्यक्ति का दी। जहाँ एक पर मोतियों की कटिनी कटक रही थीं बहकर अपने मोमय परिवार दे दिया<sup>२</sup>। अन्तर्गत की गुप्तकों में इसकी प्रतिकृति देखी जा है<sup>३</sup>। एसा चित्रण 'गजनीय आगल' की तरह प्रचलित किया जाता था।

(१०) दाहद—कवि ने जिस प्रकार का कोट अंकित दिया बुधान और गुप्तमूर्तिबला दोनों में प्राप्त होता है<sup>४</sup>। अजोफ का म के लिए एक नए पद्यालय बनने की नम्र या पद्यालय बनने हुई यहाँ लिखा है<sup>५</sup>। उसकी आर्ति की मुद्राया मोवा<sup>६</sup> स्मिन्त्रा कवि के रूपों में समानता रखता है। जो यनरगुप्ताय की ने इसकी उपाख्यानों में अपने भाँति स्पष्ट किया है<sup>७</sup>।

१ M. Museum No A 27 45 I B 1 (Jas) 57 (Ja)

२ वे तत्र कण्ठमाधुमिगकाय निनिधि ।

विमान कथमस्ति चतुस्तम्भप्रतिमा ॥ —सप्त० १३।२

३ बाम्बले पी० लक्ष० वृ० पु० ६ चतुस्तम्भप्रतिमा

—बाणवरी

४ V S Agrawal's Gupta Art (1947) p 24 fig 26

५ Emba No J 55 F 27 E

६ Inda n Kaldan Page 240

**केस-विन्यास**—कवि के ग्रन्थों में न मात्र कितने केसविन्यास के ढंग अंकित हैं। अमरकोष के अनुसार 'अलङ्कार' का आशय 'बुनमुत्तम' है। अर्थात् बालों को बुनकर ही अलङ्कार में करना है। काव्यवास ने हनुमती के बालों को अलङ्कार कह स्वयं अलङ्कार की व्याख्या 'बसीमृत' शब्द के द्वारा कर दी है<sup>१</sup>। इसके लिए प्रसादिकाएँ बालों में तरह-तरह के अलङ्कार प्रयोग किया करती थीं जिससे इसके सरभट्ठा से बालों को मरोड़-मरोड़ कर बनाए जा सकें। पति के विरह में यतिभी के कसों के लिए कवि ने 'अम्बाक' कहा है, अर्थात् पति व विरह में गूँगादि परित्यक्त करने से और घृष्ट स्नान करने के कारण ठठ्ठादि का प्रयोग न करने से उसके केस सन्ने होकर बार-बार कपोलों पर जा बाँधे थे<sup>२</sup>। यह अलङ्कार विशेष प्रकार का केस-विन्यास गुप्त काल की मगधी गीति-मूर्तियों में देखा जा सकता है।

इसी प्रकार एक और केसविन्यास-प्रणाली बर्हमार केस<sup>३</sup> था। यही और काव्यवास दोनों ने इसकी विशेष प्रकार का केसविन्यास कहा है। बीच में माँग निकाल कर दोनों ओर इस प्रकार के फूले-फूले बाल बनाए जाते थे कि मोर के पूँछ की आकृति के हो जाते थे। यह प्रणाली भी कुछ मूर्तियों में मिलती है<sup>४</sup>। इसी प्रकार 'मुक्तामालाकृत अलङ्कार' स्पष्ट करता है कि बालों में मोतियों की लड़ियाँ बुँधी जाती थीं। यह गुप्त काल में प्रचुरता के साथ देखने को मिलता है। अवश्य ही कवि ने इसकी देखकर ही अपने काव्य में प्रयुक्त किया होगा।

१ कुमुदोत्सवितान्बलीमृत-अलङ्कारमुत्तमस्तवात्कालम् ।

करमोप करोति मादतस्त्वदुपावत्तनंकि मे मन ॥ —उत्तरमेघ ८।१३

२ हस्तगुप्तं मुद्रयत्तदलङ्कारितं सम्पादकत्वा

दिन्दोर्वर्ण्यं तदनुसरन्निष्कटकान्तैर्विभक्तिः । —उत्तरमेघ १४

—निष्पादनात्तदलङ्कारितमप्यसौविधा विविपन्ती

गुडनामात्तदलङ्कारितं नूनमालङ्कारम् । —उत्तरमेघ, १३

M. Museum Exhibit 10 124

३ यामात्तदङ्गं अलङ्कारिणी प्रेक्षणे बुद्धिपातम्

—उत्तरमेघ ४३



मध्य बाजार ( विपणि ) या जिसमें बहुत भीड़ रहती थी । प्रत्येक प्रकार की वस्तुएँ यहाँ कम की या सस्ती थी<sup>१</sup> । बाजार के राजपथ दोनों ओर बड़े बड़े मकान निर्मित थे<sup>२</sup> । यह माघ जावन माघ कहलाता था<sup>३</sup> । नगर में बद्ध-  
रिक्त सांख्यिक उपवन सोपानों से युक्त स्नानागार, यज्ञस्थल तोरण छोड़ासल  
प्रकार, सिंहद्वार, परिका आदि का भी कवि ने सम्मक एवं प्रचुर बचन किया है ।  
इन सबको हम जब संविस्तार और एक-एक कर लेंगे ।

- ।

राजपथ—नगर का मुख्य माघ राजपथ था । श्री भगवत्पुत्रराज चौड़ी सड़क  
बड़ी सड़क और उच्च पथ को राजपथ<sup>४</sup> कहते हैं<sup>५</sup> । कवि ने राजपथ के लिए  
राजकीवी<sup>६</sup> शब्द भी कहा है । श्री पी० के आचार्य ने राजपथ का पृथक उल्लेख  
इस प्रकार किया है 'सांख्यिक सड़क राजपथ नगर या ग्राम के चतुर्दिक् घूमने  
वाली सड़क संवत्सीवी या रक्सीवी भी कहलाने लाता'<sup>७</sup> । कवि ने राजपथ और  
राजकीवी दोनों शब्दों का प्रयोग किया है । संभवतः राजपथ राजकीय राजमार्ग  
या जो नगर के मध्य से जाता हुआ जग्य नगरों तक पहुँचता था और राजकीवी

१ सा मन्वुरासंभविमिस्तुरंगै चालाविमिस्तमगर्तव्य नागै ।

पुटावमते विपणिस्मपण्या सर्वाङ्गनङ्गामरणेव नारो ॥ —रघु १५।४१

—ह्यारंस्तापंस्तरन्मुक्तकान्कोटिसा संख्यवृत्ती

सप्यस्यामत्परकृतमणीगुणमयप्ररोहान् ।

बृहदा वस्या विपचिरविताम्बिद्रुमाणा च भङ्गा

मृष्टश्मते सलितनिबयस्तोवनावावसेपा ॥ —पृथमेव ३४

२ तस्मिन्नुत्तरे पुरमुन्दरीनामीधानगर्हसनकालसाधाम् ।

प्रसादमस्मानु बभूवुरित्त्वं त्यक्ताग्यकार्याणि विचष्टितानि ॥ —कुमार ७।१५

—तावत्स्ताकाकुसमिन्नुमीतिस्तोरणं राजपथं प्रपेदे ।

प्रसादभुंमाणि विनापि कुबज्ज्योत्समाभियेकत्रिपुचशुतीनि ॥ —कुमार ७।१३

३ स प्रतिपोषादिकमन्मुलभीर्जामापुरसेसरतामुपेत्य ।

प्रावेद्यपग्नीरिमृदमेनमापुलकहीर्जपिणमाकपुण्यम् ॥ —कुमार ७।५५

राजपय का एक अंश भी बर्षान् राजपय का जो माय  
बीबी कहलाता था । पय के दोनों किनारों पर खेत<sup>१</sup> ।  
बातावान और गवाम बने रहते थे<sup>२</sup> । इसी राजपय के पास  
वा जहाँ सग्यम और अँधी हुकाने<sup>३</sup> बनी हुई थी ।

राजप्रासाद—राजाप्रासाद कई मंजिलों वाला अँधी<sup>४</sup>  
एक विद्याल इमारत थी । इनमें अनेक बर<sup>५</sup> रहते थे । ऊपर<sup>६</sup>  
के लिए गीरिया<sup>७</sup> होती थी । यह विद्याल प्रासाद वा माया में ।

- १ प्राणारमाप्सु बभूवुरित्थं त्यक्तान्महावीणि विषट्टिगानि ।
- २ आरौकमान सहसा सज्जया कयाविदुःखनवान्तमाप्य ।  
बड न संभावित एव तावददरेण रजोऽपि च कैःपाद्य  
—प्रगाविवा मन्वितमघन रमाधिप्य बाबिदुःखगमेव ।
- ३ सत्पृष्ठोन्नागठिरापवात्रातलवावा परवो कृताम ।  
—विलोचनं दक्षिणमंजन संभाष्य सङ्गच्छितवामनेवा ।  
सर्वैव बातावनसन्निकष ययी तलाकामपरा बह्मती ॥
- जातस्तरपविठदृष्टिरप्या प्रस्थानमिन्नां न ब्रह्म भीषीम ।  
नाभिर्वाविष्टाभरणप्रमेण हस्तैः तरयावक्तव्यं वाप । —कुमार
- अर्वाविता सत्वरमुत्पिष्टाया परे पदे बुनिमिने नक्तन्ती ।  
वस्त्राविशामीदृश्या त्रानीर्मगुहमुत्पापितमूत्रयेरा ॥ —कुमार०

इनके परवान् भी ३ स्तार इगी प्रमग के हैं । रपुसंग  
१ से १२ श्लोक तक भी वे ही धँकितनी कुनरास्त हुई हैं ।

- १ या बभूवुरित्थं विषट्टिगानि प्राणाविषिग्नमस्तैः चनामै ।  
कुपारमागे विषट्टिगानि प्राणाविषिग्नमस्तैः चनामै । —रपु १६
- प्राणमग्निरित्थं मयैवमागुत्तरातीर्णमागुत्तरा ॥ —कुमार० ७।२५
- ४ आरौकमान सहसा सज्जया कयाविदुःखनवान्तमाप्य ॥ —रपु १४२६
- मन्वितमघन रमाधिप्य बाबिदुःखगमेव ।  
प्राणारमाप्सु बभूवुरित्थं त्यक्तान्महावीणि विषट्टिगानि । —उत्तरमेव १

- ५ आरौकमान सहसा सज्जया कयाविदुःखनवान्तमाप्य ॥ —कुमार० ७।३
- प्राणमग्निरित्थं मयैवमागुत्तरातीर्णमागुत्तरा ॥ —कुमार० ८।१८
- ६ नाभिर्वाविष्टाभरणप्रमेण हस्तैः तरयावक्तव्यं वाप । —कुमार० १४।२२
- ७ अर्वाविता सत्वरमुत्पिष्टाया परे पदे बुनिमिने नक्तन्ती । —उत्तरमेव १

अन्तर्ममि<sup>१</sup> में अन्तःपुर या राजकीय हर्म्य रहता था और बहिर्ममि में बाह्य मूर्तियों से घेरे करले योग्य आभूषणार<sup>२</sup> सभापुह<sup>३</sup> कारावृह<sup>४</sup> बिजयाला<sup>५</sup> संवीरधाम्ना<sup>६</sup> यक्षधाम्ना<sup>७</sup> भाषि रहते थे। मङ्गलों पर कुत्ती छत्र होती थी; जहाँ से बम्बू-बोना मल्ली-मालि देखी जा सकती थी<sup>८</sup>। संभवतः राजा दीप्ति तन्त्रु-में कुत्ती छत्र पर शयन किया करता था<sup>९</sup>।

—११११४

मङ्गलों से बना हुआ प्रमदवन<sup>१०</sup> हुआ था। जहाँ राजा इक्ष्मनुसार अपना मनोरंजन किया करता था। प्रमदवन का मार्ग मङ्गल से होते लगा रहता था और कोई पृथक् पुण्य मार्ग भी सम्भवतः का बिस्से राजा सबकी जाँच बचाकर जा सकता था<sup>११</sup>। इस वन में नाना प्रकार के पुष्प फल वनस्पतय<sup>१२</sup> बीजों के

१ पी के आचार्य इन्दियन आर्किटेक्चर, पृ० ५८

२ अग्निधरनारायणदेव—अभि पृ० ८२

—स त्वं प्रशस्त मेक्षिते मदीये बभूवन्नुषीं प्रजिरिवाब्जगारे ।—रघु० २।२५

३ स राजककुब्जसपाणिमि पाम्बवर्णिमि ।

यवावृषीरिष्टम्लोक्तं सुपमं नवमा ख्याय ॥—रघु० १०।२०

—नृपस्य नास्तिप्रमदा सरोमूर्धं सुवलिजातुनुरपि व्यवसत ॥—रघु० २।१७

४ सा तनु सपम्बिनी तथा विगलमया सारवाहकपुहं बह्म्यामिद निमित्ता ।

—मात० पृ० १११

५, ६ वैशिष्ट्य पूव बन्नेक संवीर और बिजयाला

७ एष अग्निनवधाम्नावसधीक सन्निहितहोमवेनुरग्निधरवात्मिन् ।

आरोह्यु देव ।—अभि० पृ० ८३

८ वैशिष्ट्य, पूव पुह विजय० पृ० १९९, १९७

९ कमलवनविताम्बु वाटकायीधरम्य सुखसक्तिवनिपेक सेभ्यननापुहाट ।

बम्बु तव निषाध कामिनीभि समेती निधि सुललितगीतं हर्म्यपट्टे नुसेन ॥

—रघु० १।२८

प्रमदवनमय ।—अभि पृ० १०७

सिंह पिसापट्टक<sup>१</sup> और जनक पत्नी<sup>२</sup> लोखर, पम्मार  
बनन स्वतन्त्र किया जाएगा ।

प्रासाद के प्रकार—कवि के ग्रन्थों में विमान-  
मेघप्रतिच्छन्द<sup>३</sup> देवछन्दक<sup>४</sup> आदि नाम आए हैं । इन सब  
को भगवद्भरण जी ने पुराण के मत के अनुसार । १५  
यजुसा बाला बहुलस्यक कर्तृत्वं से युक्त और श्रिष्टकी ५१  
विद्याछ प्रामाद कहा है<sup>५</sup> । पी० के० आचार्य मधिरम्य को  
एक स्मृतिहक महल और रत्नजटित प्रामाद कहते हैं<sup>६</sup> । कालिदास

१ देखिए, निष्पत्ति पृष्ठ की पावन्यिष्यो नं० १२

२ उच्यते विचिरे नियोति लोमूकालकामे विप्री  
निभिद्यारिकपिकारमुकुलाम्यालोपते पदपद ।

उत्पन्नं वारि विहाय लोमूकाली कारणव सेवने  
दीडाजेरमनि र्धन पंजरमुक क्वाचो जल पावते ॥ —विग्रम०

—पत्रच्छापान्मु हमा मुमुक्षितमपना बोधिवापदिमनीनाम्  
विमुक्षपानिपान् पश्चिमरति विप्री भान्तिमशरियन्त्रम् ।—मान

३ देखिए, वाचस्पिनी नं० २ भाग० २।१२

—निजा लघावधतनीलरात्रय वरचिद्विचिर्धन जन्मपद्ममन्त्रिम् ।

—वैश्रवाहू विनिहै परीतान् रमेन वीनाम्बवयोद्मरम्भ ।  
मिलान्तिरोगनपिषाण्य निम्बुर्षाशुद्धेरापमद्विमन्त्र ॥

४ उत्तरमेघ ६ ( निषयमापर प्रम संस्कारम् )

५ लतेन वंगान्तरंगस्योपेक्ष स्मृतिहमन्तिप्राप्तेनापेक्षु ५।५।५  
मधिरम्यण्टम् । —विग्रम० पृ० १२६

६ अनुवर्तनीय केनाति लक्षणादिग्रन्थ मेघप्रतिच्छन्दग्याप्रमुमिमारोपित ।  
—मन्त्रि० पृ० १७

७ लक्षाराम राजा पश्चिमगणन इन आचार्य लोखरगमिस्त्रिलक्षनगणाने  
एक प्रामाद आरह्य रपावते । —विग्रम० व० ११७

८ Inds in Kandas Page 247

९ A Dictionary of Hindu Architecture Page 467



‘विशिष्टेन स्फटिकमणिधिकासोपानेन’<sup>१</sup> है। आचार्य के ‘स्फटिक मण्डप’ की पुरि होती है। हो सकता है कि यह संस्मरण का बना हो और निर्माण के कुछ उपकरण मणिमय पदार्थों से बने हों। मेघप्रतिष्ठापन की सम्यक्ता मानसार के मेघकान्त से है, जिसके अनुसार यह वसु मणिमय बालों का बना है<sup>२</sup>। वेदकाल भी इसी प्रकार की एक इमारत है। एक और प्रकार के प्रासाद का नाम समुद्रमण्डप<sup>३</sup> मिलता है। वह प्रसन्न के पास ही खड़ा था। श्रीमद्भगवत् में विष्णु करने के लिए यह एक शीतल स्थान था। यह अस्मान एक प्रकार का विहार-मण्डप था जहाँ राजा विहार का आनन्द लिया करता था। मातृशिल्प-निमित्त में राजा ने मातृशिल्प के साथ विहार समुद्रमण्डप में ही किया था। मत्स्यपुराण के अनुसार यह १९ भुजाओं का दुर्गमिका मण्डप है<sup>४</sup>।

सौध तथा हर्म्य—कवि के शब्दों में सौध तथा हर्म्य के अनेक उदाहरण हैं। प्रोफेसर आचार्य सौध को ‘एक पल्लव विद्या हुआ चूने की सफेदी वाला मकान एक बड़ा मण्डप एक बहुशिल्प एक प्रासाद कहते हैं’<sup>५</sup>। मत्स्यपुराण ने हर्म्य को ७ मण्डपों की इमारत कहा है<sup>६</sup>। अतः सौध और हर्म्य दोनों एक ही इमारत हैं<sup>७</sup>। मेघदूत में सख्यविली की इन्हीं वर्णों की इमारतों का कवि ने बर्णन किया है<sup>८</sup>। इन मण्डपों में कपोल निवास करते कहे गये हैं<sup>९</sup> और कपोल उन्हीं मकानों में ही अपना निवास स्थान बनाते हैं। कुबेर की राजधानी, वसुधा

१. ऐतिह्य, पृष्ठ ५० की पाठ्यपित्री नं ७

२. XXVII 19-17 Acharya A Dictionary of Hindu Architecture  
Page 512

३. खरता यवाम् समुद्रमण्डपे शयीतहिता मातृशिल्पे स्थापयित्वा भवत्प्रत्युत्पत्तायि। —मत्स्य ५० ३२४

४. अष्टादश २१६ ३८, ३३

५. A Dictionary of Hindu Architecture Page 642

६. २५ २९

७. ३३ ३४



इसके भीतरी कमरों में धमनाधार<sup>१</sup> अम्प्याधार<sup>२</sup> मर्मवेधम<sup>३</sup>, कीडावेधम<sup>४</sup> सार माण्डगृह<sup>५</sup> आदि थे।

गृह के बाह्यतन<sup>६</sup> सड़क की ओर<sup>७</sup> खुलते थे। छत पर अस्त्र<sup>८</sup> (छरोके) होते थे। गृह का अधमान 'मुल'<sup>९</sup> क्यूकाता या मिथको दूसरे घरों में द्वार कहा जा सकता है। द्वार के ऊपर तोरण रहता था जो मस्स या पकर की वाकृति का होता था। पशुपु के म्युजिधम में मकरतोरण का उदाहरण है<sup>१०</sup>। तोरण के नीचे देहनी भी रहती थी<sup>११</sup>। शिखर मज्जिध पर तल<sup>१२</sup> नी होते थे। इनका अब पृथक विवेचन किया जायगा।

- १ वैश्वती पर्वानुकोऽस्मि । अयनप्रुमिमायमादेत्यम् ।—अभि० पृ ६९  
—अपाधराधे तिमितप्रदीपे अम्प्यागृहे सुप्तकने प्रसुप्त ।—रघु १९।४
- २ पूर्वोत्प्रेक्ष ।
- ३ अर्पितस्तिमितवीपवृष्टयो नमवेधमसु निवातकुक्षिपु ।—रघु १९।४२
- ४ कीडावेधमनि धीप रंमरपुक कलान्तो कलं याचते ।—विक्रम० १।२२
- ५ सा कसु तपस्विनी तथा पिबकाक्या सारमण्डगृहे गुह्यामिध निमित्ता ।  
—मात्र० पृ० ३१५
- ६ प्रासन्नवातात्मनसंमिथानो मेघोत्सर्गं पुष्पपुष्पानाम् ।—रघु १।२४  
—वाताववातायनदुस्ववीची प्रबोधयत्यर्थं एव सुप्तम् ।—रघु० १।२६  
रघु० ७।५-१९ पृष्ठ उत्प्रेक्ष । इसी प्रकार कुमारसंनव सप्तम सर्ग पृष्ठ उत्प्रेक्ष । वातात्मन के अनगिनत प्रसंग हैं। अतः उत्प्रेक्ष करना अति विस्तृत हो जायगा। पूर्वमेव उत्तरमेव विज्ञानोपयोग्य मत्स्यविकानिमिध सब में इसका प्रसंग है।
- ७ सड़क की ओर खुलते थे इसका प्रमाण सबसे बड़ा यह है कि अज और महादेव की भारत ऊपर से ही स्त्रियों के द्वार देखी गई थी—रघु० ७।५-१९ कुमार० ७।७५-६३ पृष्ठ उत्प्रेक्ष ।
- ८ एव अजिनवयम्याजगयीक सन्निहितहीमचनुरभिधरभादिभ ।  
भारोऽस्तु देव ।—अभि० पृ ८९
- ९ मात्र पृ १०६ Edited by S P Sane & Sri G M G-doo's  
या पृ० ७२ निर्णयसामर प्रस ।

सारण<sup>१</sup>—यह मकान या महल का सबसे पहला फाटक<sup>२</sup> कभी बसायी भी रहता था। अर्थात् यहीं पर भाए हुए की आगो की<sup>३</sup>। किसी मरानुषक अथवा गम्मानि अतिथि के निर्मिण किया जाता था। यो भगवन्पराय इसको अर्चि या मा प्रागा<sup>४</sup> अथवा नगर का बहिर्द्वार कहते हैं<sup>५</sup>। आवाय जो इस प्रकार की है— एक महराज बागाडि में छेप पानों की जो पारस्परिक वक्राव के कारण एक-दूसरे से छूट हों<sup>६</sup>। इन पुनियों मकनों मकनों के चित्र और पुन-अर्थात् की उन्मोच की<sup>७</sup>। इन्धपुन की आहुति के तोरण का यो उन्मोच है<sup>८</sup>।

अष्टिन्द<sup>९</sup>—यह एक प्रकार का शराणा था। आवाय जो राका इस प्रकार मिलती है— अर्चिन्द राका से दक्षान को हीकार

—मशिमया दारवेष्टनून प्रोवाक दूर्वापविमृष्टन । —रपु  
—मिगीषतप्याटगानो निवेज पयम्प्रागाक प्रमुना विना म । —रपु०

—उन लोचमनिमेन शोचिवास्तनमलान्मिभूमिभि कुने । —रपु०  
१ अणोव्याडिगशुभरस्तमा तारप्यत्रम ।  
मार्मि वमनिर्हृदि कशविपुलनिष्ठाननी ॥ —रपु० ११४१

—नावत्रयोमीमिनवावचारमिन्मज्जपानिनजोरप्यत्रम ।  
वर न कथा मह रात्रमार्ग प्रात एवत्रज्जापनिवारिवाग्म्यम् ॥ —रपु०

—उवागारं वनविमृष्टानुत्तरणास्वनीय  
कूपत्तयं नुरपत्रिषन्वाग्ना तोरणम् ।  
दग्नेगान्ते वृत्तननर वाग्म्या वधिता म

पुत्रनागगववनमित्रा वातर्हदारवता ॥ —उत्तरमप १३  
—वावन्नावागुत्तमिभूमिनिष्ठोरपं चमर्हं प्रवेदे ।  
प्रागावृष्टापि निवानि कुबन्जयोग्यमिवाग्निदुनाति ॥

२ हेमट्, पार्लिपनी नं० १

३ Ind on Kaldes Page 249

४ Acharya A Dictionary of Hindu Architecture Page 247

५ हेमट्, पार्लिपनी नं० ४ पृ० १४८

६ हेमट्, पार्लिपनी नं० १ उत्तरमप १३

७ वर पत्र

पस्ते का बोध होता है जो मीथन के सामने हो <sup>१</sup> । पर यह काकियास के द्वारा निर्मित अस्त्रिण से समानता नहीं रखता । इसका सरोखे का आशय हो उपर्युक्त समता है । सजी बड़े मकानों को छतों पर बसेले होते थे । अग्निमानपाकुपल का अम्भ्यागार के ऊपर का अस्त्रिण और मातृविकाग्निभिः ( निजमगार प्रेष्ठ, संस्कृत ) ॥ समुद्रपूह का अस्त्रिण इसके प्रमाण है ।

अट्ट और तल्प—मकानों को सजाने के लिये उन पर अट्ट<sup>२</sup> और तल्प<sup>३</sup> लगाया जाता था । अयोध्या के उज्ज्वलाने पर उसका मूल अट्ट और तल्प का कवि ने वर्णन किया है<sup>४</sup> । आचार्य जी अट्ट को प्रकोष्ठ कहते हैं<sup>५</sup> । श्री भववत् पराग मूह के सिद्धा प्रदेष्ट में अवस्थित कमरे को तल्प कहते हैं<sup>६</sup> ।

वातायन—राजग्व को ओर खुलते हुए बातायन का प्रसंग दिया जा चुका है । लिङ्गी को सामान्य सजा 'वातायन' थी । इसके कई भेद थे—आलोकमार्ग<sup>७</sup> गवाय<sup>८</sup> आत्मग<sup>९</sup> । आलोकमार्ग के नाम से व्यक्त होता है कि यह ऐसी लिङ्गी

१ A Dictionary of Hindu Architecture Page 54

२ नरेन्द्रमार्गद्व द्व प्रदेष्ट विवगमार्ग म स भूमिपाक । —रघु० ११६०  
—विज्ञानतत्त्वाट्टरतो निर्देश पयस्तथात् प्रमुखा विना मे ॥

—रघु० ११११

३ पूर उल्लेख ।

४ वैदिए, पाटलिपुत्री नं० २ —रघु० ११११ विद्याविज्ञानादुत्त ...

५ A Dictionary of Hindu Architecture Page 15

६ India in Kishore Page 250

७ आलोकमार्ग सहसा समस्तया कयाचिद्रुहेणवाग्निमान्य । —रघु० ७१६

८ विज्ञानतत्त्वप्रमर्गवाद्या सहस्रप्रामरणा इवाम् । —रघु ७१११

—वीरवाचस्पति जानु मन्त्रिणां वधानं प्रवृत्तिवर्जितं दरी ।

तद्वत्वाप्रविष्टावत्तन्मिना केचनेन चरनेन चण्डितम् ॥ —रघु० १११३

—विद्युत्प्राप्त स्थितितनयनी त्वत्सनाथे पवासे ।

वक्ता पीट स्तनितवचनैर्मिनीं प्रशयेया ॥ —उत्तराध्याय ४०

को जिनमे होकर प्रकाश गूढ़ में प्रविष्ट होता था। पार्थिव  
यथा गान का शक्ति से गानुष्य रगते थे। मानमार में भी  
है<sup>१</sup>। मायबिवाधिमिष में एमी गिन्नी का प्रमय भासा है जिनमे  
देगमे क माय-माय मय प्रविष्ट हातो हुई वदन के साका का न  
जा गये<sup>२</sup>। आरमाग में सङ्की प्रस्तर प्वाप्तर भासि की आसो  
कानिमाग न माने की आसो सगी निद्रका का वदन किया है<sup>३</sup>।  
और वन होने थे। बौद्धी उनमे प्रयत्न कर कमरे में भर जाती  
कि इनसे वारता क टक प्रविष्ट हो मिलिचिरो को भी मलिन कर

ऑगन—बाग ओर बाजार में गिरा हुआ पर म एर बाँधन  
इसम म को र्वा वृत्तिवृत्ति प<sup>४</sup> को दिन में मूय के प्रकाश से  
और पान म बाजार के गतिविह को प्रतिष्ठाता न प्रतिबिम्बित<sup>५</sup>।  
आरनिमाग—मन्त्रा के बानावतादि पर जानी लगी छद्मी  
बचन बिग आ पका है। मन्त्रा क मन्त्र धूम इनम बाहुर निरन्ता

—आकोमोर्वाविनरु बार्मन्त्राधुनी

कपरीमाग मवनगिगिमित्तनरोय्याट् । --युग्मेप ३६

—गातानिन्त्रावर्गितार आरमागप्रविष्टा

गूढगोत्र गनममिषर्ग गलिनुर्त उपर । --उत्तरमेप ३२

१ मानमार ३३ १९८-१९७

२ देगिट्, रिटने गूढ का पार्थिवाने में ८ का अन्तिम बाज २५ १

३ तनमन्त्रावर्गितारगोत्र गीरु पायोर्वावर्गितारगु । --रपु० ७१३

४ बर्गा गित गूढ का पार्थिवानी म० ६ का अन्तिम दमोक पार्थिवाने

५ मेरा मोना मन्त्रगतिना र्वामागधुमि  
रावेगता मन्त्रगतिर्वावर्गितारगु मन्त्र ।  
रावेगता इव मन्त्रगतिर्वावर्गितारगु मन्त्रगति

कपोद्गागनुवर्गितारगु मन्त्रगति ॥ --उत्तरमेप ८

६ विपरागुवर्गितारगु मन्त्रगतिर्वावर्गितारगु मन्त्रगति । --युमार० ७११०

७ मन्त्रगतिर्वावर्गितारगु मन्त्रगतिर्वावर्गितारगु मन्त्रगति ॥ --युमार० ६१४७

८ मन्त्रगतिर्वावर्गितारगु मन्त्रगतिर्वावर्गितारगु मन्त्रगति ॥ --विजय ३१७

स्नानागार—यंत्रचारगृह<sup>१</sup> तथा धारगृह<sup>२</sup> का कबि के ग्रन्थों में प्रसंग है। ये स्नानागार के ही बोधक हैं। यहाँ पानी के जल भी लगे रहते थे जो स्नान और शीतलता की आवश्यकता के लिए तथा जल प्रवाहित करते रहते थे<sup>३</sup>।

अश्वशाला—आसार के बहिर्भाग में बुडसाल<sup>४</sup> तथा हापीयाला<sup>५</sup> होती थी। हाथियों को बांधने के लिए यहाँ स्तंभ लगे रहते थे<sup>६</sup>।

सोपान—राजमहल<sup>७</sup> सोबर<sup>८</sup> यात्रि सबके प्रसंग में सोपान का नाम आया है। विष्णुबोधोप में सोपान स्फटिक के होते थे इसका उल्लेख है। यहाँ यथा की तरंगों को शीमा स्फटिक सोपान के समान नहीं पड़े हैं<sup>९</sup>। उत्तरमेख में तद्वत् के जल तक पहुँचने के लिए मरकत के सोपान कहे गए हैं<sup>१०</sup>।

वास्तव्यष्टि और स्तम्भ—गृहपक्षियों के बैठने के लिए गृहों में वास्तव्यष्टि थी<sup>११</sup>। रघुवंश में ऐसे स्तम्भों का वर्णन है, जिन पर स्त्रियों को आकृष्टियाँ करती थी

- १ तत्रावस्थं बभूवुस्त्रिभुवोद्वेष्टनोत्पत्तीपत्तौर्लोकोत्पत्ति  
नेम्यन्ति त्वां तुर्युत्पत्तौ यंत्रचारगृहसम् । —पृथक् १५
- २ यंत्रचारगृहं चिह्नितं पत्तौ रतेन बौद्धात्मन्योद्वेष्टस्य ।  
सिन्धुमिहोपानविष्णु निम्बुर्वाचनूहेप्रातपमृदिमत् ॥ —रघु० १५।४८
- ३ हेमिह, पत्तद्विष्णु नं० २
- ४ हा मनुपत्तमपि मित्तुरंगे छात्राविपिस्तंभपत्तौ नाने ।  
पुण्यमासे विपिस्त्रिपत्तौ सर्वांगमात्रमेव नाने ॥ —रघु० १५।४९
- ५ हेमिह, पत्तद्विष्णु नं० ४ रघु १५।४९
- ६ वैरमोनिहिरमरी कुमारः कपुतेन सोपानपत्तेन यंत्रम् । —रघु १५।५०  
—सोपानमात्रमात्रेण—अभि० पृ १२५  
—एतेन यंत्रातरंगमयोकेन स्फटिकमपि सोपानमात्रेण आरीरु प्रवाह्यतेप्रातपमृदिमत्  
रमणीयं मणिहृत्पत्तम् । —विष्णु पृ० १८९
- ७ सोपानमार्गेषु च येषु रागा निक्षिप्तवयस्यरागास्तस्याम् । —रघु० १५।५१  
—ता सीरसोपानपत्तौ रागास्तस्याम्पुनस्तस्याम्पुनस्तस्याम् । —रघु १५।५१  
—वास्त्रिभुवोद्वेष्टनोत्पत्तीपत्तौ सोपानमात्रेण । —उत्तरमेख १५





राजा और उसके विशेष सम्बन्धियों के छिप होना या बात-राममहल के पास होना वा । दूसरे प्रकार के उद्यान सामान्यतः नगर के बाहर होते थे । दोनों उद्यान ही प्रति दीर्घाकार होते थे । इनमें बनेक प्रकार के फल और फूल रहते थे, स्फटिक की बिकारें<sup>१</sup> पड़ी रहती थीं । बिलासपूष तड़ाग (दीर्घिका)<sup>२</sup> बापी<sup>३</sup> और कूप<sup>४</sup> रहते थे । पत्थियों के बैठने के लिए बासपट्टि<sup>५</sup> छजारे<sup>६</sup> यहाँ तक कि श्री जगन्मूर्ति भी के चरणों में बिड़ियाबाना तक रहता था<sup>७</sup> ।

दीर्घिका बापी और कूप—इनमें बरबरा बन्दर था । दाहिना<sup>८</sup> कदाचित् लम्बा तड़ाग भी और सम्भवतः उद्यान के निम्न से इसमें पानी आता था । प्रो. मात्तान बापी की व्याख्या एक तालाब एक कुँआ एक पानी का पड़वा करते हैं<sup>९</sup> । काश्मिर बापी को रमणीय तड़ाग के वर्ण में प्रयोग करते हैं । हो सकता है कि दीर्घिका और बापी में बाजार का ही बन्दर हो एक लम्बा हो

१ पूव उल्लेख अति० पृ० १०९

२ विक्रमतामस्ता पृथ्वीर्धिका मदकलोत्कटाकविहंगमा । —रघु० ८।१७

—वन्दैरिचनी मङ्गिरैस्तवम् शृङ्गाहतं श्रेष्ठं शोभिकायाम् ।

—रघु० १९।१३

—पुरे तावन्ममेवास्य तनोति रविरासपम् ।

शोभिकाकमभीमये यत्त्वभावेन साध्यते ॥ —कुमार० २।३३

—पञ्चालायाम् हंता मुकुन्तिवपला शोभिकापथिनीनाम् । —मात २।१०

—दीर्घिकाकलोचनमवागता प्रवतिमामैवमाना निवृत्ति ।

—मात० अंक १ पृ० २६६

३ बापी चास्मिन्मदरक्षकधुत्तावृत्तगोपायमाणी

हैमरक्तता विक्रममर्क सिन्धुपेक्षु-नाते । —उत्तराग १९

—बापीबलनी मङ्गिरैपञ्चाना दासीवमाणी प्रवताक्रमानाम् ।

—मातु० १।४

४ अमति लक्ष्यम्बु लवतस्तोपमिच्छन् धारमभुक्ममिच्छन् श्रीशृङ्गवधु नृपाम् ।

—चतु० १।२



इसमें छिटकती हुई बूँदें कही गई हैं और 'रूट के ओंछ से बूँदें छिटकती नहीं अपितु बस नीचे टपकता है। इसके अतिरिक्त 'भ्रान्तिगत् शम्भ का प्रयोग इसके लिए नहीं हो सकता'। अतः कवि का स्पष्ट ही अपनी गति से आनन्दन शीघ्र निर्भर' से आनन्द है। इसके ऊपर का शीघ्र जूमता रहता था अतः ममूर को बस पीने के लिए चारों ओर बहकर लपाना पड़ता था।

हेवालय और यूप—महाकाव्य १ स्कन्ध ३ विश्वेश्वर ४ आदि जमेक बेब राजों के भविर का कवि के शब्दों में उल्लेख किया गया है। नगर में बस स्वस्व ५ भी वे और यूप भी। यूप बहिरासु को बाँधने का स्वस्व था ६। मवेरा संप्रदाय में इसके नमूने प्रचलित हैं।

नगर के प्रकार के विषाक द्वार बर्गिका की सहस्रता से बंद हुआ करते थे ७। मपुरा संप्रदाय में प्रचलित यूप में शीघ्र की ओर बर्गिका की अस्तुति भी अंकित है।

१. Index in Katchas Page 254

२. भर्तुः कठञ्जलिद्विषिषी सावर बोदवमाण-  
पुष्पं मायास्त्रिभुवनपुरोर्ध्वमर्धवीश्वरस्य ।  
भूतोद्यत्तं कुबलयारजोगन्धिभिगीषवत्या  
हृतीयक्षीरानिरुत्पत्तिस्त्रानतिकर्तमरुम्भि ॥

—अप्ययस्मिं जलवर महाकाव्यमासाय काले  
स्वातन्त्र्यं हि नयनविषयं वाचस्वतेति भानुः ।

कुर्वन्म्याहलिपटहतां धूमिनां दशावलीया-

मामन्त्राणां कलमधिकर्षं अप्ययमे गर्भितालाम् ॥ —पूर्वमेव, १७, १८

३. तत्र स्वर्गं नियतवर्त्तति पुष्पमेधीकृताग्रा  
पुष्पासारीः स्वपयानु भवान्ध्वीममज्जामकार्त्ति ।

रसादेतीर्नवद्यमुता वासवीनां चमूना-  
मत्पावित्त्वं हृतवहमुक्ते सम्पूर्तं तद्वि तेज ॥ —पूर्वमेव १७

४. आराप्य विस्वीस्वरवीश्वरेण तेन तित्तिर्बिषवहो विजने ।

पार्तुं तहो विस्वगणं नमसां विषमभ्रामाममज्जामूनिरागाम् ॥ —रघु १८।२४

५. इत्यप्यनः वैरिचर्योभिरभौ कर्त्तुं समासाय नृप सरय्या ।

मुफार्थ—कवि न ऐसी मुफार्थों का बसा किया है  
किया करते न । ये शरीर<sup>१</sup> बहलाती थी । १ ।  
समान मुफार्थ थी ।

छन्द—छास्वी अपने रहने के लिए शिम शोपटियों  
पणाला<sup>२</sup> अवका छन्द<sup>३</sup> बहलाती थी । इसका जन्मेस

१ बनेबरापां बनिनामगानां दरीमूहोरगनिपस्तमम् ।  
भवन्ति यवीपपयो रज्यामर्तकपूरा मुरतप्रवीपा ॥

—यवातवाधनवित्तज्जतामा यदुच्छमा ॥ ३५  
श्रीमूहशरविलम्बिबिम्बारितरस्तमिनी जयता

—जलनि पवनज्ज पवतामां हरीषु ।  
हन्ति पटनिनाइ हन्तवतास्थसीप ॥ —गणु० १।२५

२ य पध्यरवोदितरिममोदगादिमिर्गराणा  
मुहामानि प्रथमति छिमावेप्पमिर्पोवनानि ॥ —दूधमप २७

३ पयगालामय तिरं विहृष्टाणि प्रविश्य न ।  
बहप्यवीनरकजेन श्रीयणां तामपोत्रपन् ॥ —रघु० १।२।४७

४ ब्राह्मण कृपिपत्नीनामद्वयशररीविमि ।  
अनारिह जीवारमाधेदीविर्नमु ॥ —रघु० १।५०

—काननादमोतिष्ठ न बाराधु निपाशिमि ।  
मुर्धनिर्तरीमयमन्त्राङ्गनमूमि ॥ —रघु० १।५२

—अमी जन्मवानमोत्रविर्न माया गमारग्नवरोत्रानि ।  
मन्त्रामो बोरभुगो मपार्थं विरोत्रिताम्यापमर्थदत्तानि ॥ —रघु० १

—ना इमुग्नन्तृनश्रीयमाश्रीपमोत्राश्रितमन्त्रमन्त्र ।  
तर्पे गार्पागुर्पां निनाने निवागहेमोत्रं शिरो ॥ —रघु० १।४

—बीववापमन्त्रेन विहृष्टं मन्त्रिवाता वन्ति हन्तव्या । —रघु० १।५  
—मन्त्रशान्तरगमन्त्रानमं तरोर्वर्न तत्त्व वामव पारवन् । —दुमार०

—आशित्विहन्त्राणां मृगीमन्त्रोक्तरमैरव वताई १।  
वापवा प्रविष्टपथेनको विधति धिदमदीगिताम्य ॥ —दुमार० ८।१

—हन्ता हन्तुमते नवरीत्रं वनविशमदन्तर । —अत्रि० ५० १-

वास्तुशिल्प के नियम के अनुसार किसी निर्माण कार्य के समाप्त हो जाने पर  
 तत्पश्चात् अग्नि देवता की पूजा की जाती थी इसमें पशुओं की बलि भी दी  
 जाती थी<sup>१</sup> । पूजन के पश्चात् ही उस भवनारवि का प्रयोग किया जाता था ।

---

# शिला

सिमा-चन्द्र

( १ ) आराम—गुरु के बोलाहल तथा ब्रह्मण । १५  
 श्रुतियों के आधम यहाँ पानि और निगलपता की प्रकृति ।  
 मर्कटगुह केर से । स्वयं रबीगुवाय छार हमरी मरता  
 रि मागुवप में सबसे आचपजनक बाण व्याप्त होने को यह है कि  
 धागल मर्कटगुह मरुति के जगताता हल । उन ब्रह्मों में यदपि  
 से परम् संधप और बल का मैगमाय भी बिग्न न था । यह  
 मरकण बल है कि इन लकारी जोधम और लकातता ने प्रलय  
 न बनाकर जल का बिग्नार ही बिपा । वाग्मीहि बर बमिप  
 तेगे ही जगि से भी उदासीन होने हल भी गिता प्रदान करने में  
 लल हुआ आराम मरत तक इहाँ गुरितों द्वारा आधम में निगिन  
 राम ने वाग्मीहि आधम में रागों को धारने समय बहने अरना  
 गीता था ।

का-आधम का शि-उत्तम रागगुह मरुतों में शिवा है ।  
 में बहने के-ही आधम से उनी बरतर शिनों की गिता से  
 यों प्रक प्रहार से जल में निगु बरिज का बरने से बारी येने में  
 यल संधपे-आराम के बिग्न न और बलगा के बरतर मरिता का  
 में शिनेर हल गिता बाहर निगु में गीत आराम शिमा

A most wonderful thing we notice in India is that here  
 forest not the town is foundation head of civilization

—Copies of education in Arcere Ind's by Pacha K  
 Makepe pub Jadon Amel's of Bhanderkar Oriental  
 last ve Vol XXV

मोक्षार्थ स्थापन कला आदि के चरम ज्ञान इस ज्ञानम में रहा करते थे। यह भी बेसी वृक्ष-पुष्प आपस और आकार के बनाए जाने के जो अनेक स्थानों में संकेत हैं, जत (Solid Geometry) के पारंगत (Zoology) बगल, बिड़िया आदि के ज्ञानों आदि का भी यही निबन्ध था। जत यह एक विश्वविद्यालय का। विरहायि और बसिष्ठ आश्रम की भी यही विशेषता थी<sup>१</sup>।

( २ ) राजाओं के प्रासाद—काश्मिर के ज्यों में जन्म बसिष्ठ आदि के आश्रमों का उल्लेख है परन्तु नुर राजपुत्रों की महल में भी आकर निवा पश्या करते थे। रघु की पिता किसी पृथक्कृत या आश्रम में नहीं हुई थी। जहाँने चारों निवाएँ बिड़ियों हैं। बीबी की और मंत्रमुक्त जलों की पिता पिता से की थी<sup>२</sup>। पालिकाभिनिमिष में भी आचार्य मण्डरास और हण्डास मातृशिका और रानी इण्डरी को महल में ही पिता दिया करते थे। इन्धुमती जन्म की अतिरक्तजालों में पिण्या की<sup>३</sup>।

उपपन्न वृत्तान्त से हो निष्क्रम निकलते हैं प्रथम यह कि आपसों में ही वास्तव दिया पश्य करे, यह अनिवार्य नहीं था दूसरी बात यह कि क्षुपि अथवा आचार्यों के अतिरिक्त पिता अथवा पति भी पिताक हो सकता था।

यद्यपि राजमंडल में ही पिता प्राप्त करने का प्रथम चर दिया जाता था परन्तु हम स्थान की राजमंडल के पास रखने हुए की कुछ हटा कर निर्वाचित कर दिया जाता था<sup>४</sup>।

( ३ ) बिहार—काश्मिर में कहीं बिहार का संकेत नहीं किया; परन्तु हम समय बीह्र धर्म का प्रभाव संकेत का। पालिकाभिनिमिष में परिधात्रिका के जर्मन में इस बात की पुष्टि होती है। बीह्रों के बिहार शिखा के कैमर है। इनके जहाँ भी आचार्य और उपाध्याय होने थे। आपस और बिहार के बातावरण में

१ बैमिह, पिछले वृद्ध की पावटिल्ली नं० १ पृ० ७१-८०

२ पित्र-समग्री - १

बहुत विभिन्नता थी। आपसों में वैयक्तिक महत्व था।  
 पितामहों के साथ भीषण सम्पर्क रहता था। गृह और  
 जिला ही बातें थीं। बिहार में सामूहिक जीवन सामूहिक  
 जोग। सामान्य अनुशासन सामान्य पिता सामान्य घर  
 बिहार एक प्रकार से पुष्कल नगरी (Sparsely & Civilized) ही  
 के द्वारा सम्यक उपजाया जाता था। इस विरहीत गुरुकुल  
 का रहता था। अतः घर की-सी वैयक्तिक घर का-सा स्नेह  
 बिहार में यह भावना न थी। उसका वातावरण आपत्तिक  
 था यद्यपि सामूहिक जीवन के साथ-साथ एकान्तिक जीवन  
 और अध्ययन कर मटे गुरु के नियन्त्रण और मर्यादा में इन  
 सुविधा प्राप्त हो जाती थी।

अमीर घर के छात्र समस्त पिता का धुम्क पड़ते ही दे दते  
 में गुरु की सेवा करते और इसका बन्ने पत्र में पत्र में। यही  
 को बही रहते थे और पत्र में और एम भी जा बचन पत्र के।

एसे स्कूल भी थे जो सब प्रकार की जातियों के लिए  
 अनिश्चित) रहते थे (public Schools) परन्तु तब भी  
 छात्रों के लिए या वेबन छात्रों के लिए (Community School)

### पिता का उद्देश्य और आदर्श

वाणिज्य में पिता का ध्येय 'मन्मथापवित्रा विद्या'  
 उपाय के द्वारा प्रबोध अर्थात् ज्ञान प्राप्ति तथा विनय अर्थात् नीति  
 इन दोनों का ही ब्रह्माण्ड है। वेदों में ही मन्मथ प्रबोध नहीं  
 यौगन्धर्व भी होता चाहिए। वाणिज्य उनका यही अभिप्राय था कि  
 न होने से मन्मथ के स्वभाव में लोभ वाग्ध्व इव इत्यादि विद्या या  
 अतः यदि इन प्रकार के मनोविहार अल्प हैं तो ज्ञान से कोई लाभ  
 हमारे लक्ष्य में पिता का उद्देश्य वेबन पुष्कलीय ज्ञान नहीं अर्थात्  
 का एक विद्या था। पिता का सामान्य ध्येयिक को पुष्कलीय ब्रह्मा  
 अर्थात् उसकी लक्ष्मी को विवर्धित करना था। मर में बलि

1 Taken from Imperial Age of Unity of India—Education  
 Radhakurud Mukerjee page 591

2 गुनी लक्ष्मीपत्नी सुविधा गुणवत् होती।  
 मन्मथापवित्रा विद्या प्रवैयक्तिक ॥ —पृष्ठ ११३



व्यक्तित्व का विकास प्राचीन संस्कृति की रखा धार्मिक और सामाजिक-क्षेत्र में उचीयमान सद्वृत्ति का परिस्थिति के अनुसार वीक्षण शिक्षा के प्रधान उद्देश्य थे<sup>१</sup> ।

राम दुष्यन्त आदि के चरित्र से स्पष्ट है कि सत्य बोलना वचन से मूर्छ न मोड़ना पट्टई विनयों की ओर न देलना आत्म-सम्मान आरम-विश्वास समय उच्च शिक्षा के आरम्भ थे । सदाचार पवित्रता और अनुशासन का जीवन के प्रत्येक अंग में स्थान था । उत्तरदायित्व समझना कठमपाकन और सामाजिक कलमों पर ध्यान देना सम्यक था ।

शिक्षा का सच्चा उद्देश्य और आरम्भ इसी बात पर है कि वह जीवन का आकार और पवित्रबर्तों बने । हिमवान् पाण्डों के जन्म से ही पवित्र हो गया था<sup>२</sup> । अतः सच्चा आरम्भ यही नहीं कि वह जीवन सत्य और सामाजिक क्षेत्र के सिद्ध योग्य बनाने बल्कि उसके जीवन को पवित्रता की ओर नै धार्य । असतो मा सद्गमय उपनिषद् के वाक्य को सावक बनाना ही शिक्षा का धर्म आरम्भ था । बाहे-से गर्वों में आरम्भ जीवन ही आरम्भ शिक्षा है । सच्चा मनुष्य वही नहीं जो पद में पदों के बीच बीरता दिखाए, बल्कि जीवन-संघाम में भी बीर प्रभावित हो । विनोद इस प्रकार का आरम्भ था जो आकार और बुद्धि दोनों में धर्म परतकाट्य को प्राप्त कर गया था<sup>३</sup> । रघु और राम की इसी आरम्भ के प्रतीक थे । धर्म अब और काम विवर्गों की प्राप्ति को शिक्षा कराए वही सच्ची शिक्षा है ।

विषयविषयविषयमस्य मूलं यथाह शिक्षा प्रकटीरय विष्णो ।—रघु १८।१

- १ Formation of character building up of personality preservation of ancient culture and training of the young generation in the performance of the social and religious duties—were the main aims of education

—Education in Ancient India by Dr. A. S. Altekar

- २ प्रभाषणया शिष्येषु शीघ्रप्रधानायेव विविधस्य मार्गः ।  
मत्स्यावस्थेव विरा मनीषी तथा न पुनश्च विमृशितश्च ॥



गुरु का उत्तरदायित्व—योग्य शिष्य को शिक्षादान देना गुरु का सबसे बड़ा उत्तरदायित्व था<sup>१</sup>। योग्य शिष्य का चुनाव और उसको योग्य बनाने में गुरु की साधकता थी। शिष्य को योग्यता गुरु की योग्यता थी। अपना सब कुछ शिक्षा देना गुरु का कर्तव्य था। संछप में शिक्षक अपने आदर्शों का पालन कर सही उसका दूसरे छात्रों में उत्तरदायित्व था।

प्रचार्य में शिष्य अपने गुरु जन्म के संस्कारों के कारण ही शिक्षा को बेर से अपना धीम प्रहण करता है<sup>२</sup>। यह उस समय का विश्वास था परन्तु फिर भी शिष्य के मध्य बुद्धि होने पर भी उसे योग्य-वै-योग्य बनाना शिक्षक का कर्तव्य और उत्तरदायित्व था।

शिक्षक का समाज में स्थान—बिना प्रकार कृम अपने प्रकाश से छोड़ हुए संसार को जगा देता है। वैसे ही ज्ञान का साध कर मनुष्य को नवीन बुद्धि देने में शिक्षक समान होता है। इस उपमा के द्वारा कालिदास ने शिक्षक-वर्ग को सर्व कदाकाल उन्हीं समाज में अति उच्च स्थान दिया है<sup>३</sup>। अपना सब कुछ शिक्षा देने वाला शिक्षक न केवल शिष्य के द्वारा अपितु राजा के द्वारा भी अपूर्व सम्मान प्राप्त करता था। गुरुओं का बैठता के समान आदर होता था। समय-समय पर शिक्षा की अपाप्ति के परचासु भी व्यक्ति परिस्थिति के अनुसार उनके पास जाते और उचित परामर्श किया करते थे। सभी रघुबीर रामा कुत्समुह अतिष्ठते प्रत्येक बात निबधित कर उनसे परामर्श लिये<sup>४</sup> और उनके बयानों को बंद-बाध मानकर अनन्तर पालन किया करते थे<sup>५</sup>।

१ मुनिप्यपरित्या विदीवाधोचनीया ननुता —अभि० अंक ४ पृ० १३

२ तां हंसमात्मा सरदीय गंगा मद्भोषि नवतपिवायमात् ।

मिचरीरदेमापुद्गेषाकै प्रवेदिरे प्राक्तनश्मविद्या ॥ —कुमार० ११०

अप्यपथोमग्नकुटापपीथां नुपायबुद्ध कदाको गुरुते ।

शिक्षक-वर्ग—इस वय के अत्यन्त युव १५-१६  
 कुलपति यदि कई प्रकार के शिक्षक आते हैं। बसिष्ठ जो  
 युव थे। वे कुलपति कहलाते थे। विद्यार्थियों में उसी  
 युव हो जाने के कारण जिसके द्वारा पाठ है दिया गया था  
 में उपाध्याय कहा है। सामन्तिकान्तिमित्र में आचार्य हस्तराज ।  
 नाम आता है। कश्चर यदि बसति कहलाते थे। इन उपाध्याय  
 हैं कि इनमें विभिन्नता थी। आचार्य कर्त्तव्य में कहलाते हमें  
 के आता हैं। सामन्तिकान्तिमित्र के आचार्य हस्तराज आर ५५  
 में ही दृष्ट है। अत आचार्य एक ही विद्या ही हुआ करता है।  
 जो वे एवम्भी सभी उपाध्यायों में विद्या प्राप्त की थी अत वे  
 प्रकार की विद्या जानने वाले शाय। सामन्त वेद के भाष्य साधन-  
 आदि सभी विद्याएँ अनेक उपाध्यायों का पदार्थ होती। अत युव  
 विद्याओं के आता हुआ करते थे। आचार्य की अनेक युव का स्थान  
 की मानुषेवाराज अत्रायण उपाध्याय का धार्मिक और  
 का आता करने हैं। विद्यार्थियों में उसी के द्वारा पाठ्यक्रम हो  
 उस विद्या अर्थात् नाट्यशास्त्र में बसता है और है दिया था। बसिष्ठ  
 उपाध्याय के वय में बसिष्ठ के द्वारा विमुक्ति विद्या था। आचार्य में  
 युवों का युव अथवा आचार्यों का स्थान होता था कुलपति  
 सब उनकी आज्ञा की प्रकार पालन करते थे अथवा स्वयं

१ अथाप्यध्य विद्यागारं प्रत्येय युवनाम्पयः।

श्री दम्भो कतिञ्चन मुरीजम्पयुषधयम् ॥—एपु० १।३५

२ येन समीपसम्बन्धो लक्षितस्तत्र न तै रित्यं स्थानं महिम्नि इति  
 मय्यं तातः—विजय० अर् ३ पृ० १२३

३ विविदि शिरीरदेवामि यगदन्तर्धानाग्नाग्नीस्तपाम् ॥

—साय० अर् १ पृ० २७

४ अति मतिरित्येव बसति —अवि० अर् १ पृ० ६

५ "The Adhyapakas seem to have been, a teacher  
 with the teaching of secular and scientific lectures whose later  
 designation Upadhyaya is often mentioned in the Mahu  
 bhutya"

—Index as known to Parn Page 223

मुक्त प्येष्ट व्यक्ति का । वसिष्ठ भी कृष्णमूर्ति के साथ कृष्णपति भी थे<sup>१</sup> । इसी प्रकार कण्व भी कृष्णपति कहलाते थे<sup>२</sup> ।

यह युद्ध प्रायः मुनि-स्वभाव के होते थे परन्तु आज्ञा का उत्सर्जन किसी प्रकार का स्वात्मन<sup>३</sup> अपना शिष्य की अनिमयधीनता<sup>४</sup> इनको असह्य थी । जैसे वे अपने शिष्यों के प्रति अति सख्ते सहानुभूति करने वाले और उदार थे । इनके लिए यह आवश्यक नहीं था कि वे संन्यासी या ब्रह्मचारी अपना मुही हों । कण्व संन्यासी और ब्रह्मचारी थे<sup>५</sup> परन्तु वसिष्ठ उपनिषद् अस्मन्ती के साथ ही एते हुए अध्यापन किया करते थे<sup>६</sup> ।

चेतन—कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता कि ठीक-ठीक विहित ही था कि अध्यापक या गुरु का चेतन कितना होता था । ऐसी सम्मतिना हो सकती है कि शिष्या की समाप्ति पर जो चितना देना चाहता था वे देता था । उसके न दे सकने पर राजा का कठण्य था कि वह दे । न दे सकने पर शिष्या की दत्तना अपमान नहीं था कितना राजा का<sup>७</sup> । इसी दुरवस्था की चेतन कहा जा सकता है, परन्तु युद्ध निर्णयता के कारण किसी का विरहकार करे और न पड़ाए, ऐसा नहीं होता था । युद्ध शिष्य की व्यक्ति से प्रसन्न होकर उसकी युद्ध-मूर्ति को ही गुरु-रक्षिता समझ लेता था<sup>८</sup> और गुरु भी नहीं सता था । कौत्स स्वयं के पराक्रम से इन सब बातों की पुष्टि होती है ।

१. निरिष्टं कृष्णपतिना स पर्यक्षात्मन्यध्यास्यप्रयत्नपरिवृद्धिर्दृष्टीयः ।

—रघु० १।६

२. अपि सन्निहितीऽत्र कृष्णपति—अग्नि० अंक १ पृ० ६

३. न तस्य तामभिद्रुहो गुरु—विक्रम० अंक १ पृ० २९१

४. निर्णयसंज्ञातस्यार्थकार्यमभिलिखित्वा गुरुनाह्नुयुक्तः ।

वितस्य विद्यापरिणक्या ये कोटीरक्षतता यथा चाहरेति ॥ —रघु० ५।२

५. जनदाम् कण्वं धारयते ब्रह्मणि स्थित इति प्रकाशः ।

—अग्नि० अंक १ पृ०

६. वरप उपोनिषिन् ।

शिक्षा गुरु मंगिता था। अतः वह चाहे कुछ भी  
 था। उससे डारा मंगे जाने पर निम्न को कष्टों-न-कष्टी  
 बलु देनी होती थी। इसी को विद्याविमो को छीउ था  
 मकता है। यह दक्षिणा व्यक्ति और परिस्थिति के  
 होती थी और चाहे तो गुरु नहीं भी लेता था। मुस  
 कभी कोषित भी बहुत होता था। अतः निम्न निम्न  
 भाव से पढ़ाने से और धन प्राप्ति का कुछ समयसे वे।  
 उस मुद्र को बलिषा बहुतर ही निरस्त दृष्टि से देना मया है  
 मकता है। मातृविद्यानिमित्त से आचार्य हरदाम आचार्य  
 गुरु की शिक्षा देते थे परन्तु विद्वत् क कहने के इंग से  
 निम्न आच इन वेदुओं का कष्ट नहीं था इनको बहुत  
 ही बरा। अथवा ही बहुत लेकर पढ़ाना निम्ननीय मयता  
 सम्भावना लगती है।

गुरुशिक्षा में स्वयम्भु १७<sup>३</sup> तथा याया<sup>४</sup> दा का प्रथम र  
 य उनही अपनी ही मयसि ही जानी होती जिसे वे परिस्थि-  
 अपने आधम में करने वाले विद्वत् के ऊपर दृष्ट कर देते होंगे।  
 को रगने के लिए अथवा ही धन चाहिए। इससे अनिष्ट आधमों  
 उपायन के लिए होती या अन्य को व्यवसाय न था। अतः जीवन  
 बनाया का पूरा करने के लिए धन से कुछ दही आदि को  
 स्वयम्भुओं से बोझा-बहुत अन्य और अन्य आवश्यकताओं को  
 जानी होती।

### विद्यार्थी

शिक्षा प्राप्ति की अवस्था—दीक्षा का प विद्या का अ

१. निवर्त्यमन्त्रावगापवापमविश्वविद्या नामावन्त्र ।

शिक्षा विद्याविश्वविद्या म काटीरवगाप द्य वापेति ॥ —रघ०

२. अथ विद्याम् उरगमविश्वविद्या । विद्या वातमाननेयाम् ।

—मान० अथ १ प०

३. हेतु, वापिणी ३ ।

४. अथ विद्यावगापवापमविश्वविद्या नामावन्त्र ।

गवोऽथ वापिणी विद्या नामावन्त्र ।

जाता था<sup>१</sup>। ब्रूम-संस्कार के पश्चात् विद्यारम्भ हो जाता था<sup>२</sup>। अतः सम्मानना यही है कि श्वेत् वय में विद्या पढ़ानी प्रारम्भ कर दी जाती थी। बौद्धा-बहुत वर्णमाता का विद्यना-प्रवृत्ता इसी अवस्था में सोचते थे<sup>३</sup>। आरम्भ में तीन प्रकार की शिक्षा दी जाती थी—भौतिक और क्रियित<sup>४</sup> तथा व्यावहारिक<sup>५</sup>। उपनयन संस्कार के पश्चात् पूरी सीर से पढ़ाई प्रारम्भ हो जाती थी<sup>६</sup>।

विद्याध्ययन की अवधि—बाल्यमें में उपनयन-संस्कार के पश्चात् बालक प्रविष्ट होते थे इसके पूव बालक सिता से भी कुछ सीख सकता था। रघु ने बहुत सी बातों की शिक्षा सिता से ही सीधी थी<sup>७</sup>। इसी प्रकार कुस ने भी विद्या अपने पुत्रों को पढ़ा दी थी<sup>८</sup>। बाल्यमें न बालकों की शिक्षा युवावस्था तक होती थी। ब्रह्मयज्ज्या व्यतीत करने के पश्चात् जब बालक युवावस्था में प्रवेश करता था तभी उसकी विद्याध्ययन की अवधि भी समाप्त हो जाती थी। इसी समाप्ति पर उसका विवाह होता था<sup>९</sup>। राजकुमार जायस जब कबल आरम्भ करने योग्य हो गया तब उसकी शिक्षा समाप्त हो गयी और वह सिता के पास पहुँचा दिया

१ शिशवेऽभ्यस्तविद्यामाम्—रघु० १।८

२ स बृत्तबृत्तचक्रकाकम्पलकैरमप्रवपुर्न सचयोजिरन्वित ।  
छिपेयबाह्वद्गहनेन बाह्म्यं गभीमुल्लेखेन समुद्रमाविधात् ॥ —रघु० १।२८

३ वैश्विष् पात्रिप्पथी म० ५

४ न्यस्ताद्यपमधरमृनिकायां कस्तर्धेन मृष्टाति लिपिन् उपवत् ।  
सर्वानि तामन्त्रं तद्बुद्धोपात्तम्युपाबुक्तं स ब्रह्मणीते ॥ —रघु १।४५

५ ब्यूह स्थितं किञ्चिद्विद्योत्पद्यन्नुत्पद्योर्प्रवितसम्बन्धु ।  
आकममात्तएनबाधयन्वा अवरोधतमवपु विनीयमाल ॥ —रघु० १।५१

६ अपोपनीतं विविधविपरिचिंतो विभिन्पुरेण गुरवे गुरधिपम् ।  
अवन्ध्ययत्तारथ बन्धुत्वेन से जित्या हि वस्तुपक्षिता प्रणीवति ॥

—रघु० १।२६

७ त्वत् स येष्वां परिधाय रौरवीनधिरतात्वं निगुरेव मन्त्रवत् । —रघु० १।११

कर्मविद्यानामवमयविद्याम्बरः ।

यथा<sup>१</sup> । इमं च आन पर तस्यै रिता मे कृता कि पुत्र भव ७ ३ २५ ।  
 ये भव तुम मनुष्याधम मे प्रवेश करो<sup>२</sup> । धृष्टमण और उसकी भगिनी  
 वसुध का जब व आधम मे रहनी थी और जब दुष्टमण मे धृष्टमण  
 पुत्र था कि यह जन्म भर लाभ मे भगवान का आचरण हो बरेमो  
 प्रग बिबाह होने तक ही रहेगा<sup>३</sup> । इसमे भी यही निश्चय निश्चय है ।  
 बरबा सह रिता पत्नी थी । सम्भव मात्र माठ वय मे बार्म-सेम  
 विद्याध्ययन की शक्ति थी । परिष्कृति और व्यक्ति की विभिन्नता मे  
 भी विभिन्न होती । अब कोई नियम नहीं लगता । मनु ने बालकों का  
 मोक्षार्थे वय मे और छत्रियों का बार्मार्थे वय मे कहा है<sup>४</sup> । बालक जब  
 धारण करने योग्य हो जाता था तभी विद्याध्ययन समाप्त कर  
 प्रवेश करता था बहुकर वाकिशम मे भी इसी बात की सम्भवतः पुष्टि की  
 छात्र का वय, गुण और स्वभाव

छात्र-वय—छात्र वय साद वय मे रहते थे । श्रुति मति की तत्त्व  
 पश्यना और कर्म मे योग्यता कोषना इनकी प्रमाण वय भूत थी<sup>५</sup> । इसके  
 रिक्त बालक वय धारण करने के कारण वे फिर पर ज्योत और हाथ  
 पलायन धारण करते थे<sup>६</sup> ।

१ एव योनिरिष्ट आनु सञ्जति बरबहुर मञ्ज । तदेवमे ते मनु न  
 निर्दिष्टो ह्यनितोः ।

—विजय जी २, पृ २

२. बालक वय तस्य वृद्धिमत्तापये । विद्वेदमप्यनितु तत्र मय ।

—विजय जी २ पृ २४६

३. बालक विमता वयमात्रानाम्भारगपि मन्त्र निरविश्रम् ।  
 बालक मन्त्रेणैव विमता विमता विमता मन्त्रेणैव विमता ।

—अभि ११२३

४. बालक बोली वय बालक विदीपने ।

बालक बोली वय बालक विदीपने ॥ टीका मन्त्राव — २५० ११३३

५. तस्य व मन्त्रे विमता वीर्यमन्त्रमन्त्र विमता मन्त्रम् । — २५० २१३३

६. बालक विमता वयमात्रानाम्भारगपि मन्त्र निरविश्रम् ।

विमता वयमात्रानाम्भारगपि मन्त्र निरविश्रम् ॥ — २५० २१३०



## छात्र के गुण और स्वभाव

पाने में छान सम्पन्न कुशाग्र बुद्धि के होते थे<sup>१</sup> । ऐसे ही छात्र धीमता से अपने ज्ञान की वृद्धि किया करते थे । अध्ययनशील और रात-दिन परिश्रम करने वाले विद्यार्थी ही उच्च शिक्षा प्राप्त करने में समर्थ हुआ करते थे । कौत्स ने अपने सेवा और भक्ति से गुरु को इतना प्रसन्न कर लिया था कि उनके गुरु ने उन्हें १४ विद्याएँ पढ़ाई दी<sup>२</sup> । श्रीराधाकृष्ण गुरुजी का कहना है कि विद्यार्थी ३ भाग अपने गुरु से सीखता था ३ भाग अपनी कुशाग्र बुद्धि से ३ भाग अपने सहयोगियों से और शेष चौथाई समय और अनुभव उसे सिखा देता था<sup>३</sup> । वे अत्यन्त प्रयत्नवाक<sup>४</sup> और विनम्र<sup>५</sup> होते थे । अपना ही मित्रता है कोई-कोई अति उग्र स्वभाव वाले भी होते थे जैसे—अभिज्ञानशान्तिनाम् में पाङ्गरथ ।

शिष्य के विविध कर्म तथा कर्तव्य—शिष्य का कार्य गुरु को प्रसन्न रखना था अतः हर प्रकार का छोटे-से-छोटा और तुच्छ-से-तुच्छ कार्य करने को वह शन्तु रहता था । गुरु की भक्ति और सेवा ही गुरु को प्रसन्नता प्राप्ति का साधन था । शिष्य अपने गुरु की आज्ञा चाहे वह किसी भी कठोर तथा न हो टाकने का साहम नहीं करता था । कौत्स श्रुति ने अपने गुरु के आज्ञानुसार कराह स्वयं-मुझाएँ कहीं-न-कहीं से जाकर ही ही दी । गुरु के लक्ष शिष्य के निःप्रत्येक परिस्थिति में मान्य थे । रघुवंशो राजा बलिष्ठ की प्रत्येक आज्ञा का

- १ चित्त समष्टि स बुधेन्द्रारणी ज्ञ्याचक्षतमयचतुरधरोपमा ।  
ततार विज्ञा पञ्च शिवातिमिदिषी हरिदिमर्हिषामिद्वैदर ॥ —रघु० ३।  
—अध्ययनीयग्रहतामुपोषा कुशाग्रबुद्धे कुशलं गुरते । —रघु ५।४
- २ वित्तस्य विद्या परिसंख्या मे कोटीव्यवन्तो दत्त बाहरति ॥ —रघु० ५
- ३ A student learns a fourth form his acharya a fourth own intelligence a fourth from his fellow pupils and the experience.

रिषा करने से । ईश्वर जुटाता समिधा छाता १ समय माण्डूय करना २ गुह्य ।  
आमन होना ३ नृ की अनुपस्थिति म अग्निहोत्र का बाध करना ४  
विष्यों के विविध ब्रम से । जने ही से अपने गुह्य को प्रगल्भ रता करने से ।

मुद्रिष्ठित के लक्षण—ज्ञान और विनय दोनों का योग मुद्रिष्ठित का ।  
या । रिषा की लभो गायकता भी जब ज्ञान के साथ अहंकार का समावेश न  
करती हुई विनय का छात्र म बनाए गये । रिषा आदि मन्त्रारों से मग्न रहना ही  
छात्र की विशेषता भी । रघु का यह विनयशोभना ही सबसे बड़ी विशेषता थी ।

विषय, शिक्षा-विमान—मुद्रिषा के लिए मन्त्र विषयों का पृथक् पृथक्  
समूहों में विभाजन था सचछा है ।

शिक्षा—वातिशम से सब अक्षय्य के विषयों का विद्या १ ही कहा है ।

१ ब्रह्मन्तरादुपलब्धै समितुसाकृन्माहरे ।

पुमानामनुयायि प्रवृत्तादेस्तद्विधि ॥ —रघु० १।४६

२ ब्रह्मोपनिषद्वाग्मिहो विम तत्रमवता प्रशमादुपलब्धन कश्चन । प्रवाचं नि  
तस्मात्तद्विद्यया विप्रवृत्तिरु रज्या इति ।

—अभि० अंक ४ पृ० ११

३ मन्त्रमार्गं यच्छता मगवताः प्रायेण त्रयमामर्गं प्रतिपादित ।

—विष्णु अंक ३ पृ० १६२

४ अग्निहोत्रमंशतानां ग्यातिगोत्रम् । —विष्णु० अंक ३ पृ० १०२

—मन्त्रप्राप्तविद्या रिषा प्रबोधविनयादि । —रघु १०।३१

५ ब्रह्म प्रवृत्तिरनुयायि विप्रवृत्तिरनुयायि भीर्बर्हिनिवाद्युपयत । —रघु० १।१४

—विमर्गमार्गविज्ञोक्त इत्यगोत्रोक्त ब्रह्म यजुरात्र तानामात्र । —रघु० ३।१४

६ विद्याव्यवस्थाविद्यानां —रघु० १।८

—अथाहृदय विद्याविद्यानां गारुडचरन । —रघु० १।२३

—ब्रह्मविद्यानां वाग्म्यानामुपमननं वाग्म्यं ।

विद्यामध्यमेनैव प्रमादविमुक्तम् ॥ —रघु० १।८८

—मन्त्रविद्यानां यथा मार्गविज्ञोक्तोऽनुयायिगोत्रम् । —रघु ३।२०

—विष्णु विद्याविद्याव्यवस्था मे बोधी-चतुष्टयम् । —रघु० १।२१

—मन्त्रप्राप्तविद्या रिषा प्रबोधविनयादि —रघु० १०।३१

—विमर्गमार्गविज्ञोक्त इत्यगोत्रोक्त ब्रह्म यजुरात्र तानामात्र ।

—रघु०, १।८१०

कामिदास के ग्रन्थ तत्कालीन संस्कृति

इस विद्या को नहीं वे तीन प्रकार की<sup>१</sup> नहीं चार प्रकार की<sup>२</sup> और नहीं वे  
चौन्ह प्रकार की<sup>३</sup> कहते हैं। त्रयी विद्या में वैद बार्ता और वंङनीति कहे जाते  
हैं<sup>४</sup>। वेद के अन्तर्गत चारों वेद वेदांग—छन्द मन्त्र निबन्धन ज्योतिष व्याकरण  
विद्या ब्राह्मण उपनिषद् आरण्यक उपवेद म अनुवेद आपवेद स्मृतिशास्त्र  
इतिहास काव्य पुराण सब सिष्ण जाते हैं। बार्ता के अन्तर्गत कृषि तथा व्यापार  
वंङनीति म राजनीति। वंङनीति में सम्भवतः कौटिल्य का अर्थशास्त्र  
का नीतिशास्त्र और उद्यनस् के सुत्र हों। कामिदास ने उद्यनस् का<sup>५</sup> १८०  
में संकेत किया है<sup>६</sup>।

चार प्रकार की विद्या के अन्तर्गत जम्बोसिकी बार्ता त्रयी और वंङनीति  
है मन्त्रिनाथ का ऐसा ही उद्गरण है<sup>७</sup>। जम्बीसिकी में बल्लन तर्क त्रयी में  
त्रयीय बार्ता में व्यापार और वंङनीति में राजनीति जाते हैं। बार्ता<sup>८</sup>  
वंङनीति<sup>९</sup> दोनों का प्रथम कामिदास में है। कौटिल्य के मतानुसार  
माक्य योग और लोकमत है<sup>१०</sup>। कहना अत्यन्त न होया कि हिन्दू २५१०।  
सभी विद्याशा का कवि ने संकेत किया है। मीमांसक का नित्य<sup>११</sup>  
का संकेत 'वागवैविध सम्पुक्ती' में मिलता है<sup>१२</sup>। इसी प्रकार ७ १८१

- १ स पूज्यमन्तरदुष्टपाप समर्पितवान्मेवकरी मुक्त्याम् ।  
तिमन्त्रिबर्वाधियमस्य मलं ब्रह्म विद्या प्रकटीतव विद्या ॥
- २ त्रिय मन्त्र म नुवेददारबी ब्रह्मचरतन्त्रचतुरमवोपमा ॥—१
- ३ निबन्धसञ्ज्ञातस्यापवा र्धमचित्तपिन्वा पुराणप्रमुक्त ।  
नित्यस्य विद्यापरिचक्षणया म कोटीस्वतयो दद्य चाहर्षित ॥ —
- ४ तस्यापिपमस्य प्राप्त्यैमूलं तिस्रो विद्यान्त्रयीवार्तावंङनीति — ।  
—मन्त्रिनाथ टीका
- ५ अघ्याणितज्योत्स्नसावि नीति प्रवक्तरागप्रतिपिदिपस्ते । —३
- ६ जम्बीसिकी त्रयी बार्ता वंङनीतिरथ सारवती ।  
७ पठिहेतव ॥ —टीका

की समाधि में पतञ्जलि के योगसूत्र का आशय<sup>१</sup> और कुमारसम्भव में शिव की समाधि में<sup>२</sup> योगशास्त्र का आशय, जो इसी रघुवंश के राजा थे का प्रथम है के विषय बनकर उनसे योग सीखा या और समार के<sup>३</sup> से। अतः जमिनि के योग का भी मानाना प्रसंग नहीं है।

श्रीमा पहले उल्लेख किया जा चुका है कि जब शीतल का उत्सेह करता है। याज्ञवल्क्य और मनु चौह प्रकार की

- १ विविक्तवागास्तिमिनाशनार्जुनविद्विषाया विरतप्रथमे ।  
नन्तरविस्मयितपदमयास्तद्वीचनघानमधोमयूरे ॥  
—महाविष्णुसमिपाम्बुबाहुमगामिनापारमनुत्तरंगम् ।  
अन्तःकराणा मना निरोपाम्मिनानिष्कम्पमिव प्रणीतम् ॥

—कपालनवास्तरस्तरमार्गार्जुनैः प्ररक्षितं निरस्त ।  
मयास्तुत्राधिकृतोऽनुमायां आत्म्य क्षमी स्वयन्तमिन्दो ॥

—मनो नवगारनिविजगति द्विः कवत्पत्य समाधिबन्धम् ।  
यवतर्हः क्षान्तिने त्रिमुष्ममात्मानमात्मनःकणोदमन्तम् ॥

- २ अविज्ञानिमाय मन्त्रिनिययूजे कीर्तिविगरहीनम् ।  
अवतारिवाप्तमप्य त्वगतं समिनाय योगिनि ॥ —रघु० ८१।  
—न नव प्रमदात्प्राप्तमात्तिपत्रमार्ग निरगम कमल ।  
न न योगविधेमवन्तः स्मिरपीरः परमात्मनात् ॥ —रघु०

—अथ वाचिवाच्योपदेशात्मदिग्वा गमःशान गमा ।  
तमन परमात्म्यार्थं पुरा योगममापिना त्व ॥ —रघु० ८२।  
—अथविष्णुनामनि तां गवाध सुधूममागा निरिहोऽनुमेने ।  
निहातनी मन्त्रि विजिगृह्य वैरां न चर्गाणि तत्त पोरा ॥ —कुमार० १

—धुनागरोनीतिरति तर्गेऽन्तिगृह प्रसंगगतयो बभूव ।  
आत्मनःशानं न हि जानु विना समाधिभेदधरो धरणि ॥  
—कुमार० १

मही मरुत तन्निवाय मनो धनःविष अदिनःशानमा ।  
तत्तवागवागापिगवः योगमशमने कणात् जवमोर ॥

में ऐसा प्रसंग भी है<sup>१</sup> । कवि ने वेदांग<sup>२</sup> शब्द का भी प्रयोग किया है जिससे छन्द व्याकरण विसा उपनिषद् आदि सभी की पुष्टि होती है ।

भगवद्गीता—असर क्षेत्र क्षेत्रज्ञ आदि साराएँ तथा समाधि में चित्त को स्थिर करने वाला योगी बापुहीन स्थल में शीपक के समान रहता है भगवद्गीता में वर्णित है । इसका संकेत कुमारसम्भव में है । चित्र की की तपस्या में इन अक्षरों की—असर क्षेत्रविद् और क्षेत्र<sup>३</sup>—प्रयुक्ति हुई है । उनकी तपस्या भगवद्गीता की बापहीन स्थल में शीपक के समान कही गई है<sup>४</sup> ।

गीता के बहुत-से सिद्धान्तों को प्रतिष्ठामा काव्यास के ग्रन्थों में मिलती है—

( १ ) अतोऽस्मि लोके बन्धे च प्रविष्टः पुरुषोत्तम । ( गीता १५।१८ )

हरिमर्षकः पुरुषोत्तमः स्मृतः । —( रघु० ३।४९ )

( २ ) ज्ञानाग्निं सप्तकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा—( गीता ४।३७ )

इत्येवमहुने स्वकर्मणा नवृत्तिज्ञानमयेन बह्विना । ( रघु ८।२ )

( ३ ) सममुत्सृज्य स्वस्वः समलोष्ठानमकाचन । ( गीता १४।१४ )

रघुरप्यजमवुत्सृज्य प्रकृतित्वं समलोष्ठकाचन । ( रघु० ८।२१ )

( ४ ) नानवाप्तमवाप्तव्यं न एव च कर्मणि । ( गीता ३।२२ )

नानवाप्तमवाप्तव्यं न ते किञ्चन विद्यते ।

लोकानुग्रह एवको हेतुस्ते जन्मकर्मणो ॥ ( रघु १ । ३१ )

इसी प्रकार आत्मा की अमरता भगवान् की महानता अनुपम, अनिर्व्यक्ति अक्षर कर्मयोग भक्ति ज्ञान सब में गीता की शक्ति देखी है ।

शास्त्र—यद्यपि शास्त्र के अन्तर्गत अर्थशास्त्र कामशास्त्र नाट्यशास्त्र

१ यदी विद्वद्ब्रह्मत्येव सममध्यात्मविद्यया —भाष्य १।१४

२ तांगं च वेदमध्याप्य द्विचिहुरज्यस्तथैसवी ।

स्ववृत्तिं पापमामाग कविप्रथमपद्धतिम् ॥ —रघु० १५।३३

३ मनोजबद्धारनिपिद्धवृत्तिं ह्युक्तिं व्यवस्थाप्य समाधिवचनम् ।

यमद्वारं लेखयित्वा विद्वत्सामान्यमात्मव्यवस्थाकर्मणम् ॥ —कुमार ।

प्रातिपदास्व आदि सभी लिए जा सकते हैं परन्तु कवि म  
राजनीति के ही अर्थ में किया है<sup>१</sup> ।

नीतिशास्त्र : राजनोति—राज्य बलान के लिए  
प्रसार को विद्याभा<sup>२</sup> का जानना परमाण्वक था । राज्य  
विद्य प्लुता था<sup>३</sup> । राज्यों का दमन करने के लिए और  
बनाने के लिए साम शम दंड भेद का उचित प्रयोग जानना  
गोटा राज्यों को लगाइ फेंकना<sup>४</sup> गद्दी पर बैठने ही उसको  
लगाइ देना<sup>५</sup> दूसरे का बन्दी छोड़ने से पुत्र अपना बन्धो  
राजनीति का ही अर्थ है । राजनीति<sup>६</sup> भा हकी के अन्तर्गत  
है । दूसरों के साथ छद्म कर और धोखा रहस्य करना काम नि  
नीति है । कवि इस विद्या को पद्यविर्मपान विद्या<sup>७</sup> कहता है ।

१. राजन्यकुष्ठिता बुद्धिर्वाही वनुनि बलता —रघु० १।१६  
—सातनकुष्ठमाह—मात० अक १ पृ २६/

२. नपविद्धितमे राजि गच्छन्वागतिवम् ।  
पुत्र एवमवत्पदास्तस्मिन्नामरदुत्तर ॥ —रघु ४।१०

३. बालक प्रकाशमित्र प्रतिबुद्धहाथे व मे वरम ।—मात० अक १  
४. इति क्षमाध्ययुक्ता राजनीति वनुविद्याम् ।  
आतीर्षाग्रणीकार्ण म तस्या कृत्वाप्यसौ ॥

—रघु० १।१६ १६  
मेवैवमिच्छातिवार्त्तुति जयधीर्बोरमासिमी ॥

—राज० प्रतापमन्त्रपारपीणां तस्य दुस्म ।  
रघो दण्डिस्तस्य गम्यन्मिन्नामरदुत्तर ॥ —रघु० १।१६ १६

५. बालक प्रकाशमित्र प्रतिबुद्धहाथे व मे वरम । तदाउत्तरस्य स्थित्य  
महन्विदममुष्मन्मान बीरगममुर्ग दण्डवत्प्रमाणाय ।  
—मात० अक १ पृ० २६

कविपविष्टिराज्य राज्य प्रवृत्तिवन्तुमुत्तरात् ।  
नवमरोत्कर्षादिपितृवत्तु मुखर गमुत्तुम् ॥ —मात० १।८

बौध्मविर्षं विमुक्ति यदि पूर्य नन्दनं मम ह्यान्म् ।  
माकता मापद्येनरतजो मया वरणागद ॥ —मात० १।९

८. नवीपि तावत्तु तज्जयोत्तरमन्त्रपात्रस्य व दण्डीने । —रघु० १।१६ १६

९. आश्रमन शाश्वतमिति राजा दन्तम्यामार्गं वचनं प्रत्यय ।  
पराजितम्यामधीते इति राजा स गगु विद्याभा<sup>८</sup> ॥ —अमि० १।१६

**दर्शनशास्त्र**—बन्धीकी को व्याख्या करते समय पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि हिन्दू ब्रह्मण्यशास्त्रों के सभी सिद्धान्तों का कवि ने उचित किया है। ब्रह्मिणि ब्रह्मि के सिद्धान्त पदञ्जलि का योगसूत्र और योगशास्त्र के सिद्धान्त काव्यशास्त्र के ब्रह्मों में निहित हुए हैं। सम्प्रति जगत् में एक ही राय भरा है, ब्रह्मा बिष्णु, महेश सब उसी के भिन्न-भिन्न रूप हैं। यह वेदान्त शास्त्र की कल्पना सबसे है। कुमारसम्भव में व्यापारस्थित सिद्ध का जो रूप कवि के द्वारा वर्णित है उससे योगशास्त्र का अच्छा परिचय मिलता है। 'पद्मदुग्ध' और 'वीरासन' आदि भी कवि के द्वारा वर्णित हैं। यही नहीं वैदिक ब्रह्म से भी उनका पूरा परिचय था। रघुवंश में 'उज्ज्व आकाश का गुण है इसकी स्पष्ट व्याख्या है'। यदि सांख्य-सिद्धान्त देखते हैं तो कुमारसम्भव में देखिए वहाँ वे कहते हैं कि आपको ही ब्रह्म अब काम और मोक्ष के लिए मनुष्य को प्रेरित करने वाली मूल प्रकृति कहते हैं और आप ही उस प्रकृति का दर्शन करने वाले चरासीन पुरुष भी माने जाते हैं<sup>१</sup>।

**अर्थशास्त्र**—ब्रह्मशास्त्र की बहुत-सी संज्ञाएँ—प्रकृति प्रथमतः मूल आदि कवि के द्वारा प्रयुक्त की गई हैं, जिन्हें नीतिशास्त्र के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा चुका है। अथर्वशास्त्रकारों ने दिन और रात के विभिन्न विभाग किए हैं इसी के अनुसार राजा की नियमों नियत की हैं। रघुवंश में इसकी स्पष्ट अर्थ व्याख्या है<sup>२</sup>। अर्थशास्त्र के नियमानुसार अग्निविष पुरुषका दुष्प्राप्त की आमात्य परिवर्त की जिसकी सलाह से राजा काम किया करते थे।

**लक्ष्मी-शास्त्र**—आमित्र<sup>३</sup> उज्ज्व संस्व<sup>४</sup> आदि संज्ञाओं के प्रयोग देखकर

१ पद्मदुग्धस्त्रिरपुत्रकायमुज्ज्वार्थं चण्डिमितोद्यमसम् ।

उत्तमपाधिउत्तमसन्निवशात्पुस्तकरात्रीमिषाकमप्ये ॥ —कुमार० १।४५

२ वीरासनैष्यन्निनुषामुपोषाममी समप्यासितवैरिमप्या ।

निवस्तनिष्कम्पतया विमानि योषापिक्ता इव पाणिनीयि ॥—रघु ११।२२

३ अवात्मना चन्द्रमुखं मुञ्च परं विमानेन विगाहमान ।

रत्नाकरं बीजं मित्रं स जायां रामाविजानी हरिहरपुत्राव ॥—रघु० ११।१

४ त्वामामनन्ति प्रवर्ति पुरपात्रप्रवर्तिनीम् ।

उदरिणमशानीनं त्वामेव पुर्यं विदुः ॥ —कुमार० २।११

इस विषय के अस्तित्व को स्वीकार करना पड़ता है ।  
 लिए भी कवि इस शास्त्र के धर्म और सिद्धान्त लेता है ।  
 की तरह लोगों का भाव करने के लिए उद्यम हुआ ।  
 बड़ाई करने वाला राजा राज्यवा दिना को बग्न करता  
 और बचाकर मदन म रंकर क लीबन म प्रवेष्ट वि  
 उत्तराश्वत्थुमी मज्जन से जब योग हुआ है तब मैन मुष्ट ॥  
 म सुतामिन स्त्रियां ने पागलों के कम गुण ३ । इसी प्रकार  
 पूवराति पर आता है ४ आदि सिद्धान्त रोहिणी मग्न ५ बिना  
 सभी इस शास्त्र की संज्ञाओं कवि ने अपने भाव प्रकाशन प्रकाश  
 प्रयत्न की । पुनश्च मग्न के समान रामचन्द्र और लम्बन  
 जीते बर्ग के इस मग्न में छूटता हुआ गुण बलि को घूम  
 अतिविगल्ब करन वाले लक्ष्मियों के आधमों म टिप्पण हुए  
 की भार बने ८ । य उपमाएँ उगरोवन कपल की पुष्टि करती है  
 पर न कहते हैं कि निमग्न चन्द्रबिम्ब पर पड़ी पत्नी का छाया का

- १ महात्माधर्मरोहीषस्तारवाग्यो महागुरु ।  
 उपज्जयाय सोतानां धर्मोत्तुरिबोत्थित ॥ —गुमार० २।३२  
 २ वृष्टिप्रपातं परिहृय्य तस्य काम गुरु लक्ष्मिप्रपात ।  
 प्रमोद संमन्त्रममेग्यातां ज्ञानाभ्यासं भगवतेरिबेत् ॥  
 ३ मैन मुष्टं पाताद्यनन मीयं गगामुत्तरकृत्तुनीयु ।  
 लम्बा घटीरे प्रतिभम बज्रवग्नित्तिवा वा पत्रिनुनरत्न ॥

४ मानवाचारको रागिनिशानुषङ्गं प्रतिममनं न वराति ।

५ एव शक्तिं नवीनेवापि गोमते भगवान् मग्नमदन ।  
 —मा० अंक ३ पृ०

६ विष तत्ताद्विनीयं विषयधोमग्नं लोका विगागावति ६४ ॥  
 लमुत्तरिबो रात्रि । —विजय० अंक १ पृ १६१

७ श्री विदेनमपीनिका ना लक्ष्मि १ व पुनश्च —ए० ११।१६

८ प्रयत्नासाधयन बगन् कृत्तुग्न म  
 लक्ष्मि विगागाव वि विदेन भावक । —ए० ११।१६



का कर्त्तक कहते हैं<sup>१</sup>। नक्षत्रों में उन्होंने बुध और बृहस्पति<sup>२</sup> को भी नहीं छोड़ा। उपराधाष्टे सवित्र समुपमता राहिणी योगम्—यमि ७।२२। चन्द्रपूणिमा के दिन सायर में प्यार जाता है—‘चन्द्रप्रबुद्धोमिषोर्मिमाक्षी — (रघु ५।११) ‘चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुपति — ( कुमार० ३।१७ ) सूर्य की प्रभा ही संधार को जीवनदान कर्यो है—‘लोकेन चैतन्यमिषोप्यरसे ( रघु० ३।४ ) सूर्य की किरणों से ही चन्द्रमा में ज्योति जाती है— करेन भागोबहुकावसाने सन्बुद्धमामेव सदाकरेखा — ( कुमार ७।८ )। इसी बात को २० • शप बाव अद्वितीय कवि सीधी ने सिद्धा—

The moon had faded exhausted form at the sunset's fire

नात्यज्ञात्—विक्रमोद्योत में कवि ने मरुतमुनि-प्रणीत नाटक का नाम किया है<sup>३</sup>। मालविकान्गिमित्र के प्रथम अंक में पद्माग जमिनय<sup>४</sup> छत्तिक मुरय<sup>५</sup> कुमार चम्पक में पिब-वावरी के विवाह के परचात् रङ्गार जादि रसों वाल्म और सन्धिया से युक्त अष्टराजों द्वारा खका गया मल्लक वाट्यसास्त्र के विस्तृत परिचय की पुष्टि करता है<sup>६</sup>। इसमें सन्धि बृत्ति रस राग सभी संज्ञाओं के नाम आए हैं।

भौतिक-शास्त्र—भौतिक-शास्त्र के बहुत-से सिद्धान्तों का प्रतिपादन काव्य-शास्त्र के प्रश्नों में मिलता है अतः यह विषय उस समय प्रचलित अवसर होगा। एक स्थान पर कवि कहता है कि सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी का अन्त छेद लेता है और सहस्र गुना बरसा देता है<sup>७</sup>। अन्यत्र इसी सिद्धान्त को पुनरावृत्ति कुमार सम्भव में है—नदिवी नरमी में सूर्य की किरणों को जल पिना कर छिछकी हो

१. अथा हि भूमे सवित्री मल्लवनारोपिता शुद्धिमत् प्रजामि ।

—रघु० १।४।४

२. शोपातर्न बुधबृहस्पतियौबबृहस्पतारापतिस्तरकमिषुरिवाभवन्मम् ।

—रघु० १।१।७९

३. तस्मिन्पुन सरस्वतीवृत्तकाम्यकान्ते नरमीस्वयंवरे तेषु तेषु रमान्तरे तमयी जासीत् । —विक्रम० अंक ३ पु० ११२

४. रैव शनिप्रया कृति चतुष्पादोत्पन्नं छत्तिकं बुधप्रयोग्यमुदाहरन्ति ।

—मात० अंक १ पु० २७८

५. इरानीमेव पद्मापारिकचमिनयमुपदिश्य यया विद्यम्यतामिषमिदृता दीपिका

जाती है जहाँ नदियों में वर्षा आने पर बाढ़ आ जाती है<sup>१</sup>। यह परिस्थिति का पुनः रघुसेन में वीरता है<sup>२</sup>। धुएँ, अधि बल से ही भारत को शक्ति होती है<sup>३</sup>। पहली वर्षा को शक्ती यही गरम। बंगल की लकड़ी की आग जाहे पृथ्वी को जला दे पर पृथ्वी को बना देती है<sup>४</sup>। आदि बातों से उनके भीति-शास्त्र-सम्बन्धी ज्ञान परिचय मिलता है।

पश्चिम ज्योतिष शास्त्र—मानविका के विषय में एक साधु ने में होने वाली बातों व्यक्त की थी कि इसे एक बार ठक दासी ५ + पड़ेगा पर इसके बरवान् बड़े योग्य पति से इसका विवाह हो जायगा<sup>५</sup>। भविष्यवाणी पुरी हो गई थी, अब इस शास्त्र के अस्तित्व की भी पुष्टि है।

काम शास्त्र—कर्मवर्ति का अनुष्ठान को उपदेश वास्तव्य के से बहुत मिलता है। अमित्रानुष्ठान के प्रथम अंश में सप्तियों की से शत्रुकोट अनुष्ठान की सग्रा बहुत कुछ कामधूत के 'क' का अमिकरण आधार पर है। इसमें यह बताया गया है कि सग्रा-नरका को आने प्रियतम से रिक्त प्रकार बोलना चाहिए। 'उनको चाहिए कि सगियों द्वारा प्रियतम से सम्भाषण प्रारम्भ कर। चार्त्तान के मध्य में कमी मिर गुना कर स्थित हास्य बदे। सग्यों के व्यंग्य करने पर हो और उनके करने पर कि 'मायिका ने मुझसे ऐसा कहा है अस्वीकार नहीं करी आगे भी कहा गया है कि प्रियतम शत्रु उत्तर की याचना ६ भी मुग से एक गन्ध भी न निकाले और यदि कुछ निकाले भी तो बहुत है। प्रियतम को देन कर मन-बटान केके और स्थित हास्य बदे। अनुष्ठान में इसको बहुत कुछ जाना है। अब और अनुमती की

१. रविनीरजमा तारावसे पुनरोपन हि युगसे करो। —गुमार० ४४४

२. वम दधनकभरीचनोत्प्राद्विभवाजनने बधुनि। —रघु० ११४

३. धूमग्रीकिमिन्नमग्नां सन्निगत का मेघ —मेघदूत पृथ्वी ५

४. बाले बाले धवनि धवती गरज संयोगमेव

रनेगगिनिचरविह्वलं मुंजनी दानमुनम्। —सूक्तमेव १२

—सग्रावसे आदिमिद्विज्ञा नैमिश मरीम्भाषयमुबुध्याम्।

—गुमार० ५

५. इति दाम्नि सगु विविदिषनेडो बीररोजनी मन्त्र करोति।

—रघु० १

१. मन्त्र० अंक ५, पृ० १२१।

का कर्मक कहते हैं<sup>१</sup>। गलत्यों में उन्होंने बुध और बृहस्पति<sup>२</sup> को भी नहीं छोड़ा। उपरमाप्त्ये शयित समुपगता रोहिणी योगम्—अभि ७।२२। चन्द्रपूर्णिमा के दिन साबर में ज्वार खाता है—‘चन्द्रप्रवृद्धोर्मिरिबोर्मिमाक्षौ (रघु ५।११) चन्द्रोदयारम्भ इषाम्बुराक्षि—( कुमार० ३।१७ ) सूर्य की प्रभा ही संधार को जीवनदात करती है—‘लोकेन र्ततन्यमिबोम्बरस्मे (रघु १।४) सूर्य की किरणों से ही चन्द्रमा में ज्योति आती है—करेण मानोबहुसावधाने सन्बुध्यमानव मसोकरेवा’—( कुमार० ७।८ )। इसी बात को २००० वर्ष बाद अंग्रेजी कवि टीली ने लिखा—

The moon had led exhausted form at the sunset's fire

नाट्यशास्त्र—विक्रमोबधीव में कवि ने मरुतमुनि-श्रणीत नाटक का नाम दिया है<sup>३</sup>। मातृमिकालिमिश के प्रथम अंक में पचाय अमिनय<sup>४</sup> छलिक नृत्य<sup>५</sup> कुमार सम्मन में शिव-पावरी के विवाह के पश्चात् मृगार आदि रसों बाधा और सन्धिपों से युक्त अन्तराओं द्वारा कला तथा नाट्यशास्त्र के विस्तृत परिचय की पुष्टि करता है<sup>६</sup>। इसमें सन्धि भुक्ति रस राग सभी संज्ञाओं के नाम आए हैं।

भौतिक-शास्त्र—भौतिक-शास्त्र के बहुत-से सिद्धान्तों का प्रतिपादन कालिदास के ग्रन्थों में मिलता है, जहाँ यह विषय उस समय प्रचलित अवस्थ होगा। एक स्थान पर कवि कहता है कि सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी का बड़ा छोट छोटा है और सूर्य पुनः बरछा वेता है<sup>७</sup>। समग्र इसी सिद्धान्त की पुनरावृत्ति कुमार सम्मन में है—नदिर्वा गरमी में सूर्य की किरणों को जल पिघा कर छिस्सी हो

१ छाया हि भूमे शयितो मकरवेनारोपिता सखिमत् प्रजामि ।

—रघु १।४।४

२ शोपातनं बुधबृहस्पतिपोगबृहस्पतारापतिस्तरछविभुविभाप्रबृन्दम् ।

—रघु० १।१।७६

३ तस्मिन्नुत शरस्वतीकृतकाव्यबन्धे लक्ष्मीस्वर्बधरे तेषु तेषु रगान्तरे तन्मयी जातीय् । —विक्रम अंक १ पृ० १६२

४ रेव धर्मिष्ठया इति चतुष्पादोत्पन्नं छलिकं दुष्प्रवीज्यमुद्राहस्यम् ।

—माक अंक १ पृ २७८

५ इरानीमेष र्धनामादिकनमिजयमुपचितस्य मया विधम्यतामित्यभिहित्वा वीरिंका-

बाजी है। जन्मी नियों में बर्षा जाने पर बाढ़ का परिणतिव का पुनः रपुर्बस म सीमता है<sup>१</sup>। अर्ध, मे ही बारत की मृष्टि होती है<sup>२</sup>। पहली बर्षा की हाड़ी अंशतः की लकड़ी की बाग बाहे पृष्ठी को जला दे पर बना देती है<sup>३</sup>। आदि बाओं से उनके भी परित्यक्त मिश्रता है।

फलिग ज्योतिष-शास्त्र—माउविष्ठा के नियम में ५ में होने वाली बाओं जस्त की जो कि इसे एक का एक पड़ेना पर इसके पचास बड़े योग्य पति से इनका विवाह २१ मविज्यावायी पूरी हो गई की अतः इन शास्त्र के अस्तित्व की

काम-शास्त्र—रघुमुनि का रघुमुखा को उपदेश है बहुत विच्छा है। अविमानागुन्ततम् के प्रथम अंक में से बागकोट रघुमुखा को लग्ना बहुत-बुछ कामपून के अधिकरण आपार पर है। इसमें यह बताया गया है कि लग्ना का करने नियतम से जिस प्रकार बाधना चाहिए। 'उसको सगिनों द्वारा नियतम के सम्मानप प्रारम्भ कर। बाधना के सभी फिर मुका कर नियत हास्य करे। मन्त्री के अंग करने हो और उसके कहने पर कि 'बाधिका ने मुझसे ऐसा कहा है, यो नहीं आवे भी कहा गया है कि 'नियतम हाथ उठार की भी मुग से एक हाथ भी न निकाले और यदि कुछ निशाने भी लगे हों। नियतम को देग कर नन-नटात्र के और स्थित हास्य कर'। रघुमुखा में इसको बहुत-बुछ छाया है। अतः और रघुमुखा की

१. रवितीयन्ता तत्तागये पुनरोपेन हि मुग्गते मता । —तुमार० ४१४  
 २. यम रघुमुखा मरीचनीयमाविच्छिन्नमात्मनो बभूवि । —रघु० १३४  
 ३. बुधरोतिमतिमयस्तां सन्निगात का मीन —मपहुत पृथमेप १

४. बाधे बाधे मन्त्रि मन्त्री यस्य संपोगमेय  
 सन्निगातमिच्छतिरिच्छते मुक्ता बाधमुन्नाम् । —तृथमेप १२  
 —तत्तागये बाधविच्छिन्ना नर्तमुखा अन्तेमानमर्मुक्ताम् ।

५. इति रघुमुखा यम विप्रिमिषनेजी बीजप्रतीकननी अन्त करीति । —तुमार० ५१३  
 ६. बा० अंक ५, पृ० १३१ ।

काविरास के ग्रन्थ उत्पत्तीन संस्कृति

का बचन कवि ने कामसूत्र के अनुसार ही किया है। अग्निमित्र को इरावती ने कामतन्त्र-सचिव कहा है<sup>१</sup>। विवाह अध्याय के ही कामशास्त्र के बहुत-से सिद्धान्तों की पुष्टि की जा चुकी है।

धर्मशास्त्र—व्यसस्तन के अनुसार मिमंसातन मनुष्य का जन २। दिखा दिया जाता है। इसका संकेत अग्निमानवाहुत्तसम् म है। जिस का क्या बन्ध मिलना चाहिए, रघुवंशो राजा यह बात मछी भाँति जानते

इतिहास—मालविकाग्निमित्र म पुत्रमित्र का देनापति की पदवी रखना और नरबन्धन बन्धन करना आदि लक्ष्मणविक्रम बाँटें हैं। वात्स्योकि पुण्य आदि का भी ज्ञान कवि को है अतः इतिहास विषय अवश्य तब समय होया। उक्तुत्तला में इतिहास सत्तर वा प्रयोग आया है<sup>२</sup>।

भूगोल—भूगोल भी शिक्षा के विषयों म से एक था कुमारसम्भव समय में बहुत इसके छात्रों हैं। हिमालय पर्वत का सांगोपाग बन्धन<sup>३</sup> के किनारे केसर की उत्पत्ति<sup>४</sup> बंगाल के बालि धाम<sup>५</sup> इतिहास म ठामपठ के तीर पर मोठियों के कारजाले<sup>६</sup> मगर बचन अलकापुरी ठरु की यात्रा पर्वत नदी पर्वत पर रात्रि के समय ओपधियों का चमकना<sup>७</sup> आदि इसके पुष्ट प्रमाण हैं। इतिहास विद्या में समुद्र के किनारे सुपारी के वेद<sup>८</sup> मन्त्रपाठ

१ इयमस्य कामतन्त्रसचिवस्य नीति । --माण्ड० अंक ४ पृ ३३५  
२ राज्यामो तस्यापठनस्य इत्येतदमारवेम लिखितम् ।

३ यथापरापञ्चानाम् --रघु० ११५  
४ मातुली इतिहासनिबन्धेषु कामयमानानामवस्था भवते तावुली ते पस्यामि । --अग्नि० अंक ५ पृ १२१

५ विगीताम्भममस्तस्य विपत्तीरविष्यते ।  
६ पुपुषुर्वाजिन एकवास्तव्यपुटुमकेगराम् ॥  
७ आगाराधममपता

की तराई में जाती मिष<sup>१</sup> आदि कवि के भौगोलिक  
की विविध और मधुर भूगोल के मधुर उदाहरण  
व्याकरण—रघुवंश प्रथम मण के प्रथम दसोह

बाग्यप्रतिपत्तय तथा दाताविमलान्न (रघु० २।१३) ॥  
कवि के समय में दग्धा का दृष्टिमान और उतना उन्नति  
में लगे । एक स्थान पर वर-रघु का मिष्ट कवि प्रकृति ॥  
बना है<sup>२</sup> । रघु<sup>३</sup> अत्र<sup>४</sup> और विषय नामों की उन्नति  
॥ । दग्धा की बोरता की प्रार्थना करने हुए कवि बना है ।  
गोले मेला बज गयो रघु बड़ बड़े ही बरब यो मैने इ  
उलग । मर व्याकरण यो विद्वत् विद्वत् हावा<sup>५</sup>

सिद्धा—उदात्त अनुदात्त दग्धा उदात्त आदि के  
एक और रघुवंश में प्रथम है ।

काव्य—पानिनीय आदि कवि वाष्पीक के प्रथम है ।  
को स्थानों पर आता है । कवि के सभी बचाने पुनः ने जिन

१ बर-रघुविनामस्तस्य विविधोपागतायन ।

मारीबोद्धमात्परोना मकराभ्युपगता ॥ —रघु ४४६

२ गो-मकररघुममायम प्रत्ययवृद्धिप्राप्तमन्त्रिभ ॥ —रघु १११

३ धनरा वागदमन्त्रममन्त्रवा परेण कवि कवि पाविष ।

मन्त्र वागमन्त्रममन्त्रमन्त्रवा परेण कवि कवि पाविष ॥ —

४ काव्य मूर्ति तिल तस्य इती कुमारवत् गुण कुमारम् ।

का विना कथय एव नाम्ना समामन्त्रमानमन्त्र कथार ॥ —रघु०

५ मर गगु विषयान्नि स्वम् । —प्रमि० भव ( १ १३

६ राकाणांनुत्ता मेला सम्यापनिद्वय ।

परवाण्यनापन्त वागीरवित्राभरत् ॥ —रघु० १५६

७ उदात्त प्रत्यय वागां व्याजनिमिषोत्तम् ।

कम यत्र कर्त्त राग्यताम् तत्र प्रमो निद्वय ॥ —कुमार० ११२

८ कुप्यन्त कील्यन्त बन्ध्यातगमोत्ता ।

बभूव कृतज्ञवारा कवितायव भागा ॥ —रघु० १०१६

९ मरता कृतज्ञवारी बंटे-विद्वत्पूतपूतिभि ।

दगो बयममरकोपे गुरव रणि मे र्त्त ॥ —रघु ११४

—मार्त्त य बयममरकोप विविद्वत्पूतपूतिभि ॥

रानि रानि कविपदा-विम ॥ —रघु० १५१३

पुराण भी उस समय पढ़े और पढ़ाए जाते होंगे । राम और  
जानकी हुए निरालसिन मार्ग में उन्हें अनेक कष्टानिर्वाह घुमाते जाते हैं<sup>१</sup>  
के ही कथानक होंगे । प्राचीन कवियों और उनके काम्यों का ज्ञान  
कठना जाता होगा । स्वयं कवि अपने पूर्वजों भाग सीमित,  
मान लेता है<sup>२</sup> ।

### टेक्निकल शिक्षा ( Technical Education )

अपवेद : आमुर्वेद—मातृशिक्षाविधि की कौटुम्बिक आवश्यकता -  
उसने सौप काटे का इस्तेमाल बताया है कि या तो उस धंग को काट  
या ब्रह्म देना चाहिए अथवा ब्रह्म में से सहु निकाल दिया जाए तो प्राणी  
बच जाते हैं<sup>३</sup> । रघुवंश में कवि उपमा देता है कि रघु कुशों का वसी  
परिस्थान कर देता या बीसे सौप से वसी जैयसी काट ही जाती है<sup>४</sup> ।  
मठमाके अनुष्ठान को मिथी और भी उत्पन्न कर देती है<sup>५</sup> ।

अनुर्वेद—अंगुष्ठ<sup>६</sup> अक्षर<sup>७</sup> अक्षर<sup>८</sup> अक्षर<sup>९</sup> और अक्षर<sup>१०</sup>  
की गही मारना चाहिए<sup>११</sup> हाथियों को एकत्र करना<sup>१२</sup> राधा की कुद  
आदि अनुर्वेद के विषय हैं ।

१ पुरुषोत्तमविधिं पुरुषविदं तानुव पितृवक्तव्यं उपपन्नम् । —रघु० ११।

२ प्रवित्तवधत्तां मातृशिक्षाविधिविपुलारीनां प्रवर्तमानविधिम्य अर्थ  
काव्यशास्त्रस्य क्रियायां कर्म अनुष्ठानम् ।

—मातृ० अंक० १ पृ०

३ कथो रघुस्य बाहो वा वीर्या रक्तमोक्षणम् ।

एताभि बहुमानाथामावुष्या प्रतिपत्तय ॥ —मातृ० ४।४

४ रघुगो वृत्तं शिरोऽप्यागीर्षुलीनीरणसता । —रघु० १।२८

५ बभूव एतत्पुत्रं सीतुपानीरोहिण्यस्य मन्त्रम्

## सैनिक-शिक्षा ( Military Education )

धनुषिणा तथा अन्य शस्त्रों की शिक्षा—धनुषिणा तथा धनुष-संचालन धनुषियों की शिक्षा का मुख्य अंग है। धनुषियों का काम रसा करना था। उनके हाथ में रास धनुष रहता था जिस से किसी भी अवस्था में युद्ध नहीं कर सकते थे<sup>१</sup>। इसलिए धनुषिणा शिक्षा का मुख्य अंग था। रघुबीरजी सभी राजा धनुष ज्ञान में निपुण थे। राजा शिशुग धनुष ज्ञान में अतिथीम थे<sup>२</sup>। रघु की शिक्षण उनके धनुष-संचालन की योग्यता की ओरक है। अत्र भी स्वयंवर से सीटकर सब राजाओं से यज्ञ करते हुए विजयी हुए। बलरघ का पिछाना बहुत था<sup>३</sup>। अकबुमार हमी बरण नहीं बच सका। राम का धनुष छीड़ना राम पवन मुक्त उनकी रण-दरता का छापी है। राजा मुद्रार्थ छोट ही से पर बास्यावस्था में ही धनुष ज्ञाना छीट गए थे<sup>४</sup>। बालिषाम का ऐसा कोई अन्य नहीं बही हम बिद्या का अतिरिक्त न हो। पुरुषा का उबधी-उद्धार, दुष्पण का मातृधरता के हित धनुष-ज्ञान उठा देना मालविजानि में अमुमित्र की विजय इसके आग्रस्यमान उदाहरण है। विजयोधीय में आवुष ने हम बिद्या का धलीमंति अध्ययन बिद्या का। 'गृहीतविद्यो धनुर्वेदभिबिनीत' हमका पुष्ट प्रमाण है।

धनुष के अतिरिक्त अन्य धनुष भी थे। हम धनुष<sup>५</sup> धनुष<sup>६</sup> धनुष<sup>७</sup> धनुष<sup>८</sup>

१ कुमारवागमर्ममंजलि बद्धा प्रमति । —विजयो० अं० १, पृ० २४५

—मानु० क० धनुषिण हयम् । —रघु० ११५४

२ धनुषेधुषुटिता बुद्धिर्भीषी धनुषि जातता । —रघु० १११९

३ रघु० अं० १ अंगूथ ।

४ धनुष रिपत रिम्बिदिषोत्तपमुम्बद्धोर्ध्वचतनधनुः ।

बाहर्धमारुहमवागमन्वा धनुषजान्नेषु रिनीयमानः ॥—रघु० १८११

५ विजयो० अं० ५ पृष्ठ २४५ ।

६ विजयो० अं० ५ पृष्ठ २४५ ।

७ धनुष विषेध धनुषाय धनुषा धनुषि धनुषम् ।

धनुषधनुषी धनुषीधनुषीधनुषी धनुषी ॥ —रघु० १२१०३

८ धनुषेधुषुटिता बुद्धिर्भीषी धनुषि जातता । —रघु० १११९

९ धनुषेधुषुटिता बुद्धिर्भीषी धनुषि जातता । —रघु० १११९



## काष्ठिवास क शब्द उत्काशीन संस्कृति

परिम<sup>१</sup> मुद्गर<sup>२</sup> धुरप्र<sup>३</sup> भस्म<sup>४</sup> यथा<sup>५</sup> दातनी<sup>६</sup>, छ-  
द्यान्मभी<sup>७</sup> के नाम लिए जा सकते हैं । समय-समय पर  
ऐसे जाते थे<sup>८</sup> । यत्र पठ कर मरुत फेंकना भी शक्यो सिद्धाया  
इमे वन्द्यर्हसि<sup>९</sup> मोहनाम्न<sup>१०</sup> और ब्रह्मास्त्र<sup>११</sup> के नाम लिए  
हैं । ब्रह्म और विषीके मन्त्रों<sup>१२</sup> का भी प्रयोग हुआ करता था ।

बाय कई प्रकार के थे किन्तु मे कंड का पर<sup>१३</sup> और किसी में मोर

१२ पादपात्रिष्ठ परिम घितानिपिष्टमुद्गर ।

अतिघट्टनमसम्पाद्य संलङ्घयन्तर्गतम् ॥ —रघु० १२।७१

३ प्राप्नो विपानपरिमोक्षकवृत्तमोयान्ब्रह्मास्त्रकार नृपतिर्निधितं धरती

—रघु ८

—य मुक्तावृष्टिं राक्षसोपरस्तत्र तत्र विधत्त मायया ।

तं ह्युरप्रदक्षतीकृतं कृती पतिव्या अपमवशाभमावृद्धिः ॥ —रघु ११।

४ मस्कारार्जवतैस्तेषां घिरोमि दममुन्महीम् । —रघु० ४।६३

—तस्तार भी मस्मनिकतकृष्टं कुंभारगर्भविपता घिरीमि । —रघु० ७।५

—यमघानुरित प्रवर्तितारव ब्रह्मिशकमदिकल्पस्तद्वी —रघु० १।६

५ धरती यथाभ्यामवसग्रहारी घन्नापुत्री बभ्रुविमहनिष्ठी —रघु , ७।१२

६ अयं पंडुभिर्ता रत्न दातनीमव दातये ।

हृता ईदम्बतस्येव ब्रह्मास्त्रमितिपत् ॥ —रघु० १२।६५

७ बरिबन्धिपत्तह्मवृत्तीतमां घती विपानप्रमुतामुपैत्त —रघु० ७।११

८ वेतिष्ट पादपिण्णी नं० ६

९ नारायणेपनीयाधमयिष्योपोत्पत्तितामम् —रघु० ४।७७

१० मातृवधमर्षं बुभुमास्त्रजाय प्रस्थापनं —

११ सम्मधुनं नाम मन्त्र

सगा रहता या अथवा अथ बिमी भा पयो वा पर । कोई सीप की तरह होता  
या १ कोई अथवा भी तरह २ । कोई-कौन प्रकाश निकालता हुआ बहता या ३ ।  
जिन्ही पर नाम गुरु रहता या ४ ।

सेवा ॥ कई विभाग थे । पैरल १ पुष्पधार २ रथ ३ हाथी ४

- १ तवाग्रात्मन्मित्रमिच्छमैनिर्धं यस्मिन् सीविश्यामिहसुतै —रघु० ३।१७
- २ रघु दागांरापमुग्धं पतिवत्ता दारामनश्चामन्नादिबहोभय —रघु० ३।१८
- ३ महीधराप्यरोगाविष्टं सुगन्धमामन्मन्त्रमारहे । —रघु० ३।१९
- ४ बानागरीरेव परमन्त्रं नामोदितं चापमुनं ददधु । —रघु० ३।२०  
—नामाकरावगजराजिनवधु ॥ —रघु ३।२०३  
—निवेद्यमानं मधुद्विरेकाभ्यामागताय मनीमवस्य । —कुमार० ३।२१  
—मुने दक्षिणध्वजे-बाहिने स्वनामविज्ञं निजगान मानवम् —रघु० ३।२२  
—उपधीगन्महापाननेयमुनापनुमन ।
- कुमारस्याप्यो बानं ग्रहणं द्विद्वयम् ॥ —विष्णु० ३।२३
- ५ पतिं पशति रविर्न रघेःपुत्रगणां नुरपाधिपम् ॥  
पन्था मन्त्रस्याप्यनन्तं मन्त्रं नृपुत्रनिर्दिष्टं वज्रं यत्नम् ॥ —रघु० ३।२४
- ६ मन्त्रमनुमुत्तमस्य पारशार्यैरप्यमापते ।  
पांगवृत्तिर्निरुपपत्तिनाथे रजस्यभुम् ॥ —रघु० ३।२५  
—तदा गौरीमुदं दन्तामरीहाधमायन ।  
वधपन्निव तन्वत्तानुदुषूनर्पातुरेयधि ॥ —रघु० ३।२६
- ७ रघु—हेगिरु पाशस्त्रिणी नं ३  
—कुन पुन मृगनिर्दिष्टायां हस्तमन्त्रं रघुर्निर्ममदम् ॥ —रघु० ३।२७  
—द्रुतातोप तन ददं परमन्त्रमन्त्रम् ।  
मयो पन्थापारीति चतु र्वध्वं मा वम् ॥ —रघु० ३।२८  
—न प्रमेहे म र्वावधपारादुदितम् ।  
रघुमन्त्रोप्यनन्तं कुन एव पन्थिनीम् ॥ —रघु० ३।२९  
—इति विष्ठा त्रिा विष्णुवधन र्वाद्यम् ।  
रत्रा विष्णुमन्त्रां हस्तमन्त्रं मन्त्रम् ॥ —रघु ३।३०
- ८ हाथी—हेगिरु पाशस्त्रिणी नं ३  
—रत्रा विष्ठा त्रिा विष्णुवधन र्वाद्यम् ।  
परमन्त्रं मन्त्रं कुन एव पन्थिनीम् ॥ —रघु० ३।३१  
—द्रुतातोप बाहिर्गन्धमन्त्रम् —रघु ३।३२  
—रत्रा विष्ठा त्रिा विष्णुवधन र्वाद्यम् ॥ —रघु० ३।३३

कालिदास के ग्रन्थ सरकासीन संस्कृति

नीतिना<sup>१</sup> । अतः प्रत्येक प्रकार की यतिविधि अर्थात् नीति यज्ञस्यार को चाहिए, नीति हाथी पर बैठ कर आदि-आदि भी अवश्य सिखाया जाता २

कालिदास ने सेना का वर्णन करते हुए छह प्रकार की सेना का ५ ।  
है<sup>३</sup> परन्तु ये प्रकार सब पैदल आदि की तरह नहीं हैं । सेना कितनी भी कितनी अस्थायी सेना की बुद्धि किस प्रकार होती भी आदि-आदि ही स्पष्ट होता था । जो भी हो इससे इतना अवश्य निष्कर्ष निकाला जा सकता है सैनिक-विद्या का उस समय प्रकार था ।

### छलितकला

संगति—संश्लेष के दोनों प्रकार कंद्व बाण और मृत्यु का उत्प्रेत कवि ने किया है । अभिज्ञानशाकुन्तलम् की प्रस्तावना में पाया हुआ भीत इतना सुन्दर था कि सब ब्रेक्षक उसमें लक्ष्मी हो गए थे । इसी प्रकार हंसपरिका का उल्लासना मरा नीत सब और कुछ का रामायण-नाम आदि इस कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं । पावती के मुख से विपुल-विजय के भीत सुनकर किन्नरियाँ बाँसू बहाती थीं । मूच्छना यन्त्रि बन्धपरिचय पद्वि नव्यम आदि संज्ञाएँ भी यनात्मान प्रयुक्त हैं ।

१ नीतिना—ईशानुराग्य सरसा मेता नीतिमनोयतान् ।

निचलाज अवसर्गमाभ्यन्तरोत्तमोत्तरेव च ॥ —रघु० ४१११

२ पद्विर्ब बलमाराम प्रवस्ये विजिगीषया —रघु० ४१२६

—स मुसलां बलानां च पक्षां बन्धुतविक्रम —रघु० १७१७

मस्तिमान की टीका के अनुसार ६ प्रकार—मीका भूत्या येवम  
मूखर त्रिपद भाटविका ये ।

मीका —दृग्बहुल के व्यक्ति और जिसके वहाँ यह वेद्या बलीनी (बोक्ती) था ।

मूखा —बैतनमीनी ।

मूखर —विश

बाघ में मूर्तग बोधा बड़ी भावि की शिला सचयिय होगी। इन्धुमती सल्लिखनाओं की शिला अपने पत्ति से लिमा करती थी। यश-भस्मी का बीजा बारन यश की बिजु में पाव आता है। प्रातःकाल स्वरा के आरोहावरोह का अनुसरण कर तारों पर हाथ फेरने वाले मंगल मीलों से गकर प्राप्त हुए थे।

मालबिका का उल्लिख नृप्य नृप्यकला की दृष्टि से उत्तम था। रागी इरावती भी मालबिका की शिला जिता करती थी। उस समय बे-पाएँ भी थीं जिसका नाचने-गाने का पैदा था। कौटिली का निषय पुष्टि करता है कि वह इस बला में बिदारद होगी। अन्तिम बे-पाओं से जब भूत होती थी तब उसे सुमार देता था। अन्तिम के समय संगीतपान्ना भी थी।

कान्य-कला—उबधी का पत्र स्तोक रूप में था। शकुन्तला का प्रत्य निषय भी काम्यकला था। यही नहीं कालिदास की उद्धृत काम्यकला इसका सबममत्त प्रमाण है कि यह बला अपने चरम बिद्विषत रूप में थी।

चित्रकला—दुष्यन्त पुष्करा यश यशस्वी इन्धुमती सब इस कला में निपुण थे। मालबिका का चित्र बेगबर ही अन्तिमिष आरपित हुआ था। पुष्करा से उसके चित्र न कहा था कि उबधी से मिलने का उता हो यही है कि या तो बाग बन्द कर सो बाग़ा अवका चित्र बनाकर देगो। दुष्यन्त का बना चित्र साक्षात् यही शकुन्तला का प्रतीक था। सुन्दर चित्र के निम्न दुष्यन्त 'इमूमि की आकाशकला भी समझता था।

मूर्तिकला—बसों से भर ताज में उतरते हाथों मूर्त से कमल की डंठल छोड़ी हृदिनिषा मूर्ति में ही इतनी उशीब थी कि इनके मस्तकों की सिंगों के बसों ने सच्चा हाथी समझकर पकड़ डाला था। गर्मों पर सिंगों की मूर्तिदाँ भी बनाई जाती थीं। अत्र मूर्तिकला भी उस समय प्राप्त थी।

वास्तुकला—बेची-देवताओं के मन्दिर, राजनय महल अदारी, सपेने सरोवर आदि का चित्र विवरण हम बला के परिपक्व स्वरूप का उदाहरण है। पुत्र बनने का प्रमग भी यश-यश मिलता है।

### अपारि शिला

औद्योगिक शिला—जुके अलङ्कृत छोटी-छोटी अंगरूप बिदार का जाती है। यश-यशस्वी से निषय निषयता है कि यशों का निर्माण भी होता था। आभूषणा के विवरण से कहा जा सकता है कि सुमार भी होते होते जो

मोट लम्बकला के अन्तर्गत इनके उद्धरण मिल जा रहे हैं।

## काव्यास के ग्रन्थ उत्कालीन संस्कृति

मणि आदि को बढ़ते और उठाते थे<sup>१</sup>। मिट्टी के बिलौने<sup>२</sup> व्यवहार के बतन बर्तों के निर्माण का भी कौशल था। बत्नादि का निसाया बाठा होगा। विवाहादि के अवसर पर सुपंजित लेख इन का प्रयोग सिद्ध करता है कि इसकी कला जानने वाले थीं। कवि तो कौं बिद्या तक का प्रसंग देता है<sup>३</sup>। नाव आदि भी बनाई जाती होंगी। कुमे पास ऐसे साधन थे कि मरुमुनि में जल की बाराएँ बह सकती थीं। कुमे ने राजा माय बम बाठा था और नदियों पर पुख। (रघु० ४।११)।

कृषि-विद्या—एक स्थान से पौधे उखाड़ कर दूसरे जगह बोने से बच्ची होती है (रघु ४।१०)।

संज्ञादि की सिद्धि—अपराजिता<sup>४</sup> जिसको छिन्नामन्विता विद्या भी है तथा तिरस्करिणी<sup>५</sup> जिसकी सिद्धि पर कोई उस व्यक्ति को देख नहीं के बमन से कहा जा सकता है कि संज्ञों की सिद्धि भी की जाती थी।

लोखनफला—पकने के साथ-साथ सिद्धना भी सिद्धाया जाता था। जबही द्वारा सिद्धा यथा मयय-यत्र<sup>६</sup> अनुष्ठान का पत्र-लेखन<sup>७</sup> इसके समीप है।

१ दिल्लीयमुनमविपकरीदुमम प्रमुकतसंस्कार इवाचिकं वमी —रघु ३।१८

२ मदीये उटने माकण्डेमस्यपिकुमारस्य वनविमितो मृत्तिकामपूरस्तिष्ठति।  
—अभि अंक ७ पृ १३५

—माल० अंक ३ पृ ३१०

४ मयवता देवपुत्रा अपराजिता नाम छिन्नामन्विता विद्यामुपरिष्ठा विदस-  
प्रतिपत्तास्मात्पत्नीये कृते स्म। —निरुम० अंक २ पृ० १३९

—एवाजराजिता नाम —अभि० अंक ७ पृ० १३६

५ तिरस्करिणी प्रतिष्ठापना पादवगतस्यभूत्वा

मुष्टम-मंस्कार के पदवात् एषु ने वणमाया सिंगता पन्ना छोड़ा था<sup>१</sup> ।  
 के भी सिंगता छोड़ता था गवित है<sup>२</sup> । मासविशानिनिष म रात्रनिष<sup>३</sup> ।  
 की सूचना कि मयम को उठाए पेंको सिंगकर ही भेजी गई होगी ।<sup>४</sup>  
 समुचित न सिम प्रचार अन्वयेय यज्ञ म बाड़े को रखा ता इसकी सूचना<sup>५</sup>  
 से ही माती है<sup>६</sup> ।

पत्र ही महीं ओषधवरिष भी लिखे जाते थे । अन्वय की कोवि १५  
 के बने सत्य पर लिखी थी ऐसा बलि करता है<sup>७</sup> । इसी प्रकार अन्य मान  
 चरिष भी लिख जान हागे । अन्वय वला के अन्य प्रमाण भा मिलने हैं  
 चतुस्तला को दो गई अंगुठा पर लिखा पुष्पस्त का नाम<sup>८</sup> आग व बाग  
 किया उत्तका परिचय<sup>९</sup> इसका पुष्टि करते हैं ।

अभ्ययन के साधन—सिखन के लिए अन्व भूमिरा<sup>१०</sup> भूजयन<sup>११</sup>  
 पत्र<sup>१२</sup> का प्रयोग है । अन्व-भूमिरा तन्वा का प्राधान्य पत्र का माना है ।  
 पर चतुस्तला न पत्र किया था । भूजयन पर उठाता न हृदयगत भाव  
 लिए थे । भूजयन भी लेखन-साधन था<sup>१३</sup> ।

बलि का 'केयमापनम्'<sup>१४</sup> चारह रीति करता है कि केयन मारन भी

— — —

- १ सिंगतावद्बहणन बाहुमर्ष महीमुगनव गमुन्माविष्टम् —रघु ३।२८
- २ अन्वाग्रासमन्त्रमृषिवाणी बाण्येन गच्छति सिंगि न पारम् —रघु १८।४
- ३ उपनिष सेनं मापचारं महीरता बाधनानि स्वस्ति दत्तपन्ना-मनाति  
 —मात अं ५ पं ३५
- ४ विभिर्प्रतिपद्ये मुष्टमुन्वासी बर्गरेमी बन्धनता-मार्ग ।  
 विविध्य गोतप्रममन्त्रान् दिवौरमन्त्रवचनानि सिंगति ॥ —अभि० ३।४
- ५ उमे नाममुडागराग्रनुशास्य परदारमन्त्रादपन —अभि० अं १ पं १
- ६ उन्वाग्रासमन्त्रमृषिवाणी बाण्येन गच्छति सिंगि न पारम् —रघु १८।४
- ७ अन्वाग्रासमन्त्रमृषिवाणी बाण्येन गच्छति सिंगि न पारम् ।  
 —रघु १८।
- ८ भूजयनमात्रमन्त्रविशेषम् । —अभि० अं २ पं १८०
- ९ एवमिन्द्राग्रागुमादे मन्त्रिनीरत न सिंगता मुष्ट । —अभि० पृ०
- १० अन्वाग्रास पादुरमन यत्र भूजयन भूजयनमुद्राणां ।  
 दक्षेन सिदापरगुणमन्त्रमन्त्रादि-मन्त्राणां । —सुमार १।
- ११ न रात्र मन्त्रिनीरत पुष्पमन्त्रमन्त्रादि । —अभि० अं ३ पं ४८

पर क्या (यह स्पष्ट नहीं होता)। कुमारसंभव में वासुरस<sup>१</sup> शब्द आया है जिसकी व्याख्या मन्त्रिणां 'सिद्धरादि इवैव' करते हैं। अनुमान है सिद्धर मन्त्रिणा (मन्त्रिण) शब्द आदि का प्रयोग करने के लिए किया जाता होगा। मेषपुत्र में आया 'वासुरास'<sup>२</sup> शब्द भी यथाकथित कथन की पुष्टि करता है। नक्ष से भी सिद्ध किया जाता बा<sup>३</sup>।

लेखनशैली—प्रारंभ में आधीर्वाह या स्वस्ति बचन अवश्य मिले जाते थे<sup>४</sup>। पत्र पद्य तथा पद्य दोनों में लिख सकते थे। बसुमित्र का पत्र नक्ष में या परमपुत्र शकुन्तला और खर्वरी के पत्र में।

### शिक्षण-पद्धति (Method of Teaching)

व्यक्तिगत शिक्षण (Individual Teaching)—शिष्य की योग्यता के अनुसार प्रकृति मिलता था। एक ही शिक्षा सबको न दी जाती थी। 'नवीमुलेनेव समुद्रमाविषत्'<sup>५</sup> से ही समस्त शिक्षण-पद्धति स्पष्ट हो जाती है। आधुनिक काल में जिस वैधानिक पद्धति का आविष्कार हुआ है—(From part to whole) अक्ष से सम्पूर्ण स्कूल से सूक्ष्म वह यही पद्धति थी।

श्री राजाकुमार मुकुन्दी आरमणिसंभव और अनुपासन की साधन मानते हैं<sup>६</sup>। चित्त की एकाग्रता को उस समय प्रकल्पता दी जाती थी। अर्हभाव (Indiv. devotion) की विस्तृत किया जाता था क्योंकि इस साधना से अज्ञान भंगन और अपवित्रता जाती थी। संक्षेप में शिक्षा चित्तवृत्तिनिरोध थी<sup>७</sup>।

अबल मनन और निदिध्यासन (अभ्यास) शिक्षण-पद्धति की सीढ़ियाँ थीं इनसे होकर ही छात्र ज्ञान की प्राप्ति करता बा<sup>८</sup>। सुमुखा (शिक्षादा) अवबन्ध,

१ वेदिए, पिछके पृष्ठ की पाठटिप्पणी नं० १०

२ तामासिकस्य प्रथमपुत्रिता वासुरासं शिक्षाधाम्.... —उत्तरमेव ४०

३ कलाश्री मन्मथलाल एवं नक्षिनीपत्रे नक्षीरपित —अभि, ३१९४

४ स्वस्ति यज्ञपरवातेनापति पुष्पमित्रो वैदिसर्व....

—मात० अंक ५, पृ० ३३२

५ शिरोपवाहपुद्गलेन बाह्मस्य नवीमुपनेव समुद्रमाविषत् —रघु० ३१२८

६ Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute, Vol. XXV  
Gampotes of Education in Ancient India by Radha Kurnud

ग्रहणम् शरणम् (Retention) उपाह (Disuse)  
 of the meaning conveyed by the  
 निमित्तों भाषा के द्वारा उच्चनिष्ठा का छात्र प्राप्त करता

यही मुकामी का बहुधा है कि छात्र बीपाई अथवा भाषा  
 बीपाई अपनी बुद्धि से ग्रहण करता या एक बीपाई  
 का मध्यम सिखा देता या और कुछ बीपाई मध्यम और  
 सिखा देता या<sup>२</sup>। इसका माध्यम यह हुआ कि भाषा (।  
 हो बताने से सौंप सब छात्र अपने अपने अध्ययन करने की

सिखा संवत्सिक ही न हो उसे व्यावहारिक भी बना।  
 कला का अध्ययन कराया जाता था। साहित्यिक अध्ययन  
 अध्ययन किया करती थीं। अतिविशेष हो बिचाना म चित्र  
 इसके व्यावहारिकता की पुष्टि होती थी।

छात्र कुछ की सेवा करते थे। सब ई बन व विन गच्छी।  
 पाठों की बरतना भाँति सभी काम नीम मान था। ब छात्र-छात्र  
 करते थे जब आत्मनिर्भरता का आशय था तो उनका गुण था  
 म अर्थों जान से गुण के समान अर्थकार का ईश करना हो।  
 मापनता थी<sup>३</sup>।

पाठ्यक्रम (Courses and Curriculum) इसका निश्चित  
 है। इनसे सब विषय एक साथ और सबकी बड़ी पढ़ाई प्राप्त प  
 सिखा के योग्य होता था बड़ी मक उमरों बला दिया जाता था।  
 संनिर्दिष्ट भाषा-पठ की अथ योग्य-बहुत मापन्य बर मापन्य  
 सिखा अर्थ उमरों हो जाती थी। अतिविशेष दक्षिण गच्छी  
 सिखा से। इसी प्रकार आभूषण बनाने की बला बस्तु-रचना मा  
 सिखा हो जाती होनी। सब कुछ गुण के ऊपर निर्भर था। उर व

1 Imperial Age of unity of India Education by  
 — P. K. Mukherjee

2 "A student learns a fourth from his teachers a fourth  
 can intelligence a fourth from his fellow pupils and the  
 way fourth in course of time by experience Imperial  
 unity of India—Education by P. K. Mukherjee Page 548

3 एनबोटेरमार्ग एंडर संवत्सिक-मार्ग 1—१५० १११



काश्मिर के ग्रन्थ उत्कालीन संस्कृति

पर क्या (यह स्पष्ट नहीं होता)। कुमारसंभव में वासुराय<sup>१</sup> खर बाबा व्याख्या मन्त्रिणां 'सिद्धराशि इवेव' करते हैं। अनुमान है सिद्धर, (मैत्रयित्त) नेक आदि का प्रयोग सिक्खने के लिए किया जाता होवा म बाबा वासुराय<sup>२</sup> खर भी यथाकथित कवन की पुष्टि करता है।

लेखनपद्धति—प्रारंभ में आधीवाँर या स्वस्ति बचन अवश्य लिखे २५। पत्र गद्य तथा पद्य दोनों में लिख सकते थे। अनुमित्र का पत्र या परम्पु सकुम्भला और सबधों के पत्र में।

शिक्षण-पद्धति (Method of Teaching)

व्यक्तिगत शिक्षण (Individual Teaching)—विषय की योग्यता अनुसार पढ़ाया जाता था। एक ही शिक्षा सबको न दी जाती थी। अनुसामिण्य<sup>३</sup> से ही समस्त शिक्षण-पद्धति स्पष्ट हो जाती है। वाचनिक<sup>४</sup> में जिस वैचारिक पद्धति का आधिकार हुआ है—(From part to whole)

बत से सम्पूर्ण स्वरूप से सूक्ष्म बहु यही पद्धति थी।

की रावाकुमुद मुकजी आरमणियवज और अनुपासन की साधन मानते हैं<sup>५</sup>। विषय की एकता को उस समय प्रभावता दी जाती थी। महामात्र (Indiv. study) को तिरस्त्रुत किया जाता था क्योंकि इस भावना से अज्ञान बचन और अपवित्रता जाती थी। संशेप में शिक्षा विषयवृत्तिनिरोध थी<sup>६</sup>।

अवयव मनन और निरिध्यासन (अभ्यास) शिक्षण-पद्धति की सीढ़ियाँ थी इनसे होकर ही छात्र ज्ञान की प्राप्ति करता था<sup>७</sup>। शुभूपा (विज्ञाता) अक्षयम्,

१ दैविष्ट, पिछले पृष्ठ की पाठटिप्पणी नं० १०  
 २ तामासिक्य प्रथमपुपिठा वासुराय शिक्षायाम् —उत्तरमेव ४०  
 ३ अम्ली मगधकेष्ट एव नलिनीपत्रे नवीरपित —अभि- ११  
 ४ स्वस्ति यज्ञघरभासेनापति पुष्पमित्रो



## काश्मिर के राज्य उत्काश्री सत्त्वति

कि विषय को जितना आवश्यक है वह नीच बुद्धि एवं बड़ उठे अनुमति दे देता था। इसी लिए यह ने काश्मिर से पूछा था कि क्या ने प्रमत्त होकर आपका गुरु सीटने की और महत्त्व बनने की अनुमति देते जो आश्रम विद्या पढ़ना चाहते थे। यह सत्य है। दुष्पत्त ने लिग सखियों से पूछा था कि यह आश्रम पढ़ती रहेगी या हमका विवाह है? एक और बात भी स्पष्ट नहीं हाथी वास्तुकला रत्नादि की बुनता आवि भी क्या आश्रम में गुरुजी गिजाया करते थे? सम्भवतः मगर में ही व्यक्ति नीच बैठे होंगे। पूरकों को विद्या पुत्र पिता से ग्रहण होगा। एक स्थान पर कनि ने स्वयं कहा है कि रघु ने शस्त्र-विद्या अपने सोली बी<sup>३</sup>। गुरु ने भी अपने पुत्रों को समस्त विद्या दे दी थी<sup>४</sup>।

फीस (गुल्क) — गुरु का कृतक्य विद्या-दान का अर्थ हमका प्रसन्न नहीं उठता था। निम्न छात्र नि शुल्क विद्या प्राप्त किया करते थे। ईसे बताना का बुद्धाई कि गुरु गिज्ञा-ममाप्ति पर बधिया लिया करता था। मा कोई नियम नहीं था। अपनी अपनी मामक्य से जो जो सेंट कर देता था गुरु उगको ही ग्रहण कर लेता था। यही छात्र का शुल्क कहा जा सकता है।

परीक्षा — कोई निश्चित कक्षा और परीक्षा का नियम स्थायी बन नहीं था। गुन जब बँध लेता था कि विषय इस योग्य हो गया कि आगे बढ़ तब बड़ जाता था। ईसे काश्मिर ने विद्याविषयों के प्रति कहा है कि बिना पूरे तैयारी हुए परीक्षा में नहीं बैठना चाहिए "मसे अपनी भी हानि और अप्पारक के प्रति सम्पाद है"। विद्या सम्पादन में जाती है<sup>५</sup>।

परीक्षक — परीक्षक के लिए सबसे मुरत गुरु 'परावाण का न होना' है। अविभिन्न परिश्रमिका की इसी कारण परीक्षिका बनने पर निवृत्त करता है कि

१. अनि प्रमत्तने महपिना त्वं मन्त्राधिनोया  
२. काका ह्ययं ग...

बल और रामी दोनों ही गायत्री हो गए थे । मन विद्याजी के दिमाग में  
को परोपकार नहीं बनाना चाहिये ।

एतद्वा परीक्षायां न स्यात् परीक्षायां परित्यागं निर्धारितं स्यात् न विद्यार्थी  
 किं प्रति अग्रिमं हो सतता है। यत्न हो या न हो अग्रिम परित्याग निर्धारित  
 करना चाहिए।

मृत्यु की भाँति व्यापक अथवा प्रयोगात्मक विज्ञान का अडम्बर  
ज्ञान यद्यपि नहीं होता। प्रत्यक्ष प्रमाण दत्त कर ही विज्ञान का वास्तविक  
विषय में सत और निश्चय देना चाहिए।

जनमाधारण का दिग्ग—प्राचरक प्राग्भितर निगा माग्भितर निगा उच्च निगा पुष्प-पुष्प अतिर रगत है । पम्पु गग मपर एमा बार् भे गरी या । छात्र विम बग विम बग का शेना या उमो प्रकाश का दिग्ग दृष्ट कर लेता या । योना-दृष्ट प्राग्भितर निगा-वामाश बाग्भितर मादि गरी ही समाप्त रूप से मित्र जाते य । गग्ने पक्षम निगासु उच्च दागे ब गता या । उच्च बिदा के गि निधनता या दग की गत गरी माग्भितर । माग्भितर धोरी-मो निगा के बाह अल पुष्प की बिदा मव रगत कर सते य । एमो भी सम्भावना है कि पुष्प का बिदा दृष्ट कर लेते हा बट माग्भितर का शक्ति गग न करते हा ।

**ग्री-दिप्रा**

पुण्या के समान सिद्धि भी गिना प्राप्त किया जाता था। उन्की मन्त्री  
 धर्मिक कार्यों में समान अविवार थे। कुमारगन्धर्व इन्द्र- आदि में लगी के  
 दिना कोई धार्मिक कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। इस पर आज सिद्धि प्राप्त हो।  
 मन्त्र के भी बर्णों की गिना प्राप्त जाता था। पण्डित कीन्ही नमनी  
 के पुत्र आत्मन का गिना देन जाने आदिगता कम दिन्ही में जाता। ब्रह्मा  
 पुण्या के समान यदि जाये ता आत्मन कुमारों के बर उन्का गिना प्राप्त

१ अथवा मन्त्री ओ इ- एव विधानमिति।—भा० ४३७ पृ ३२६

२ मरुत्यादेर्वाहना निरुद्धत्वा रोता । —मात्रं प्रथमं ॥ ३५॥

१ प्रशास्त्रपामं । आश्विन-वर्षे हिमवतः शालग्राम-पथे ।

—आम० अंश १ पृ ३४

४ शिवजी मर लखरींग मरली कलहालम — कलहाल ११३

रक्षा (म) सेवा का मान बर्ष १९७१-७२ में बढ़े १०० करोड़ रु०

कालिदास के ग्रन्थ सात्त्विकीय संस्कृति

कर सकती थी। इसका संकेत अनुसूता में है। सम्भव है पुरादि ।  
स्त्रियों से विवाह करने के कारण माया उन्मारण आदि की मर्यादा ।  
पर उनके अधिकार और शिक्षा आदि की योग्यता सीम की गई हो-  
कालिदास की स्त्री पारिवी पढ़ना नहीं जानती थी अतः उतने पत्र  
पत्र कर पढ़ाया था<sup>१</sup> ।

परन्तु अनुसूता अनसूया प्रियवशा इन्धुमती मातृविका उन्धरी  
उन्ध विधवा थी । अनसूया प्रियवशा ने अनुसूती पर विवाह हुआ ४ ॥  
नाम पड़ गया था । अनुसूता और उन्धरी का प्रपञ्च-निवेदन काव्यबद्ध  
वद ने कल्प-रचना की पारंगता थी । जाना साधना और विद्व-रचना  
सबकी विवेचना थी । इन्धुमती अथ ॥ सतिष्ठताई सीका करती थी<sup>२</sup> ।  
आयम में भी पढ़ती थी और घर पर भी । विवाह होने के पश्चात् भी ३  
छिटा पढ़ती रहती थी । वह सब उनकी इच्छा पर था । इन्धुमती की ।  
पति द्वारा हो हुई थी ।

सतिष्ठताई के अतिरिक्त स्त्रियों के वद आदि करने धार्मिक अनुष्ठान  
में पति के सहयोग देने से स्पष्ट होता है कि अमिता उनको शिक्षा  
का अंग थी ।

स्त्रियाँ काम-साधन भी पढ़ती थी । अनसूया और प्रियवशा ने अनुसूता  
से कहा था कि कामीजनो की जो अवस्था हमने पड़ी है, वह तुममें विचार्य है  
रही है<sup>३</sup> । पावती ने भी काम-कला संकर से सीखी थी<sup>४</sup> । इन्धुमती के स्वर्णर  
के समय सुमन्ता ने राजाजी का बीसा परिचय दिया था वह समस्त विवरण  
इसका साक्षी है कि कामसाधन सब पढ़ती थी और इसकी बातें सुनना  
करती जाती थी इसकी जर्जा ही न हो ऐसा वह विषय नहीं समझा जाता था ।

राजसूत रमणियों के समान स्त्रियाँ मुख-उन्मारण सीखती थी इसका  
कही संकेत नहीं है । कबली अपनी रत्ना नहीं कर पाई थी । अन्ध ॥  
अपनी रत्ना और कुछ करना नहीं जानती ॥

स्त्रियाँ भी ॥



बारहवाँ अध्याय

## दर्शन तथा धर्म

‘धर्म शब्द’ धर्मस्य प्रवर्तितव्यम् आदि दृष्टिबान्धवों से सामान्यतः परिचित है। परन्तु इस धर्म शब्द के क्या वास्तविक अर्थ हैं—इस सामान्यतः कोई संघीयता से विचार नहीं करता। व्याकरण की दृष्टि से धर्म में मन् प्रत्यय लगाने से ‘धर्म’ शब्द बनता है। इसकी व्युत्पत्ति तीन प्रकार होती है—‘प्रियते’ शोक करने से इति धर्म। जिससे शोक बारह किया जाय १२ धर्म है। वरति बारवति वा शोक इति धर्म। जो शोक को बारह करे वह धर्म है। ‘प्रियते’ व १२ धर्म जो दूसरे से बारह किया जाय वह धर्म है। महाभाष्य में धर्म का उद्भव इस प्रकार व्यक्त किया गया है—‘धारणाद् धर्ममिति धर्मो धारयति प्रजा। अतः धर्म शब्द का धारणार्थ अर्थ धारण करना ही है।

संते धर्म का अर्थ उपाय है, उपायता न हो तो धर्म की कोई उपाय नहीं। इसी प्रकार धर्म के विषय समाज की भी कोई उपाय नहीं। धारणोप-नमस्कृति का आचार ही धर्म है। विष्णु में विनाश की ओर जाने की प्रवृत्ति धर्मोपाय से ही आई है, ‘धर्म एव इति इति धर्मो रक्षति रक्षितः।

धर्म शब्द का अर्थ बड़ा व्यापक अर्थ है। कुछ-कम जाति-धर्म देश-धर्म आदि सब इसकी ही सीमाएँ हैं। जीवन के वैयक्तिक विषय भी इनका धर्म शब्द के अन्तर्गत है। मनु ने इसी दृष्टिकोण को धारण कर राज्य संघर्ष आश्रम आदि धर्मों को धर्म के दस लक्षणों में माना।

महामा मुनि ने प्रकृत धर्म से जीवन  
किया कि धर्म

धारणा की परम्परा एक सृष्टिवा बहुधा बदलि एक ही  
 है अतः माना भाग होगी धर्म की व्याख्या के अन्तर्गत ।

### (१) ईश्वर के विषय में धारणा

परमेश्वर के धर्मात्मक स्वरूप के विषय में बयन करते  
 हैं कि उसका धर्मात्मक बयन नहीं किया जा सकता क्योंकि वह  
 अयोचर है<sup>१</sup> । प्रत्यक्ष अनुमान और आन्तरिक मन में ही ।  
 पर ईश्वर इन सबके पर है ।

प्रत्यक्षोपपत्तिविषय मत्वादिमहिमा त्व ।  
 आन्तरिकानुमानायां साध्यं त्वां प्रति वा कथा ॥  
 उसमें अनेक विरोधों गुण वृद्धिमान होने हैं । इसी कारण  
 को अक्षय्य नहीं होता । व. स्वयं अक्षय्य है पर फिर भी  
 स्वात्मानुमान है, फिर भी वास्तविकता का लक्षण करता है<sup>२</sup> । उ  
 दृष्टा नहीं है पर उसकी दृष्टा बहु रूप बनाता है । उसकी कोई ओं  
 पर उसमें सबका जोड़ दिया है । व. त्रिगुणों की प्रकृति नहीं पर उसमें  
 अक्षय्य को उत्पन्न किया है<sup>३</sup> । वह सबका हृत्पथ में रहता है सब का  
 उत्पन्न है फिर भी ( नरनायक के रूप में ब्रह्मविद्याधर्म में ) उत्पन्ना  
 उत्पन्न है फिर भी दुष्पथ बना रहा नहीं करता । सब उसे पुष्प<sup>४</sup>  
 पर फिर भी वह कभी बड़ नहीं होता<sup>५</sup> । वह विजिता इव है उत्पन्ना  
 विजिता रूप में उत्पन्ना ही मूल्य विजिता मनु<sup>६</sup> उत्पन्ना ही मनु<sup>७</sup> । बड़ी  
 मुक्ति को उत्पन्न और सब का कारण है ।  
 सर्वान्य मनु—मात्र दानदार के मातृमात्र पुष्प और प्रकृति की

१ गुणधर्मोपपत्तिविषयम् ।—एष १ ११६

२ अक्षय्य त्वतो अक्षय्य विधीन्य त्वत्ति

३ त्वतो आत्मकत्वं धारणा ईव वस्तु ॥—एष १०१२४

४ अक्षय्योपपत्तिविषयम् ।

५ अक्षय्योपपत्तिविषयम् ।

६ अक्षय्योपपत्तिविषयम् ।

७ अक्षय्योपपत्तिविषयम् ।



## काबिशस के प्रथम तत्कालीन संस्कृति

रूप है। कुमारसम्भव में इस मत का सम्बन्ध आया है<sup>१</sup>। उद्ये संसार की और प्रथम करने में किसी साधन की आवश्यकता नहीं है। अपने आप ही की वह उत्पन्न करता है। सृष्टि कर चक्र पर कार्य की समाप्ति पर अपने को अपने में लीन कर लेता है<sup>२</sup>।

सभी प्रकार के कम प्रकृतियों अनुमति आदि वैयुष्याग्रह है<sup>३</sup>। संसार की रचना का मूल कारण है। वस्तु का विकास है, यह ब्रह्मण्ड ५ प्रकृति इन्द्रियों का विषय है, परिवर्तन का सिद्धान्त है। परन्तु पुराण इस सृष्टि में कोई हान नहीं। वह निष्क्रिय है। प्रकृति पुरुष के लिए ५ करती है। काबिशस सांख्य के इस मत से सहमत है<sup>४</sup>। वे भी प्रकृति की ५ की इच्छा के लिए ही मानते हैं<sup>५</sup>। प्रकृति के लिए 'पुरुषार्थ प्रवर्तिनी' संज्ञा पुरुष को उदासीन और उच्छेदी बन्ना सब साम्यवस्तु के सिद्धान्त है।

आत्मा की प्रकृति के सम्बन्ध में भी उन्होंने सांख्य विचारों को मान्यता ५ है। सत्त्व रजस् और तमस् तीनों गुणों का उत्प्रेषण वे बार-बार करते हैं<sup>६</sup>। इन तीनों का सम्बन्ध ही प्रकृति है<sup>७</sup>। इसी प्रकार 'बुद्धेरिवाप्यकर्ममुदाहरन्ति'<sup>८</sup> कहकर उन्होंने फिर सांख्यिकी की मान्यता स्थापित की है। यह भा बुद्धि को ब्रह्मण्ड से उत्पन्न करते हैं और साधनकारिका भी। इसकी भी अपवर्णन न ब्रह्मी शब्द से स्पष्ट कर दिया है<sup>९</sup>। सांख्यिकी का अनुसरण करते हुए उन्होंने

१ त्वाभावान्ति प्रकृति पुरुषाप्रवर्तिनीम् ।

उद्दिष्टमुदासीनं त्वायेव पुरुषं विदुः ॥ — कुमार० २।१३

२ आरामात्मनस्तथा काले बुद्धेरिवाप्यकर्ममुदाहरन्ति ।

आरामा कृतिना च त्वमात्रमप्येव प्रतीयते ॥ — कुमार० २।१०

३ बुद्धरमविमानाय पदवाङ्मयमुपेयुः । — कुमार० १।४

४ पुरुष उत्प्रेष

५ त्वाभावान्ति प्रकृति पुरुषाप्रवर्तिनीम् ।

उद्दिष्टमुदासीनं त्वायेव पुरुषं विदुः ॥ — कुमार० २।१३

६ दैगिण, पारटिणभी न ५

७ दैगिण



## कामिदास के ग्रन्थ चत्वारिंशोऽध्यायः

बाबसाहेब में भी वैष्णवीय सिद्धान्त है। ईश्वर जगत् का कारण है, अतः जगत् में उसके अतिरिक्त किसी अन्य की सत्ता सम्बन्ध में इनके विचार भीता से प्रभावित लगते हैं। जैसे—  
 भी पिता देवताओं के भी देवता सहायो के भी लक्षा ही हव्य है और आप ही होता आप ही भोग्य है और आप आप ही ज्ञान है और आप ही ज्ञाता आप ही ज्ञाय ही ध्येय<sup>१</sup>। विष्णु के पुत्र जिनके दाघ बह का विस्तार कर सकता है इन्द्र में निधान करता हुआ भी क्रूर<sup>२</sup> पर भी उपस्थी दयालु होकर भी शोकरहित पुरातन होते हुए भी रहित<sup>३</sup> उपनिषदों के समुप ही है<sup>४</sup>। इसी प्रकार वह सवत्र होते हुए है, सबको उत्पत्ति का हेतु होते हुए भी स्वयं किसी के द्वारा उत्पन्न<sup>५</sup> मया है सबका स्वामी है, पर स्वयं स्वामिरहित है एक होते हुए भी बारण करता है<sup>६</sup> दया करके पृथ्वी पर अवतार लेता है और मनुष्य<sup>७</sup> बाधक करता है<sup>८</sup>। ये सब भीता के सिद्धान्तों से समानता रखते हैं<sup>९</sup>।  
 लोको में अवतार के सम्बन्ध में इसी प्रकार के उद्धार व्यक्त किए गए नहीं—आप लोक-पालन में समर्थ है फिर भी उद्यमोन है यह विचार भीता से किया गया लगता है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण कवि के ग्रन्थों देखे जा सकते हैं जैसे—यमाओ की सभी बाराहें समुद्र में आ गिरती हैं, प्रकार परमात्म के समस्त भाग जो भिन्न-भिन्न वर्ग-वर्णों में बणित हैं जमी जाकर मिल जाते हैं। यह भीता के समकक्ष समानान्तर ही है। जिन पुरुषों ।

१ त्वं पितृणामपि पिता देवानामपि देवता ।  
 परतोज्जि परव्यासि विष्णोऽपि नमो नमो ॥—कुमार० २।१४

२ तमेव हव्यं होता च भूमिं भोक्ता च धाम्नात ।  
 भृं च वेदिता चासि ध्याता ध्येयं च जगत्परम् ॥—कुमार

३ रघु० १ । १६ पूर्व जन्मोक्त

४ तदेवैति तत्—



काश्चित्स के राज्य उत्कलस्योम संस्कृति

बारधा<sup>१</sup> और समाधि<sup>२</sup> का वर्णन किया है। मग म  
 आत्मा का अनुभव करना जबका निराकार का विस्तार के द्वारा  
 योगविधि है—योग माप के विज्ञानों का मत अत उत्कलस्योम  
 माय्य है<sup>३</sup>। पतंजलि के योगसूत्र के आधार पर ही कवि ने अपने  
 व्यक्त किए हैं।

समाधि अन्तिय अवस्था है, जिसमें मन और इन्द्रियों को सम्पूर्ण  
 पृथक् बना ही जाती है। उत्पन्नस्य यह स्थिर बी<sup>४</sup> की अवस्था  
 हो जाता है जो गीता के स्थितप्रज्ञ<sup>५</sup> की ही अवस्था है। यह पूर्व  
 अवस्था है।

योगसाधन की प्रक्रिया पूर्वकुरुव्य<sup>६</sup> और बोरसतन<sup>७</sup> दोनों का कवि ने  
 किया है। कुमारसम्भव में शिवजी की उपस्था करते समय को मुद्रा बोरसतन  
 इसी योगसाधन के अनुसार ही है। उनका ऊपरी भाग घटीर सीमा  
 निश्चेष्ट होना कमल के समान हृषेतियों की बंधों पर ऊम्बमुख रखना कबो  
 कुछ मुका होना<sup>८</sup> अवनिमीलित और स्थिर दृष्टि का नासिका के अग्र

१ परिचतुमुपाधुबारधा कुपपूतं प्रबयास्तु विष्टरम् ।—रघु० ८।१८

२ देखिए, पिछले पृष्ठ की पादटिप्पणी नं० ४ रघु ८।२४ १

—मत्वाभिभूतामपि वा समाधे सुभयमाणा निरिषीज्जुमेने ।  
 विकारहेतो सति विक्रियन्ते यथा न चत्तासि त एव धीर ॥

—आत्मेरवराणा न हि बाधु विष्णा समाधिभेदप्रमदो भवन्ति ॥  
 —कुमार० १।५९

—कुमार १।४

३ देखिए, पिछले पृष्ठ की पादटिप्पणी नं० ३ ४ ।

४ न च योगविधनवेतः स्थिरबीरा परमात्मवचनात् ।—रघु० ८।२०

५ प्रजहाति यदा कामागर्भान्गार्भ मनोवतान् ।  
 आत्मस्यैवात्मना न च



काशिरास के ग्रन्थ तत्कालीन संस्कृति

अथ परमात्मा की प्राप्ति के लिए कवि के समय में तीन साधन योग्याप्त्यस्त्यभित्याग<sup>१</sup> और कष्टव्याप्त्यस्त्यभित्याग<sup>२</sup> । ये सब सबसे पास मिल-मिल माग हैं । प्रत्येक मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार इन उपयोग कर । चाहिए । इसको इस प्रकार व्यक्त किया गया है—  
बहुधाप्यागमैर्विना पन्थानं सिद्धिहेतव ।  
त्यज्येव निपठ्यशेषा ब्राह्मणोवा इवाचरे ॥—रघु० १०।२६

गव्यपीठा में भी ज्ञान योग शक्ति और निष्काम कर्मयोग पर-  
प्राप्ति के साधन बड़े गए हैं ।

(८) अगात् के विषय में धारणा

साध्य मत को कवि ने इस सम्बन्ध में मायता दी है, अर्थात्  
सृष्टि-रचना का मूल कारण है<sup>३</sup> । ब्रह्मा की उपासना करते हुए  
ने जो कुछ कहा उससे अगात् के विषय में धारणा की पुष्टि हो जाती है  
आपने सबसे पहले जब उत्पन्न करके सम ऐसा शोक को दिया जो कभी  
ब्यथ नहीं होता और जिसमें एक ओर यह वश-वसो मनुष्य आदि बचने  
वाले जीव और दूसरी ओर कुछ पताइ आदि न बचने वाला अगात् उत्पन्न  
हुमा है<sup>४</sup> । आप ही संसार की उत्पत्ति पालन और नाश करने वाले  
हैं<sup>५</sup> । सब कुछ आप अपने से ही उत्पन्न करते हैं और सब कुछ अपने में ही  
सीत कर देने हैं<sup>६</sup> । कल्प ब्रह्मा के एक दिन के बराबर है, जिसमें बह सृष्टि  
करता है । इसके परचात् इतने ही समय को रात्रि आती है, जिसमें सब प्रलय  
का साम्राज्य छा जाता है । इसमें शिशु चोरमागर में छेप-छप्या पर सो जाते  
हैं<sup>७</sup> । प्रात होने पर फिर सृष्टि की रचना प्रारम्भ हो जाता है ।

१ पूर्वोक्त्येव सिद्धम् ० १।१

२ मारुति तामरं तीक्ष्ण समारम्भिक निमग्न । —रघु १२।६०

३ इसमें उपाग के द्वारा ध्वनि है ।

४ पूर्वोक्त्येव

वाणिज्य न मृष्टि के शा लोको का  
की गरी लिए है। परन्तु के अनगार पर  
के लोच मय क ऊपर दा गय अपरा घर के  
उप्य प्रदेश तथा भगु और अन्य दिग्ग कारिका का

### (२) मृष्टु का मिद्वान्न

श्रीराम मुग तथा दु ग रोनों का समग्र है।  
कभी उन्नत और कभी धरमन होता है। दे ५।  
गामाधिक है। बिगो मन्त्र की मन्त्र होने पर ५  
है मानो उनके हृदय में कीम लट वर् हो परन्तु नि  
धार्मिक मान कर दु गी मनी होय। उमरा कयन है कि  
गामाधिक शांति से मय के लिए मन्त्र हा जाना है मन्त्र  
उनके हृदय में मनी कीम निरम वर् हा। मन्त्रा के  
मरी दिव्य उसकी दीपनिश है। मन्त्रा भी बिशम पा  
गामाधिक के अधिगम मय प्रबा म मन्त्रि दु गी जानी है।  
मान क दिव्य म म मन्त्रा प्रवर्त्तित हो। वाणिज्य मे  
और जीवन को विवर्ति माना है—

मरण प्रवर्ति मरीरिण विवर्तिर्गोत्रमुक्तने ब ॥

दिव्य और कदा की लता कर्ष मे निरन्तर को  
हो है चारु मृष्टि कदा को हा अपरा दिग्ग को।

१ मन्त्रमोक्षीर्षी हा मन्त्राधिकारम् ॥ — १७ १ ।  
मन्त्राधिकारम् मन्त्राधिकारम् ॥ — १७ १ ।

२ कदाचित् मुगमान्त्र मुगमान्त्रा वा ।  
मन्त्राधिकारम् मन्त्राधिकारम् ॥ — १७ १ ।

३ मरण प्रवर्ति मरीरिण विवर्तिर्गोत्रमुक्तने ब ॥ — १७ १ ।  
मन्त्राधिकारम् मन्त्राधिकारम् ॥ — १७ १ ।

४ मन्त्राधिकारम् मन्त्राधिकारम् ॥ — १७ १ ।  
मन्त्राधिकारम् मन्त्राधिकारम् ॥ — १७ १ ।

५ मन्त्राधिकारम् मन्त्राधिकारम् ॥ — १७ १ ।  
मन्त्राधिकारम् मन्त्राधिकारम् ॥ — १७ १ ।



# काश्मिर के राजा उत्कल्लोचन संस्कृति

## ( ८ ) मोक्ष

कवि का ध्येय स्वर्ग और सुख को प्राप्ति न था। वह आन्दीप्य निपद् ( ८ १ १ ) में कवित्व स्वर्ग के सभी सुख नग्न है। गीता के 'ते तं मुक्त्वा स्वर्ग लोकं विद्यात्' कोप पुष्पे मरपठोत् विद्यन्ति' १ विस्वास करके ही 'पुष्प संघर्ष की कमी होने पर स्वर्गों ने पुष्पों ५ बाकर पुष्प से उज्ज्वलिनी नगरी के रूप में स्वर्ग का एक सुन्दर भाग बसाया' २ ऐसी उत्प्रेक्षा की है। मारोच के आधम म रहने वाले ऋषि प्रत्येक प्रकार के सुख का मोह छोड़कर उत्कल्लोचन परप्राप्ति के लिए तपस्या करते कहे गए हैं ३। भरत नाट्य में भी पुनरागम से ही मुक्ति माँगी गई है ४। प्रत्यभिज्ञावचन के अनुसार जीव ( पक्ष ) का चिह्न के ( पक्षपति के ) स्वरूप का ज्ञान नहीं बल्लि परब्रह्म में स्थित होना ध्येय था ५।

हिन्दू धर्म की दृष्टि से काश्मिर के समय की जनता भी जीवन की तार्किकता एवं सिद्धि सर्व धर्म काम और मोक्ष ६ मानती है। कवि ने मोक्ष को मुक्ति ७ अपवय्य अनपामिपत्र ८ अनामृति अवस्था ९ आदि धर्मों से व्यक्त

१ गीता २।२१

२ प्राप्तावन्तीनुवमनकवाकोविशप्राधनुता  
पुष्पोद्दिष्टामनुसर पुरी भीविद्यात्ता विद्यात्ताम् ।

स्वर्गीभूते सुचरितकृते स्वर्गिणा गानतामा  
रोपे पुष्पैर्हृत्तमिष रिष काश्मिरमार्गद्वैकम् ॥ —पूर्वमेव ३२

प्राचलामनिसिन बुत्तिरविता सरस्वतयस्य वने  
तीये काश्मिरपद्मरेणुकपिने बर्माभिपेकक्रिया ।

ध्यात् रत्नमिच्छामनेय विवचस्त्रीसमिची संयमो  
पत्कायन्ति तरोमि

ममापि च



काश्मिर के ग्रन्थ तात्कालीन संस्कृति

ऐसा बहिष्ठ ने जन की समझाया था। मनुष्य को कर्म का फल है, सिध्द ज्ञान से ही कम बन्ध होते हैं यह भगवद्गीता का उक्त स्वकर्मणां बद्धते ज्ञानमयेन बह्विना<sup>१</sup> में ध्वनित है। कवि के विश्वास कि उस समय कर्मवाद में आस्था थी निम्नलिखित श्लोक से व्यक्त है—

कर्मणामुमेवा प्रारब्धा संस्कारा प्रायतना इव—रघु १।२०

अतः पूर्वजन्म के संस्कार मनुष्य के साथ-साथ चलते हैं। 'मनो हि सद्यस्मिन्'<sup>२</sup> इसको पुष्टि कर देता है। पूर्वजन्म में स्थापित मित्रता जन्माभी जन्म में यद्यपि मनुष्य भूख खाता है पर वह विरक्तुल मुष्ट नहीं है कवि का ऐसा भी कहना है कि प्रत्येक प्रकार के सुख के साधन उपस्थित पर भी मनुष्य कभी-कभी उदास हो जाता है। उसे कोई भी वस्तु प्रसन्न कर पाती यद्यपि वह अपनी उदासी के कारण को जान नहीं पाता। च मदानुसार मनुष्य यत् जीवन के किसी प्रिय के प्रेम को भी नहीं भूल पाता<sup>३</sup> यह प्रेम उसकी अच्युतताप्रस्था य उस जन्म में भी उपस्थित रहता है।

सीता अपने अगमांतर के पातकों को ही इस जन्म के दुःख का कारण बताती है<sup>४</sup>। इसी प्रकार बुध्यन्त वा कथन—'अथवा भवितव्यानां द्वाराणि नवन्ति सवन्'<sup>५</sup> यह भी पूर्वजन्म के किए कर्म के अनुसार सिद्धि प्राप्त होने का कवि का विश्वास है, परन्तु कठोर साधना के द्वारा जन्म जन्म में मनुष्य की भक्तितापी की पूर्ति का भी कवि में कथन किया है—

नाहं तप सूपनिविष्टबुष्टितप्य प्रतूतेरक्षरितुं यत्किंचि ।  
भूवी यथा मे जगतात्तद्वै त्वमेव भर्ता न च विप्रयोग ॥—रघु० १।४६६

(७) आत्मगुप्ति

कृतक्यपरायणता और ईश की कृपा द्वारा ही जीवन सारा हमके लिए आत्मगुप्ति को परम

का सम्पन्न आशयक सम्पन्नता है<sup>१</sup>। धृति स्मृति और ॥ ११ ॥  
स्वीकार करता है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है दैनिक जीवन  
काय और नियमबद्धता<sup>२</sup>। इसी आत्मनिष्ठा और अस्मात्मान  
अपना किम समूह में अनुभूत रहता है। उम पर प्रभाव पड़ता है<sup>३</sup>।  
प्रत्येक व्यक्ति अपनी उन्नति और अवनति के लिए उत्तराशरी है  
व्यक्तियों का आश्रय करने से बचना होता है<sup>४</sup>। मनुष्य को ॥ १५ ॥  
नहीं करनी चाहिए। दूसरे के द्वारा निम्न गते हुए मानों का ॥ १६ ॥  
है<sup>५</sup>। अनुचित बात करने पर या अन्याय में भूल जान पड़  
करना चाहिए<sup>६</sup>।

आध्यात्मिक मार्ग अथवा धर्म का महत्त्व—आध्यात्मिक  
बलन बावें मनुष्य को ज्ञान-राज्य बहुत उन्नी उन्नता चाहिए और  
ज्ञान प्रदान करना चाहिए। क्योंकि इस समय हमें बहुत स्थिति  
पड़ता है। कुमारसम्भव में बहिन न मर्यादा पर आरंभित है<sup>७</sup>।  
मानविक परिवर्तन<sup>८</sup> को आवश्यकता समझाई है। एवं स्थान पर वा  
बलन में ऊपर धर्म को सम्पन्न देता है<sup>९</sup>। रथका में धर्म की ॥  
है<sup>१०</sup> और तब को सम्पन्नता का सबब है। कुमारसम्भव प्रथम मग में ।

१ उदात्त प्रमत्ता यानो ग्यारिर्विभिन्नीरथम् । —कृमार० २।१२  
—धृतिविशेष समितरुच्यन्तम् । —रथ० ३।२

२ अनाश्रित्य विरमैरिदानीं पारदुरन ।

तस्य धर्मतेरासीरुद्धं परमा विना ॥ —रथ० १।२६

३ रथवर्ती राजा एते ही आश्रय-स्थान थे । यदा—निर्णीत रथ नाम ।

४ अतिव्यभिचारी हि धेनू पूज्युमाध्वनिजम् । —रथ० १।३६

५ न वैश्वं यो दशतोऽप्यगते यत्किं तस्मादिदं न न वाच्यम् ।

—कृमार० १

६ अस्मात्मानतेनैव आरंभ—मेवमा । —रथ० १०।३६

७ निर्मलेन निज रथं यथा वा तत्र दुरन्त दुरन्तम् ।

मेरमाध्वनिजं न वैश्वं तेन अतिविशेषमात्रं स्थितम् ॥ —रथ० ८।

८ मगं हि गतेऽप्यगते वापुः प्रत्यक्षमात्रं वदन्त्यन्तम् । —अथ० १।३६

९ अनेन धर्म अतिव्यभिचारी से विरहमार अतिमर्त प्रमर्त ।

रथं अतिविशेषमात्रमात्रं पदेन एव अतिव्यभिचारी से । —रथ० ५।

१० दुर्देहं वा न वदन्त्यन्तं अपवा विदम् । —रथ० १।३६



बन्धु<sup>१</sup> मृग<sup>२</sup> यम<sup>३</sup> त्वष्टा<sup>४</sup> पाषाणुविषी<sup>५</sup> और २२<sup>६</sup> मुख्य  
पाषाणुविषी तथा अग्नि के अतिरिक्त सभी पुराण के देवता भी  
बैठे। प्रकृति की निम्नशक्तियों का भाव समाप्त हो गया। विष्णु ने  
कहा न रह कर पृथक मन्वन्तरिमान् देवता बन गए अनेक  
वृक्षारि अक्षर भी हुए। नवीन देवताओं की भी योजना हुई जैसे

१ समस्तया बभूवृष्टिनिजगदनिर्णयमात्मज्ञां च नराणि ।

बभूवयो यमदुर्मन्त्रनरौ मन्त्राचारस्यादमर दत्ता ॥—रघु० ६।५

देविष्ट, निष्ठे पृष्ठ की पारस्मिणी मं० ३ रघु० ६।२४

—इन्द्राग्रहिनिपवित्रपशोदेवर्तियमोमू

दासोनाथ विवस्तरय कमथ नीबयनाम् ।

पृथ्वी लक्ष्मि विष्टे वीरवृद्धि बुधेर

स्तोम्यन्त्रोत्तरमक्षरितं मेविर लोकापाया ॥—रघु० १०।१

२ मामग्निं सहस्रं सहस्रं स्वप्ना बहूपममस्वने ।

भानुबन्धिररिबीजैश्च मंग्लुर्बन्धि विरघोष्मनायिक ॥—बुधवार० ८।

हमके परवान् के ३ एकेहों में श्री इमी मृग की स्तुति का विवरण है।

३ क्षुधिरमाशामग्निं नाम्नोर्द्धि प्रभं हनु विदुताम्नायिका ।—रघु

देविष्ट, पारस्मिणी मं० ३

—यमोर्द्धि विनिर्गम्युमि ब्रह्मात्मनिर्गम्युमि ।—बुधवार २।२३

४ वरादे तस्य लक्ष्मिपुत्रस्य नवं निमित्तमात्रम् ।—बुधवार०

—आर्य्य अक्षममृदुत्तरेवाक्षर्य्य दम्नाम्निगती विमति ।

—रघु० १

५ पाषाणुविषी प्रत्यक्षहृदिनिवासात् ।—रघु १०।२४

६ इमामनुतां मृगमेव च वीरमा नु प्रहृष्टं गन्तव्यम् ।—रघु २।२४

—गन्तव्यं बुधैर् विवस्तरय कमथ नीबयनाम् ।—बुधवार १।२५

७ अत्र रिता ब्रह्म एव नम्या तस्याप्यन्यायमर्थं चकार ।—रघु० १०

—अत्र तस्य धातारं ते नृन् अक्षममृदुत्तरे ।

ब्रह्मैव विवस्तरय कमथ नीबयनाम् ।—बुधवार २।१

इस मं० के ४ से १५ एकेह तक ब्रह्म की स्तुति है।

विष्णु १ शिव २ इन तीनों का एक रूप त्रिमूर्ति ३, कुबेर ४,

१ हरिययैकं पुरुषोत्तमं स्मृतो महेश्वरस्यम्बक एव नापरः ।—रघु० ३।४६

—पृथ्वीमन्त्रोद्गीतं क्षीरोर्मयं द्वापयुतम् ।—रघु ४।२७

—वसु स्वस्म्यापिबन् ब्रह्मा सकोस्तुभं हृष्यतीव कम्पम् ।—रघु० ९।४६

—यत्रैव नारायणमग्न्यासी तमेव कान्तं कचमात्मतुल्यम् ।—रघु ७।१३

—बलिप्रदिल्लं शिवमाश्रयन् वैविक्रमं पादमिवेत्राशु ।—रघु० ७।३६

—यदुदपुंडरीकाक्षं बाळातपनिमोदकम् ।—रघु० १०।६

रघुबंध दशम सर्ग में ६ से ३६ श्लोक तक विष्णु की स्तुति है ।

—येन स्यामं वपुरतिष्ठतं कान्तिमापत्स्यते ते

बह्वैव स्मृतिरक्षिणा गोपरोपस्य विष्णोः ।—पूषमेव १६

—स्वयमाशुं जलमवन्ति धार्मिणो वनधीरे ... ।—पूषमेव २०

२ वागवन्निव संपृक्षती वागर्षप्रतिपत्तये ।

वपतः पितरौ बन्धे पार्श्वीपरमेस्वरी ॥—रघु० १।१

—अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्ते कुंभोदरं माम निकुंभमिषम् ।—रघु० २।३६

—अमुं पुरं पश्यसि देवराजं पुत्रीकृतोऽग्री वृषयज्जनेन ।—रघु २।३६

—स्वाचारितं धूलमृता विषाम मिहृत्वमकामतसत्त्ववृत्तिः ।—रघु० २।३८

देविए, पादटिप्पणी नं० १ रघु० ३।४६

—स्वायदम्बवपुस्तपोवर्गं प्राप्य बाधरक्षितकामुकः ।—रघु० ११।१३

—आराध्य विश्वेश्वरमीश्वरेण तेन त्रितैविस्वसहो विद्यतः ।—रघु १८।२४

—तत्रान्निमादाय समिप्लमिष्टं स्वमेव मुख्यन्तरमष्टमृत्तिः ।—कुमार० १।५७

—अंशमृते निपिक्तस्य गीतलोत्रिनरेतयः ।—कुमार २।५७

—उभे एव दामे बोद्धुमयोर्बीजमाहितम् ।

सा वा संमास्तथीया वा मूर्तिरकमया मम ॥—कुमार० २६०

—गुरोर्निषाकाच्च नगैश्चकत्या रक्षाभु तपस्यन्तमचित्यकायाम् ।

—कुमार० ३।१७

इसी में देविए श्लोक ६६ से ७ सम्पूर्ण कुमारसम्बद्ध ही दिवसी विषयक श्लोकों से भरा हुआ है । इसके अतिरिक्त अग्निमानसाकृतसम्

स्फुर<sup>१</sup> शेर<sup>२</sup> जयन्त<sup>३</sup> लायनी<sup>४</sup> मदन<sup>५</sup> और लोचपाम<sup>६</sup> मुख्य हैं ।  
 के लिए कवि ने स्वयम्भू, अनुराज, बागीच आदि शब्दों का प्रयोग  
 है । इसी प्रकार बिज्जू के लिए हरि पुष्पात्तम त्रिविधम पुंडरीकाग ५२८  
 मध्युत अक्षर मयवान् वज्र मारावण आदि संज्ञाएँ प्रयुक्त हैं  
 जिस के लिए ईश ईश्वर, महेश्वर परमेश्वर, अष्टमूर्ति वृणमध्वर ५२९ ।

—पुनरिच्छा तदनु विरचे लोचनसि वनेर

स्तस्मिन्वद्वेगमत्तपरिणं भेजिरे लोचपाका । —रघु० १७।८१

—बृहत्स्य मनःशर्षं शंसतीव परामबम् । —बुमार० २।२२

—संतत्यानां स्वममि शरपं तत्पयोद प्रियाया

मन्देरां मे हर जनसिद्धोपकिंभेयित्तम् । —पूषमेप ७

१ यो हेमकमस्तननिभुताना स्वल्पस्य मानु पयसा रसत्र । —रघु० २।१३

—उत्र स्वल्प नियतवर्माति पुनमेवीकतामा

पुनराठारं स्तनयनु मन्मथ्यावर्षपात्रकार्य । —पूषमेप ४७

२ भोमिभोगस्रगावीनं ददुपुत्त शिखीजम । —रघु० १।१७

—मुक्तापवदितोपेन कलितदलममममा । —रघु० १०।१३

३ जमापुयावी शरज्जमना यदा यदा वनमेव वधापुरदरी । —रघु० १।२२

—असौ बुमारस्तमशोऽनुश्रुताप्रविष्टास्यव पति जयन्त । —रघु० १।७

४ हिरवा हाताममिमतरमा ऐवतीलोचनायां

बन्धुदोषा तमरविमुगा लाममी या मिरव । —पूषमेप २३

५ तपेति श्यामिष भनुराजामागव मुष्नी वदन प्रतस्य । —बुमार० ३।२२

—अथ त ललितवीरिद्विभूतावाक्यमयं रतिवसपानाके चापमामग्य वटि ।

उद्वरममुहस्तम्भनबुनागगत्य शतमगमुरग्नय प्रादति पुनपम्वा ॥

—बुमार० २।६

—अत्राप्य मन्त्रस्य निवशान्तिनाशनापि वदितानुमिच्छति ।

—बुमार० २।१३

—अमल हकारनिर्दिष्ट बुग पुष्टमिगतकण विजैमूला ।

इमा हरि अगलगावर्गनोद्विगीमूर्तरति पुनपम्बन ॥

—बुमार २

६ हेगिर, पाटिपाना नं० ५ —रघु० १७।८१

—नं लोचपाका पुनपम्बन मीमन्तोमगदनीलगा । —बुमार० १

—अत्रागलगावर्गनोद्विगीमूर्तरति पुनपम्बन ॥

—रघु० १



काविराज के द्वारा ललाळीन संस्कृति

विष्णु <sup>१</sup> शिव <sup>२</sup> इन तीनों का एक रूप त्रिमूर्ति <sup>३</sup> कुम्भेर

- १ हरिर्मयेक पूर्योत्तम स्मृतो गृहेस्वरत्न्यम्बक एव नापर ।—रघु० १।४६  
—पुवर्तमन्त्रीभूते कीर्त्येय द्वाभ्युत्तम् ।—रघु ४।२७  
—वत्त हन्त्रम्यापिबन्ध बधान सकीमसुम् ज्ञेयवतोष कृष्णम् ।—रघु० ६।४६  
—रघुमेव नारायणमग्न्यासी जमेव कान्त कवमात्मतुल्यम् ।—रघु० ७।११  
—बालप्रतिष्ठा चिदमावधानं त्रैलोक्यं पादमिर्नेन्द्रधु ।—रघु० ७।१६  
—प्रबुद्धपंडरीकाक्षं बाळातपनिर्मायुकम् ।—रघु०, १०।६  
रघुसंक्षेप बधम सप्त मे ६ से ३२ पद्यक तक विष्णु की स्तुति है ।  
—येन स्वामं वपुस्तितुरं काश्चित्पापस्मरते ते  
बहुमेव स्फुरितकविना गोपबेपस्य विष्णो ।—पूरमेव १३  
—स्वम्भारातुं जलमवकते मार्गिषो वनचोरे ..... ।—पूरमेव ४०
- २ वामपद्मिण संपूज्यो वाक्वप्रतिपत्तये ।  
वक्त्र पितरो मन्त्रे पावतीपरमेश्वरी ॥—रघु १।१६  
—अवेहि मां विकरमष्टमूर्ते कुम्भोदरं नाभं निर्गुणमिबन् ।—रघु २।३३  
—समुं पुरं पदवति वैवर्णां पुनोक्तोऽसी वृषधध्वजेन ।—रघु २।३६  
—स्वापारितं दूष्कमूढा विषाद्य विह्वलमकामसत्त्ववृत्ति ।—रघु० २।४८,  
केसिपु, पावटिण्यो नं० १ रघु ३।४६  
—स्वाचक्षुश्चपुपस्तपोधनं प्रत्यक्ष वायव्यविरासकामुक ।—रघु० ११।११  
—आराध्य विदमस्वरजीश्वरेण तेन शितैर्विवरसहो विजये ।—रघु० १८।२४  
—सत्रामिमांशान् समित्समिष्टं स्वमेव दूष्कमूढरमष्टमूर्ति ।—दुमार० १।५७  
—संघादुते निपिपत्रस्य नीललोहितैर्यत ।—दुमार० २।५७  
—उमे एव शमै बीहुमुभयोर्बीजमाहितम् ।  
शा वा संयोस्तसीया वा मूर्तिर्ब्रह्ममया मय ॥—दुमार० २६०  
—मुरीर्निषावाच्य मयैन्द्रवज्रा हस्तेन सप्तमन्त्रादित्यकापान् ।

स्फुर<sup>१</sup> दीप<sup>२</sup> ज्योति<sup>३</sup> सायनो<sup>४</sup> मरुत<sup>५</sup> और लोकपाल<sup>६</sup> मुख्य हैं।  
 के लिए कवि ने स्वयम्भू, बहुरानन, बागीरा आदि रागों का प्रयोग  
 है। इसी प्रकार बिष्णु के लिए हरि, पुष्पाक्षम, त्रिचिह्नम, पुंडरीकाक्ष, ५८  
 अक्षुत, बह्वर, भगवान्, वष्प, नारायण आदि संज्ञाएँ प्रयुक्त हैं  
 शिव के लिए ईश, ईश्वर, महेश्वर, परमेश्वर, महामूर्ति, वृषभध्वज

—पूर्वनिर्णीतं तदनु विज्ञेयं कौण्डिन्यं नवैर

स्तस्मिन्वैद्योपनतचरितं श्रेष्ठैरे सोत्पापा । —रघु० १७।८१

—दुर्वैरस्य मम-छात्रं संमतीह पराप्रबन्धम् । —कमार २।२२

—संतत्यागो स्वयमि धारणं कृत्यापार प्रियाया

सन्देशं मे हर भगवतिहोपबिन्दुमैत्रिण्यम् । —पूषमेघ ७

१ यो हिमकमस्तननि-सूतानां स्तम्भस्य मातुः पयसां रम्यः । —रघु० २।१

—तत्र स्वस्य नियतवसतिं पुनमेचीनतारमा

पुष्पाक्षरैः स्तपयतु मन्त्राभ्योपसर्गवाक्यसार्धम् । —पूषमेघ ४७

२ भोगिभोपासनामीनं ददुधुस्नं दिवौकसम् । —रघु० १०।३

—मुक्तरोपबिन्दुधेन कण्ठिष्ठचक्षुःमया । —रघु० १०।११

३ उमावृषांको चरत्रमना यथा यथा जयन्तेन चर्चापुनरहरी । —रघु० २।२

—असौ कुमारस्तमजोऽनुवाप्तस्त्रिबिहस्तस्यैव पतिं जयन्तः । —रघु० १।७

४ दित्वा ह्यस्माभिमत्तरना रेवतासाधनाया

बाधुप्रोत्सा ममर्चबन्धुनां सागलो या निगद्यः । —पूषमेघ ११

५ तपेति शेषाविष भनुराज्जामादानं कूर्पां मरुतं प्रत्यस्यः । —कमार० ३।२

—अथ स अन्त्रिषीणिदुभून्ताचारमूर्णं रतिवत्तपपराके चारुमागम्य वडि ।

बहुचरमचरन्तगम्यस्त्वन्नाचरात्तव धर्ममत्तमूर्तये प्राजतिं पुनरपन्था ॥

—कमार० २।६

—अन्यथाय मरुतस्य निवहान्तिनासपतिं पतिमानुमिच्छति ।

—कमार० ३।१

—अथ स ह्यारनिगतिं पुन पुनारिमशस्तमृगं जिनीकृतम् ।

इमां हरिं व्याप्राप्तमपिगतिं शिषीगमूर्तेरतिं पुनरपन्था ॥

—कमार० ३।५

६ वेनिए, शान्तिपदी नं ४ —रघु० १७।८१

—नं लोकपाला पुष्पाक्षमुखा वीणाशोभापिनीकेशाः । —कमार ७।२२

—नररिचक्रमूर्तेः यथमापत्तं राज्ञो दुर्भिक्षमिच्छितं शोभापुनराः ॥

—रघु० २।७५

काव्यशास्त्र के प्रथम उत्कृष्टतम संस्कृत

स्वाध्याय, नीलमोहित विन्ध्येश्वर धनु, हर, मिरीछ धिग ॥ १ ॥  
जाए है ॥

देवियों—इनमें इनकी पत्नी सती २ सरस्वती ३ और पुष्यिनी ४  
है। सरस्वती और भारती ५ दोनों से विद्या की ६ देवी का नाम प्रकट  
पौराणिक देवियों में स्वामी ७ पावती ८ और सप्त भक्तिकाएँ ९ हैं।  
छिए उमा भक्तिका मन्वन्ती पौरी आदि स्वयं प्रमुक्त हुए हैं।  
बाह्य सिंह है। सरस्वती ब्रह्मा की पत्नी और स्वामी विष्णु की

१ पूर्वोक्तैः उपाहरणैः में देखिए। सम्पूर्ण उपाहरणों के श्लोक  
कारण दिए नहीं जा सके।

२ असूत पुत्र समये सतीसमा विद्यायना धनिरिवाधर्ममत्तवम् ॥ —रघु० १।  
—उमापुत्राङ्गी सरजम्भना यथा मया वयस्येन सतीपुरन्दरी ॥ —रघु० १।५

३ स्तुत्यं स्तुतिभिरभ्यामिष्यतस्ये सरस्वती । —रघु० ४।९  
—निधमभिन्नास्पदमेकसंस्वमस्मिन्मूर्ध्व श्रीश्च सरस्वती च । —रघु १।२०

—विद्या प्रमुक्तैः च बाह्यमेव सरस्वती तन्मिथुनं गुणाव । —कुमार० ७।२०  
४ सत्पापुष्यिनी प्रत्यग्रमहपतिरिवात्तवम् । —रघु० १०।५४

५ समुद्र नृपसंस्काराव करिणार्थेन भारती । —रघु १०।३६  
६ देविण्यै पावतिष्पत्नी न १ और ५

७ पद्मा पद्मात्तपत्रेण जेजे साम्राज्यशीलितम् । —रघु० ४।५  
—मिय पद्मनिपण्णाया सीमास्तितमेवके । —रघु १०।८

८ कुमार० ४।९-२६ उमा वपुमनाम्नाता याचितार हमे वयम् ।  
उत्तम अष्टम सब सभों में पार्वती-मिथवक अर्चन्य श्लोक हैं।

—कुमार० १।८२

—वगैर फिटरी बन्ने पावतीपरमेश्वरी

कही जाती है। कवि ने इनको पद्म पर बैठी हुई और बिज्जु के चरण  
हुई कहा है। अमरकोश में सप्त माताओं के नाम बाह्यी माहेन्दरी १।१।  
बैज्यवी बाराही इत्याणी और चामुंडा दिए हैं।

मूषर देव और वृक्षियाँ—इनमें गन्धर्व<sup>१</sup> यक्ष<sup>२</sup> विष्णु<sup>३</sup> १ ५ ५  
गुप्पजन<sup>४</sup> विद्यावर<sup>५</sup> और मिथु<sup>६</sup> हैं। गन्धर्वों की स्थियाँ अम्बरम<sup>७</sup>  
मुपमना<sup>८</sup> कही गई हैं।

देवी-देवताओं के वाहन—छिब का वाहन वृष<sup>१०</sup> बिज्जु का ॥

१ अवेदि गन्धर्वपतेन्तनूर्ध्वं त्रिवर्धं मां त्रिवरदामस्य । —रघु० ५।१३

२ यना किपुरया पीता घोषिती वनदेवता । —अमार० ५।३६

—यनाइचळे वनवसनयास्नानगुप्पोइकेनु

स्निग्धच्छायातडनु वमति रामदियाचिमेग । —पूषमेष १

३ असमाय विज्ञासमेयता विमिदं चिन्नरकीडि गुप्पते । —रघु ८।६४

—इदुयास्वतामिच्छति चिन्नरतां तामयरापिन्धमिवोरमन्नुम् ।

—कुमार०

—अनेक्या चिन्नररात्रकान्यका वनात्तर्जवीतमसीररोदयम् ।

—कुमार०

४ हेतिय, पारटिणयी नं० २ कुमार० ५।३६

—यत्रांगुकाणैरधिगच्छन्तानां दनुजानां किपुर्यामनानाम् ।

—कुमार० १।

५ अनुययी यमगुप्पजनेचरो मयदपारकपाप्रभरं रथा । —रघु० ६।६

६ अवाडमुगत्सोडरि पुण्णवृष्टि यनात्र विद्यावरह्ममुत्ता । —रघु० २।६०

७ उडेदिता वृष्टिमिराधयन्ते श्रृंगामि दस्यात्ररत्नि मिता । —कुमार०

८ मरवाप्परो विभ्रमयंइजाना तंतायित्रीं तिरागैविमति । —कुमार० १।४

—अमायमावेत्ति यमाविचरामोदेवाप्पर द्रविणवोर्विचार । —रघु०

—वसीइता विमुचयत्रमिग्गयामो इग्गयव वरह्मप्परनां गगोन्नम् ।

—विजय० १

९ अमार वेनामउर्मणापी गुरांमनादधिगयोरनपी । —रघु० ५।२७

१ वेतामगोरं वृषमाररतो पारागान्धरह्ममुत्तम् । —रघु० २।३६

—अमुं वृष पयमि हेतार्द वृषीइयोत्ती वृषवप्परेन । —रघु० २।३६

—म योततिं वेत्तिमुवावत्तमी तादुत्तवर्वात्ताग्निगुत्तम् । —कुमार० ७

११ मुक्तादरविरोदेव वृत्तिदग्गयमा ।

उरन्दिदं दार्जिन्ता विनीतेन गन्धवा ॥ —रघु० १०।१३

## कालिदास के राज्य उत्कलमीन संस्कृति

जीर छेप धम्या<sup>१</sup> पावती का बाहन निह<sup>२</sup> इन्द्र का ऐरावत<sup>३</sup> का च  
देवत्व की विमूर्ति मन्त्रिणी गा<sup>४</sup> को भी प्राप्त हुई है। नया यमुना भी  
जाकार म<sup>५</sup> चामरचारिणी<sup>६</sup> का कार्य करती है। अतः लक्ष्मियों को भी  
प्राप्त हुआ है।

वैश्य-दानव—देवताओं के विरोधी दैत्य<sup>७</sup> जीर सुरविप<sup>८</sup> कहलाते  
राम<sup>९</sup> कालिय<sup>१०</sup> लवण<sup>११</sup> बावि असुरों का कवि ने उन्मत्त किया है। ७४  
जीर केतु<sup>१२</sup> हो कर यहाँ को भी दैत्य रूप में परित्यक्त कर लिया गया।  
के अनुचररमण<sup>१३</sup> प्रेतयोनि के थे। धाकुत्तल में एक अनुस्य प्रेत<sup>१४</sup> ने  
को पीड़ित किया था<sup>१५</sup>।

१. देखिए पिछले पृष्ठ की पाठटिप्पणी नं० ११

—मोक्षप्रोवासासीन बहुमुस्तं विनीकम् । —रघु १०।७

२. रघु० सर्ग २

३. अर्धपदस्तस्य अपेक्ष नगच्छत प्रमिलितिवारणवाहनां कृपा ।  
करोति पाशावुपवन्म मीलिता निमिशमन्ताररजोव्यापुक्ति ॥—कुमार० २।८०

४. मूर्ते च नयायमुने लक्ष्मी लज्जामरे दैवमसेविपाताम् ॥—कुमार० ७।४२

५. दैत्यस्त्रीरश्मिलानां महरागविलोपिनि ।  
हेतिमिदमनामपि मन्त्रीरितमवस्वभम् ॥ —रघु १०।१२

६. प्रविपत्य सुरास्तस्यै चामित्रे सुरविपा ।  
अर्धैर्न तुल्यं स्तुत्यमवाहमसमोचरम् ॥—रघु० १०।१३

७. रावणास्तविदीर्घा रावर्च प्रति रक्षता ।  
तैरा मूलपदेवैका कुप्रवृत्तिहराऽभवत् ॥ —रघु १२।२१

—स रावणहृता ताम्या लज्जसापट्ट वीरिणीम् ।  
आत्मनः सुमहत्कम कर्त्तव्येण संस्थित ॥ —रघु १२।२३

८. अस्तेन तारयति कल कालिमेन नानि विमूर्ष्टं यमुनीकता य ।  
नत स्वतन्त्रापिदर्थं दयानः सकीस्तुर्ध्वं ह्येपयतीव कृपाम

९. अपराजितं ताममाद्य लवणं  
वराह संमर्ष

वन में रहने वाले 'वन देवता' का भी 'ब्रह्मर्षि' भी देवमुन्य माने गए। इसी प्रकार। महापुराण विष्णुसक्ति-सम्पन्न प्रतिमाविष्ठ होते हैं।

इन्द्र—वैदिक देवताओं में यह एक उल्लिखित वन महत्त्वपीठ देवताओं में मिला गया। ब्रह्मा देवता यह गए, सोय सब गीत। वशिष्ठ उल्लेख किया है। इन्द्रमुनि के प्रथम शतक और वन इन्द्रदेव के पूजन की प्रथा का अन्त हो गया। वन जो वन १०० वन करना जाता था उसे यह

१. यथा विपुला पौरा योगिनी वनदेवता । —वमार  
—जाने आतिशयमिच्छामिस्नुतास्तगमनात्मि ॥

२. पुरुषोत्तम

३. मत्तगिरिस्तावचितानेयान्मयो विरम्भान्निबधमान ।

—विहीणमस्तपिबन्तिप्रहासिभिस्तथा न वारं कृन्ति ।

कृमार० १।१-१२ इसीमें से सत्यगिरि का उल्लेख है।

४. वनामिगर्भविद्याया विगीतमि न मत्तमि ।

ब्रह्मर्षि परं ब्रह्म वनमिदमस्मिन् ॥ —रघु० १

५. रघु० मग १ अमि० वन ६

—तं लोकात्ता गुरुरनुमुखा श्रीमन्मोक्षदविमोचकः ।

६. गुरुरनुमुखा लोकात्ता ॥

मत्तगिरिस्तावचितानेयान्मयो विरम्भान्निबधमान ॥ —रघु० ४।१

—वशिष्ठं संहरारेणे अनुर्वेचं वनरपी ।

प्रशक्तमायन ही हि परावाटतवासी ॥ —रघु० ४।१६

७. निद्रुम न होमपुरंदरसम वनवर राजमुनिरन्तम् ॥

ब्रह्मदेवैव दमस्तपसः तन्मन्त्रमायार्थमस्त ॥ —रघु० १०

—मत्तगिरिस्तावचितानेयान्मयो विरम्भान्निबधमान ॥

वनात्तं होमपुरं वनरपी विरम्भान्निबधमान ॥

वा । इसके पुरहूत<sup>१</sup> सतक्रतु<sup>२</sup> बज्रपाणि<sup>३</sup>, पुरन्धर<sup>४</sup> हरि<sup>५</sup> एक<sup>६</sup> मन्वा<sup>७</sup> वासव<sup>८</sup> योगधिर<sup>९</sup> आदि नाम कवि के साहित्य में प्राप्त होते हैं । इसके पुत्र का नाम जयन्त<sup>१०</sup> वा ।

अग्नि—वैदिक काक का यह मुख्य देवता था पर अब केवल यज्ञ<sup>११</sup> और विवाह<sup>१२</sup> में ही इसका उल्लेख मिलता है । राजा जब तपस्वी आदि जनों से भेंट करता था तो ऐसे जण्यागार<sup>१३</sup> में जहाँ सदा अग्नि प्रज्ज्वलित रहती थी । इसका उल्लेख किया जा चुका है । आहुतिपाँ सेने के कारण ही यह हविर्भुज<sup>१४</sup> कहा गया है ।

बहुरण—इस समय बहुरण जल का देवता<sup>१५</sup> माना जाता था । यह बहुरण लोक-पातलों में से है । अथ काकियास का राजा कुमार्य पर बहुरे बाके को न्याय के लिए इसी के पर से उपस्थित करता है<sup>१६</sup> । कुद्यान और पुष्ट मूर्तियों में इसका उल्लेख है<sup>१७</sup> । यह मगर पर बैठे हुवा दिखाया गया है और बंद के लिए हाथ में पाश लिए हुए है ।

१ देखिए, पिछले पृष्ठ की पाठटिप्पणी नं० १ और ५

२ देखिए, पिछले पृष्ठ की पाठटिप्पणी नं० ७ —रघु० ३।१८

३ बज्रपाणि —रघु० २।४२

४ मन्वाबसन्तेन सचीपुरन्धरी । —रघु० ३।२३

५ हरि —रघु ३।४३ ६ रघु ३।१६

७ रघु० ३।४५ ८ रघु० ३।१८

९ रघु० ३।५३ १० पूर्वोक्तेष्व

११ अथ तस्य विद्यापत्पुत्रस्य काम्यस्य कर्मणः ।

पुत्रयः प्रबभूवाम्भेर्विस्मयेन तद्विजयाम् ॥ —रघु० १०।१०

१२ तत्रावितो भोजपतेः पुरीषा हस्ताग्निमाग्नादिमिरन्तिकस्य ।

तमेव बाबान् विवाहसाम्ये बभूवुरी संगमयांशकार ॥ —रघु० ७।२०

—श्री बभ्रवी विपरिणीत बह्निमयोम्यसंसार्यनिमीलितश्री ।

यम—कवि ने यम के लिए दण्ड<sup>१</sup> और  
है। इसके वासुध का नाम कूट धात्मसी है।  
किया है<sup>२</sup>।

स्वप्ना—यह देवताओं का जिह्मी है।  
रूप हुआ।

रङ्ग—कालिदास ने श्रवण दिग् के साथ  
दिग् के लिए ध्वजक<sup>३</sup> शब्द का प्रयोग भी किया है।  
के लिए आया है।

छोकपाठ—यह अलक्ष्य देवताओं का वय था। वे  
इस वर्म में दण्ड बरष यम और कुबेर भी थे। ऐसी  
मन्त्राल की उत्पत्ति के पृथ वे पानी के यम में प्रवेश करें<sup>४</sup>

कुबेर—यह अलक्ष्य का स्थायी<sup>५</sup> और उत्तर दिया  
है। इसकी धृति सजायी अवका बनिया के कर में।  
बैसी और मोटी तौर इसको बिरावता है। मधुरा ध्वजिह्वम  
प्राप्त होती है। इसकी पूजा अब बनेष्ट माना में प्रचलित  
ने अस्मर इसका जन्म किया है<sup>६</sup>।

सूर्य—आद्वेय में बरष की तरह सूर्य भी गिरवनें  
गुप्त सविता में निहित थे कालिदास ने वे ही गुप्त इसके  
प्रयुक्त कर निहित कर लिए हैं<sup>७</sup>। सूर्य के लिए रवि<sup>८</sup> माना<sup>९</sup>

१ पृथोत्तम

२ हुनां ब्रह्मस्वतस्तेव ब्रह्मात्मलिपिगितम् । —रघु० १२।६५

३ वैगिण् पारदिष्णयी न० ३

४ कथं नु यद्यतोऽनुमयो मर्त्यैश्चिन्मापनाम्बान्मनस्विनेभाम् ।  
इमाप्सनां मुरधैरवहि एतौयमा नु प्रहृष्टं ररनाप्याम् ॥  
—आश्विजितयतामोतिविताम्बिषाविषोदय ।

आश्विजित यतामोति विताम्बिषा विषोदय ॥ —बृहदार०, २।१९

५ रघु १।४९

६ वायगनयी तद्विद्या १ ८ एताव ब्रह्म २ ९ २. ६

७ रघु० २।३५, पृथोत्तम

८ पुरमथ १

९ पुरमथ

१० ॥

११ बृहदार० ८।४३

१२ ब्रह्म० ५।४

१३ ॥



## कालिदास के ग्रन्थ पारम्परिक संस्कृति

हरिहरवर्धनविति<sup>१</sup> शब्द भी आए हैं। सुमोपासना का 'वैदिक काल' बनाना था। कुसान और एक साधारणतः सुय के बड़े उपानयन थे। संग्रहामय में सूर्यदेव को अनेक प्रतिमाएँ हैं। कालिदास ने इसके ६५ साठ पोंकों का उल्लेख किया है जो एक रथ में जुते हैं<sup>२</sup>। मधुरा भी इन प्रतिमाओं के बड़े रथ में जुते हुए हैं जो रथ को लेकर बड़-बड़ इन पर बिदेही संस्कृति को छाप भी स्पष्ट है। लम्बे जूतों का बोझा सदाहरण है। बनारस के मारत कला मयन में सुय देव का रथ है जिसमें प्रतिमा बैठी है। उसका उच्छीन सारथी बबल रथ हाँक रहा है।

ब्रह्मा—ब्रह्मा विश्व महेश्वर के कालिदास द्वारा बजित मुख्य देवता इन तीनों का समन्वय ही त्रिमूर्ति कहलाता है। ब्रह्मा स्वयम्भू<sup>३</sup> बारीक करणर विश्व का उत्पत्तिदाता<sup>४</sup> कहा जाता है। यह प्रकृति के स्थिति और प्रकृत्य का कारण है। ऐसा कहा जाता है कि सृष्टि रचना के लिए अपने सरीर के गर और मारी भी भाग किए। यह दिन में काम करता और रात में सोता है। यही सृष्टि और प्रकृत्य है। यह सब है। स्वयं बनामि जगत् का भावि स्वयं प्रसुरहित जगत् का प्रभु है। अपने आप से ही यह रचना करता है अपने से ही इसे प्रेरणा मिलती है और अपने आप से ही यह विखीन हो जाता है। यह ठरल भी है और ठोम भी। स्वूल भी है और सूख भी। हड्डका भी है और मारी भी। यह त्रिभि भी है और होता भी। भोग्य भी है और भोग्या भी।। आज और जाता दोनों हैं। इनो प्रकार देव और जाता भी दोनों हैं<sup>५</sup>। कालिदास ने 'मन्वन्तोमुत्' शब्द का प्रयोग कर, इसके बार तिर है, इसको पुष्टि कर भी है। भारतीय संग्रहामय में इसको मति में बार तिर बार हाथ जिनमें देव कर्मइसु ब्रह्मा और सुभा है और दाही वाली जाकति है। कवि ने यही ब्रह्मा के मन्दिर का उल्लेख नहीं किया है।

१. रघु० १।२२  
२. पुराण वृद्धि  
३. पुराण

प्रजापति—कवि ने बताया है प्रजापति का  
आचक्षायन गृह्यसूत्र<sup>१</sup> भी दोनों को एक मानता है।  
ब्राह्मण<sup>२</sup> के अनुसार यह सभी देवताओं का पिता है।

विष्णु—विष्णु के लिए, जैसा पहले उल्लेख है।  
पुरुषोत्तम त्रिक्रम पुरुषरीवाय परमहिम्न  
धर्मवान् वाच्य<sup>३</sup> आदि नाम प्रयुक्त किए गए हैं।  
और हमका आपका सूर्यास्ति का वाच्य त्रिगोल  
बन गया। काश्मीर में यह तीन डग लेकर भूस्थ<sup>४</sup>  
बाद में पौराणिक समयमावतार का प्रतीक बन गया।  
पर कथन इस प्रकार है—विष्णु तीन गंगा पर लेट है।  
जानी नीचे में उसके चरणों को एक पसाट रही है।  
रैगमी बरन पड़ा है। विष्णुजी के चौंटे चक्रस्थल पर  
यहां है त्रिमय त्रयी जो शृंगार के समय जाता मुक्त  
उनकी सेवा में निरत उनका स्वामिभवन देखकर मरत है  
न बाघी की पट्टे है न घन को। पहले दिग्ग को  
पालन करन वाले और अन्त में उसका मंदार चरन वाले  
चारण करते हैं। त्रिग प्रकार वृष्टि का जल अन्त एवम् है  
के मन्त्र के विभिन्न स्थापयन हा जाता है। जैसे ही वे मन्त्र  
मात्र एक और हम के गुणों में विष विभिन्न रूप धारण  
अमान है पर मात्र मात्र का उक्त मात्र होता है। सर्व  
सर्वों कामनाओं को पूरा करने वाले हैं। सर्व अन्त है पर  
अन्त कर जिता है। सर्व अन्त है पर मात्र दूर अन्त के  
दूर में निवास करते हुए भी दूर है निवास होते हुए भी लज  
होने दूर भी मात्र से ही है। कथन होते हुए भी अन्त है।  
सोत है पर सर्व स्वयम् है। मायका के मात्रा प्रकार के शोभा  
दुका व गीत है। मात्र ही मात्रा मन्त्रा व अन्त में निवास करने

१ ३ ४

२ ११ १ १५ १८

३ ८ १

४ उनके उल्लेख विष्णु के ग्रीक उल्लेख है काही है। ५  
१० मय म है ग्रीक विष्णु का शृंगार को दर्शा है।

५ ५, ११ ४

६ ७ ११

७ १५ १०१

८ उर्वरीय प्राकृतिका विनीतन दशमगा १-१५

१०११

प्रकार की अग्नि आपके ही मुख हैं। रातों कोकों के आप ही आभय हैं। वर्ष वर्ष काम मोक्ष उनके ही चार मुखों से निकसे हैं। सप्तमन शायर, भेता क्रिमुन चार युग और अनुवर्ष सब उनका ही उत्पन्न किया हुआ है। योगी योग प्राणायाम आदि के द्वारा ज्योति-स्वरूप आपकी ही शोच करते हैं। भक्तमा होते हुए भी वे बन्ध केते हैं। कर्मरहित होकर भी धनुओं का संहार करते हैं। योगनिद्रा में निद्रित भी बालकक हैं। परमानन्द के समी मार्ग यहीं जाकर मिल जाते हैं। जो योगी सदा उनका ध्यान करते हैं, विन्हीं सब कम उनको समर्पित कर दिए हैं और जो राय-द्वेष के परे हैं उनको वे बन्ध-मरण के बन्धन से छुटकाया देते हैं। उनकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। उनके स्मरण मात्र से ही मनुष्य पवित्र हो जाते हैं। उनके किए कुछ भी अप्राप्य नहीं हैं। दया वसुति के लिए वे अवतार लेते हैं और मनुष्य के सर्वथा आचरण करते हैं<sup>१</sup>।

नारायण—विष्णु के किए ही नाचबच घण्ट प्रयुक्त किया गया है। उबड़ी के विषय में विवेचना करती हुए कवि कहता है 'नर के मित्र मुनि नाचबच की शीघ्र से उत्पन्न उबड़ी जब कैलासपति की परिचर्या समाप्त कर बैठ रही थी देवताओं के शत्रु पक्षियों द्वारा वह मार्ग में बन्धी बना ली गई'<sup>२</sup>। इस बन्धन के अनुसार नर और नारायण दो प्राचीन स्रष्टि हैं। बाद में नर का एकीकरण ब्रह्म से और नारायण का वासुदेव कृष्ण से हो गया। ऊपर के प्रसंग की उबड़ी अपने पिता के मध्यलोक (पितृ<sup>३</sup>) आकाश में उड़ जाती है। ब्रह्म के दूसरे ढग से आकाश की प्रतीति होती है। आकाश विष्णुलोक के लिए एक और स्वर्ग पर भी प्रयुक्त हुआ है। काश्मिर 'अस्तम' परम्<sup>४</sup> से विष्णुलोक का ही आशय लेते हैं। वीसा बताया जा चुका है, विष्णु पहले सूर्य ही या अथ सूर्यलोक आकाश लोक' हुआ।

अस्य अवतार—महाभारत<sup>५</sup> राम<sup>६</sup> वासुदेव कृष्ण<sup>७</sup> सब विष्णु के ही

१. रघु० १०।१५-१६

२. ऊर्ध्वरुवा मरसगस्य मुने सुरभी कैलासनाथमनुसृत्य निवर्तमाना ।

बन्धीवृत्ता विबुधशत्रुभिरपमार्गे ऊर्ध्वरुवा कदमपत्तरसां नयोपमम् ॥

अवतार में क्योंकि इनका एकीकरण विष्णु के  
दानों के हाथ से पृथ्वी का उद्धार दिया राम  
वच्य में छुर बंग का ।

कुपाय बाल में बामुदेव वच्य के सम्बन्ध की  
की रूप-रेखा को विज्ञान प्राप्त हुआ । बलि में  
हुय मीर वीर<sup>१</sup> बलराम<sup>२</sup> और उनको बम्बी रैवती<sup>३</sup>  
है । बालिय<sup>४</sup> और बौल्यु<sup>५</sup> का भी संबंध है परन्तु  
मिलता । हमसे निष्पन्न निश्चयना है कि बलि के  
सम्बन्ध ही गया था । कुछ नाम के सेना में कुछ  
उपलब्ध होना भी निश्चय होता है । बल्य-भाग्य की व  
रूप में पृथ्वी का उद्धार करते हुए विद्यालय<sup>६</sup> ॥ १॥  
अवतार ) की मूर्ति है । औद्युग के पाप मन्वीर के  
वच्य के छवट उद्यम और गीबबन उद्धान के विषय है ।  
दीनदामी विष्णु और उनके अवतारों को अनेक प्रतिमाएँ हैं  
ईश्वर मन्त्रदाय स्थापित ही हुआ था । उनके समय में  
बहुधा विष्णु और महद्य की एकता का समय स्थापित हुई ।

द्विज—वालिदाय को निज मन्त्रों अधिक दिया है  
प्रारम्भ द्विज की स्तुति से हुआ है । अन्त में अनुमान  
निज के ही उद्गमक थे । परन्तु उनका धर्म विभी लक्षित ॥  
सीमा में बहड़ा बरी या जीमा विष्णु और ब्रह्मा की  
होता है ।

को भी ही निज का मन्त्र बहूत अविषय का । इसके निर

१ देविग, निष्ठने पुष्ट की चारटिपली नं० ७

२ देविग, निष्ठने बह की चारटिपली नं० ७

३ निष्ठा हाताममिन्तरमा रैवती-वच्योवा

बामुदेव मन्त्रद्विगो काली या निष्ठा । —दुर्गा २१

४ देविग चारटिपली नं० ३

५.६ चारोव हातामिन्तर बाल्य-मन्त्र निष्ठा वच्योवा व ।

वालिदाय निष्ठने हाता मन्त्रद्विगो काली या निष्ठा । —दुर्गा २१

७ वाता २११

८ निष्ठने २११

प्रकार की ब्रह्मि आत्मे ही मुख हैं। सत्तों ओरों के आप ही आपय हैं। बर्ष अर्ध काम यौत उनके ही बार मुखों से निकले हैं। सतयुग आपर, नेता कश्चिन्मय बार युग और अनुबर्ष सब उनका ही सत्यम् किया हुआ है। यौवी स्त्रीन प्राचताम बारि के दार्य श्रौति-स्वरूप आपकी ही शोध करते हैं। ब्रह्ममा होते हुए भी वे ब्रह्म केते हैं। अथर्वहित होकर भी समुजों का संहर करते हैं। यौतनिद्रा में निद्रित भी ब्रह्मकक है। परमानन्द के सती मार्ग वहीं ५ ॥  
आते हैं। जो यौवी सदा उनका ध्यान करते हैं, विष्णुनि सब कर्म उनको कर लिए हैं और जो सत्य-देव के परे हैं उनको वे ब्रह्म-मरण के ब्रह्मन कृत्कार्य केते हैं। उनकी ब्रह्मि का ब्रह्म नहीं किया जा सकता।

मात्र से ही मनुष्य पवित्र हो आते हैं। उनके लिए कुछ भी अप्राप्य नहीं ब्रह्मा ब्रह्मि के लिए वे ब्रह्महार केते हैं और मनुष्य के सदा आचरण करते हैं।

नारायण—विष्णु के लिए ही नारायण सत्य प्रयुक्त किया गया उद्योग के विषय में विवेचना करते हुए कवि कहता है 'नर क मित नारायण की शोध से सत्यम् उद्योग सब कर्मसत्ति की परिचयों लौट रही थी वेद्यताओं के समु राजसों आप वह पाप में बन्धी बना ली इस ब्रह्मन के अनुसार नर और नारायण ही प्राचीन ब्रह्मि हैं। बार का एकीकरण ब्रह्मन से और नारायण का ब्रह्मदेव रूप से हो गया। के प्रत्यय की उद्योगी अपने पिता के मध्यलोक ( पितृ<sup>१</sup> ) आकाश में ७५ है। ब्रह्मन के दूसरे रूप से आकाश की प्रतीति होती है। आकाश के लिए एक और स्थल पर भी प्रयुक्त हुआ है। काशिराज ब्रह्मन से विष्णुलोक का ही आपय केते हैं। जैसा बताया जा चुका है विष्णु ही का नर सूर्यलोक 'आकाश लोक हुआ।

अन्य अवतार—महामारु<sup>२</sup> 'धम' ब्रह्मदेव रूप' सब

१. एपु. १०।१५-१६

२. अथर्वहित नरसत्तय ब्रह्मन सूर्यी नृताशनायनसुसुत्य विषयमाता

३. अथर्वहित कर्ममपारसों गद्योप्यम्

ब्रह्मतार से क्योंकि इनका एकीकरण बिष्णु के साथ किया गया है रामों के हाथ से पूष्पी का उद्धार किया राम ने रावण का कृष्ण ने शूर वंश का ।

कुवाण काल में बामुदेव कृष्ण के सम्बन्ध की अधिष्ठाता की रूप-रेखा को विकसित प्राप्त हुआ । कवि न गोपाल कृष्ण<sup>१</sup> का हुए मीर वंश<sup>२</sup> बलराम<sup>३</sup> और उनकी पत्नी देवती<sup>४</sup> आदि का भी है । काष्ठि<sup>५</sup> और कौस्तुभ<sup>६</sup> का भी संबंध है परन्तु रामा का नहीं मिलता । इससे निष्कर्ष निकलता है कि कवि के समय में सम्प्रदाय हो गया था । गुप्त काल के लेखों से गुप्त राजाओं का उपासक होना भी सिद्ध होता है । मध्य-भारत की अवधमिरि गुप्त रूप में पूष्पी का उद्धार करते हुए विगासराय महाशराह ( ब्रह्मतार ) की मूर्ति है । ओपपुर के पास मन्दौर के पाँचवीं शताब्दी कृष्ण के लघट उल्टने और दीवघन उल्टने के चित्र हैं । ललीर के ऐशरादी बिष्णु और उनके अवतारों की अनेक प्रतिमाएँ हैं । अतः कृष्ण सम्प्रदाय स्थापित हो चुका था । उनके गमय में हमन और ब्रह्मा बिष्णु और महेश की एकरा इस समय स्थापित हुई ।

निबन्ध—वातिशान की निबन्ध सबसे अधिक प्रिय है सम्प्रदाय सभी प्रारम्भ निबन्ध की स्तुति से हुआ है । अतः एसा अनुमान किया निबन्ध के ही उपासक थे । परन्तु उनका धर्म किसी सङ्घटित सम्प्रदाय सोमा में अवका नहीं था जैसा बिष्णु और ब्रह्मा की स्तुति से होता है ।

जो भी हो निबन्ध का महत्त्व बहुत अधिक था । इनके लिए ही

१ देविण, निबन्धे पृष्ठ की पारटिण्णो नं० ७

२ देविण, निबन्धे पृष्ठ की पारटिण्णो नं० ७

३ निबन्धे हागममिमनरना देवतीलोचनाका

बम्बुडीता समवदिमुना लोन्नी दा निबन्धे । —पूरवेय २३

४ देविण पारटिण्णो नं० ३

५.६ बामेन लाली-बन बामेन मणि निबन्धे बम्बुडीता दा ।

बामेन लाली-बन बामेन मणि निबन्धे बम्बुडीता दा निबन्धे । —पूरवेय २४

७ बामेन १११

८ निबन्धे, १११

महेश्वर,<sup>१</sup> परमेश्वर,<sup>२</sup> अष्टभूति<sup>३</sup> दशभूति<sup>४</sup> पद्मभूति<sup>५</sup> अश्वत्थ<sup>६</sup> स्वायं,<sup>७</sup> भीष्मोद्दिष्ट<sup>८</sup> नीलकण्ठ<sup>९</sup> वृषभध्वज<sup>१०</sup> विश्वेश्वर<sup>११</sup> अश्वत्थ,<sup>१२</sup> महा-  
काल<sup>१३</sup> शम्भु,<sup>१४</sup> हर,<sup>१५</sup> गिरीश<sup>१६</sup> भूतेश्वर<sup>१७</sup> भूतनाथ<sup>१८</sup> शिव<sup>१९</sup>  
विनायी<sup>२०</sup> आदि अनगिनत विशेष्य आये हैं। सत्यमित्री के महाकाव्य<sup>२१</sup>  
बनारस के विश्वेश्वर<sup>२२</sup> के मन्दिर का कवि ने उल्लेख किया है।

शिव की स्तुति द्वारा उनके निम्नलिखित गुणों की अभिव्यक्ति होती है।  
'बहु मनुष्यों को आठ कर्णों में बुद्धिगोचर होता है। वह के रूप में बहु ब्रह्मा  
को सृष्टि में सप्रथम है। अग्नि के रूप में वह विधिपूर्वक हस्त-नामनी को प्रह्व  
करता है। हीरा के रूप में वह यज्ञ-कर्तों का सम्पादक है। सूप और अन्न के  
रूप में वह दिन और रात का नियामक है। आकाश के रूप में वह विश्व में  
व्याप्त और अन्न भुज बाका है। पृथ्वी के रूप में वो उत्पत्ति का स्वक है, वायु  
के रूप में सभी जीवधारियों का जीवनदाता है<sup>२३</sup>। शिव के आठ रूप अम्बन भी  
वर्णित हैं। मातृविकान्तिमित्र के प्रथम श्लोक में शिव को सांसारिक भोग वन

१. रघु० ३।४९	२. रघु० १।१	३. रघु० २।३५
४. कुमार० ६।२४	५. कुमार० १।९५	६. रघु० ३।४२
७. कुमार० ३।१७	८. कुमार० २।५७	९. कुमार० ७।३१
१०. रघु० २।३९	११. रघु० १।८।२४	१२. पूर्वमेघ ३७
१३. पूर्वमेघ ३८	१४. पूर्वमेघ ३४	१५. कुमार० ७।४४
१६. कुमार० ३।३	१७. रघु० २।४९	१८. रघु २।२८
१९. कुमार० ५।७७	२०. कुमार० ५।७७	
२१. अष्टौ महाकाव्यनिकेतनस्य वसन्तदूरे किञ्च अग्रयणीः ।		

—रघु० ३।३४ पूर्वमेघ ३८

२२. भारद्वाज विश्वेश्वरजीवरूपेण तेन तित्तेर्विजगद्गी विजग ।

पार्श्व गहो विश्वमन्त्र समर्था विश्वम्भरात्मनश्चतुष्टिरात्मा ॥—रघु० १।८।२

नोट शिव के विशेषणों के पूरे उद्धरण कुछ पहले शिव का वहाँ उल्लेख

शिव की उपासना स्वयं शिव एवं सम्प्रदाय

स्त्री और अहंकार से सञ्चया उदासीन एवं मुक्त ब्रह्म किया गया है<sup>१</sup> ।  
 चर्मों में लोम काम और अहंकार की छोड़ने से ही मयवान् की प्राप्ति हो  
 है । जिस सभी के अष्टा पाकक और संहारकर्ता है । अथवा इन सबके  
 है<sup>२</sup> । वास्तविक नाथ उनका संहार है । उनकी मूर्ति जल में व्याप्त<sup>३</sup> बही  
 है । यह इस बात का प्रतीक है कि प्रलय होने पर सम्पूर्ण पुष्पो  
 जाती है । जिस की उपाधि ईश्वर भी है और ब्रह्म मार्भक है । वैशाखो लोम  
 मरेका पुरव बताते हैं । यह पुष्पी और आवाय में रमा होने पर भी  
 भलग है । मोटायाँ होने अपने हृदय में स्वाग्ने है<sup>४</sup> । व्याप्य स्थित रोहरी  
 उसकी पहचान करिष्ठ होती है । 'ममापि स क्षययु नीलमोहित'<sup>५</sup>  
 'यश्चिदायम मू'<sup>६</sup> से वे हो जग्य-मरण के अंश से मुक्ति दे सकते हैं यह  
 कार्य होता है ।

वे विरह का रूप है<sup>७</sup> । वे अनिया आदि निद्रियों से दुक्त है<sup>८</sup> । वे  
 को<sup>९</sup> धारण करने वाले हैं । विरह में किए जाते प्रत्येक काम के वे नाशी हैं<sup>१०</sup>  
 सभी लोकपाल इष्ट सहित उनके सम्मुख नतमस्तक हाते हैं<sup>११</sup> ।

१ एकस्वर्गविषयैः प्रयत्नबहुलके य स्वयं कृतिधामा  
 काम्ना सम्मिश्रितोऽप्यविषयमनसा य परस्तादप्रीताम् ।

अष्टाभिर्मयस्य कृत्स्नं जगदपि तनुर्बिभ्रती नाभिमान  
 सम्मार्गलोचनाय व्यनयन् स बस्तामसी नृत्तिपीथ ॥ —माल० १११

२ रमावर्जममना समविषयित्यवहार हनु । रघु० २१४४

३ सा वा लोकोस्तरोया वा नृत्तिजलमयो मम । —बुधवार० २१६

४ वैशाखेयु ममाहरेकपुरं व्याप्य स्थित रोहरी  
 यश्चिदायम हृदयमप्यविषय इत्येव ममावर्तारः ।

अन्तमरय मुमुक्षुमिन्दविनशाभाविमिम स्त्री  
 स रसागु विषयविनशागमुललो नि शेषनायास्तु क ॥ —विजय० १११

५ अमि० ३१३३

६ विदुष्योदमाभि एतज्जवापि वा यथाशितान्त्रि दुःखधारि वा ।

कपालि वा स्यान्बन्धुदेवर्त न विरहदुर्गवशात्तै वतु ॥ —बुधवार० ५१

७ अकिमार्गि दुष्टोऽप्यपूज्यपूज्यपूज्यम् । —बुधवार० ११७५

८ यनर्हि स्थिते विरहं बुद्धिर्वाच्यमप्यन । बुधवार० ११७६

९ नाशी विरहय वर्धनम् । —बुधवार० ११७८

१० तं लोकपालां ब्रह्मपूज्या योनायागमनोऽप्येता ।

दृष्टिब्रह्मे कृतमन्त्राणां हृदितां ज्ञानमद ब्रह्मेण ॥ —बुधवार० ७



द्विष का स्वरूप—पुष्पकास की द्विष की जलकी नीर पार्वती के अनेक प्रतिमार्गे मिलती है। कुमारसंभव में कवि ने द्विष के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। तभीन में भस्म<sup>१</sup> कलाह पर द्वितीया का अग्रमा<sup>२</sup> सरीर नवाकिन<sup>३</sup> ( संय के आभूषण<sup>४</sup> सर्प के रूप में ) उसकी विशेषता उसका बाहुन वयम<sup>५</sup> है जिसके गले में सोने की झीटी-झीटी घंटियाँ रहती हैं। पीछी बाक से बल्ले वाला घोषों से बाइलों की विरीन करता जाने बहुत काठा है<sup>६</sup>। उस पर बाबाभर<sup>७</sup> बिछा रहता है। अन्ना, बाभरबाहिनी वया यमुना सब उसकी सेवा में उपस्थित रहते हैं। द्विष नन्दी नीर बाहुन वृषन नन्दी में कवि मित्रता समझता है—ऐसा यी ५ का मत है पर बारतव में बीनो स्थानों पर नन्दी नन के ही द्विष जना द्वैव सम्प्रदाय की विमम्न दास्यार्थ

कालमीरी द्वैव मत—इसमें दो मत हैं—स्वप्नघास्य नीर घास्य। स्वप्नघास्य से इनके सिद्धान्तों का साम्य नहीं है। बीक-बहुत माझुन होता है बहु उपनिषद् जावि बन्नों के अन्मात्र नीर सिद्धान्त ही है। प्रत्यभिज्ञा घास्य भी मिलबुन भिन्न है। इस घास्य के अनुबह से ही आत्म-स्वरूप का ज्ञान होता है, पर कालिदास ने के महत्त्व पर प्रकाश डाला ही नहीं है। स्वप्नघास्य के मतानुसार साधन दीन मानते हैं परन्तु नीता के छोटे अव्याय में भी पीट

१ वसुध भस्म सिद्धारणः । —कुमार ७।३२

२ हेमिण, पिछने पृष्ठ की पारटिप्पणी नं० १

३ नवाकिनसर्वत्र पुष्पकमात्रः । —कमार० ७।३२

४ वयाप्रदेयं भुवनैवरायां वरिष्यतायाभरवाभरत्वम् ।

घरीरमात्र विवर्ति प्रदेयै तर्क्य तस्य कनरत्नपीया ॥

५ इस व ठेठ्ठा नुरतो विवर्धना मद्रुषा भारवराजहार्यमा ।

— त्वया महाजन स्मेरमुषी

का निकम्प है अतः वे उपनिषद् पीठा आदि से अधिक प्रभावित थे ।  
 वीरमठ का प्रभाव नहीं था । श्री कश्मीर वस्त्र ने नाना उदाहरणों  
 कालिदास का प्रत्यभिज्ञा शास्त्र के साथ सम्बन्ध स्थापित करके दिया है  
 उनका यह साम्य इसलिए भी हो सकता है कि सबउ प्रदेश में वे कछ  
 रहे हों । वे जमी के अनुयायी थे ऐसा निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता ।

पाशुपत धर्म—पाशुपति<sup>१</sup> मूनाय<sup>२</sup> और भूनेश्वर<sup>३</sup> कहकर कवि  
 इन धर्म का भी अत्रत्यता संकेत दिया है । इस पद्धति के पनि पशु और पाद  
 विद्यान्त है<sup>४</sup> और बिना जिज्ञा योग और काय चार विभाग है<sup>५</sup> । प्राग्बैर  
 रत्न को पशुप कहा गया है<sup>६</sup> । अथर्ववेद में अथ और चव को भूति और  
 कहा है । पाशुपति के शासन में गो अरव नर अथ और मेर ये पंचग्रीव है<sup>७</sup>  
 महाभारत में<sup>८</sup> पाशुपत पाँच धार्मिक निष्ठान्त में से एक है । मनु ने  
 पठात्र प्राप्त करने की बोधित की है । बलि में भी इन देवता की दुर्भ  
 योगमुक्ता<sup>९</sup> कहा है ।

महाकाल के मन्दिर में पाशुपति चित्र संयोजन-प्रिय भाव करते ।  
 गे है<sup>१०</sup> । चित्र की नाय-प्रियता और संवात-प्रियता का संकेत एक स्थान  
 और भी बलि में दिया है—

राक्षस्यो भयुरमनिलै रीरुषा पुष्पाणा  
 संतकतामिहिनुरविजयो गोमले द्वितीति ।  
 निहृदिस्ते मुरज १६ वेरगरेषु ध्वनि स्यात्  
 संयोगो ननु पणपनेत्यत्र भावो लक्ष्यः ॥ —दृ.मे. ६०

- १ पाशुपतिरिति नायदानि कृत्वाऽहमपरादिपुत्रागमागमादिक । —ब.मा. ६।१
- २ तदुमनाकानुम आहमि त्वं संक्षिपी ये प्रप्यं विष्णुम् । —रघु. २।५८
- ३ मूनाय भूनेश्वरकारकरीं विविद्भरत्वापराति बभाष । —रघु. २।६६
- ४ ५ भंडारकर कर्मविश्व दारिद्र्य आदि —प. १०३
- ६ ७ इदिया इन कालिदास गु. ३१४
- ८ धार्मिक ( नारायणीय ) अध्याय ३.१.६४
- ९ विजय. १।१
- १० परादुर्भयभुजऽरुचं भवेत्तेनामिनोऽ-  
 नायं तेषां प्रतिपद्यतां पुनरपि दधानः ।  
 मृताभे ह्येव वन्द्येतां गन्तव्यमिति ज्ञातं  
 पाशुपतमिति विदुषां दुष्टमिति धर्मज्ञा ॥ —ब.मे. ४०

कालिदास ने अर्बनारीश्वर<sup>१</sup> का भी उल्लेख किया है। मुक्तकालीन<sup>२</sup> में शिव के शक्तिने नाम में पार्वती दिखाई पड़ती है।

युद्धदेव और देवताओं के संगामी स्वर्ग<sup>३</sup> का भी कवि ने उल्लेख किया देवमिरि पर्यंत पर<sup>४</sup> इनका भविर भी था। सामान्यतः इनका बाहुन मयूर जाता है। कवि ने भी इसका विवरण किया है<sup>५</sup>।

महामातृ शिव को संहारकारिणी-शक्ति भद्रकाली<sup>६</sup> है। यह अनुपम कोपदिवों<sup>७</sup> का भंडमातृ कारण करती है। कवि ने इसका स्वर्तन उल्लेख है जमा जम्मा सप्त बहिकाओं के साथ एकीकरण नहीं हुआ है। विवाह के पूर्व दिव्य माताओं के पीछे यह अनुमनन करती है<sup>८</sup>। शिव के इनका स्पष्ट वचन है।

अनेक देवी-देवताओं का प्रत्येक देने पर भी कवि एक ही ईश्वर पर करता है। इसने स्वर्ग बीठा पहले उल्लेख किया था चुका है कि इनका समन्वय कर दिया है। कदा और विष्णु की स्तुति में अवेष्ट है। उसने एक स्थान पर वहीं अयिगु अनेक स्वर्गों पर इन तीन<sup>९</sup> भाव को बूझने का अवक परिधन किया है—

नमस्त्रिभूर्देवे तुभ्यं प्राक्ष्मुष्ट, कैवल्यारमणे ।

मुनयवनिभाभाय कथाद्भेदमुरेमुपे ॥ —कुमार०

१ अमर मिश्री कले बार्बतीपरमेस्वरी । —रघु० १११

२ नीत्यां नुरासीनां तं पुरस्कृत्य गोबन्धिव । —कुमार० २१५

—तत्र स्वर्गं विस्तृतं विष्णुनामेपीक्ष्ताया

पुष्पासारी, स्वपण्यु भगाम्पोभनभाजसाई ।

रथाहेतोर्नमशिमता वासनीना जमुध-

मत्पारित्थं हृत्पहनुपे तंमूर्तं तद्वि तैज ॥ —पूर्वपे

३ वैविष्ट, पावद्विष्णवी अ० २ ।

४ इत्येक ही देवमिरि का प्रार्थन प्राप्ता है ।

किं येन लुब्धसि व्यक्तमुत येन विमर्शि च ॥

अथ विरक्तस्य संहृता भाग्यं कथम एष ते ॥ —कुमार० ११२

एतच्च मूर्तिर्बिम्बिषे त्रिधा सा सामान्यमैषां प्रथमाधारस्थम् ।

विष्णो हस्तस्य हरिः कथाचिन्त्रे वास्तवोस्तावपि चातुराशी ॥ —कुमार०

रसान्तरष्योकरसं यथा विष्णं पयोऽनुते ।

देते देते गुणध्वजमवस्थास्त्वमविक्रिय ॥ —रघु० १०१६

इस प्रसंग में सबसे सुन्दर अविज्ञानसाधुन्तक का अंतिम श्लोक है—

प्रवर्ततां प्रकृतिद्विषायां पार्थिव सरस्वती क्षुतिमहती महीदनाम् ।

ममापि च क्षपयन् नीललोहित पुनर्मम परिणतपवित्रारमम् ॥

—अभि० ७१३

यह उस समय की भावना का साक्षात् प्रतीक है ।

पूजा करने की विधि

मूर्ति-पूजा—सकलका के अध्याय में देवताओं की प्रतिमा और का ( प्रतिमापूजा ) उल्लेख किया जा चुका है । स्पष्ट रूप से बनारस के मन्दिर<sup>१</sup> ( जो आजकल विश्वनाथ जी का मन्दिर कहलाता है ) और के महाकाल<sup>२</sup> का मन्दिर देवमन्दिर परत के स्वयं के मन्दिर<sup>३</sup> का भी कवि प्रसंग दिया है । अतः जनमाधारक प्रतिमापूजन अर्थात् मूर्तिपूजा को शुरु हुआ था ।

धार्मिक अध्यास में संस्कार यज्ञ यत् अनुष्ठान आदि को किया जा ३ है । इनमें संस्कार यज्ञ यथेष्ट प्रकाश होता जा चुका है । अब यज्ञ यत् आदि का वर्णन किया जाएगा ।

यज्ञ—वालिहाम में अनेक स्थलों पर यज्ञ<sup>४</sup> का वर्णन किया है । इन में अरधमेघ विरचयिन् और पुनरि यज्ञ आते हैं । अरधमेघ यज्ञ राजर्षि दुष्टिरोध से कहता रहता है । इसी वृत्ति पर राजा वज्रवर्ण मन्त्राद्य कर दिया जाता था ।

वशि ने दीर्घमेघ<sup>५</sup> यज्ञ का उल्लेख किया है । वरपदेव ने गाना

१२१ पुरोत्तेज

४ यथाचिन्त्रितुताम्भीनाम् । रघु० ११३

उत्तमये हविर्भोज्युपयमान उदारविन् । —कुमार०, ११२८

वैष्णव ५ अथर्वे पू० पर २ १ ४ लक्ष्मणे यज्ञ का ही प्रसंग और गीतेन है

५ हरिश्च वीरमहाय सा भेराणी प्रवेणग ।

भुवर्गद्विहासार् वाग्वज्रविजिह्वति ॥ —रघु० ११८०

काकिबास के प्रत्येक उत्कालीन संस्कृति

यह यज्ञ किया था जिसमें बाहुति की सामग्री देने के लिए कामधेनु परी हुई थी  
भायवत पुराण के अनुसार एक वर्ष से सहस्र वर्ष तक 'सत्र' यज्ञ करने  
मन्विषी (११४)।

काकिबास ने जम्बर का भी बस्त्रोत्त किया है<sup>१</sup>। जम्बर<sup>२</sup> में पशुबलि  
स्वयं बस्त्रोत्त है<sup>३</sup>। मेघ्य बार्हस्पति ने उस वस्तु के लिए माता का जिसकी  
बढ़ाई जाती थी। बलि पशु को एक स्तंभ से बाँध बिना या जो मृग<sup>४</sup>  
था। जत बलि के लिए पशु को बाँधने की क्रिया भी यज्ञ का<sup>५</sup>  
हो था। कवि ने बाहुतियों की दान में किए जाने वाले ऐसे ग्रामों का  
किया है जो यूपों से भरे हुए थे<sup>६</sup>। बर्गला के साथ ऐसे यूप की भी  
मधुपुत्र संप्रदाय में देखी जा सकती है।

एक स्थान पर तो मनुस्मृति की विद्या के समय कवि ने वैदिक  
भी रचना कर बाली है—

- १ मनुस्मृति ५।४४
- २ कीटिचिन्नेन स किञ्च किंतीस्वरो राममज्जरविवातघातये । रघु० १
- वेदिप्रतिष्ठापितताम्रराज्या यूपानपरयज्जतघो रघुनाम् ।—
- किष्वाप्रवन्नादवमज्जराज्यामजसमातूतसहस्रनेत्र । रघु० १।२
- ३ तत्र कर्प्या सपशुपुष्पाद्यो पुर परार्थप्रतिमामुहाया ।—रघु०
- तद्वज्र किञ्च यद्विनिर्मितं न तन्नु तत्कर्म विवर्जनीयम् ।
- पशुमारण्यमवाकणीऽनुकम्पामुदुरैव श्रीविष्य ॥
- अहं येनेष्टिपशुमारं मारितं साग्नेन स्वायतेनाग्निं घटे ।

—जलानि या तीरनिजातयूपा बहुस्पयोध्यामनु राजपानीम् ।  
गुरंगमेवावकाशतीर्जितस्वाहुनि पुष्पतटीकृतानि ॥ —

- ४ दायैष्मारमविसृष्टेषु यूपविह्वलेषु यज्जनाम् ।
- जयोवा प्रतिप्रसुप्तावध्यानिपरमाधिय ॥ रघु० १।४४
- ११४४ । निपातयूप ।—रघु०

अमी वैदि परितः वृत्तविष्ण्या सविश्रुता प्रागुर्मस्तीपरमा ।

अप्यन्तो दुरितं हृद्यमग्न्य वैतानास्तां बह्व्य पावयन्तु ॥ —अभि० ४

यज्ञ के बारे में यजमान का<sup>१</sup> एक धार्मिक-संस्कार होता था जो कहलाता था । यह विस्वाय था कि विश्व यजमान के चारों ओर<sup>२</sup> प्रवेष्ट कर अपनी तरह पवित्र बना देते हैं । यजमान एक बार<sup>३</sup> यदि यज्ञचरन्<sup>४</sup> ( भूमि का घेरा ) में प्रवेष्ट कर बैठा था तो उसको छोड़ नहीं सकता था ।

जबमू<sup>५</sup> एक मुख्य संस्कार था जो यज्ञ की समाप्ति का बोधक होयसत्र के समाप्त होने पर यह सोलह स्थानाग्न्य पुष्टोहितों के द्वारा जाता था ।

विस्तत्रित्व<sup>६</sup> दिग्विजय के पदचान् किया जाता था । हममें यजमान सारा कोप दान कर देता था<sup>७</sup> । पुत्र की कामना से किया जाने वाला यज्ञ यज्ञ कहलाता था<sup>८</sup> ।

१ सत्यतमे हविर्भोज्युर्मजमान इत्यारभित् । —शुभार० १।२८

—अग्निर्ब्रह्मसूतं कुशमेगजां यनमिरं यगत परिरिहाम् ।

अधिवर्मस्तनुमध्वरदीतिशामसमयाममवाप्तयदीरवर ॥ —रघु० १।२१

२ अथ तं सवनाय वीक्षितं प्रथियानाद् मुद्रायामस्थितं ।

अधिवर्मजडं विजिह्वानिति दिग्मथ कियान्त्वोपयन् ॥ —रघु० ८।२५

—तत्र दीक्षितमुपि ररत्तनुविष्णो बभारवात्मनो धरं । —रघु० ११

३ वैगिर, पावटिप्यो नं० १ रघु० १।२१

४ वैगिर, पावटिप्यो नं० २ रघु० ८।२५

५ स्वसित यज्ञशरवात्मैवारति दुष्पनित्रो वन्तिर्त्य ५। १३

स्नेहातरिष्वाग्ने-बभूवप्यनि । —मात० अंक ५ पृ० ३५२

मुधं बोध्यन् कुंडीप्यो मैत्र्येणावप्रवदति ।

प्रत्यवेनामिषयन्तो बभूवाकप्रवतिना ॥ —रघु० १।८४

—अतानि वा सोरनिगातयूया बभूववाध्यामनु रात्रपात्रीय ।

तुरबमेवावप्रवाचीर्देरिरशामुनि दुष्पयतीव्यनि ॥ रघु० ११

७ वीक्षान्तोऽवबुधो यज्ञः ( अवरकोप )

८ तवचरे विजिह्वितं पिशोयं निदीरविषादिशरवत्तम् ।

यत्तत्तद्विदो दुरद्विनादाधी कोलः प्रदे बभूवप्यदिप्य ॥ —रघु० १।१

९ वैगिर, पावटिप्यो नं० ८

१० दृष्ट्यन् दान्दमन्त्रं यज्ञं संनामवातिम् ।

वादेविदे विजुग्मानं दुष्टोर्वर्षिहन्त्रिजः ॥ —रघु० १०।४

यह यज्ञ किया था जिसमें जाहुति की सामग्री हैने के लिए कामनेनु पई हुई थी। भागवत पुराण के अनुसार एक वर्ष से यहूज नव तक 'यज्ञ' यज्ञ करने की व्यवस्था थी (१ १ ४)।

कासिदास ने अण्णर का यो संस्कार किया है<sup>१</sup>। अण्णर<sup>२</sup> में पशुबलि का स्पष्ट संस्कार है<sup>३</sup>। मेघ्य आरंभ में सप्त वस्तु के लिए धाता का बिसकी बलि चढ़ाई जाती थी। बलि पशु को एक स्तन से बाँध दिया था जो मूत्र<sup>४</sup> कृष्णात्ता था। अतः बलि के लिए पशु को बाँधने की क्रिया भी यज्ञ का<sup>५</sup> संस्कार हो था। कवि ने जाहुतियों की दान में दिए जाने वाले ऐसे ग्रामों का संस्कार किया है जो मूर्तों से घरे हुए थे<sup>६</sup>। अर्चका के साथ ऐसे मूर्त की दो प्रतिमाएँ मधुरा संप्रदाय में देवी का सकती है।

एक स्थान पर तो सङ्कुलता की विद्या के समय कवि ने वैदिक यज्ञ की भी रचना करवायी है—

१ मनुस्मृति ५।४४

२ कौटिल्येन स किञ्च सिटीस्वरो राममण्णरविवातसालात्मे । रघु० ११।१

—वैदिकप्रतिष्ठानिपुताम्भराया मृपानपस्वच्छतपी रघुचाम् ।—रघु०, ११।१५

—क्रियाप्रवन्तादयममण्णरायामण्णमातृत्तसहसनेन । रघु० १।२१

३ तत् सपत्नी सपशूपहारां पुरः परार्थ्यप्रतिमाकृताया ।—रघु० ११।१९

—सहस्रं किञ्च बह्विनिर्गितं न कञ्चु तत्कर्म विवर्जनीयम् ।

पशुमारण्यमवाहनींशुकम्पानुहुरेव योशिव ॥—अनि० १।१

—अहं येनेष्टिपशुमारं मारितं सीम्नेन स्वावतेनाग्निर्गच्छते ।

—अनि० पृ १२१

—अलानि या तीरनिवातमृपा बहुरपयीम्यामनु राजधानीम् ।

तुरंगमेपायः बावतीर्षेतिस्वाभुनि पुष्पतरीकृतानि ॥—रघु० ११।११

४ ग्रामेष्वात्मनिगृहेषु मूर्तबल्लेषु यज्यन्ताम् ।

अमौवा प्रतिप्रस्तुतादव्यानिपराभाषिणः ॥ रघु० १।४४

—संप्रामर्शिवत्सहस्रबाहुरहादपत्रोप नितातमृप ।—रघु० १।१८

—रघुवरपवसिते क्रियाविधी काकविकृतिर्कर्मघबन ।

अमी वैरि परितः कृप्यविष्ण्या ममित्रतां प्राप्नुमस्तीयस्मि ।

अप्यन्तो वृत्तिं हृदयस्य वैतानास्तां बह्वयं पावदन् ॥ —अमि०

यज्ञ के आरंभ में यज्ञमान का<sup>१</sup> एक आमिह-संस्कार होता था जो २ कहलता था । यह विस्वाम या कि शिव यज्ञमान के शरीर में प्रवेश कर अपनी तरह पवित्र बना देते हैं । यज्ञमान एक बार<sup>२</sup> यदि यज्ञशरभ<sup>३</sup> ( भूमि का पेट ) में प्रवेश कर बैठा था तो उनको छोड़ नहीं सकता था ।

अबमूय<sup>४</sup> एक मुख्य संस्कार था जो यज्ञ की समाप्ति का बोधक शीपत्न के समाप्त होने पर यह शोकह स्वागारभ्य पुरोहिता के द्वारा<sup>५</sup> जाता था ।

विरचित्रि<sup>६</sup> विविधय के पञ्चानु किया जाता था । इसमें यज्ञमान शरा कोप हाथ कर देता था<sup>७</sup> । पुत्र की कामना से किया जाने वाला यज्ञ ५ बरह कहाता था<sup>८</sup> ।

१ अत्यस्ये हविर्मोक्षुर्व्यवान इवारमिम् । —कुमार० १।२८

—अविर्बह्वृत्तं वृत्तमेतत्तां यन्मिरं मग्नं गच्छिह्वाम् ।

अधिरसंस्तनुमध्वरदीप्तितामस्यमास्यवातपरीश्वर ॥ —रघु० १।११

२ अथ तं सवनाय वीतितां प्रविषामाद् मुद्राधमस्विनः ।

अमिपमजडं विव्रजिवानिति विष्यस कितान्बबोदन् ॥ —रघु ८।२५

—तत्र वीतितामूषि ररतनुर्विष्मनो दधरवारमशो धरं ॥ —रघु० १।१२

३ देगिए, पाटलिपुत्रो मं० १ रघु० १।२१

४ देगिए, पाटलिपुत्रो मं० २ रघु ८।२३

५ स्वस्ति यज्ञशरवालेनागति पुष्पनिशी वन्तिर्त्यं पुत्रमापुष्पमममि स्नेहास्तिरिध्वग्नेरमनुदधयति । —माल० अंक ५ पृ० १५२

मुर्धं वाप्यम कुंडोष्मी मीधेनावधुदधति ।

प्रस्मवेनामिर्बन्तो वामालावदधतिना ॥ —रघु० १।८४

—अतानि वा शीरनिगच्छन्तुषा बहस्योष्मापनु रात्रयाभीष्ट ।

पुरंमवावक्यमावतीर्मेतिरवानुमि पुष्पनीवयानि ॥ रघु० १

७ वीतान्तीत्युक्ती यज्ञ ( अमरकोश )

८ तमध्वरे विरचित्रिं विधीयं नि दोर्गविधादिनवोपवागम् ।

अगतं वदो मुद्रादिनामी कोला प्रवेदे बलान्मुलिष्य ॥ —रघु० १।१

९ देगिए, पाटलिपुत्रो मं ८

१० वाप्यप नाप्यवप्य अन्तः मन्त्रमवाप्यम् ।

आरेविरे विज्ञातवान पुत्रोन्मिहमस्विनः ॥ —रघु० १०।४



# वाल्मीकि के ग्रन्थ उत्कालीन संस्कृति

यज्ञ के अन्त में पुरोहितों को बसिना<sup>१</sup> की जाती थी। पुरोहितों की १९ थी। इनमें से होता<sup>२</sup> और अश्विन<sup>३</sup> का कवि ने सबसे अधिक किया है। यज्ञमान के लिए भी प्रयोग किया जाता था। पुरोहितों को बसिना देने बाद ही रघु का कोप रिक्त हो<sup>४</sup> गया था और उसे मिट्टी के पात्र काम करने पड़े<sup>५</sup>।

यज्ञ की प्रवृत्त वस्तु मेघ<sup>६</sup> कहलाती थी। इसमें पशु हवि<sup>७</sup> पयस्व<sup>८</sup> सभी का सकता था। हवि ग्रहण करने के कारण ही नाम हविभुज<sup>९</sup> पड़ा। यज्ञ बलि इन्द्र<sup>१०</sup> के लिए की जत बह<sup>११</sup> कहलाता था। विकल्पभुज<sup>१२</sup> का प्रयोग होता था। यह वरवि<sup>१३</sup> बाहुति<sup>१४</sup> देने के लिए प्रयुक्त होती थी। यज्ञ में कुप<sup>१५</sup> का

- १ पत्नी सुवर्णिनेत्यासीदध्वरस्येव बसिना । —रघु० १।११
- अश्विन स तयाऽऽर्ज्य बसिनाभिर्महाक्री ।
- यथा साधारणीमूर्तं नामास्य वनदस्य च ॥ —रघु १।७।८०
- २ इति वारिज एवास्य ह्योपुराहुतिसावनम् । —रघु० १।८२
- ३ देखिए, पिछले पृष्ठ को पारटिप्पणी नं० ६ और इस पृष्ठ की नं० १ में रघु० १।७।८०
- ४ देखिए, पूर्वोक्तैव रघु० ५।१
- ५ समुष्मये बीतहिरण्यमात्मात्माने निषादाध्यमनर्षीत । —रघु०
- ६ देखिए पूर्वोक्तैव रघु १।८४
- ७ हविषे दीर्घसत्रस्य सा चेदानीं प्रचेतसः । —रघु० १।८०
- प्रात्वा हविर्गन्धि रजोविमुक्तः..... —रघु० १।१।१७
- रघवेव हव्यं होता च मोक्ष्यं भीष्ठा च शारवतः ।
- ८ अश्वदेवमात्रवाभुजा घृतपागप्रतप्ते स पापिवः । —रघु०
- ९ हेमपात्रवर्तं बीर्घ्यामादधानः पयस्वदम् । —रघु० १०।११
- १० मुमूर्तं साह्यं तेनो हविषेव हविभुजाम् । —रघु० १०।१७
- । —रघु०

हीठा था । यज्ञ के समय यजमान एक शब्द बोलकर करता और मजिन बैठता था<sup>१</sup> । येन<sup>२</sup> यज्ञ के अनुसार का भूमरा नाम था ।

देखा कहा का चुका है कि यज्ञ में पतवलि दी जाती थी । परन्तु चर्म के प्रभाव से बलि दूरी मानो जाने छयो थी । मालविकाग्निमित्र में ५७ अनु वाद्युप<sup>३</sup> में ऐसा ही संकेत मिलता है ।

पूजन-कर्म सपर्या<sup>४</sup> क्रिया<sup>५</sup> मजना<sup>६</sup> बलिकर्म<sup>७</sup> पूजा<sup>८</sup> आदि सब कर्म थे । पूजा की दोनो<sup>९</sup> विधि कहलाती थी । पूजन-ग्रामणी में कुछ<sup>१०</sup> पूर्वा मजना<sup>११</sup> पुन<sup>१२</sup> आदि प्रयुक्त होने थे । यद्यु पठारि से निर्मित अथ्य देवताओं और अतिविशेषा<sup>१३</sup> के लिए था । प्रात<sup>१४</sup> और साय<sup>१५</sup> दो बार दान दिया जाता था । अम्बलिक्रिया<sup>१६</sup> अन्नदान की दैनिक क्रिया थी ।

- १ अजिनरंभमर्तं कुसामेयसो यजगिरं युमगृमपरिग्रहाम् । —रघु० १।२१
- २ वीरय वेदिसय रक्तविभुमिबभुमीकपुपुमि प्रकृषिताम् । —रघु० १।२२
- ३ देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं अनु वाद्युपम् । —माल० १।४
- ४ तमानिदेवो बहुमानपुत्रमा मरण्या प्रत्युदियाप पार्वती । —कुमार० ५।
- ५ क्रियानिमित्तप्यपि वरमलत्वादमथकाया मुनिभिः कुर्येपु । —रघु० ५।७
- ६ ननु लवरा रापुन्तनाया गो गयदेवता-र्चनीया । —अभि० ५० ५८
- ७ आचारप्रयनः सपुनःशक्तिः श्मानेन वाचिष्यनो । —विजय० ३।२  
— आलोके से निगनि पुरा या बलिभ्याबुला बा । —उत्तरमेप २५
- ८ वैदर्भमामस्य मनुस्नदीयां प्रत्यप्य पूजाम्पराण्यनेन । —रघु० ७।१०
- ९ अयद्विप्रिबमाम्य दारत्रदृष्ट निमसुगोविनमवितातिवत्या । —रघु० ५।
- १० देगिए, पूर्वोन्नेय रिछने पठ की पारटिणो, नं० १६ रघु १।४६
- ११ मितांका मयलमात्रभूयणा पवित्रदुर्गकुरलाटिवालका । —विजय० ३।
- १२ प्रदटिणीकुरय यपदिबनीं तां मुदटिणा जातगुणगण्ठा । —रघु० २।२१  
देगिए, पूर्वोन्नेय अथ्याय विवाह रघु० ७।२८ कुमार ७।८
- १३ देगिए पारटिणो नं० ५ विजय० ३।२
- १४ देगिए, रिछने पठ की पारटिणो नं० ७ —रघु० ५।२  
—नामन्यनिम्यसाहाय पूजाग्रापुट्यो दिरि । —कुमार १।५०
- १५ देगिए, पूर्वोन्नेय अथ्याय सामात्रिज अंजन दीनि-रिवाज आचार
- १६ देगिए रिछने बह की पारटिणो नं० ९ रघु० ५।७९
- १७ विवे-सायंउमगण्ठा म दसग ताोदिदिम् । —रघु० १।२९
- १८ अतिरात्रगये मगविम-पावनभुविर्दगीर्दतिव्या । —कुमार०,

की अन्तर्क्रिया में ठिक थी<sup>१</sup> मिठा रहता था । शास्त्रानुसार ही पूजा-विधियों का पालन किया जाता था<sup>२</sup> ।

अनुष्ठान और व्रत—कवि ने अनुष्ठान और व्रतों का भी उल्लेख किया है । उपवास और आहुति देने के पश्चात् निश्चित समय तक निश्चित बार वैदिक यज्ञों का पाप करना भी अनुष्ठान था । किसी माने वाली मयानक आपत्ति को दानों के लिए<sup>३</sup> किसी विजयकायना के लिए अथवा किसी अन्य उद्देश्य की सिद्धि के लिए ही<sup>४</sup> अनुष्ठान किया जाता था । अनुष्ठानादि धार्मिक कार्यों के लिए घर का एक कम निश्चित और सुरक्षित रहता था, जिसे मंत्रस-मूह<sup>५</sup> कहा जाता था ।

व्रत का मुख्य रीति उपवास<sup>६</sup> था । स्वस्वाङ्कार पारण<sup>७</sup> के द्वारा यह व्रत छोड़ा जाता था । यह ब्राह्मण भोज होता था और उनको दक्षिणा<sup>८</sup> दी जाती थी । प्रतिज्ञापूर्ति पर और धार्मिक त्योहारों पर व्रत रखे जाते थे । व्रत के निवर्ण स्वैर वस्त्र धारण करती थीं और अशिवाम सामुपन । केच य ५

१. अथवा अवश्य सिधर्त ने ठिकीरकम् । —अभि० पृ० ४९
२. वैदिक, पिछले पृष्ठ को पाठिप्यन्त्री न० ९ —रघु० ५।७९  
—ब्रह्म गृहमन्त्रिणमायुता भुजये विधिविधौ गुणन्ययी । कुमार० /
३. इयानोमैव दुहितरं वाकुन्तलामतिधिरकायव निमृग्य दैवमस्या भ-  
द्यमिति सोमतीर्थे गतः । —अभि० पृ० ९
४. यतः प्रभृति सैनापतियज्ञागाररात्रे निमुक्तो भत्तु दारकी वसुधिमरुत-  
तस्यामुनिमित्तं निष्कसतनुवर्षपरिमाणा वैवी दक्षिणीयै ।  
—भाष० पृ० ३
५. मंगलमूह आठनस्या भूत्वा विधर्मविषयाद्भावा वीरसेनेन प्रेषितं सितं मे-  
रैवाभ्यमानं गृह्यति । —नाल० अंक ५, पृ० ३३९
६. आवागिनि अनुपर्विकसे प्रवृत्तपारणो मे उपवासी यविष्यति ।  
—अभि० पृ०  
—रीशोवमृष्टतनुवर्षावै मुमुषु प्रायोपवेशनमतिर्नवतिवयूह ।  
—रघु०

सौसरी थी<sup>१</sup> । पत्नी का पति की प्रसन्न करने के लिए शिष्याप्रसादन नाम माया है । प्रायोपवस<sup>२</sup> भी एक व्रत था जिसमें उग्रवास के १। ५ प्राप्त होना प्र्येय था । विलोप के गोव्रत<sup>३</sup> का कवि ने विस्तारपूर्वक वर्णन है । एक ही शय्या पर पत्नी के साथ शयन करते हुए भी वामोऽश्रोप न 'अतिवाराव्रत'<sup>४</sup> कहल ता था । इसी प्रकार पति का बिगड़ स्वयं पत्नी के कटिन व्रत के समान था<sup>५</sup> ।

तीर्थयात्रा—तीर्थों में स्नान करने से आत्मा पुनर्जन्म से मुक्त ६ ( समुद्रपारदी- अकर्मनिपाते पुनारमनामत्र विनामिवेकात् । तत्पादवीथेन<sup>७</sup> भ्रुस्तनुयुक्तो नास्ति शरीरबंध । —रघु० ११।६८ ) और देवपद देवशरीर की प्राप्ति हो जाती है ( पूर्वोन्नेन—रघु० ८।१५ ) । तीर्थ यात्रीओं और शोभतोर्ष का उत्सव किया जा चका है । जय तीर्थ मोक्ष ( रघु० ८।३३ ) पुष्कर ( रघु० १८।३१ ) और ४ ( अमि० ५।३० ) के नाम कवि ने दिए हैं ।

सोक प्रचलित विश्वास और अधविश्वास—वासिष्ठान ने । के लिए वाहिनी और कङ्कना<sup>८</sup> जगुम और बाई कङ्कना<sup>९</sup> गुम कहा

१ तिगाजका मयलमाकमुपया पवित्रदूर्वाहुरणातिशायका ।

२ वटापदेष्टोऽग्नितनवकुतिना मयि प्रमत्ता बभूव सरस्वती ।

—विष्णु०

—यवानिर्दिष्टं गंवादिष्टं यथा शिष्यानुप्रसादनं नाम व्रतम् ।

—विष्णु० अंक ३ पृ०

३ देविए, विष्णुने एक की वादटिण्णौ अ० ६ —रघु० ८।६४

४ देविए, रघु० अम २—शिला की गा मैरा और शिलेनकर पर ५ इत्थं धां पारवत प्रयाय त्वं मरिच्यो मागोवरीर्ते । —रघु०

५ विना विमर्शो मङ्गदेवता यः शिवं यथावत्कथयतामभोजता ।

इति कर्माणि तथा महोद्यमस्तथाव व्रतपानिचारम् । —रघु० ६

—यनेकशयनवादि प्रमत्ता भावमग्ने ।

अनिपाद्यतर्त तं ७ वदन्तिमुनिर्मुखा ॥ —पारव

८ वदनं वरिधमरे वमाना नियमताममुना धृतीवसेन्द ।

अनिर्दिष्टकण्ठर हनुयाणा वम हीय विउर्गं विमर्त ॥ —अमि०

९ कहा वि मे वसेनै मदनं विमर्तति । —अमि० १० ८४

८. अति च वसिष्ठेनरत्नं मे मदनं वाप्य वदुति । —मान० पृ १४१

पुरुष के लिए बलिब मुखा फलकानो गुप्त की<sup>१</sup> । इसी प्रकार भुषाओं का होलना अपराध<sup>२</sup> था । गीत का मेहराना भी विपत्ति का लुप्त था<sup>३</sup> ।

रक्षा के लिए<sup>४</sup> ताबीज और विषय के लिए<sup>५</sup> बंतर पहुँचने को प्रयास की । ताबीज के अन्तर में छिड़ कोई बड़ी-बूटी<sup>६</sup> रख दी जाती थी । भरत की बाहु में अपराधिता बूटी बाँध दी गई थी जिसके अनुसार विरवात प्रचलित था कि माँ-बाप के अतिरिक्त यदि कोई दूसरा उस ताबीज को कटाएगा तो वह सर्व बलकर लड़ने वाले व्यक्ति को काट देगा<sup>७</sup> ।

अपराधिता की तरह तिरस्करिणी<sup>८</sup> का भी सम्बन्ध मित्रता है । इस विद्या की सिद्धि से अद्वय रहने की शक्ति प्राप्त हो जाती थी ।

हस्त-रेखाओं के द्वारा भी भविष्य की बटनार्थ जान ली जाती थी । फलित ज्योतिष में भी संस्कृत विश्वास था । अर्थात् शुभ अथवा अशुभ ग्रह से मनुष्य के भाग्य पर प्रभाव अच्छा या बुरा अवश्य पड़ता था<sup>९</sup> ।

सम्राज्यारण के कुछ अन्य विश्वासा का भी कवि ने वर्णन किया है । जैसे

१. शान्तमिदमाधमपरं स्फुरति च बाहु कुलं फलमिहास्य । —अभि० पृ ११

—अर्थात् माँ स्फुरितकान्तराफलाद्यति बलिब । —विद्यम० ३।२

२. महम्मोक्षोक्ताविचितामिपात्रिं स बाहुसौ राजपत्रं पित्राभि । —रघु० १६।१९

३. उग्राद्यं सपदि सप्तमभासनी बाणमाधममुच्चारत्तमुत्तरम् ।

रघुसौ बलमपवदम्भरे अग्रपत्रपत्रनेरितम्भजम् ॥ —रघु० ११।२९

४. बहो रक्षाकरंरुद्रमस्य भविष्यते न दुस्सते । —अभि० पृ० ११८

५. रघु० १६।७२-७४

६. एषापराधिता नायीपधिरस्य आतर्कर्मसमये भयवता मारीचेन हता ।

एषां किल मातापितृराजात्मनः च वर्ज्यमिहोपरी भूमिपतिर्गुं न गृह्णाति ।

‘अथ गृह्णाति ।’ तदस्य सर्वो गृह्णा इत्यति । —अभि० पृ० ११९

विद्यम० में भी विरक्तता ने अपराधिता के विषय में कहा है —

विद्या के बल पर देवों के शत्रु भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते ।

—विद्यम०, पृ० १

८. अतिस्फुरिते अनादिन्यतिरस्करिणीकाति । —विद्यम० पृ० २०१

—विद्यम० पृ०



सकता था। योमास्यास के द्वारा बन्ध कमरे में भी प्रविष्ट होना सम्भव था<sup>१</sup>।

उस समय अनेक पौराणिक विश्वास भी प्रचलित थे जैसे—बट हैं अमरत्व  
मृति की उत्पत्ति<sup>२</sup> विष्णु के पद-जल से गंगा का जन्म<sup>३</sup>, भगीरथ के प्रयत्न से  
क्षेत्र की बटावों से निकल कर पृथ्वी में अवतरण<sup>४</sup> आदि। ऐसे ही शिक्षावर्षक  
पद्धत<sup>५</sup> उड़ने वाले पहाड़<sup>६</sup> आकाश में विचरण करने वाले देवता<sup>७</sup> दिव्या-  
पनार्ण<sup>८</sup> विष्णु के नागा अवतार<sup>९</sup> हनुमती के रूप में हरिणों का जन्म<sup>१०</sup> सभी  
भूत में अग्नि का निवास<sup>११</sup>।

संक्षेप में धार्मिक विधि-विधानों एवं विश्वासों से उत्कालीन परिस्थितियों  
पर संक्षेप प्रकाश पड़ता है। वे कथमय आदि काक से बनी आई पक्षियों की  
विकसित अवस्थाएँ हैं। संस्कार, संव्या-वाप आदि प्रारंभ काल के सदृश ही हों पर  
इनके अतिरिक्त पौराणिक संवेत नए देवी-देवता धार्मिक विश्वास सब उत्कालीन  
विकसित अवस्था के परिचायक हैं।

१. लम्प्यास्तुरा सावरचौऽपि मेहे बीमप्रभातो न च सकल्पते हि ।

विजयि वाकागमनिबृताणां मुक्ताकिनी ह्रीमिनीपरागम् ॥ —रघु १६।७

२. प्रसत्तादीवमारुतं कुम्भमोमेमहीजसं ।

रघोऽमिमकाक्षंकिं बुधुमे द्विपतां मन ॥ —रघु० ४।२१

३. सर्वत्र दत्ताप्यसे गंगा पादौ न वरमेच्छित ॥ —कुमार० ६।७०

४. सभी हरजटाग्रप्यं नगामिव भयोरव । —रघु० ४।१२

५. पदच्छेदोऽप्यं यत्तं धिन्वावर्षोऽव पर्वत । —रघु० ४।४

६. बुद्धेऽपि पञ्चजिह्वि वचसावाबेहनात्रं कुलिसाताग्राम् । —कुमार०, १।१०

## कालिदास का समय

कवि के समय के ऊपर भारत के विभिन्न उपखण्डों के विद्वानों के समयानुसार बहुत संख्या में प्रकाशित होते रहे हैं और घोर बाद-विवाद उपरान्त भी किसी नियम को सर्वमान्यता नहीं दी गई। अतः हो कम हो गए एक कम उन्हें ई० पू० में रखना है और दूसरा चौथी शताब्दी गुप्तकाल में।

कवि-नाम की आरम्भिक सीमा मालविद्याभिनिवृत्त नाटक के आधार निर्धारित की जाती है। इसमें सर्वप्रथम कवि के नाम का उल्लेख दूसरी सीमा मात्र की शताब्दी ईसवी है। बाध में हयवर्धन में कालिदास उल्लेख किया है।

निर्गन्तामु न वा कस्य कालिदासस्य भूक्तिः ।

प्रीतिर्मयुरमाग्राणु मञ्जरीभिश्च जायते ॥

दूसरा प्रमाण एहील का शिलालेख ( ६१४ ई० ) है जिसमें कवि रविगीति करने स्वामी पुनर्विशाल जिनके शासन में उनका कालिदास और शारदा भी पराश्रित करना लिखा है। अतः उसका समय ईसवी पू० में मन्तवी ५ ईसवी तक किसी भी समय हो सकता है। अब अंतोर्ध्व में विभिन्न विद्वानों मत प्रकाशित करते हुए इन सीमा को संकीर्ण करने का प्रयत्न किया जाएगा।

द्वितीय शताब्दी ई० पू०—हाव वर्तमान के समय के नहीं है क्योंकि बौद्धग्रन्थ में प्रयुक्त शब्दों से पुनः परिचित लगते हैं। अतः वर्तमान के बाद हुए। दूसरा प्रमाण ई० पू० प्रथम शताब्दी व पूर्व किसी राजा ने ११० की उपाधि नहीं स्वीकार की और परगण कवि को विजयादय का शर्मा है।

प्रथम शताब्दी ई० पू०—इस विद्वान का मुख्य आधार यह है कि कवि के आयवगात्रा विजयार्जुन में ई०पू० में विजय मंदिर बनाया। विद्वान की स्वीकार करने में कई कल्याणों हैं। प्रथम यह कि प्रथम ई० पू० में ऐसा कोई विजयार्जुन नहीं हुआ जिसने राजा का पार



प्रकार की स्याधि ग्रहण की और जिसने नवीन संवत् भी चलाया। प्रथम शताब्दी ई० पू० में किसी संवत् का नाम नहीं मिलता। प्रोफेसर बट्टोपाध्याय प्रथम शताब्दी ई० पू० के सिद्धांत के और समर्थक हैं और प्रोफेसर मिश्रा भी इनके सिद्धांत का अच्छी तरह समर्थन किया है। बट्टोपाध्याय ने अपने सिद्धांत को अश्वमेध पर आधारित किया है। दोनों कवि अर्थात् अश्वमेध और कालिदास भावप्रयोग में बहुत समानता रखते हैं। बट्टोपाध्याय का कहना है कि अश्वमेध ने कालिदास के ग्रन्थों की पड़कर उस भाषा पर अपना काव्य बिखा है। क्योंकि अश्वमेध का काल ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी ई० पू० प्रथम शताब्दी में हुए।

वास्तव में उन्होंने जिस समानता को प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है, वह संस्कृत-साहित्य में सभी स्वरों पर ऐसी ही पाई जाती है। संस्कृत-साहित्य की बहुत-सी बातें सब कवियों में प्रायः समान हैं अतः यह समानता हममें भी देखी जाती है।

प्रोफेसर बट्टोपाध्याय का कहना है कि अश्वमेध साधनिक वा अतः काम्य-रचना बिना दूसरे का अनुकरण किए नहीं कर सकता था। परन्तु अश्वमेध ने किसी विषयता के परम्परारूप अपने ग्रन्थ की रचना की यह कहीं स्पष्ट नहीं होता। उनके कुछवर्तित और सीम्हरमन्त्र निरन्तर ही उत्तम ग्रन्थ हैं। अतः वह अच्छा कवि भी था।

बट्टोपाध्याय जी का यह मत कि उसके काव्य में अवश्य पुनरुक्ति है अतः वह निपुण कवि नहीं था भी निर्मूल है। स्वयं कवि कालिदास के रघुबंध में साठवें सम के ६ से १२ तक श्लोक बिलकुल ज्यों-के-वैसे कुमारसम्भव के साठवें सम में १७ से १२ तक प्रयुक्त हुए हैं। महाशय बट्टोपाध्याय मानते हैं कि कालिदास के एक श्लोक (कुमार० ७।१२ रघु० ७।११) को अश्वमेध ने दो बार पुनरुक्ति की है। परन्तु एक सीधी बात यह है कि यदि अश्वमेध ने कालिदास की जोरी की होती तो क्या वे गुप्तचित्त कर बार-बार अपनी जोरी प्रदर्शित करते? फिर यह श्लोक स्वयं कवि ने दो दो बार प्रयुक्त किया है एक रघुबंध में दूसरा कुमारसम्भव में।

उनका यह भी तक है कि अरबपोष का भारविजय-वधन 'कामरुह' से अपहृत किया गया है। परन्तु यह बात ध्यान देने की है कुछ के चरित में यह बटना स्थान या धुकी है अतः यह भी सम्भव है प्रोफेसर साहू के तक का ठीक उत्पत्त हुआ हो। वे यह भी इतना पेय है कि पुष्पमित्र के राज्य में खारबेल ने बड़ा उत्साह मचाया था। ५५ पुष्पमित्र के नाम वाली मुद्राएँ प्राप्त हो चुकी हैं। इन मुद्राओं का के हविर्गुप्त चित्तौड़गढ़ के बहसतिमित्र के नाम से उल्लेख जिन नहीं है कम-से-कम इस सामग्री के आधार पर दोनों समसामयिक नहीं रहे जा सकते चन्द्रगुप्त उज्जयिनी का राजा नहीं रहा जा सकता। इनके इन सिद्धान्त निराकरण इस तरह किया जा सकता है कि अश्वती और सोरगु के होने के अधिकार से वह उज्जयिनी का राजा था। कुमारगुप्त का मन्वन्तर चित्तौड़गढ़ और उज्जयिनी का अनुगढ़ बटानकेत इन बात साक्षी है कि कुमारगुप्त और उज्जयिनी दोनों का इन दोनों प्रान्तों पर दोनों के अधिकार था।

अतः वे ई० पू० प्रथम शताब्दी में नहीं थे। उपर्युक्त सिद्धान्तों के अतिरिक्त कुछ और प्रमाण भी इसी की पुष्टि में दिए जा सकते हैं।

वह ने अपनी सारी रचनाओं में वहीं एक ही उत्तर नहीं दिया। वे ई० पू० प्रथम शताब्दी ई० पू० ५७ के निकट होते ही वे मार्गो संदिग्ध युग युग (दीवान बहादुर प्री० के० एच० ग्रुव का संस्करण जे बी० बार० एम० भाग १५ पृ० १ २१ १५१ पृ० ४१) में उल्लिखित ५ आक्रमण की अवधि जानने जो ई० पू० १५ के आसपास हुआ था।

वह के सभी ग्रन्थों में साम्प्रतिक और विनाश-विपदा है। अतः शताब्दी ई० पू० में जब साम्प्रतिक अवस्था बड़ी आलोड़-विनीड़ इनके विनाशिक साम्प्रतिक ग्रन्थ नहीं रख जा सकते। पौराणिक और विवरण जो वह ने प्रचुरता के साथ प्रकाश दिए हैं अधिकतर युग काल में ही समुचित हुए थे।

हिन्दू देवताओं की अनेक प्रतिमाएँ और मन्दिर विनाश वह के मे बार-बार उल्लेख मिलता है ई० पू० प्रथम शताब्दी की प्रमाणित मरी जाने प्रतिमा-पूजा यद्यपि भारत में बहुत पहले प्रचलित हो चुका था किन्तु काल के कारण इन प्रतिमाओं की विविध मात्रा प्रारम्भ हुई। ईसवी की प्रथम शताब्दी के महाजन मार्क अतिरिक्त ग्रन्थ में इनकी प्रस्तावी की हमने कुछ दलों की अतिरिक्त की ही पूजा होगी की।

इन सब तर्कों के आधार पर यह निष्पत्ति हो सक्ती या सकता है । प्रथम घटनाएँ ई० पू० का नहीं हैं ।

पौषबी घटनाएँ ईसवी—रघुनन्द के चौथे सर्वे में रघु की ११ प्रसंग में ( तत् प्रत्यक्ष कोषों में रघुनन्द रघुनन्दितम् ११ १८ ) ११ क किनारे हूणों को पराजित करने का उल्लेख है । प्रोफेसर पाठक का मत यह था कि यह कुमारगुप्त के अन्तिम समय में हुआ था । कुमारगुप्त २ हूणों का आक्रमण किया था । यह कुमारगुप्त के चौथे विजयानन्द ( ४५६ ई० ) से भी छिड़ हो चुका है । रघुनन्द में हूण आक्रमण नदी पर से यह परिस्थिति काश्मिर के समय की होती । इसी से ही कनक समय घटनाएँ मानते हैं ।

परन्तु ईसा की पौषबी घटनाएँ तक भारतीयों का हूणों से विजय नहीं थी—ऐसा कभी संभव नहीं हो सकता । पारसियों के अवेस्ता ग्रन्थ और महाभारत में भी हूणों का उल्लेख है । इसी तीसरी घटनाएँ ई० अन्तिम विस्तर ग्रन्थ में बुद्ध ने बाल्यकाल में हूणों की छिपि लीखी थी प्रसंग आता है । कई घटनाएँ ई० पू० में ही हूणों ने बूझी—जिसका आर्थ बचकर कुरान नाम हुआ—जोनों को आक्रमण नदी के दक्षिण किनारे पर नार कर गया किता था ( १४० ई० पू० के लगभग ) । तब से ही वे वहीं रहने लगे थे । पौषबी घटनाएँ से हूणों ने वहाँ राज्य स्थापित किया । अतः यह सब संभव हो सकता है कि कवि को सब तक हूणों का पता न लगा हो ।

छठी घटनाएँ ईसवी—सैकनमूर, हरप्रसाद घाटी होने से ओक आदि विज्ञान कवि को छठी घटनाएँ ईसवी का मानते हैं । इन सबने कवि की मध्यमकाल का समकालीन छिड़ करने का प्रयास किया है । उनके मतों का विरोध डाक्टर ए० बी० कोष और बी० जी० मजूमदार ने योग्यतापूर्वक कर इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करना आवश्यक सिद्ध कर दिया है ।

द्वितीय ओ भारतवर्ष में ११६ से १४५ ईसवी तक राजा लिपटा है कि मालव देश में ( ११६ )

नगर का बधन किया है। अतः यह छोटी घाताघाती का होना चाहिए।  
 दिव्य का समय भी यही ठहरता है। हृण्मनाय का शिलादिव्य और यह  
 दिव्य एक ही व्यक्ति हूँ। राजतरंगिणी के अनुसार बिज्जमाश्रित्य न शक्य  
 पराजित किया था। इसी घाताघाती में मालव में यशोधर्मदेव एक  
 राजा हुए थे। इनके संस्कार के लेख में मालव होता है कि इन्होंने  
 मामक महावनी हृष राजा को हराया था और राजाधिराज परमेश्वर को  
 अपने नाम के साथ छोड़ो। अतः यही बहूय के बिज्जमाश्रित्य और  
 के शिलादिव्य है। पराजित हृषों की बहूय और अलवरमो ने एक नाम  
 होना। मातृगुण ही अतः कालिदास हुए।

इस निष्ठापर आधारित यह है कि हृण्मनाय का बीलागो देव कौन सा है  
 हृण्मनाय में उज्जयिनी का पक्ष बधन किया है। अतः बीलागो को  
 उज्जयिनी नहीं थी। प्रोकथित निरुक्तलेखों का बहुधा है कि हृण्मनाय न  
 बहुत प्रमाणा की है बड़ी यशोधर्म नहीं अतः बलभी का पहला शिलादि  
 होना। राजतरंगिणी का प्राचीन इतिहास अतिगोपित है यद्यपि  
 नहीं-यह मित्र हो चुका है। एक और भी बात है—यदि यशोधर्म ही  
 दिव्य होता तो राजाधिराज परमेश्वर की तरह बिज्जमाश्रित्य की उपाधि का  
 तो नहीं वर्णन आता। उसकी गवारि बिलगुल नहीं बना या मरता  
 ईसा की छोटी घाताघाती न शक्य का नाम नहीं नहीं मिलता। यदि मातृगुण  
 कालिदास होता तो बहूय ने का २०० एकोक मातृगुण के बल न मिले  
 नहीं तो कालिदास होने का प्रमाण देने। मातृगुण ने प्रवरमेन के लिए  
 नहीं रहा क्योंकि राजतरंगिणी में इनका उल्लेख नहीं है। बहूय न यह भी  
 है कि प्रवरमेन और बिज्जमाश्रित्य न दुःसभा को और प्रवरमेन के निगमन  
 आते हो उनके आदर करने पर भी मातृगुण नहीं नहीं रहा।

कवि ने यशोधर्म दिव्य-नाम लक्ष्य प्रदुक्त किया है। दीर्घाकार इन  
 में एक अतिशय बौद्ध शास्त्रिण का जो छोटी लक्षणी में हुआ प्रथम मान्य है  
 इसी में कि कवि का समय छोटी घाताघाती निर्धारित करने है।

कवि न यशोधर्म दिव्य का उल्लेख बलवत् किया है पर बल और  
 की तरह प्रपुर भाषा में कहा नहीं। दूसरी बात यह कि दिव्य-नाम  
 में यशोधर्म का अर्थ होता तो वह बहूय-नाम का प्रयोग करना। यदि दिव्य  
 नाम को अतिशय विद्वत् भाव भी दिया जाय तब भी इनमें कवि के समय  
 प्रमाण नहीं बढ़ता। अतः कोय प्रवरमेन मरता-मृत दिव्य-नाम को  
 ४० के लगभग मानने है। बहूय न बाल्यकाल में बहूय में उल्लेख किया है

इन सब तर्कों के आधार पर यह निश्चय ही कहा जा सकता है प्रथम छताम्बी ई० पू० का नहीं था ।

पाँचवीं छताम्बी ईसवी—रघुवंश के चौथे सर्ग में रघु की प्रशंसा में ( छता प्रसवे चौथेरी ... बभ्रुव रघुनेष्टितम् ११ १८ ) क किनारे हथों की पराजित करने का उल्लेख है । प्रोफेसर वाठक का मत यह आक्रमण कुमारगुप्त के अन्तिम समय में हुआ था । मुबराक हथों का सामना किया था । यह कुषाणों के समीप गिरवार के पिलासैक ( ४५६ ई० ) से भी छिड़ हो चुका है । रघुवंश में हथ आक्सस नदी पर से यह परिस्थिति काश्मिर के समय की होती । इसी से वे छताम्बी समय । छताम्बी मानते हैं ।

परन्तु इसी की पाँचवीं छताम्बी तक भारतीयों का हथों से हिस्सुल भी नहीं था—ऐसा कभी संभव नहीं हो सकता । पारसियों के जेस्ता हथ और महाभारत में भी हथों का उल्लेख है । इसी तीसरी छताम्बी में 'सक्ति विस्तर' ग्रन्थ में बृद्ध ने आत्मकाश में हथों की छिपि सीजी की प्रशंसा की है । कई छताम्बी ई० पू० में ही हथों ने मूरची—जिस्का बसकर कुसान नाम हुआ—काँपों की आक्सस नदी के दक्षिण किनारे पर मार कर गया दिया था ( १४० ई० पू० के लगभग ) । तब से ही वे बड़ी रूढ़ि सने से । पाँचवीं छताम्बी से हथों ने बड़ी शक्ति स्थापित किया । अतः यह कैसे संभव हो सकता है कि कवि को तब तक हथों का पता न लगा हो ।

छठी छताम्बी ईसवी—मैकममूकर हरप्रसाद धाम्नी हीर्गते जोफ जाहि विद्यान् नवि की छठी छताम्बी ईसवी का मानते हैं । इन सबने कवि को नवीयमन का समरामीन छिड़ करने का प्रयत्न किया है जिसके मतों का विरोध डाक्टर ए० बी० बी० और बी० सी० महाभारत ने आत्मतापूषक कर इस सिद्धान्त का परित्याग करना आवश्यक छिड़ कर दिया है ।

दुपुनमाव की भारतवर्ष में ११२ से १४१ ईसवी तक छिपता है कि मासक देव में ( १४ )



इन सब तर्कों के आधार पर वह निश्चय हो कहा जा सकता है प्रथम सताब्दी ई० पू० का नहीं था ।

पाँचवीं सताब्दी ईसवी—रघुवंश के बीजे उस में रघु की ११ वंश में { तत प्रसव्ये कीदृशी ... बभूव रघुनेष्टितम् ११ १८ } का किनारे हूँ को पराजित करने का उल्लेख है । प्रोफेसर वाठक का मत यह बालमय कुमारमुखा के अन्तिम समय में हुआ था । कुमार ५ हूँ का सामना किया था । वह बालावक के समीप निरभार के पितामह ( ४५६ ई० ) से भी छिड़ हो चुका है । रघुवंश में हूँ आक्रमण नदी पर से यह परिवर्तित कान्तिदास के समय की होती । इसी से वे उनका समय । सताब्दी मानते हैं ।

परन्तु ईसा की पाँचवीं सताब्दी तक भारतीयों का हूँ से शिकमुक्त भी नहीं था—ऐसा कभी संभव नहीं हो सकता । पारसियों के अवस्था अन्य और महाभारत में भी हूँ का उल्लेख है । ईसा की तीसरी सताब्दी में 'सतिप्र विस्तार' ग्रन्थ में कुछ ने आर्यकाल में हूँ की विधि सीखी की प्रसंग आता है । नई सताब्दी ई० पू० में ही हूँ ने गुएली—बिसका बलकर कुसान नाम हुआ—लोपो को आक्रमण करी के दलित किनारे पर भार मचा दिया था ( १४० ई० पू० के समय ) । तब से हो वे वहाँ रहने लगे । पाँचवीं सताब्दी से हूँ ने वहाँ राज्य स्थापित किया । अतः वह कहे संभव सता है कि कवि को उस तक हूँ का पता न लगा हो ।

छठी सताब्दी ईसवी—बैकमयूतर, हरप्रसाद भारती होगते बौद्ध विद्वान् कवि को छठी सताब्दी ईसवी का मानते हैं । इन सबने कवि को बसोष का समकालीन सिद्ध करने का प्रयत्न किया है । जिसके मतों का विरोध बा ९० बी० बी० और बी० बी० यजुष्यकार ने यौक्त्यायुक्त कर इस सिद्धान्त परित्याग करना आवश्यक सिद्ध कर दिया है ।

हुएनसांग भी भारतवर्ष में ६३६ से ६४५ ईसवी तक सिद्ध है कि मालव देश में ( १५ )

नगर का बचन किया है। अतः यह छठी राताष्टी का होना चाहिए।  
 दिव्य का समय भी यही ठहरता है। हुणनसांग का विजयदिन और यह  
 दिव्य एक ही व्यक्ति होने। राजतरंगिणी के अनुसार विजयदिन न चरों  
 पराजित किया था। इसी राताष्टी में मालव में यशोधर्मदेव एवं पराक्रमरा  
 राजा हुए थे। इनके संस्मरण के सेत से मान्य होता है कि इन्होंने  
 नामक महाबली हन राजा को हराया था और राजाविराट परमेश्वर को  
 अपने नाम के साथ जोड़ी। अतः यही वरहम के विजयदिन और  
 के विजयदिन है। पराजित हनों की वरहम और मल्लवनी ने एक नाम  
 होना। मातृपुत्र ही मल कालिदास हुए।

इस निष्ठापर आधारित यह है कि हुणनसांग का मीमांसा देव शीत मा है  
 हुणनसांग में राजविनी का पथ वर्णन दिया है। अतः मोलारो को  
 उज्जयिनी नहीं थी। प्रोप्रेमर निम्नमलेको का वरहम है कि हुणनसांग न  
 बहुत प्रगता की है बहो यशोधर्म नहीं अविश्व बलभी का पड़ता विजय  
 होगा। राजतरंगिणी का प्राचीन इतिहास अतिशयोक्ति है यद्यपि  
 नहीं—यह गिद्ध हो चुका है। एक ओर तो बात है—यदि यशोधर्म हो  
 दिव्य होता तो राजाविराट परमेश्वर की तरह विजयदिन की उपाधि का  
 तो नहीं बचन आता। उसकी वकारि विलुप्त नहीं रहा या मल्ल  
 ईसा की छठी राताष्टी में चरों का नाम नहीं नहीं मिलता। यदि मातृपुत्र  
 कालिदास होता तो वरहम में जो १०० रमोक मातृपुत्र के बचन में लिखे  
 नहीं तो कालिदास होने का प्रमाण दे। मातृपुत्र ने प्रवरमेन के लिए  
 नहीं रहा क्योंकि राजतरंगिणी में इसका उल्लेख नहीं है। वरहम में यह भी  
 है कि प्रवरमेन और विजयदिन में दुर्योधी की ओर प्रवरमेन के मित्रान  
 आते ही उनका बाध करने पर भी मातृपुत्र नहीं नहीं रहा।

वहि में मेघदूत में दिग्भाषा एवं प्रयुक्त दिया है। टीकाकार हम  
 से एक अनिष्ट बोध बाधनिक का जो छठी राताष्टी में हुआ प्रभव मानते हैं  
 इसी से वे वहि का समय छठी राताष्टी निर्धारित करते हैं।

वहि में कभी-कभी इन्द्र का उदास अक्षय दिया है पर बाध और  
 की तरह प्रचुर मात्रा में कभी नहीं। दूसरी बात यह कि दिग्भाषामानु  
 में यही वहि का आशय होता तो वह वरहम का उल्लेख करता। यदि दिग्  
 भाषा को दिग्भाषा विदेश नाम भी दिया जा सकता है हम भी हमन वहि के मध्य पर  
 प्रकाश नहीं करता। वरहम में प्रवरमेन महाबली दिग्भाषा को १० सन्  
 ४०० के लगभग मानते हैं। वरहम में बाधनिक प्रयुक्त में उल्लेख दिया है कि



विहङ्गाय का गुण वसुवन्तु महाराज वसुवन्तु का मंत्री था। अतः  
चताब्दी ईसवी के बीच में तथा विहङ्गाय ४ चताब्दी के अन्तिम भाग

अतः कालिदास का समय न पाँचवीं चताब्दी है, न छठी और न  
चताब्दी ईसा पूर्व। बीता रिछते अम्पारों में दिखावा था चुका है, कि  
पर वात्स्यायन के कामसूत्र का काफी प्रमाण था। वात्स्यायन का  
काल तीसरी चताब्दी ईसवी है। (अतः अनुसृत. सातकर्षि. वात्स्यायनी  
देवी मलयवती (अथवा) कामसूत्र २७०) — इस युग के आधार  
निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कामसूत्र की रचना तीसरी चताब्दी  
से पूर्व नहीं हो सकती। कालिदास के शब्दों में कामसूत्र के अनेक  
आख्या मिलती हैं।

कवि ने वात्स्यायन का उल्लेख किया है। कुमारसंभव के अष्टम सर्ग के  
विशेषकर ८-१० १४-१९ २२ २३ २५ ८३ ८५ ८८ कामसूत्र के  
शब्दों की व्याख्या की है। अतः अब तीसरी चताब्दी में वात्स्यायन हुए तब इन  
सूत्रों का प्रचार ही है—होते एक चताब्दी बीत गई होगी। अतः कवि बीसवीं  
का होया। दूसरे शब्दों में कवि का गुप्तकाल में हीना अधिक सम्भव है  
इस सिद्धांत की आवश्यक प्रमाण देते हुए अब देना है कि कहीं तक इनका  
गुप्तकालीन होना ठीक बैठता है।

### मास्कर्य आधार

(१) प्रभासमण्डल—कालिदास ने प्रभासमण्डल<sup>१</sup> अथवा मण्डल<sup>२</sup> तथा  
रत्नरत्नमण्डल<sup>३</sup> का उल्लेख किया है। उत्तरी भारत में प्रभासमण्डल का  
वास्तविक प्रदर्शन मूर्तिरत्ना में ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यदि देखा जाय तो  
गुप्तकाल से प्रारम्भ होता है। गुप्तकाल के प्रारम्भ में यह सर्वप्रथम रूप  
धारण कर सामान्य बनने लगे जाते हैं। पहले मूर्तियों के पीछे कम दिखावा  
जाता था वहीं गुप्तकालीन बौद्ध प्रतिमा का  
भीतर धारणा २०-२१

छायामण्डल<sup>१</sup> पशवली में संकेत दिया है। कुषाण काल में यह विशेष सुविधित हुआ था। सारनाथ के संग्रहालय में इसका नमूना पाया जाता था। बागुदेवधरन अथवाक ने अपनी पुस्तक (Gupta Art) में इन पर ५५ प्रकाश डाला है।

(२) गंज और पद्म—कालिदास ने घर के द्वार पर गंज तथा के चित्रों का उत्कीर्ण किया है। पद्म में मेष की आने पर की पहचान ही बनाई है। पुष्प कला की यह विशेष वस्तु है जो देवदह के मन्दिर में की गई है। बाहर की तीन दोवारों के द्वार पर (संविदा विम्ब) जहाँ मोघ सेनपामी विष्णु और मर-नारायण दिखाए गए हैं वहाँ गंज और का भी उत्कीर्ण रूप में सम्यक प्रदर्शन है<sup>२</sup>। तरासीन मधुरा के अनेक में पद्मला-मुक्त पद्म और घंटा देवने की मिलते हैं। कुषाणकाल की में यह सामान्य रूप से प्रचारित नहीं था। यद्यपि वहीं जहाँ गंज और देवे जाते हैं घर में द्वारोत्तर पर नहीं है तथा पद्मला (Padma Moti) का कहीं चित्र प्राप्त नहीं होता। अथवा ही वही में तरासीन अति ५ चित्रों की ही देव कर इन्हें आने काय में स्थान दिया होगा।

(३) गंगा तथा यमुना का आकृति—कालिदास ने बाहर हाथ लिए गंगा और यमुना की<sup>३</sup> दिखाया है। बाहरबाहिनी यह दोनों नदी कुषाणकाल के परचाय गुप्तकाल में मृत की गई थीं। मधुरा और लखनऊ संग्रहालयों में इस प्रकार की मूर्तियाँ मुरलित हैं। गुप्तकाल के मन्दिरों द्वार आदित्य विष्णु कला पद्मला गुप्तावली आदि ने अलंकृत मिलने। देवदह के मन्दिर में इन लक्ष के विविध उदाहरण देव या मरते हैं। बागुदेवधरन का कहना है कि हमारे पास इन बात का निर्दिष्ट प्रमाण है चन्द्रगुप्त द्वितीय (३३५-४१३ ई०) के सामन्तकाल में गंगा और यमुना मूर्तियों की अतिशय प्रारम्भ हुई। अथवा ही मधुरा में जहाँ मगधाराह का उद्धार करते दिशाए गए हैं वहाँ विष्णु मंदीर एवं आनन्दोत्तर के मंदिर।

१ छायामण्डल—येक छन्दोपा विष्णु मन्त्रम्।

२ इसका चन्द्रमा-नारायण भेद मायाभरीतिम् ॥

—रघु० ५।१६

३ V S Agrawal: Gupta Art (1947) Pl. XX & XI.

४ कुमार० ७।४२

गंगा-यमुना' का अवतरण भी प्रबोधित किया गया है जो गुप्त बौद्ध की ज्ञानति का प्रतीक है<sup>१</sup>।

( ४ ) विष्णु का धामन रूप—रघुवंश में कालिदास ने रामियों के स्वप्न का इस प्रकार वर्णन किया है—

गुप्तं रघुमुरागमार्गं सर्वां स्वप्नोपु वामनैः ।

ब्रह्मवामिनवाद्याङ्गुलकर्मक्षितमूर्तिभिः ॥ —रघु० १०।१०

इस श्लोक में गुप्त काल की कला की साक्षात् रूप से अभिव्यक्ति किया है। इसमें तीन बातें ध्यान देने की हैं—( १ ) बावुब आयुब का मैं न होकर आयुब पुरुष के रूप में चित्रित है। (२) इनका आकार 'वामन (छोटा बीना) है। (३) सब मूर्तिमान् हैं और किसी विष्णु से काष्ठित। ये तीनों गुप्त जो उपरोक्त श्लोक की प्रमुख विशेषता है, सबसे पहले गुप्त काल की विष्णु की मूर्ति में पाए जाते हैं। मथुरा संग्रहालय में इसको स्पष्ट अभिव्यक्ति है। हम संग्रहालय में संग्रहीत विष्णु की मूर्तियों में कुपाण काल एवं गुप्त काल का भेद भली ब्रांति देखा जा सकता है। कुपाण काल की विष्णु की मूर्ति में बावुब अपर्ण रंग चक्र, नवा आदि अपनी स्वाभाविक अवस्था में है, परन्तु गुप्त काल की मूर्तियों में येही बावुब बिछेपकर नवा और चक्र मानव आकार में विष्णु के दोनों ओर, वामन रूप में प्रदर्शित किए गए हैं परन्तु ये दोनों आकार ऊपरी रत्नाओं में नवा और चक्र ही प्रतिमानित होते हैं।

१ V S Agarwal Gupta Art ( 1947 ) figs 6 & 7

२ We have definite proof that the figures of Ganga and Yamuna had begun to be carved in the reign of Chandra Gupta II ( 375—413 A. D ) as in the Udaighri cave depicting a colossal figure of Mahavishnu in the act of lifting the earth, we find two flanking scenes showing the descent of Ganga and Yamuna on earth to the accompaniment of celestial music and universal rejoicing. The rivers Ganga and Yamuna seem to have become

कालिदास ने वैष्णव कल्याण का आचार लेकर हम स्तंभ को नहीं बपिण्डु संहर्षि विष्णु की मूर्तियों को अच्छी तरह ध्यान में रखा है।

( ५ ) दोषदायी विष्णु, विष्णु के ही अवतार—राय इन्द्र ५५८ कालिकेय आदि सर्वप्रथम गुप्तरत्ना में ही चित्रित मिलते हैं। कवि ने विष्णु 'योगिनीवासनामीनम्' दिखाया है और लक्ष्मी को पैर महकाने हुए<sup>१</sup>। वि-  
देयी ही मुद्रा कवि ने अवश्य किसी मूर्ति में देखी होगी।

वैष्णव के मन्दिर में विष्णु को योगामीन दिखाया गया है और राय का कम लोठे छायाचक्र के रूप में जो है या महाराज कवि के ७५।  
चर्मचिह्नोत्तविग्रहम्<sup>२</sup> की ओर ध्यान केन्द्रित करना है। इनका एक बंटी हुई लक्ष्मी के करों में है। जग यात्र वस्य में चित्रित ही कवि द्वारा ६५  
इसी मन्दिर के एक द्वारोपास्य भाग में विष्णु के पैरों की पचाटनी ८५  
भी दिखाई गई है।

रघुवंश में कवि को वीर्य मयूरारुणप्रविषा है<sup>३</sup>। फिर गुप्तरत्ना और ध्यान आकर्षित कर देती है। मयूरा के सर्वहाम्य में मयूरारुण कर्मि का मयूरा देगा या लक्ष्मी है। गुप्तरत्ना की मूर्तियाँ व अवर नहीं मिलना गुप्तरत्ना की मूर्तियों में वे मयूरारुण देते जाने हैं<sup>४</sup>।

कालाभरणा बाली<sup>५</sup> का सत्परा गुन मय की सामान्य आकृति है। ६ प्रकार सत्पराका<sup>६</sup> कालाभ का उठाए राक्षस<sup>७</sup> लक्ष्मणरत्ना के ३।  
है। एतोर में बाली को विद्या आकर्षक आकृति देगा या लक्ष्मी है और ५।  
सर्वहाम्य में कालाभ को उठाए राक्षस का गुप्तरत्ना मयूरा है<sup>८</sup>।

—

१ रघु० १० १०१० ८

२ रघु० १०१३

३ रघु० ११४

४ V S Agrawal A Handbook of the sculptures in the Museum of Archeology Mathura (1939) Fig 40 A  
example of the Bharat Kala Bhawan Varanasi.

५ पूर्वोक्त देगा, अथवा 'लक्ष्मीरत्ना'।—गुप्तरत्ना ३११० रघु १११

६ पूर्वोक्त देगा, अथवा 'लक्ष्मीरत्ना'।—गुप्तरत्ना ३१२ १८

७ पूर्वोक्त देगा, अथवा 'लक्ष्मीरत्ना'।—गुप्तरत्ना ३२

८ Mathura Art Museum N 2577 V S Agrawal  
Imagines in Mathura J L L O A. (1937) p. 127 Pl. X  
(Fig 1)





## काबिरास के ग्रन्थ परकासीन संस्करण

(११) केप्रमिन्व्यास प्रणालिबो—‘वेधमूपा’ नामक अध्याय में । प्रकार की वेध-रचनाओं पर विस्तृत प्रकाश डाला जा चुका है । यहाँ में उनकी पुष्ट कर कवि के समय पर कि वह निश्चय ही गुप्त काल प्रकाश डाल पायेगा ।

अमरकोश में अलक का अर्थ बूझ कुम्हार माना है । कवि ने ५ के शब्दों का बर्तीभूत<sup>१</sup> विशेषण कह अलक की व्याख्या बूँदरदार स्पष्ट की है । कुंडूम कपूर आदि के बूझ से अर्थात् इनके पीछे अवलोकन से बाक मरोड़ कर छम्बेदार बनाए जाते थे । रघुबंध में केरल देश की रिक्तों के के सम्मान से कवि ने बूर्ध का उल्लेख किया है<sup>२</sup> । लटों को अलकों के रूप आने से उनकी कम्बाई कम हो जाती होगी । कवि ने बिरहिनी कविजो के को सम्मानक<sup>३</sup> कहा है । अर्थात् पति के बिरह में मृगारादि परित्यक्त होने से घुट स्नात करने से और तंजावि का प्रवीण न करने के कारण सेवा समी होकर बार-बार कपीलों पर जा जाते थे<sup>४</sup> । वह अलक विशेष प्रकार का वेधविन्यास गुप्त काल की सम्मयी नारी-मूर्तिबों में देखा जा सकता है<sup>५</sup> ।

इसी प्रकार एक और प्रकार की वेध-विन्यास प्रणाली ‘बहुभार केय’ या<sup>६</sup> । देही और काबिरास दोनों ने इसे विशेष प्रकार की वेधरचना कहा है । श्री बाबुरेवधरन का कहना है कि इसमें माँ के बोलों और कमपरी तक सह्यरती हुई कुछ पड़िया मिलती है । वे ही और पर ऊपर की मुड़कर बूम जाती है । देखने में यह मोर की कहराती बूझ-सी मालूम होती है । काबिरास का ‘बहुभार’ से इसी प्रकार की वेधविन्यास प्रणाली से आसप है । यह प्रणाली भी कुछ मूर्तिबों में देखी जा सकती है<sup>७</sup> । मृगाल कला में यह प्रणाली नहीं मिलती ।

कवि ने अलकों को मुक्ताजाल प्रमित<sup>८</sup> भी बताया है, यह भी गुप्त काल में ही देखने में मिलता है । अर्थात् काल में इसका नहीं बना नहीं है ।

(१२) ईसलुकूल—गुप्तकाल में ईस सामान्य रूप अथवा ऐतिथ में कपड़ों पर

में कलहंतमग्रज बुद्ध<sup>१</sup> हंमबिहृदुद्ध<sup>२</sup> भावि चक्षुः का प्रवीण कर  
 ही है कि वे गुप्त काल के ही थे ।

भाषा सम्बन्ध आधार

( १ ) क्रीचक—कालिदास ने क्रीचक शब्द का प्रयोग अनेक  
 किया है<sup>३</sup> । विशेष प्रकार के बालों को क्रीचक कहते थे । हाकर बापची ने  
 किया है कि संस्कृत का क्रीचक शब्द ओमो भाषा से सम्पाद्यत्रि परिवर्तन के  
 मिला गया है । कण्ठम गुप्त काल या इससे कुछ पूर्व यह शब्द संस्कृत में  
 होता । प्राचीन ओमो छन्द ( book ) को—काक ( की भाँति का  
 था । श्री मिस्त्रन कैवी ने पहल पहल इस पर विचार किया था<sup>४</sup> ।

( २ ) अग्रनिरघ—बहि ने इस शब्द का अधिज्ञानपाठुस्तक में  
 साध प्रयोग किया है । कण्ठ का धनुस्तका के प्रति बचन—

मूत्वा बिराज चतुरात्मयतोमपत्तो दीप्यन्मिमात्रतिरघं तनयं विनेय ।

अर्थात् तदन्तिपुटुद्वयमरेण साध दान्ते करिष्यमि परं पुनरात्रमेष्टिम् ॥

अग्नि का राजा बुध्यन्त को आधीर्वाद—‘बलम अग्रनिरघो भव’ ।

भरत के प्रति गुणवामना—

रघेनानुवृत्तान्तिमितमतिना लोपमन्धि ।

पुरा मणवीषां जयति वन्युषामग्रनिरघ ॥ —अभि० ७।३

मन्त्र में अ निरघ शब्द प्रयुक्त हुआ है । ओ अन्वली पाण्ड<sup>५</sup> का कहना है ।  
 शब्द बहि को इतिहास मिल है कि यह वास्तव में गुप्त काल की विभूति है ।  
 गुप्त की प्रयास शक्ति में हमका स्पष्ट उद्देश्य है—‘विष्णुमन्त्रतिरघस्य ।  
 अरवनेधी मुद्रा पर अंकित है—‘यमिनीमर्तित्रया रिचं यमपत्रनिवायवीप  
 उनके समय अग्रतिरघ विजयारिण का यह अधिमान है—

निष्ठिमर्त्याय सुचरितैरिचं जयन् विजयारिण ।

१ बहदुद्ध कलहंतमग्रज मन्त्रिमं टोन्तिविहृदुर्वि च । —कुमार० ५

२ आमुक्ताभरतं चक्षुः हंमबिहृदुद्धमयम् । —रघ० १७।२५

३ रघ० २।१२ ४।७३ कुमार १।८

४ हाकर मुनाडिमुनाद चतुर्गां—भारतीय भाष भाषा और हिन्दी पृ० ५

५ अभि० ४।२०

६ बहि० अंक ७ पृ० १८५

७ कालिदास की चतुर्वली पाण्डे ८० पृ४



कालिदास के जन्म उत्कालीन संस्कृति

( ३ ) पाटनावेष्टि—रघुवंश का श्लोक है—

तत्र हूमावरीणां मर्त्येषु ज्वलन्निजम्पुः ।

कपीलपाटनावेष्टिं कम्पुष रघुचेष्टितम् ॥ —रघु० ५

रघुवंश की प्राक् सभी प्रतियों में यह पाठ 'पाटनावेष्टि' मिलता है । 'कपीलपाटनावेष्टि' पाठ कुछ है । कई हस्तलिखित प्राचीन प्रतियों में । ही पाठ है । प्रोफेसर रामसुरेष्ठ शिवाजी ( सनातन धर्म कावेज कानपुर ) पास रघुवंश की एक और हस्तलिखित प्रति है उसमें 'पाटनावेष्टि' पाठ है । यह है कि हूम की मर जाते थे उनके कपोलों के दोनों ओर छिन्न कर जाते थे जिससे धूम की धारा बह पड़ती थी । हूमों की इसी सामाजिक रीति से निष्ठ कवि ने यहाँ किया । इस दृष्टि से 'कपील-पाटनावेष्टि' पाठ ही कुछ सम्मान्य आदि में पाठक बैठ जानकर पाठकित्वा जय किया है जो एक लघु वक्रात् जय है । इस उद्धरण के आधार पर डाक्टर बासुदेवधरय जैसे विद्वान् कालिदास की निश्चित जय से चन्द्रमुष्ट द्वितीय के समय में मानने की सोच है । यह जन्मेव्य अभी अबस्त १९३३ में हुआ है ।

साहित्यिक प्रमाण

अभी हाल में ही श्री चन्द्रमणी पाण्डे की एक पुस्तक 'कालिदास' प्रकाशित हुई है जिसके अनुसार श्री कालिदास का जन्म चन्द्रमुष्ट द्वितीय का समय था है ।

रामसेनार का एक श्लोक है—

महामरयेषु च काव्यसाधनरीत्यां ब्रह्मसमा कारयेत् ।

तत्परीक्षितोत्तीर्णानां ब्रह्मरक्षणं परब्रह्मण । अन्ते

योगमिम्यं काव्यकारपरीक्षा

इह कालिदासमैतावन्नामरक्षणगुरुरारभ्यः ।

हरिचन्द्रचन्द्रमुष्टी ५

हामेभोत्तमुपजया करिष्य- षीशानिष्ठो स्यात्तिष्ठ ।

स्व्याति नामपि कालिदासकृतयो गीता-चकारादिना ॥

—रामचरित गायकवाड प्राच्यमाता

कवि अभिनन्द इमी प्रकारि के सम्बन्ध में जागे कहते हैं—

एकभूषणोत्तरं कथय कृपया पवित्रमक्या ।

सुबराज इत्यायमीक्षितो नृपतिः काव्यकलापुनरुद्गी ॥

—उद्यमरिख ५

इस मुपति के विषय में उभरा रहना है—

ममो नपतिचन्द्राय पुष्पीवासाय येन सा ।

विद्यासम्पत्तिना दिक्षु वसिता बहिपतुनि ॥—रामचरित

जब अधिन्याय की दृष्टि में व्यवसाय सुधरने लग ही लकारि और बहि

की स्वाति के कारण है। उनका बयान है कि बालिशान की बोलि म

का हृदय है और उनके द्वारा उषन बलि को बगानि मिली है। दूसरी

भी बयान है कि राजा विजयराज को कवि बालिराम ने व्याख्यात किया—

बाल्मीकिप्रमद्वेन रामकृपातुभ्यश्चिन वसामिदम् ।

व्याख्यात- विमल कामिदामवदिना श्रीविजयाशौभद ॥ ( १ )

बहु बालिशाम का एक ओर 'सुखाराति' में लब्ध है हमरी ओर "

हे । इतिहास-वेत्ताओं का कथन है कि विश्वास ही मर्यादाति था ।

भव निन्द्य यही करना है कि विद्यमान या दबाराति बन्दगुप्त ही है।

‘हरिश्चन्द्रवर्मागुप्तो परोक्षितः दिशान्तरात् मे विविक्तः हि

काम्यकार भी था किन्तु वह परीक्षा काफ़ी-क़ारी को था । हरिभद्र ने

मे काम का बहुत है 'महोदय' इत्यादि शब्दों का प्रयोग (हृत्पठ)

उद्ग्राम ) । यद्यनय वशि महेस्वर आने विश्वरूप को ही २

नियमा है—

ધી નામજાનગોરનપટવેદવિદ્યાનૈદગરમુપદેર વિષયે ।

दशगुणवर्धनो हरिश्चन्द्रायाः शब्दावली चरचरन्मन्त्रवहारः ॥

भी माहमाँरु भी जउदेर के मन् मगार बरि भी बा—

જાણે રાહિયોપિયો જરાઈ થો કાઢાક મડિ

६०१ श्री गणेशाय नमः ॥ १ ॥

—**अभिजातप्राणी**

सम्भव पतित वैराग्यमाह विष की ने भाग्यक ही हस्तिसिन्हा

बस्ती वाली के नाम अजिमाबुल्लाखान की कहानी बस्ती ५, पृष्ठ १०

काव्याय के प्रथम उत्कृष्टतम संस्कृति

वि० की हस्तलिखित प्रति है, उसका निम्नलिखित लेख भी श्री के अनुसार चन्द्रगुप्त के पद्य में अधिक है।

‘आर्ये रसमावबिद्येपरीक्षायुरो धीविक्रमावित्तस्य  
मृगिष्ठेयं परिपत् । अस्यां च  
पस्यातव्यमस्माभिः ।’

इससे साहसिक और विक्रमावित्त की एकता सिद्ध होती है।  
गुप्तवंशी है यह निम्नलिखित वही है कि ही जाया है—

इत्या आठरयेव राज्यमहरहर्षी च हीनस्तथा ।  
कस्य कोटिमलेनयत्किम कली बाता स गुप्ताम्बय ॥

—एपिवाफिया इण्डिका भाग १८ पृ० १४८ उद्धृत  
गुप्ताम्बय साहसिक का साहस वाच के कथन से भी स्पष्ट है।  
परकृतनकामुर्क कायिनीवेद्यगुप्ताय चन्द्रगुप्त चक्रपतिमसाठवदिति । (२५  
पट्ट उद्धृत)।

इसी को टीकाकार शंकर कवि और स्पष्ट कर देते हैं—  
शकानामाचार्य शकाधिपति चन्द्रगुप्तभ्रातृव्यासं भुवदेवी ५  
गुप्तेन द्रुपदेवीवेपथारिणा स्त्रीवेपथनपरिवर्तेन एहं सि व्यापारित ।  
अतः चन्द्रगुप्त ही साहसिक विक्रमावित्त और चक्रपति हुआ ।  
एक समस्या और भी है—राजसेधर का कथन है—भूमते

साहसिको नाम राजा ( काव्यमीमांसा अध्याय १० पृ० ५० ) । इनके अनुसार  
चन्द्रगुप्त की मयन का सम्राट् का उज्जयिनी का राजा रहे हो सकता है ?  
शकट वामदेवचरण अथवात्त का कथन है—

माकन और गुणपट्ट विजय के उपरान्त में चन्द्रगुप्त ने उन प्रान्तों के लिए  
बाँटी के सिक्के भी दत्तवाए थे । उन पर पट्टबाँव इस प्रकार लिख है—  
परमनाथवत्—महाराजविजय—भी चन्द्रगुप्त—विक्रमावित्तस्य ।

इसी लेख में विक्रमावित्त विजय का प्रयोग भी किया  
भी गुप्तगुप्तस्य महाराज  
सिद्ध ही

विभिन्नय माना है। श्री चण्डवली पाण्डे का कथन है कि  
के कवि हैं और इसी को आमः अपने काव्य में लिखा है<sup>१</sup>।  
मे हूँ उनके प्रभाव में।

(रघु० ४।४९-५२) इन श्लोकों को इसी सर्ग व १०वें  
पिलाए—

पारमीवास्तवो जेनु प्रतस्थे स्वल्परायणा ।

इतिपास्यानिव रघुस्तत्त्वज्ञानेन संघयी ॥

१० वें श्लोक में जे संघयी है परन्तु ४९ में ५२ तक पांडव  
में उनका अर्थव्यव है। श्री चण्डवली पाण्डे का तब है कि जय  
शेख का स्वपुरपुर निवास होना था। समुद्रमुष्ट की।  
विभिन्नय है और समुद्रमुष्ट की गमुराल श्री चण्डवली  
के नीतिनिगुण राजा कापुरस्थ श्री की प्रशंसा में बड़ा मना  
हारा मुष्टमुष्ट की उजागर किया<sup>२</sup>। अतः इनका अर्थव्यव  
के किमो व्यक्ति के साथ कोई चण्डवली की कथा कानी गई  
इसकी समुद्रमुष्ट ही मानने हैं। इसका आचार वे एरल का  
वलास्य श्रीपरराजमस्तमुस्ता

निर्ध्वं गृहेषु मुनिना बहुगुणवीरमहात्मनी कुमरस्य त्वं

—हेतुका

इनके अनुसार वला या वलाहेरी की लक्ष में पतिहेतु  
पदाश्रम की ही प्राप्ति हुई थी। इसका भीषा अर्थव्यव  
इस काव्य गरी हूए से कि उनको चण्डवली के परिपूर्ण कर  
इसी प्रकार पारमीक (रघु० ४।५०) भी इस  
शाला है। पारमीक कूटमीनि के अर्थव्यव से अतः उनका  
और वे पराश्रित हूए। कालिदास ने इसकी दाहो  
मनुष्यकी के अर्थव्यव से समान अर्थव्यव किया है व  
है कुछ 'पदाश्रम' कात का नहीं। आज भी लापानी  
अर्थव्यव से समान दाहो विधा में देखा जा सकता है।

१ कालिदास चण्डवली पाण्डे पृ० ३९

२ कालिदास चण्डवली पाण्डे पृ० १८ विद्वत्पत्र  
लालमुष्ट का अर्थव्यव लालमुष्ट का अर्थव्यव

३ कालिदास चण्डवली पाण्डे पृ० १९

काशिनाथ के द्वारा उत्कलमीन संस्कृति

वि० की हस्तलिखित प्रति है, उसका निम्नलिखित केब भी थी के अनुसार चन्द्रगुप्त के परा में अधिक है।

‘आर्ये रसमावशिष्टेपदीनागुरो धीविक्रमादिरस्य  
भूमिष्ठेयं परिपत् । अस्यां च  
सत्तावध्यमस्मामि ।

इससे साहसिक और विक्रमादित्य की एकता सिद्ध होती है।  
युत्तरार्ध ही यह निम्नलिखित स्तौक से निर हो जाता है—

हत्वा भातरमेव राज्यमहरात्री च वीनस्तथा ।  
सर्त कोटिमलेनयत्किम् कवी शता स मुष्टान्वय ॥

—एभिर्वाक्या इण्डिका भाग १८ पृ० २४८ सम्बन्ध  
मुष्टान्वय साहसिक का साहस शान के कथन से भी स्पष्ट है।  
परकृत्यकामुर्क कामिनीवेद्यगुप्तरण चन्द्रगुप्त धकपतिमसावयदिति । ( पट्ट उद्धवास ) ।

इसी की टीकाकार धंकर कवि और स्पष्ट कर बैठे हैं—  
धकलामाचार्य धकापति चन्द्रगुप्तभावायुमाया द्रुवदेवी  
मुष्टेन द्रुवदेवीवेपथारिणा स्त्रीवैपथनपरिमुष्टेन एवमि व्यापारित ।  
अत चन्द्रगुप्त ही साहसिक विक्रमादित्य और धकापति हुआ ।  
एक समस्या और भी है—राजधोर का कथन है—भूयस्ते और

साहसिको नाम राजा ( काव्यमीमांसा अध्याय १० पृ ५० ) । इनके अनुसार  
चन्द्रगुप्त को मगध का सम्राट् का सम्राजिनी का राजा जैसे ही उक्त है ?  
राजट्ट वानुदेवचरण अग्रवाल का कथन है—

माकन और मुराष्ट विजय के उपसहय में चन्द्रगुप्त ने उन प्रांती के लिए  
बांदी के निकले भी इतनाए थे । उन पर पट्टाव इन प्रकार लेख है—  
परमभागवत—महाराजविराज—धी चन्द्रगुप्त—विक्रमादित्य ।

इसी लेख में विक्रमांक विक्रम का प्रयोग भी किया  
भी मुष्टगुप्तस्य महाराज  
सिद्ध हो

विभिन्न माना है। श्री चन्द्रवती पाण्डे का कथन है कि कालिदास के कवि हैं और हमी को आश्रय अपने काव्य में देगा है<sup>१</sup>। जब हम में हम उनके प्रमाण देंगे।

( १५० ४१४९-५२ ) इन श्लोकों को हमी सर्व क ६० में श्लोक के मिलाए—

पारमीकास्ततो वेतुं प्रत्यये स्वसचरमया ।

हृदिवाक्मानिष रिपूस्तत्त्वज्ञानेन समयी ॥

६० में श्लोक में वे संयमी हैं परन्तु ४९ से ५२ तक पाण्डे और अपरान्त में उनका अर्थ है। श्री चन्द्रवती पाण्डे का कथन है कि असमय का चारण्य क्षेत्र का स्वगुरुर निवास होना था। समुद्रगुप्त की विभिन्न भी विभिन्न है और समुद्रगुप्त की मनुष्य को कवचबल में ही है। के नीतिनिपुण राजा काकुत्स्थ बर्मा की प्रशंसा में कहा गया है कि उसने द्वारा मुष्टिकुल को उजागर किया<sup>२</sup>। अतः हमारा अर्थ प्रकट है कि के किने व्यक्ति के साथ कोई कवचबल की कथा छाड़ी गई थी।

हमारी समुद्रगुप्त ही जानते हैं इसका आधार वे एरस का अभिलेख मानते हस्ताक्षर पौरपरराज्यसत्तमुक्ता हस्तपरस्परमनपायनमद्विमुक्ता ।

निर्य मूढेषु मुदिता बहुगुणवीर्यमजययो ब्रह्मवपुः पतिनी निविष्टा ॥<sup>३</sup>

—कैलेय इतिहास प०

इसके अनुसार हता या हतासी को शत्रु में प्रतिष्ठित की बार में पराक्रम को ही प्राप्त हुई थी। इनका भीषा अध दही है कि अभी हम कोश नहीं हुए थे कि उसकी वनपाय में परिपुष कर देते।

इसी प्रकार पारमीक ( १५० ४१५ ) भी इन विषय पर अच्छा जानता है। पारमीक ब्रह्मीति के मन्त्र से अतः उनका अर्थानक आक्रमण और वे वराजित हुए। कालिदास में हमारी शब्दों ( १५० ४१६१ ) मनुष्यों के कर्तव्य के समान कथन किया है वह मामानी काम का है कुछ बहुत काल का नहीं। आज भी मामानी शब्दों की उल्लेख के समान शब्दों का म हैगी या मका है। पारमीक नाम को

१ कालिदास चन्द्रवती पाण्डे प० १९

२ कालिदास चन्द्रवती पाण्डे प० १८ विदेहराजश्लोक देखिए—

राजगुरु का अभिलेख एनेकाटिग बर्मादेशा प्राय ७ विभाग १८

३ कालिदास चन्द्रवती पाण्डे प० १०

कालियास के राज्य उत्कालीन संस्कृति

काल में सामक होया । अग्रबली भी का कहना है कि संवत् १९ में 'पारसीक नहीं पञ्चन प्रमुत्त मे ने और पारत पर बा । १९ में इस समय ने । अतः एवुर्बस के आचार पर यही का ठीक बैठता है ।

अभिधानसाकुन्तल का आचार

समुद्रव्यवहारी सार्वबाह का संवत् इस प्रकार मिलता है—  
'समुद्रव्यवहारी सार्वबाहो जनमिषो नाम नौध्वसने विपन्न ।  
किन्तु तपस्वी । राजमायी तस्याधर्मव्य इत्येतदमात्येन सिद्धितम् ।  
पत्न्या । जेनवति । बहुधर्मत्वाद्बहुपरमीकेन तन्मन्वता धर्मितम् ।  
यदि कालियापन्थत्वा तस्य धार्मागु स्वात् ।  
प्रतिहारी उत्तर देता है—देव इदमोमेव साकेतकस्व अष्टिजो दुहिता  
पुत्रवना जामाज्य भूयते ।  
पद्मा निधम देता है—ननु धर्म रिचममहति । यच्छ एवममात्यं ब्रूहि ।

—अभि

एवुर्बस के सर्व १९ में भी धर्म का ही राज्याभिषेक होता है (एवु० १९।२२, और यहाँ भी धर्मस्व शासक ही अधिकारी होता है ।

इतिहास इसकी साक्ष्य देता है कि पारसीक धापुर भी समुद्रमुत्त सनवालीत प्रतापी सम्राट् का धर्म में ही अभिविषय हुआ था और यहाँ प्रभावपी मुत्ता का शासन करने वाल तनयों के लिए हुआ था । अतएव आचारों पर फिर यह कहा जा सकता है कि वापुत्त कालियास अग्रमुत्त विष्णुमाधिरम के राजकनि ने और अपने समय के इतिहास से पूर्ण परिचित थे । समुद्रव्यवहारी जनमिष की धार्मा साकेत के अष्टी की कथा है । भी अग्रबली भी का कहना है कि साकेत का नाम भी सानिप्राय लिया गया है । यही तक जाता है कि अग्रमुत्त के अन्तिम दिन सार्वबाह जनमिष रा उद्यो .

## मालविकाग्निमित्र का आधार

इस नाटक में महादेवों का नाम चारिणी मिलता है। महाउग्र की दुहिता भी प्रभावती गुप्ता के पुत्रा ताभ्रवत् से पता चलता है। अथ 'धारण' गोत्र में हुआ था। इस नाटक में मोदेवों १॥ अवरत्न प्राता कीरसेन का प्रथम भाया है<sup>१</sup>। अग चारिणी का ५ वंश है सम्भव था दूतों और वह वर्षावर कुल की थी।

चम्पकी जो का कथन है कि मालविकाग्निमित्र में अग्निमित्र बालकुल की समाज की दृष्टि में ऊपर जाने के लिए ही दिया जैसे विद्यादेव से मुद्राराक्षस में चम्पकुल भीषण की मिलबाह बना ही अग्निमित्र की कालिदास ने। कुछ विद्या पुष्पमित्र और रात्रनुय के स्वयं दिखाकर इस ज्येष्ठ दासक की प्रसन्नता में और चारिणी से पत्रवार दिग्गजाना कि परिचार इतना बिल। दो बच्चा हो सब उसके अपकन ही लिए हैं।

इसी प्रकार भी पाण्डे जी बिहमोवरीय में बिहम को रित्य और उवरी को मुबदेवी मानते हैं। ज्येष्ठ माना की वे भी बड़ा बुबेरनाया मानते हैं। ज्येष्ठ रानी के लिए १॥ ५ है। मादकुल के दासक अग्नि को चारिदास बच्चे से और ५ के पर्याय मनवा का इससे कुछ सम्भव है। स्वर्गोप ने भी मापकुल का यह मिथ्यान्त स्वीकार किया था<sup>२</sup>।

अब बला भाता चारिण्य सीमा ही आधार पर पुत्र नाम अर्जुन जीसी शतावरी ईसवी ठहरता है।

१ अग्नि देवता चम्पकी प्राता व रसेनी नाम ॥—दास०

२ चम्पिकाज चम्पकीय चम्पे पु० २१

३ चारिदास चम्पकी पाण्डे पु० १५



## कालिदास के समय में काम-

कालिदास ने अपने युग के जीवन को विविध रूपों में देखा था। उन्होंने कथा के व्यास से उत्कृष्टतम उदाहरणों के त्वाव और मोक्ष का किया है, वहाँ जीवन के विस्तृततम पक्ष का भरपूर वर्णन मिला। ये विषय-मुक्त की अनुभूति के नीचे पाए गए वास्तव कवि जीवन के इस निरूपण नहीं रख सकता था। अतः कालिदास की कृतिषु में वैवाहिक का धरम रूप एक और मानव की शास्त्र प्रवृत्तियों की एकरसता का है, बुद्धि और उस युग के विषय मुक्त-मन के प्रकार पर भी प्रकाश डालते हैं भारतीय-सम्प्रदाय में काम नुस्खान के रूप में प्रकीर्ण है और जीवन में वर्म वर्म के समकक्ष ही इसका महत्त्व है। कालिदास के समय की भावना हम समय का प्रत्यक्ष प्रमाण है। विविध के सम्प्रदाय नागरिकों के अन्तर्गत जीवन की अभिव्यक्ति वहाँ के पितामहों से निकली रतिपरिवर्तन यंत्र से भरपूर होती थी और अत्यन्त ही सौन्दर्य के कला की नगर जीवन की अभिव्यक्तियों की गुरुर-व्यक्ति से गुलरित रहता करता थी। महाकाल के मन्दिर देवताओं के भावना मूल के अन्तर्गत रहते और नगर के बाहर के उपवन प्रकृत के अद्भुत-मूल से।

कवि ने कनेचरी से लेकर धिक् और पार्वती तक को काम के वैवाहिक भाव से आश्रित दिखाया और इसके सुख-से-नूरत व्यावहारिक रूप का उचित उदाहरण के धाम किया। उनके मूल में विना वात-जीवन व्यक्त रहती है। उनके

पा। उन्हें तो सबक आपन बाध्यों में अपनी प्रेयसी से संयुक्त हो सुनी माना  
छरीरपारियों का मुख नाम के अधीन है (स्वर्चीन नाम दिहना  
कुमार० ४१०)।

मेपातोके भवति मुनिगौप्यग्यपावृत्तिवत्

बंठायेपत्रगणिनि जने कि पुनपुनरुत्पे ॥ —दुबमेव १

रम्यायि बीहय मधुरांश्च निराध्य राग्यान्,

परस्मृषो भवति यत्पुणितार्जि बन्धु ॥ —बमि ५१२

आदि रत्नों में सुनी व्यक्ति से अविशय उन व्यक्तियों से है जिसके  
उनकी प्रशंसनी हो। शिवाहीन जीवन को—

मृतिरस्तमिता रतिभ्युता विरत मेवमुनिरत्नम् ।

तत्प्रमाणरूपप्रयोजनं परिपूर्णं तपनोपमम् मे ॥ —रप०

के रूप में शीतल व्यक्त किया है। नाम का जीवन में इतना व्यापक स्थान  
के कारण और प्रेम का काम से सम्बन्ध होने के कारण वातिशय के  
निरूपण में नाम यदि देता हुआ जान पड़ता है। उनका प्रेम की ऊँची-से  
निम्नि आनिगत के घेरे में आकर बिछानि पाली है। यदि न नाम की  
का वाज्यागत स्नेह की अविशय परिपूर्ण माना है ( १८० १ १७५  
इत्यादि पाठं क्रिया विवत् —कुमार० ३१३५)। स्नेह की  
परिपूर्ण में वाज्यागत में प्रतीति के व्यापक से निम्निनिमित्त व्यापक व्यक्त  
है जो तत्कालीन भारतीय जीवन में व्यापक रूप से देने पाते थे—

( १ ) प्रेयसी के लिए हुए मधु को—टीक मधु को उमी पाद में पैना<sup>१</sup>

( २ ) प्रेयसी के लिये अर्पों में बहुरि का होना और दिन द्वारा ५००  
विरत अर्पों का समय<sup>२</sup> ।

( ३ ) मधुर की प्रक्रिया—प्रदमी का करने मृग में चरण भरकर  
मृग में डालना<sup>३</sup> ।

( ४ ) दिन द्वारा प्रदमी को स्वाधुक्त बनाय का शान<sup>४</sup> ।

१ मधुरिरेव कुमुदेकगान वरी त्रिषा स्वामन्त्रमन्त्र ।

मृदेव च स्वर्चनीतीतितापी मन्त्रमन्त्रमन्त्र इत्यादि ॥ —कुमार०

२ विरत, पारिप्लवी नं० १

३ रती रत्नार्चकद्वैतमन्त्र दयाय दंदुरद्वैत करेण ।

मन्त्रमन्त्रेन विदेव यात्रा मन्त्रमन्त्रमन्त्र स्वर्चनीत्या ॥ —कुमार० ३१३

४ वैरत, पारिप्लवी नं० ३

( ५ ) प्रेयसी द्वारा भीत गाना और भीतों के बीच-बीच में प्रेयसी द्वारा बुझन किया जाता<sup>१</sup> ।

( ६ ) नातिमग<sup>२</sup> ।

वैसा कि देखा जाता है काशियस ने प्रेय और काव दोनों की मौखिक के आरम्भ में कराई है<sup>३</sup> । उनके मठ में नारी का बीजम उसकी का स्वाभाविक मंडन है जबु न होते हुए भी मंदिर की तरह मदमत्त करने है जो कामदेव का बिना पुष्पों का भाव है<sup>४</sup> । इसी प्रकार पुष्प का बनिताओं के मैनों से लिए जाने योग्य जबु है, ममसिख तब का पुत है, प्रवास है, सर्वाल को लुप्तोपिठ कर देने वाला अकृषिज आधरण है और का प्रथम वरण है<sup>५</sup> । किसी अम्याज यमोहर बुन्दरी के अरब से कामतव होता है । उसको देखते ही उसमें अनुराग के पस्तक फूट पड़ते हैं, उसके हाव स्वयं से बहु मुकुचित हो उठता है प्रेमियों का सर्वात्मना मिश्रण उसका एक और मास्वाद उसका रस है<sup>६</sup> । नारी के अन्तर उबलुठ होती हुई कामभावना कवि ने अनेक प्रतीको द्वारा व्यक्त किया है । नारी के प्रथम प्रथम-वचन को न के प्रतीक से भाव दूत प्रकार व्यक्त करते हैं—

बीधिलोमस्तनितविहसधेयिकाबीनुवाया  
संस्पर्शना स्तनितनुवर्ग दधितावर्तनामे ।  
निर्मिथ्याया पवि मय रताभ्यन्तर शक्तिपत्य  
स्वीयामाहं प्रभाववचन विप्रमो हि प्रिये ॥ —पृथमेव ३

१ बीतान्दरेषु धमवारितेरी किशितमुष्णवासितपनैरुतम् ।

पुणस्तबाधुचितनेकतोमि प्रियामुत्तं किपुदपवधुमुष्ण ॥—कुमार०, ३।१८

२ नवीन्तुप्यस्तवस्तनाम्य हनुराववाभीष्टवमोहराम्य ।

लतावपुष्पस्तरवीप्यवाधुर्धिमप्रदासाधुनवन्धनादि ॥ —कुमार०, ३।३६

३ कुनुममिध कोमनीयं मौखमयनेषु संनद्रम् । —अभि० १।२०

४ अर्मन्तु मदनमयपट्टेरनातवाक्यं

कामस्य

उन दिनों सिपाई भी बाँधी पहनती थीं उनमें बिचिरी लमी  
 शानका कर बिगी को बाधित करने का यह मरस तरीका था ।  
 बिरोधकर मौजिदी के फूल भी बाँधी पहनती थीं । वह  
 रहती थी और उसे बार-बार ऊपर की ओर मरवाने हुए  
 बाहुत दिया जाता था । पार्वती ने पिछ की इसी प्रकार बाहुत

वस्ती निरम्बाबमम्बयाना पुन पुन  
 म्यामीहता स्थानविश स्मरेय मौर्वी निधीयामिष

कमी पुमारियां नृत्य और गीत के द्वारा भी बाने प्रेम  
 मासविवा की अभिव्यक्ति इसी प्रकार की थी—

दुस्वप्नप्रियो ये तन्मिगमय इत्य निरापबतो  
 जगन्तो ये परिणतुरति विमर्ति वाम ।  
 एष स चिरबुध कथं पुनरानेतस्यो  
 नाथ मां परापीनां त्वयि परिपश्य मृगानाम् ॥

द्विप के सम्मुख होने पर जान कर लेना बिमो बहाने से  
 कर बिमी बराने एक जाया बिगी शाही से न उल्टी  
 के रूप से देर तक मुल्लाने रहना जादि ली के  
 जाने से । दुष्पन्त न हरी लक्ष्यों से लुल्लान के

मदित-स्यस

प्रेमियों के मिलने के स्थान मविन-स्यस  
 मानुषेय के अनुसार बराने रहने से । कालिदास ने  
 स्थानों को प्रपदल्लिता-भूमि माना है ।

पर्यन्त-ग्रहण—कवि के मुख से पञ्चीय ब्रह्मों  
 प्रवाणी भी फिर पञ्चीय पर रहनेवाले के लिए ती  
 हरिद्वर उनके जीह-वचन से । दिन में यदि

१ कविपणे कवि मंहनमिति । कविपणम्  
 विनयवर्तितात्तत्त्वज्ञाना न विदुषो बरमा न  
 —रवीन्द्रोदय चरण एव दम्बर मन्त्री  
 कवीन्द्रोदयना न विरोध-मन्त्री

## कालिदास के राज्य उत्कालीन संस्कृति

जाते थे तो वे 'तिरस्करिणी' ( परबे ) का काम करते थे ।<sup>२४</sup>  
करती किन्नरियों की लग्ना बहुत-कुछ डकी रह जाती थी<sup>२५</sup> ।  
पूहों में बनिताओं के साथ विधाय करने वाले बनेचरों के लिए  
बमकटो ओषधियाँ राजि से बिना ठेक भरे मुरत-बीप का काम  
बिदिछा के नामरिक वहाँ की बेसाम्यों के साथ उन बिसागूहों में  
झोड़ा करते थे कि एति-सम्भार की लग्न से वे भरे जाते थे और  
उनमें से एति-परिमल चारों ओर बिकीर्ण होता रहता था<sup>२६</sup> । हिमात्मक  
प्रत्य भयर के समीप बन्धमायन विरि था । यहाँ और विद्यावरों का  
स्वत था । सम्भार समय में और चाँदनी रात में कसकी सोमा भरपूर  
हो जाती थी जो प्रलयजीला के लिए बलि उपयुक्त थी । बिबाह के  
पार्वती को लेकर इस पर्वत पर भी बिहार करने गए थे ।  
बिबलिया यह सूचना देती है कि सबकी राजपि को साथ लेकर  
बिहार करने गई है । यह सुन कर सहजग्या कहती है—'सम्भोप  
बह है, जो ऐसे प्रवेशों में किया जाय' ।

**झीझलीख**—नाम से ही स्पष्ट है कि यह बिहारस्वत था । यह कृत्रिम  
था । बनि ने इसका एक रीसाचिम मेषब्रूय में दिया है । यरा मेष से बह  
है उस बावड़ी के किनारे एक झीझ-पर्वत है । उसकी चोटी गुम्बर  
मयियों के बड़ाव से बनी है । उसके चारों ओर गुनहले करती बुझा का  
हेतने योग्य है उस झीझ-सीत में मुरवक की बाढ़ से पिछ हुआ मावची-मध्यप  
है, जिसके पास एक ओर बम्भक पस्त्यों और लाल फूलों वाला बघीम है  
और दूसरी ओर गुम्बर पीलसिरी है । उन दो बघों के बीच सोने की बनी हुई  
बसेप सेने की छतरी है जिसके चिरे बर बिस्तोर का कलक लगा है और मूल

१ बघामुकाओपवित्तजिगतागं यदुच्छया  
२ बरीपुनडापवित्तजिगतागं यदुच्छया



के वेग हो जाते थे। दुष्पन्थ और धकुन्तला का संघर्ष असांख्य में ही था। गीतमी के दर से अलग होती हुई धकुन्तला सत्ताधन्य को सम्बोधित करती हुई, परन्तु बन्धुत दुष्पन्थ को पुनः भोग के लिए आमन्त्रित करती हुई कहती है 'असांख्य संतापहारक मार्गधर्मै त्वां प्रबोधि परिधीयाय' १।

नदीतट—नदीतट प्रमियों के विराम-स्थान के रूप में सदा से प्रसिद्ध है। नदी के किनारे धर्म स्थल, रूप रस, यन्त्र सभी विषयों का एक साथ समन्वय देखा जाता है। पीछे चलन आन्ति को दूर करता है और एकान्त रक्षणीयता कम प्रत्येक नहीं होती। नदि ने सबका एकत्र समावेश व्यञ्जित किया है—

दीर्घादुष्पन्थदुःखरक्षं कृत्रिं सारसानी  
प्रमुपेयु स्फुटितकमलाभीरु-धीकपाय ॥  
नमः स्त्रीणां हरति सुरतल्लामिर्बन्धानुब्रूत  
विश्रावत प्रियतम इव प्रावनाचादुकार ॥ —पुनर्वसु ३३

नदीतट अमिठार के कन्देख थे। नदीतट के बागीरपुद्गल त्रिच-स्वत के लिए परम उपयुक्त माने जाते थे। यों भी वे विद्या के सुन्दर स्थल थे। बिना वेदसमूहों के नदीतट नूतन अमृत थे और प्रेमियों से रहित वेतनगह और सद्वर्तन २१। मोक्षवर्त के तौर पर विराम बागीर नूहों को सम्य कष्टे हुए राम सीता से एकान्त में व्यतीत किए हुए सुगम विनों की स्मृति कराते हैं २।

दीर्घिकातट के माह्नगृह—कनकों से भरी हुई बड़ी-बड़ी वातियों के तट पर मोहनगृह (सुरतगृह) बने होते थे। वे प्रायः भुक्त रहते जाते थे। अतर्क के अदतर पर विरामाजीन विभावितियाँ के साथ इन नूहों का अपमोम किया करते थे ३।

हर्म्य—नागरिक जीवन में जीवन की तरफ अनुमृति हर्म्य में अधिकाधिक सम्पन्न होती थी। कालिशाम न धन्य और काम-विद्या के सम्पर्क से हर्म्यों के जो चित्र रीते हैं वे एक और सत्ताधीन भारत के विद्याय वैभव के चोटक हैं और दुमरी और भारतीय जीवन की सत्ता—

कल का शृंगार और मुखरि का यह भोग पुरुष और नारी के सावयव की तरह समीप और स्नुहभोग है<sup>१</sup> ।

इन्द्रिय-भोग का उपभोग जिस हृद्यों में किया जाता था उनमें चित्र रहते थे<sup>२</sup> । वे अश्लिल चित्रा (आकृति रचना विद्या) में पुरुष रहते उनके पदादा में स्त्रियों के वेश-वर्णनर बाने छूम उड़ा करते थे उनमें मुखरि पक्षी रहती थी<sup>३</sup> । बीच-बीच में वाग्निमान् पक्षी के मुख्या से भी रहते थे । उनमें मदन का उद्दीपक लक्ष्मीना संतुष्ट होता रहता था<sup>४</sup> । पौर भी होता रहता था<sup>५</sup> । मोन के बल्लभ रने रहते थे<sup>६</sup> । मुँह पर पालू मोर नाचते थे<sup>७</sup> । कलियों पर बहुरि विद्याम किया करते थे<sup>८</sup> । यहाँ में उत्तुङ्ग समीपों अपने प्रेमी के हाव-बो-हाव डाँके ( १० २ ३१३३ ) प्रवेश करता थी । वहाँ पृथ्वी पर लहरा मचाई हुई थी<sup>९</sup> । उस पर हंस की तरह चलन बादर बिछी रहती थी<sup>१०</sup> । वीथ की ११

१ हेतिर, पृथु लक्ष्मण मध्याय लज्जितम्

२ तयोपपात्रावित्तमिन्निषावनामेधुनो गदमपु चित्रवन्तु ।  
प्रान्तादि दु गान्धर्वि दण्डनेषु गच्छिन्ममानानि मुनाम्बुवन् ॥

—रघु० १

३ वनवत्सल्यवर्गं अस्त्रिजोमानाचारं प्रितिविरचितमयं

—दुमार०

४ जामोदुपौर्णवित्तमपु वैद्यमन्त्रादपु

बाधुवीर्या अवनतिगिनिवित्तमप्योदहार ।

हर्म्येध्याः कुमुदमुनिवित्तमपु नयेषा

लक्ष्मी परमस्त्रिजोमानाचारमपुद्विने ॥ —बृहस्प ३९

५ मुखरिनामन्त्रं दधाम् विद्यामन्त्राचारमपुद्विने ॥

मुनिवित्तमपु नयेषा लक्ष्मी परमस्त्रिजोमानाचारमपुद्विने ॥ —गङ्गा०

६ तन्मन्त्राचारं तन्मन्त्राचारं प्रमन्त्राचारं तन्मन्त्राचारं ॥ —रघु १३६०

७ हेतिर, वाग्निमान् ॥ ३

८ हेतिर, वाग्निमान् ॥ ४

९ ॥ वनवत्सल्यवर्गं मुनिवित्तमपु ॥ —दुमार० ४२

१० हेतिर, वाग्निमान् ॥ ३

११ तन्मन्त्राचारं तन्मन्त्राचारं प्रमन्त्राचारं तन्मन्त्राचारं ॥

बृहस्प ३९ दधाम् विद्यामन्त्राचारं —दुमार० ८१८३



के केन्द्र हो जाते थे। दुष्यन्त और शकुन्तला का संघम सत्सङ्गम में ही हुआ था। नौतमी के दर से अलग होती हुई शकुन्तला कथावस्तु को सम्मोहित करती हुई परन्तु बल्लुव दुष्यन्त को पुनः भोग के लिए धामनिष्ठ करती हुई कहती है, 'मत्तमक्य संतापहारक आर्षभये त्वां भूयोऽपि परिभोजाम' १।

नदीतट—नदीतट प्रेमियों के मिलन-स्नान के रूप में उदा से प्रसिद्ध है। नदी के किनारे शम्भु स्वयं रूप रस गन्ध समो विषयों का एक साथ समन्वय देखा जाता है। घीसल पवन आन्ति को दूर करता है और एकान्त रमणीयता कम उत्तेजक नहीं होती। कवि ने सचका एकत्र समावेश व्यञ्जित किया है—

शीर्षादुःखमदुःखमदुःखं कृषितं सारसगतां  
प्रत्ययेषु स्फुटितकमलामोहनीयाम् ।  
यत्र स्त्रीणां हुरति मुरतस्मानिर्मगानुद्भूत  
धिप्रावत प्रियतम इव प्रार्थनाभादुकाटः ॥ —पूर्वमेव ३३

नदीतट अभिचार के उपदेय थे। नदीतट के बानीरगृह सक्ति-स्वक के लिए परम उपयुक्त माने जाते थे। यों भी वे विद्याम के सुन्दर स्थल थे। बिना बैठसगृहों के नदीतट मुने कमते थे और प्रेमियों से रहित बैठसगृह और अटकते थे<sup>२</sup>। गोदावरी के तीर पर स्थित बानीर गृहों को लक्ष्य करते हुए राम सीता से एकान्त में व्यतीत किए हुए सुगम्य दिनों की स्मृति कराते हैं<sup>३</sup>।

शीर्षिकातट के मोहनगृह—कमलों से घरी हुई बड़ी-बड़ी नावियों के तट पर मोहनगृह (मुरगृह) बने होते थे। वे प्रायः मुप्त ररे जाते थे। वल्लकेलि के अक्षर पर विज्ञानीजम विज्ञातिनिर्मी के साथ इन गृहों का उपयोग किया करते थे<sup>४</sup>।

हर्म्य—नागरिक जीवन में जीवन की सरस अनुभूति हर्म्य में अधिकारिक सम्बन्ध होती थी। कालिदास ने ग्रन्थ और नाम-विज्ञा के सन्दर्भ से हर्म्यों के जो चित्र रीचे हैं वे एक और सत्काव्यीय भारत के विद्यालय जीवन के चोटक हैं और इनकी ओर भारतीय-संस्कृति की कला-विषय के व्यञ्जक हैं। एरण्य और

कला का गृह्यार और मुद्राचि का यह संयोग पुरन और नारी के भावप्रबल की तरह रमणीय और स्तुत्योप है<sup>१</sup> ।

इन्द्रिय-मुक्त का उपयोग त्रिन हृत्पों में किया जाता था उनमें चित्र रहते थे<sup>२</sup> । व भक्ति दोमा ( आहुति रचना विज्ञान ) में यस्त रहते उनके यथाग्रा में स्त्रियों के वेश-संस्कार बाधे धूम उड़ा करते थे उनमें ५०० मुद्राचि रंजो रहती थी<sup>३</sup> । बीच-बीच में वाल्मीकि पृथ्वी के मुक्ता में व रहते थे । उनमें यदन का उद्दीपक सम्पीनाउ ग्रंथ होठा रहता था<sup>४</sup> । योग भी होता रहता था<sup>५</sup> । योग के बल्य रग रहने थे<sup>६</sup> । मुँह पर पातु घोर नाचते थे<sup>७</sup> । बलियों पर बहुर विधाय विद्या करते थे<sup>८</sup> । एहों में उन्मुक्त रमणियों जवन प्रेमी के हाथ-में-हाथ होते ( १८ ३८ कामु० १।२१ ) प्रवेश करती थीं । बगै पृथ्वी पर लम्बा मवाई हुई थी<sup>९</sup> । उस पर ईस की तरह चल बहार बिटो रहनी थी<sup>१०</sup> । बीच की ।

१ हेमिष्ट, पृथ्वी उन्मेष अथवा 'लविनरत्ना

२ तपोपपायाविभुमिन्द्रियावर्णानिदुः । गदयन् चित्रवन्तु ।

प्राद्यानि दुःशाम्यनि दग्धवेपुः सचिन्मयानानि मुक्ताम्यद्वयम् ॥

—रघु० १

३ जनकचक्रवर्त्तन भक्तिप्रधानानां चित्रविशेषितानां

५ १५५।

—मुद्रा

४ कामोद्गीर्णविक्रमः । वैश्वसंस्कारपू

बन्धुश्रीया । भवनविधिविभिन्नस्योपहार ।

हर्षोद्योगः । मुमुक्षुसामिप्यजगते नदीपा

स्त्रयो पदार्थस्य विभक्तिसंवितासाधनानि ॥ —दुर्भेद ३६

५ मुद्राचित्रवन्तु । विलासः । त्रिदशगोत्राणां विविधं वपुः ।

मुद्राचित्रवन्तु । विलासः । त्रिदशगोत्राणां विविधं वपुः ॥ —कामु०

६ तपोपपायाविभुमिन्द्रियावर्णानिदुः । गदयन् चित्रवन्तु ।

७ हेमिष्ट, पारटिपली नं० ३

८ हेमिष्ट, पारटिपली नं० ४

९ तां वाचविद्वज्जननस्यो मुक्ताम्यद्वयम् । —दुर्भेद ४२

१० हेमिष्ट, पारटिपली नं० ३

११ तपोपपायाविभुमिन्द्रियावर्णानिदुः । गदयन् चित्रवन्तु ।

विलासः । त्रिदशगोत्राणां विविधं वपुः —मुद्रा ८६२

यह सब छत पर होता था भी सुवासित होती थी<sup>१</sup> । वहाँ ललित भीत बाए बाते थे<sup>२</sup> । कुछ विविध रसिक कालिक की राजियों में भी छत के ऊपर बितल शान कर छत पर ही ललितानगार्जों के साथ शरद् की चाँदनी का आनन्द भोगे थे<sup>३</sup> । अति समृद्ध व्यक्तियों के गृहों में रत्नबोध ब्रह्म करते थे जिन्हें बुझाने के लिए राशि में लज्जा से अचानक स्थितों उन पर मुट्ठी में भर-भर कर कुंकुम रेंका करती थीं पर अपने प्रयत्न में असफल रहती थीं<sup>४</sup> । इन गृहों में चन्द्रकान्त मणि की लालरें लटकती रहती थीं जिनपर चन्द्रमा की किरणों के पड़ने से अमरिन्धुओं की फुहार बूने कपाती थी जिनसे कामिनिर्वा की रसिमान्ति मिट जाती थी<sup>५</sup> ।

### प्रथम निष्कन

अपने देश में कभी ऐसा भी समय था जब नव-परिणीता का अपने पति से प्रथम निष्कन एक समस्या हो जाती थी । स्वाभाविक लज्जा स्थितों में आज तक क्यों-कौ-स्तों है । स्वयं काकियास ने भी इस लज्जा का पर्याप्त उल्लेख किया है । नव-परिणीता लज्जा में इतनी डूबी रहती थी कि अपने शिव की ओर आरम्भ में आँस उड़कर भी नहीं देखती थी । शिव द्वारा दत्ते आन पर अपनी आँखें नीच फेटी थी । सदियों उसे किसी-निकी प्रकार शयनचय की ओर ले जाती थी । उसकी लज्जा की दूर करने के लिए किसी-न-किसी बहाने उसे हँसाने का प्रयास

१ वेगिए, निछने पुष्ट की पाटिण्णी नं० ५

२ बन्धु सब निशाय कामिनिमि समेतो निधि मुललितवीते इत्युपुष्टे सुगेन ।

—चतु० ११२८

३ कालिदीपु सविधानहम्यमाम्याजिनीपु ललितानगार्ज

बन्धुमुक्त मुरतधमार्गो नेपमुक्तविद्यया त चन्द्रिकाम् ॥—रघु० १९।३६

४ मीरीचयोन्मूलितविषयिर्ल यत्र विज्वागराणां  
राशे चण्डानिभूतकरैर्व्यग्रिततान्मु प्रियेषु ।

अचिन्तुंगानभिभूतवपि प्राप्य रत्नप्रसीपा

ग्रीमदानां मचलि विपलदेरणा बृधमुष्टिः ॥ —उत्तरमीय ७

दिया जाता था<sup>१</sup>। रायनगढ़ में पहुँचा दिए जाने पर भी नबोडा का उत्तर नहीं देती थी। उत्तर में प्रायः मिर हिला दिया करती थी। जीवत पकड़ने पर वहाँ से हटने की-नी बेला करती और लाने लमन और महु बेर कर मोती थी<sup>२</sup>। जब पति मंजुषा की ओर हाथ बढ़ाती हुई उनके बचक हाथों को रोबने लगती थी<sup>३</sup>। पण्डु मिथिल ब्रह्महर्म्य जो पति की कय आनन्द देने वाला न होता था<sup>४</sup> के साथ बबुरे रन की थी थी भरकर पीते थे।

बीरे-बीरे नबोडा की मित्रक मिटने लगती थी और जेमे-जेमे बिन्ने लगता था, वह पति की दुःखलीला अनुभव नहीं करती थी रमा राने-राने का मुमोष रतिपु नगोमताम)<sup>५</sup>।

जब समय के प्रेमीयनों का करने प्राय की अधिव्यक्ति का रूपा था—जबनी प्रेयसी की पूर्ण ने समाया<sup>६</sup>। अन्तों में बोंपों में बुनुओं के आभूषण पहनाकर वे मीनप और आनन्द करते थे<sup>७</sup>।

बबुरल के बिना आनन्द अपुरा रह जाता था। रति प्रसंग विविध प्रथाओं का गुरुतम अङ्गन बिना है। कालिराम की का प्रसंग आधिक है। उक्तान १मवी अर्ध-दीप्तम् (५) 'मन्वीयमुत्तमम्' 'वावर्तिप्रदायकम्' (तापु० ६१०)

१. मन्वर्तिप्रदायकम् तापु० ६१० ॥  
अति मन्वर्तिप्रदायकम् तापु० ६१० ॥

२. मन्वर्तिप्रदायकम् तापु० ६१० ॥

३. मन्वर्तिप्रदायकम् तापु० ६१० ॥

४. मन्वर्तिप्रदायकम् तापु० ६१० ॥

५. मन्वर्तिप्रदायकम् तापु० ६१० ॥

६. मन्वर्तिप्रदायकम् तापु० ६१० ॥

७. मन्वर्तिप्रदायकम् तापु० ६१० ॥

८. मन्वर्तिप्रदायकम् तापु० ६१० ॥

९. मन्वर्तिप्रदायकम् तापु० ६१० ॥

१०. मन्वर्तिप्रदायकम् तापु० ६१० ॥

ह सब छत पर होता था भी सुवासित होती थी<sup>१</sup> । वहाँ कलित भीत जाए जाती थी<sup>२</sup> । कुछ विविध रसिक कालिक की रात्रियों में भी छत के ऊपर बितान बाल कर छत पर ही ललितायनाओं के साथ घरव की चौरनी का आनन्द लेते थे<sup>३</sup> । अति समृद्ध व्यक्तियों के यहाँ में रत्नरोप जका करते थे जिन्हें जमाने के लिए रात्रि में कन्या से अलगत स्त्रियाँ उन पर भुद्री में नर नर कर कुंदुम रेंका करती थीं पर अपने प्रयत्न में असफल रहती थीं<sup>४</sup> । इन महलों में बभ्रुकान्त मणि की झालरें लटकती रहती थीं जिनपर बभ्रुमा की किरणों के पड़ने से बभ्रुकिणुओं को फुहार चूने लगती थी जिनसे कामिजियों की परिधानि मिट जाती थी<sup>५</sup> ।

### प्रथम मिस्त्रन

अपने देश में कभी ऐसा भी समय था जब नव-परिणीता का अपने पति से प्रथम मिस्त्रन एक समस्या हो जाती थी । स्वामाधिक कन्या स्त्रियों में आज तक ब्यो-की-र्यों हैं । स्वयं कालिदास ने भी इस कन्या का पर्याप्त उल्लेख किया है । नव-परिणीता कन्या में इसकी शूची रहती थी कि अपने प्रिय की और मारम्भ में जाँच उठाकर नौ नहीं बसती थी । प्रिय द्वारा देने वाले पर अपनी जाँचें भीच लेती थी । सखियाँ उसे विनी-किरी प्रकार रायनक्य की और ले जाती थीं । उसकी कन्या को दूर करने के लिए किसी-न-किसी बहाने उसे हँसाने का प्रयास

१ बैलिय पिङ्गले पृष्ठ की पाठटिप्पणी नं० ५

२ बभ्रु उव निराध-कामिजिनि सवेतो निधि भुक्तमिहारीसे हृम्यपृष्ठे सुराग ।  
—बभ्रु० ११२८

३ कालिदास सविधानहृम्यमायापिनीपु ललितायनालता ।

बभ्रुमुक्त सुरतपमानहा मीनमुक्तविशारां स बभ्रुकाम् ॥—रघु० १९११

४ नीवीचन्वीचद्विदितपिनिर्भं यत्र विम्बाचराणां  
रायं रापारनिमृत्करीष्यार्तिगतलु प्रियैषु ।  
अचिन्तुगानविमुगमपि प्रत्य रत्नप्रदीपा  
गृहीमृदाणां मवति विच्छत्रेरणा चूचमुष्टि ॥ —उत्तरमीश, ७

किया जाता था<sup>१</sup>। शयनगृह में पहुँचा दिए जाने पर भी नबोडा का उत्तर नहीं देती थी। उत्तर में प्रायः सिर हिला दिया करती थी। बाँधल पकड़ने पर वहाँ से हटने की-सी चेष्टा करती और छोटे समय और मुँह फेर कर सोती थी<sup>२</sup>। जब पति अंकुश की ओर झुक जाँपती हुई उनके बाँधल हाथों को रोकने लगती थी<sup>३</sup>। परन्तु मिश्रित असहयोग भी पति को कम मान्य देने जाता न होता था<sup>४</sup>। के साथ जबूरे रख की भी थी मरकर पीते थे।

धीरे-धीरे नबोडा की शिस्त मिटने लगती थी और जैसे-जैसे मिटने लगता था वह रति की कुलखीलता अनुभव नहीं करती थी रसा करने-सने सा मुमोच रतिकुलखीलताम<sup>५</sup>।

उस समय के प्रेमीयनों का अपने प्रिय की अनिमित्त का रूप था—अपनी प्रेयसी को फूलों से सजाना<sup>६</sup>। अलकों में बनों में कुसुमों के आमुपल पहनाकर वे लोचन और मान्य करते थे<sup>७</sup>।

अमुपल के बिना मान्य जबूरा रह जाता था। रति-प्रसंग विविध प्रसंगों का बहुरूप वर्णन किया है। काशियास की का प्रसंग आत्यन्तिक है। उन्होंने इसको 'अनंगवीपनम्' (१) 'मनोवमुत्तमम्' 'आमरतिप्रबोधकम्' (अनु २११)

१ नवपरिणयकम्पामुपया तत्र गौरीं बदनमपहृस्तीं  
अपि शयनसखीम्यो वतवार्चं कर्षयितुं ॥६६

२ व्याहृता प्रतिवचो न संख्ये यन्मुमैच्छदकम्बितांशका ।  
देवतो रम शयनं पराह्मुखी सा तत्रापि रत्ये विनाशिनः ।

३ भाविदेशनिहितः सकम्पया चकरस्य स्वये तथा कटः ।  
तदुत्तममय चायवत्स्वयं दूरमुञ्च्यसितनीविबन्धनम् ॥

४ वैदिए, पादटिप्पणी नं० २

५ कुमार ८११३

६ तां पुलोयतनयात्मकोधिते पारिजातकुसुमे प्रसाधयन् ।  
—रचितं रतिविहितं स्वया स्वयमंबेयु मनेदमातवम् ।

मिमते कुसुमप्रसाधनं तत्र तज्ज्वारवपुन दूर्यते ॥  
७ वैदिए पादटिप्पणी नं० १



किन्ना जाता था<sup>१</sup> । दामनपर्व में पहुँचा त्रिपु जाने पर भी नवोद्गा प्रिय के का उत्तर नहीं देती थी । उत्तर में प्रायः फिर हिन्ना प्रिया करती थी । पति बाँध पकड़ने पर वहाँ से हमने जो-जो चेष्टा करती थीर सोते समय भी और मुँह डेर कर धोती थी<sup>२</sup> । जब पति अङ्कुर की ओर हाथ बढ़ाते नाँवटी हुई उनके बाँधन हाथों को रोक्ने लगती थी<sup>३</sup> । परन्तु नववधू का मिमिक्ष बसहृद्योम यो पति को कम आनन्द देने वाला न होया था<sup>४</sup> । वे के साथ अबूरे रस की भी भी भरकर पीते थे ।

धीरे-धीरे नवोद्गा की मिमिक्ष मिटने लगती थी और जैसे-जैसे उसे मिमिक्षे लगता था वह रति की बुझासीलता अनुभव नहीं करती थी (आठ रसा धर्मे धर्मे सा मुमोक्ष रतिपुत्तगीकृतम्)<sup>५</sup> ।

उस समय के प्रेमोद्गमों का बनने प्रणय की समिप्यक्ति का एक रूप था—बपनी प्रेमसी को फूलों से सजाना<sup>६</sup> । अलकों में फूल चुँककर बों में कुसुमों के आभूषण पहनाकर वे सौन्दर्य और आनन्द दोनों की करते थे<sup>७</sup> ।

नवपल के बिना आनन्द वधूरा रह जाता था । रति-अर्जुन में कवि विविध प्रसंगों का चुनकर बजान किया है । कालिदास की सम्पूर्ण कवि का प्रसंग अत्यधिक है । उन्होंने इसको 'धर्मगवीपनम्' ( कुमार० 'नरनौवमुत्तमम्' 'वामरतिप्रबोधकम्' ( भाष्य १।१० ) 'स्मरसक्तम्' ।

१ नवपरिषपत्तमामुवणां तत्र बीरीं नवनमपहृरतीं तत्पतापेपनीरा  
अपि दामनसखीम्यो वत्तवार्थं कर्त्तवित् प्रमथमुक्तविकारैर्हृमियामास

—कुमार०

२ व्याहृता प्रतिवची न संखे गन्तुर्मेच्छयवकम्वितांघका ।

देवते रम दयार्थं पराङ्मुखी सा तथापि रसमे विनाकिन् ॥ —३

३ वामिदैर्गमिहितं सक्तमया र्थकरस्य रक्ते तथा कटः ।

तत्पुष्पकलमयं वामकलमयं दूरमुष्णकलितवीरिविजम्भनम् ॥ —कुमार०

४ देक्षिते, वारणिष्ययी नं० २

५ कुमार ८।१३

६ तां पुलोमत्तनपाककोचिती पारिजातकुसुमे प्रसाधयन् । —कुमार

—रचितं रतिरीहितं स्वया स्वयमर्पेण ममेवमातकम् ।

दिपते कुसुमप्रसाधनं तत्र तन्वावरणपूर्णं दृश्यते ॥ —कुमार०

७. देक्षिते, वारणिष्ययी नं० ६



१३९) आदि माना है। ये इसकी 'अवतारमङ्गलम्' भी मानते हैं। मधु सिंघों नयनों को बिभ्रम की सिरा देने में बल है<sup>१</sup>। मधु के कारण उनकी बाँहें अपने लपटी थीं। बाँहों की वरिष्ठ सशक्त होने समती थी। मधुप्रभावजम् अन्तर्हृत्स्वर्य से विभूषित पुत्रियों के मुख को कामीजन जेबों से बेर तक पिया करते हैं<sup>२</sup>। मधु-वन्द्य विख्या केवल रक्षकों की ही सुख नहीं होती थी सज्जनों को भी मनोहर समती थी (सता मनोहराम्)<sup>३</sup>। कालिदास ने मधुपान से बड़ी हुई मधोमता को आभरता का सहकारता में परिबल हो जाना माना है<sup>४</sup>। सिंघों अपने मुख को सुशोभित करने के लिए भी मधुपान करती थीं<sup>५</sup>। अपने एक लोक में उन्होंने मधु की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कर दिया है—

कर्मस्तुविभ्रमबन्धविषयं सुरभिगन्ध-पराविहरेतरम् ।

पठिषु निर्विद्विषुमशुभैरना स्मरस्यं रससङ्गमवर्जितम् ॥ —रघु० १५११

इस भी दृष्टि में ऐश्वर्य का जाने पर मधु पीते थे। वह विशेष प्रकार से पार किया गया छेदा था। उसके पीते ही शैतन्य पुनः लौट जाता था—

यत्सु सप्तसहस्रकारमासु रक्तपाटकस्य मार्गः पथी ।

तेन तस्य मयुर्निर्गमात्स्थविषययोगिरमवत्पुननव ॥० —रघु० १२४६

मेम्लिगिठ श्लोक में कालिदास न यशों के व्यास से मनुष्य के सम्पूर्ण बाधा-  
रण हलक समय बाध का उचित कर दिया है—

१. पुनोमि बहुषो षड्-विल्ल स्त्रीभनस्य विशेषमहम इति ।

—माला अंक ३ पृ ३०१

६. मधु नयनयोर्बिम्बयादौपद्यस्य । —उत्तरमैत्र १२

१. ब्रह्मज्ञाननयनं सगम्यत्वर्यं स्वैरहितम् महकारणस्मितम् ।

माननेन न तु पादनीपहरद्वयप्रवा विरमुयातुर्न कवी ॥ —कुमार० ८१८

॥ ५. पादनी उदुपयोगसंज्ञया विज्ञियामपि सदा मनोद्वगाम् ।

अथतुष्टगविषयोमनिमित्तापामनेव सहकाऽतां ययी ॥ — कुमार० ८।७८

६ पुणामशमोऽविदधनरीदृशा । --अतु ५१५

मम्यां यथा मितमभिमयायेत्य हृदयस्वल्पानि  
 ज्योतिरङ्गाया शुशुमरचिच्छाद्युत्तमस्त्रीसहाया ।  
 आतेवन्ते मधु रतिफलं कल्पबुधप्रभूतं  
 तत्पूर्वमीगच्छन्ति पुनरेवाह्वये ॥

रति प्रसंग में दीप्ति आतु में प्रायः पुरानी शराब ( पुरातनोभुत  
 ने जो सहकार की मंजरी के टुकड़े और जाने पालक के वृक्ष  
 थी<sup>१</sup> । बाढ़ों में पुष्पास्त्र का पाल किया करते थे<sup>२</sup> ।

समुद्र व्यक्ति रक्तवर्ण के सुपकान्त धनि के ध्याने में मधु  
 कण्डे कपय प्रेयसी अपने ध्रिय से इतनी सट कर बैठती थी  
 हाथ में लिए मधुपूष ध्याने में लहर उठ जाती थी<sup>३</sup> और  
 सिद्धमिका उठती थी<sup>४</sup> । उन दिना मधु की प्रथा  
 मुख में शराब भरकर प्रेयसी के मुख में उड़ेल देता था और  
 जो शराब ध्रिय के मुख में डाल देती थी । स्निग्ध बहुत  
 थी और पुरुष भी बहुत बौद्ध की तरह स्त्रीमुख-मधु के लिए

रतिक्रीड़ा—नई ध्याती बहुत बड़े-बड़े पति के  
 नई ध्याती बहुत के साथ संयोग जो धीरे-धीरे किया  
 पबरन न जान<sup>५</sup> । काठिन्य ने इस सूक्ष्म बात में लेकर

१ पूर्व उल्लेख देखिए जम्माय 'ज्ञानपात्र'

२ पूर्व उल्लेख देखिए जम्माय 'ज्ञानपात्र'

३ लोहितार्धमणिमावर्णात् कल्पबुधमधु विभक्ति  
 त्वामिदं स्थितिमतीमुपापता ।

४ सुपन्निमित्तवासकपितृत्पक्ष मनीहर्ष ।

५ हिन्वा इत्थमभिमतरतां रेवतीलोचनार्का  
 बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लालसी मा सिधेने ।

६ छातिरेक्यकारणं राहसीन वलमयिनेपुराणा  
 तामिरप्युपहृतं मुक्तमर्ष नीतिवत्  
 —मशाननार्पितं मधु पीत्वा.....

७ शम्भुसाधुप्रकम्पया कल्पवेध नवरीसया वटः ।

८ सरयं कुम्भे महामुख सहस्रोद्गमिदं सजेदिति  
 बचिरोक्ता स मेरिनी नवामिग्रह्या ॥

प्रसिद्ध बनेक अनुभावों आसनों और प्रकारों तक का अपनी कवि में रिया है जो कहीं स्पष्ट कहीं प्रतीक के रूप में और कहीं सांकेतिक में है। काश्मिर ने संक्षिप्त रसि का पूरा चित्र दिया है<sup>१</sup>। विपरीत रसि का संकेत किया है<sup>२</sup>। विप्रमर्श का संकेत किया है<sup>३</sup>। 'कंठपूष' वाचन का भी वे नाम ही नहीं देते स्पष्ट अभिव्यक्ति भी कर देते हैं<sup>४</sup>। कहीं कहीं विशेष आसनों की ध्वनिवा बड़ी सामर्थ्य है जो उत्कालीन संस्कृति के रस स्वरूप का संकेत है, जैसे उनका विमलसिद्धि स्तोत्र—

पत्तु धिरसन्नकलागनेन स्मृतेति सख्या परिपुष्टपूषम् ।

सा रंजयित्वा चरन्ती कृताजीर्णस्यैव तां निर्बलं बभूव ॥ —कुमार० ७१६  
कवि ने अपने समय में प्रचलित प्रकार (बीज) को भी किसी-न-किसी व्यास से अपनी कृतिमें में निःसंकोच स्वागत दिया है। एक प्रसिद्ध प्रकार यह है—

तस्माद्विचित्रकरपुत्रमिव प्रसन्नवाचीरघत्तं  
हृत्वा भीतं सन्निवृत्तं मुक्तप्रेषीनिवन्धम् ।  
प्रस्थानं ते कथमपि सद्यः सम्प्रयागस्य पाणि  
आताम्बाली विपुलजननी को विहानुं यत्न ॥ —पूर्वमेव ४४

नववन् के साथ ही सद्य-रसि भी पर जैसे निर्बल-रसि को ही अधिक प्रभाव दिया जाता था। मेखला पुष्प छिन्न-विन्न ही जाती वे नलपत्त इपर-जपर ही जाती वे बीज छिन्न ही जाती वे<sup>५</sup>। जपर का पाङ्ग रंजन स्वाभाविक बात थी<sup>६</sup>। संक्षिप्तों के कैय आहुत-आहुत ही जाते थे<sup>७</sup> और इनमें बुंधी पुष्पमाता फिर

१ बुम्भनेनमररत्नवज्रितं विमलहस्तसदयोपगुह्यम् ।

स्तिष्ठन्मन्त्रमपि दिवं प्रवीणुलप्रतिफलं बभूवतम् ॥ —कुमार० ८१८

२ बुम्भनादलनपुष्पपुपितं शंकरोऽपि नयनं ललप्यम् ।

अन्त्यतन्मन्त्रगन्धये वही वाचतीचरणगन्धवाहिने ॥ —कुमार० ८१९

३ बुम्भं बभूवुल्लसनापुलं छिन्नमेरुलमकठकानितम् ।

छत्विगस्य दायनं विद्यामिनस्तस्य विप्रमरताम्यपावुनीत् ॥ —रघु० १६१५

४ तस्य निर्दयतिप्रभातता ८५

जाती थी<sup>१</sup> । रंज-धिरंगे पृथ्वी से बना केयबिम्बास उनके केयों के साथ  
मिलकर जाता था और उसकी देखकर मयूरपक्ष की ऐंगीकी सोमा  
जाती थी<sup>२</sup> ।

कामक्रीड़ा के अर्थ व्यापार पक्षा सज्जना<sup>३</sup> उत्सवसज्जना<sup>४</sup> मलयत<sup>५</sup>  
सब की ही उत्सव कवि के ग्रन्थों में है । अन्ततः से परती बज्जा  
के बीठ इतने दुखते थे कि बंशी बजाया भी कठिन हो जाता था<sup>६</sup> ।  
से स्तनप्रदेश<sup>७</sup> बचन<sup>८</sup> और नितम्ब<sup>९</sup> भर जाते थे ।

परन्तु रति का सर्वस्व जबर<sup>१०</sup> माना जाता था । काकियास

१ केयपाशं बलितकुसुममालं कुञ्चितं बहुमती । —श्रुतु ५।१२

२ अपि तुरगसमोपानुत्पल्लवं मयूरं न स वधिरकक्षापं बाध ।

सपदि यतमनस्कविचित्रमास्मानुकीर्णं रतिविपश्चित्तजम्बे केयपाशे ।

—रघु

३ किं शीतलैः कलमविनोदिविराजितालम्बधारयामि ।

अकिं निवास करमोह यथासुखं से संवाह्वामि चरन्मानुत ।

४ ऐक्षिण्य, पादटिप्पणी नं० १

५ १ मलयपक्षितमावाभीक्ष्णमात्रं स्तनान्तालवरुक्षिस्तम्बां वन्तमिन्नं ।

—श्रुतु

—वन्तमिन्नं सद्यजवन्तविह्वलं स्तं सच पाल्मप्रकृतामिमेव ।

संसृज्यते निर्दयममलानी रतोपमीनो नवयोजनानाम् ॥ —श्रु

—वीजुना वसगपीडितावरा बीजवा मलयपक्षितो रच । —रघु०

७ ऐक्षिण्य, पादटिप्पणी नं० १६ —रघु० ११।१५

८ स्तन-प्रदेश में मलयत के लिए ऐक्षिण्य, पादटिप्पणी नं० ५१

५।१५ श्रुतु०, ५।१६

९ बचन प्रदेश के लिए ऐक्षिण्य पादटिप्पणी नं० ५१

—ऊष्णमूलनसमार्जराजिमिस्तत्तत्तत्तं हृतविशोचनी हरः ।

बासस-प्रतिविस्मय सर्वमं कुर्वन्ती प्रियतमामवारयत् ॥ ५ ।

१ नितम्ब के लिए—प्रियानितम्बीधितर्जनिबोधेविपाटयामास युवा

—

११ कटी व्याधुम्बस्या पिबसि रतिसवस्वमपरं ।

ययं उत्पलपपागमयुकर हृतास्त्वं खल कतो ॥ —अभि०, १।२२

भीत गाने में बिमोर से जान पड़ते हैं<sup>१</sup> । कवि ने बजर-पान का व्यक्त सुसंस्कृत प्रकार भी व्यक्त कर दिया है—

अपरिहृतकोमलस्य धावत्कुसुमस्येव भवत्य पदपद्मेन ।

अजरस्य पिपासता मया ते सख्यं मुग्धरि गृह्णाते रमोऽग्रम ॥ —अभि०, ३।२३

रति की पश्चिमापि भी चुम्बन से ही होती थी<sup>२</sup> ।

---

## आधार ग्रन्थों की तालिका

१. अम्वेद तथा अन्य वेद	२. सतपथ ब्राह्मण
३. ऐतरेय ब्राह्मण	४. छांदोग्य ब्राह्मण छांदोग्य
	५५
५. तैत्तिरीय संहिता तैत्तिरीय ब्राह्मण	६. कठोपनिषद्
७. छान्दोग्य उपनिषद्	८. बृहदारण्यक ( उपनिषद् )
९. आपस्तम्ब धर्मसूत्र	१०. शौचायन धर्मसूत्र च । १५
११. पौष्टम धर्मसूत्र गृह्यसूत्र	१२. अथर्व धर्मसूत्र
१३. धौतक कारिका	१४. पारस्कर गृह्यसूत्र
१५. आश्वलायन गृह्यसूत्र	१६. बृहसूत्र (बेदाष्ट) वैमिनि के
१७. कामसूत्र	१८. मनुस्मृति
१९. वाजपत्यन स्मृति	२०. पाणिनि कृत् अष्टाध्यायी
२१. अथर्व तथा कैयट के महामाष्य	२२. रामायण मगधमीठा
२३. कादम्बरि—बाण	२४. हर्षचरित—बाण
२५. उत्तररामचरित	२६. रामचरितमनो
२७. नाट्यशास्त्र	२८. स्वयंवासवदत्ता
२९. सिधुपातम्भ	३०. नागार्णव
३१. संगीत रत्नाकर	३२. संगीतगोविंद
३३. कौटिल्य का अर्थशास्त्र	३४. अमर कोष
३५. काम्य भीमार्मा राजशेखर	३६. अमित्रानुक्त
३७. विक्रमोद्योत	३८. भाष्यिकाभिनिमि
३९. रघुवंश	४०. कुमारसम्भव (प्रथम सर्ग ८
४१. मेघदूत	
४२. अनुसंहार ( कालिदास ग्रन्थावली )	द्वितीय संस्करण सोवाराय ५५
४३. मरिचक की टोका —रघुवंश	कुमारसम्भव और मेघदूत
४४. कालिदास की भी मिरापी	
४५. कालिदास हिंस्रान्त	
४६. कालिदास : ३	

- ४७ कालिदास अरविन्द  
 ४८ कालिदास भासा  
 ४९. कालिदास रामस्वामी शास्त्री ( दोनों भाग )  
 ५० कालिदास एच एम० भावे  
 ५१ कालिदास चन्द्रबन्दी पाण्डे  
 ५२ दि वर्थ प्लेस आफ कालिदास मद्रास सरकार प्रकाश  
 ५३ दि डेट आफ कालिदास के० सी० चट्टोपाध्याय  
 ५४ इण्डिया इन कालिदास बी० एम० उपाध्याय  
 ५५. मयदूत एक अध्ययन बामुदेवचरण अग्रवाल  
 ५६ कला और संस्कृति बामुदेवचरण अग्रवाल  
 ५७ ह्यचरित — एक सांस्कृतिक अध्ययन बामुदेवचरण अग्रवाल  
 ५८ प्राचीन वैद्यभूषा डा० मोतीचन्द  
 ५९ प्रकृति और काव्य डा० रमचन्द्र  
 ६० हिन्दू संस्कार राजबन्दी पाण्डेय  
 ६१ आय संस्कृति के मूलाकार आचार्य बामदेव उपाध्याय  
 ६२ कल्याण ( संस्कृति अंक )  
 ६३ भारतीय भाषा भाषा और हिन्दी डा० गुनोतिरमार चटर्जी  
 ६४ प्राचीन भारतीय चरित्र और इतिहास डा० राज्ञेय राय  
 ६५ A History of Sanskrit Literature A B Keith  
 ६६ A History of Indian Literature M. Winternitz  
 ६७ A History of Classical Literature M. Krishnamachari  
 ६८ History of Dharm Shastra P V Kane  
 ६९ Cambridge History of India Vol I, Ancient India  
 ७० Hindu Civilization R. K. Mukerjee  
 ७१ Social Life in Ancient India H. C. Chakraborty  
 ७२ Corporate Life in Ancient India R. C. Majumdar  
 ७३ Education in Ancient India Dr. A. S. Atkhar

- b9 Culture and Society Merrill & E
  - c0 India's Culture through the Ages
  - c1 Glories of India on Indian Culture  
pachyaya Dr Prasanna Kumar Ach
  - c2 Kufpati's Letter LXIII
  - c3 Annals of Bhendanker Research
  - c4 Indian Antiquary Vol XXXIX
  - c5 Mythic Society Vol IX
  - c6 U P Historical Society Vol XXII Part  
XIV ( 1941 )
  - c7 Journal of the Royal Asiatic Society 191
  - c8 Annals Oriental Research University M  
1941 )
-





- ১৭. Culture and Society Merrill & Eldredge
  - ২০. India's Culture through the Ages Mohan Lal
  - ২১. Glories of India on Indian Culture and Civil  
pachhyaya Dr. Prasanna Kumar Acharya
  - ২২. Kulobir's Letter LXIII
  - ২৩. Annals of Bhandarkar Research Institute Vol VII
  - ২৪. Indian Antiquary Vol XXXIX
  - ২৫. Mythic Society Vol IX
  - ২৬. U P Historical Society Vol. XXII Part I & II (   
XIV ( 1941 )
  - ২৭. Journal of the Royal Asiatic Society 1903-190
  - ২৮. Annals Oriental Research University Madras, Vol.  
1941 }
-